

# भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,  
साहित्य, पुराण आदिका यथा सम्भव  
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना



सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

प्रथाङ्क १-३

प्रातिस्थान

मैनेजर

भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय, नया संसार प्रेस, काशी ।

Sri Dig. Jain Sangha Granthmala No. 1-III

**KASĀYA-PĀHUDAM**

**III**

**(THIDI VIHATTI)**

**BY**

**GUNABHADRACHARYA**

**WITH**

**CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA**

**AND**

**THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF**

**VIRASENACHARYA THERE-UPON**

**EDITED BY**

**Pandit Phulachandra Siddhantashastrī,**

*EDITEOR MAHABANDHA*

*JOINT EDITOR DHAVALA,*

**Pandit Kailashachandra, Siddhantashastrī**

*Nyayatīrtha, Siddhantarātna,*

*Pradhanadhyaapak, Syadvada Digambara Jain*

*Vidyalyaya, Banaras.*

**PUBLISHED BY**

**THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT,**

**THE ALL-INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA**

**CHAURASI, MATHURA,**

**VIRA-SAMVAT 2481 ] VIKRAMĀ S. 2012 [ 1955 A. C.**

# Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—]

[—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:—

**Publication of Digambara Jain Siddhanta,  
Darsana, Purana, Sahitya and other Works  
in Prakrit, Samskrit etc. Possibly with Hindi  
Commentary and Translation.**

DIRECTOR:—

**SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA**

**NO. 1. VOL. III.**

To be had from:—

**THE MANAGER  
SRI DIG. JAIN SANGHA.**

**CHAURASI, MATHURA,**

**U. P. (INDIA)**

*Printed by—S. N. UPADHYAYA,  
AT THE NAYA SANBAR PRESS, BANARAS.*

800Copies,

Price Rs. ~~Five~~ <sup>Fifteen</sup> only

## प्रकाशककी ओर से

आज सात वर्षके पश्चात् कसायपाहुड ( जयधवला ) के तीसरे भाग ( स्थिति विभक्ति ) को प्रकाशित करते हुए हमें जहाँ हर्ष है वहाँ अपने पर खेद भी है । दूसरा भाग प्रकाशित करते समय ही उत्तम कागज दुष्प्राप्य था और प्रेस सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी थीं । उसके पश्चात् आर्थिक कठिनाई भी उपस्थित होगई और प्रयत्न करनेपर भी छपाईका कार्य प्रारम्भ न हो सका ।

इसी बीचमें संघके प्रधानमंत्री पं० राजेन्द्रकुमारजीने प्रधानमंत्रित्वके कार्य-भारसे मुक्ति ले ली और पं० जगमोहनलालजी शास्त्रीको प्रधानमंत्रित्वका भार सौंपा गया । आपके कार्यकालमें कुण्डलपुर ( मध्यप्रदेश ) में संघका वार्षिक अधिवेशन हुआ और उसका सभापतिपद डॉंगरगढ़ ( मध्यप्रदेश ) के प्रसिद्ध उदारमना दानवीर सेठ भागचन्द्रजीने सुशोभित किया ।

उस अवसर पर आपने कसायपाहुड ( जयधवला ) के प्रकाशनको चाहू रखनेके लिये ग्यारह हजार रुपयोंके दानकी उदार घोषणा की और यह भी आश्वासन दिया कि द्रव्यकी कमीके कारण यह सत्कार्य बन्द नहीं होगा । इससे सभीको हर्ष हुआ और कागज तथा प्रेसकी व्यवस्था होते ही तीसरा भाग प्रेसमें दे दिया गया जो एक वर्षके पश्चात् प्रकाशित हो रहा है । तथा चौथे भागके भी कुछ फार्म छप चुके हैं और पाँचवाँ भाग भी प्रेसमें दिया जानेवाला है ।

यह सब दानवीर सेठ भागचन्द्रजीकी उदार दानशीलताका ही सुफल है । उन्होंने अपनी लक्ष्मीका विनियोग ऐसे सत्कार्यमें करके धनिको और दानियों के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करनेके साथ साथ अक्षय पुण्यलाभ लिया है । क्योंकि शास्त्रकारोंने कहा है—

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽज्ञसा जिनम् ।

न किञ्चिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयोः ॥

'जो भक्तिपूर्वक श्रुतकी पूजा करते हैं वे यथार्थसे जिनेन्द्रदेवकी ही पूजा करते हैं, क्योंकि सर्वज्ञ-देवने श्रुत और जिनदेवमें कुछ भी भेद नहीं बतलाया है ।'

अतः कसायपाहुड जैसे ग्रन्थराजके प्रकाशनमें द्रव्यका विनियोग करके सेठ भागचन्द्रजीने प्रकारान्तरसे गजरथ महोत्सवको ही सम्पन्न किया है; क्योंकि जिनविम्ब प्रतिष्ठासे जिनवाणी प्रतिष्ठा किसी भी अंशमें कम नहीं है ।

हम सेठ भागचन्द्रजीको उनकी इस उदारताके लिये शतशः धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अब यह सत्कार्य अवश्य ही निर्विघ्न पूर्ण होगा ।

इस भागके अनुवादादि समस्त कार्य पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने निष्पन्न किये हैं । मूल व अनुवाद आदिका संशोधन व पाठ मिलान आदि कायमें मैंने भी पंडितजीके साथ सहयोग किया है । पण्डितजी आगेके खण्डोंका भी सब कार्य बड़ी तत्परतासे कर रहे हैं । उक्त दानमें भी उनकी प्रेरणा विशेषतः रही है । इसलिये वे भी धन्यवादके पात्र हैं ।

इस भागमें स्थितिविभक्ति नामक अधिकार आया है, जो अपूर्ण है, वह चौथे भागमें पूर्ण होगा । इसलिये उसके सम्बन्धमें सम्पादकीय वक्तव्य वगैरह चौथे अधिकारमें दिया जायेगा ।

काशीमें गङ्गातट पर स्थित स्व० बाबू छेदीलालजीके जिनमन्दिरके नीचेके भागमें जयधवला कार्यालय अपने जन्मकालसे ही स्थित है । और यह स्व० बाबू सा० के सुपुत्र धर्मप्रेमी बाबू गणेशदासजी और पौत्र बा० सालिगरामजी तथा ऋषभचन्द्रजीके सौजन्य और धर्मप्रेमका परिचायक है, अतः मैं उन सज्जनोंका भी आभारी हूँ ।

सहारनपुरके स्व० लाला जम्बूप्रसादजीके सुपुत्र रायसाहिव लाला प्रद्युम्नकुमारजीने अपने जिन-मन्दिरजीकी श्री जयधवलजीकी प्रति मिलानके लिये प्रदान की। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके अकलङ्क सरस्वती भवनके ग्रन्थोंका उपयोग विद्यालयके व्यवस्थापकोंके सौजन्यसे जयधवलजीके सम्पादनमें हो सका है। तथा जैन सिद्धान्त भवन आराके पुस्तकाध्यक्ष श्री पं० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्यके सौहार्दसे भवनसे सिद्धान्त ग्रन्थोंकी प्रतियां आदि प्राप्त होती रहती हैं, अतः उक्त सभी सज्जनोंका भी मैं आभारी हूँ।

नया संसार प्रेसके व्यवस्थापक पं० शिवनारायणजी उपाध्याय तथा उनके कर्मचारी भी धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने इस ग्रंथके मुद्रण में पूर्ण सहयोग दिया।

जयधवल कार्यालय  
भदौनी, काशी  
भाद्रपद कृष्ण १  
बी० नि० सं० २४८१

कैलाशचन्द्र शास्त्री  
मंत्री साहित्य विभाग  
भा० दि० जैनसंघ





दानवीर सेठ भागचन्द्रजी डोंगरगढ़

## चित्र परिचय

देरी बोलोमि 'भाग्य' को 'भाग' कहते हैं और जिनका भाग सराहने योग्य होता है उन्हें भागचन्द्र कहते हैं। डोंगरगढ़निवासी दानवीर सेठ भागचन्द्रजी ऐसे ही व्यक्तियोंमेंसे एक हैं। यह इसलिए नहीं कि वे आधुनिक साजसज्जावाले सुन्दर मकानमें रहते हैं, उनके यहाँ निरंतर दस-पाँच नौकर लगे रहते हैं और वहाँकी परिस्थितिके अनुरूप वे साधनसम्पन्न हैं बल्कि इसलिये कि उन्हें पुराने और नये जो भी साधन मिलते हैं, अपनी परिस्थितिके अनुरूप वे उनका उपयोग लोकसेवा व सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंमें करना जानते हैं।

लगभग दस वर्ष पूर्व सेठ सा० से हमारी प्रथम भेंट हुई थी। उस समय वे मोटर अपघातसे पीड़ित हो अस्पतालमें पड़े हुए थे। सेठ सा०को छाती व सिरमें सुदी चोट आई थी, इसलिए उनके दाँ-आँ कड़े परिचारक परिचर्यामें लगे हुए थे, डाक्टर कुरसी डालकर सिरहाने बैठा हुआ था और दस-पाँच नाते रिश्तेदार व मित्र दौड़बूध कर रहे थे। किसीको मिलने नहीं दिया जाता था। बातचीत करना तो दूरकी वान थी। हमें केवल दूरसे देखनेभरका अवसर मिला था। हम चाहते भी नहीं थे कि ऐसी परिस्थितिमें उनसे किसी प्रकारकी बातचीत की जाय। किन्तु उनकी सतर्क आँखोंने हमें पहिचान लिया और डाक्टरके लाख मना करनेपर भी वे बोलनेसे अपने आपको न रोक सके। पासमें बुलाकर कहने लगे—'पण्डितजी आप आगये, अच्छा हुआ। हमारी सेवा स्वीकार किये विना आप जा नहीं सकते। सिर्फ दो दिन रुकें। इतनेमें ही हम इस लायक हो जायेंगे कि आपसे चन्द मिनट बातचीत कर सकें और आपके मुखसे धर्मके दो शब्द सुन सकें!'।

सेठ सा० एक भावनाप्रधान उत्साही व्यापारकुशल व्यक्ति हैं। वे किसी विद्वान्, त्यागी या अतिथिको अपने घर आया हुआ देखकर खिल उठते हैं और सपत्नीक हर तरहसे उसका आदर-सत्कार करनेमें जुट जाते हैं। कभी कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि वे इस आवभगतमें लगे रहनेके कारण उस दिन करने योग्य अन्य आवश्यक कार्योंको भी भूल जाते हैं। इस कारण उन्हें काफी क्षति भी उठानी पड़ती है।

सेठ सा० की मुख्य कृचिका विषय शिक्षा है। संस्कृत शिक्षा और छात्रवृत्ति पर गुप्त और प्रकाशरूपमें आप निरन्तर खर्च करते रहते हैं। रामटेक गुरुकुलके आप प्रधान आलम्बन हैं। एक मात्र इसीकी सेवाके उपलक्ष्यमें समाज द्वारा आप 'दानवीर' पदसे अलंकृत किये गये हैं। आप अपने गाँवमें एक हाइस्कूल खोलना चाहते थे। किन्तु हमारे यह कहने पर कि इस शिक्षापर खर्च करनेवाले बहुत हैं, आपको सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंकी ओर ही मुख्य रूपसे ध्यान देना चाहिये, सेठ सा० ने यह विचार त्याग दिया है।

इधर आपका ध्यान साहित्यिक सेवाकी ओर भी गया है। श्री ग० चर्षी जैन ग्रंथमालाको आप निरन्तर सहायता करते रहते हैं। हम जब भी डोंगरगढ़ जाते हैं, खाली हाथ नहीं लौटते। यह भी नहीं कि हमें माँगना पड़ता हो। चलते समय हजार-पाँचसौ जो भी देना होता है, स्वेच्छासे उपस्थित कर देते हैं। यह पूछने पर कि इसे किस मदमें खर्च किया जाय, एक मात्र यही उचर मिलता है कि आपकी इच्छा।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैनसंघ एक पुरानी संस्था है। मुख्यरूपसे इसके सञ्चालक विद्वान् हैं। अब तक इस संस्थाने साहित्यसेवा और धर्मप्रचारके क्षेत्रमें जो सेवा की है और कर रही है वह किसीसे छिपी हुई नहीं है। शास्त्रार्थके वे दिन हमें आज भी याद आते हैं जब आर्यसमाजका



जोर था और जैनियोंको शास्त्रार्थके लिये सार्वजनिक रूपसे ललकारा जाता था। उस समय यही एक ऐसी संस्था थी जिसने आर्यसमाजियोंसे न केवल टक्कर ली, अपि तु अपने प्रचार और शास्त्रार्थके बलपर उनका सदाके लिये मुँह बन्द कर दिया और बल तोड़ दिया। ऐसी प्रसिद्ध संस्थाके वर्तमान स्थायी अध्यक्ष सेठ सा० ही है। आप इस पदका बड़ी सुन्दरतासे निर्वाह कर रहे हैं। इसके साथ आप श्री जयधवलजीके प्रकाशनका भार भी सम्हाल रहे हैं। उसीके परिणामस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रमें आपकी जो विशेषता है वह राजनैतिक और सार्वजनिक क्षेत्रमें भी देखनेको मिलती है। आप अपने क्षेत्रमें इतने अधिक लोकप्रिय हैं कि गरीब अमीर सभी आपकी सलाह लेने तथा उचित सहायता प्राप्त करनेके लिये आपके पास आते रहते हैं। कई वर्ष पूर्व आपकी इस लोकप्रियता और परोपकारी स्वभावके कारण आप खैरागढ़ राज्य और जनता द्वारा 'राज्यरत्न' जैसी सम्मानित उपाधिसे विभूषित किये गये थे। जनता और सरकारमें आज भी आपका वही सम्मान है।

संयोगवश आपको जीवनसाथी भी आपके अनुरूप ही मिला है। बहिन नर्मदाबाई अपने ढंगकी एक ही महिलारत्न हैं। इनकी टक्करकी बहुत ही कम महिलाएँ समाजमें देखनेको मिलेंगी। आपके मुखपर प्रसन्नता और बोलीमें मिठास है। समय निकालकर धर्मशास्त्रके स्वाध्यायद्वारा आत्म-कल्याणमें लगे रहना आपका दैनंदिनका कार्य है। सेठ सा० जो भी लोकोपकारी कार्य करते हैं उन सबमें आपका पूरा सहयोग रहता है। फिर भी आपकी रुचिका मुख्य विषय आयुर्वेदिक औषधियोंका संग्रह कर और जो सम्भव है उन्हें स्वयं तैयार कर गरीब अमीर सबको समान भावसे वितरित करना है। चिकित्साशास्त्रका आपने सविधि अध्ययन किया है, अतएव आप स्वयं रोगियोंको देखने जाती हैं और आवश्यकता पड़ने पर दूसरे वैद्य वा डाक्टरकी भी सहायता लेती हैं। इनके इस कार्यमें सेठ सा० भी बड़ी रुचि रखते हैं और बहिन नर्मदाबाईको उत्साहित करते रहते हैं। तथा कभी कभी स्वयं भी इस कार्यमें जुट जाते हैं।

वर्तमान देश और समाजके लिये ऐसे सेवाभावी महातुभावोंकी बड़ी आवश्यकता है। हमारी मङ्गलकामना है कि यह दम्पति युगल चिरजीवी हो और परोपकार जैसे महान् लोकोपकारी कार्यको करते हुए पुण्य और यशके भागी बने।

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

## विषय-सूची

### स्थितिबिभक्ति पु० १

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१	स्वामित्व	१६-२५
स्थितिबिभक्ति के दो भेद	२	उत्कृष्ट स्वामित्व	१६-२०
स्थितिबिभक्ति की सार्थकता	२	जघन्य स्वामित्व	२०-२५
स्थितिबिभक्तिके दो भेदों का		काल	२५-४७
सयुक्तिक निर्देश	२-३	उत्कृष्ट काल	२५-३६
मूल प्रकृतिस्थितिका विशेष		जघन्य काल	३७-४७
उद्घापोह	३-४	मूलोच्चारणा पाठका निर्देश	४०
स्थितिबिभक्तिका अर्थपद	५	अन्तरालुगम	४७-५३
मूल प्रकृतिस्थितिमें बिभक्ति		उत्कृष्ट अन्तरालुगम	४७-५०
पदकी सार्थकता	५-६	जघन्य अन्तरालुगम	५१-५३
उत्तर प्रकृतिस्थितिमें बिभक्ति		नाना जीवोंकी अपेक्षा	
पदकी सार्थकता	६-७	भङ्गविचय	५४-५७
मूल प्रकृतिस्थितिबिभक्तिके		उत्कृष्ट भङ्गविचय	५४-५५
अनुयोगद्वारा	७-८	जघन्य भङ्गविचय	५६-५७
ये ही अनुयोगद्वारा उत्तर प्रकृतिस्थिति		भागभागालुगम	५८-६०
बिभक्तिमें भी लागू होते हैं	८	उत्कृष्ट भागाभागालुगम	५८-५९
मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्ति	८-१९०	जघन्य भागाभागालुगम	५९-६०
२४ अनुयोगद्वारा	९-१५	परिमाणालुगम	६१-६३
अद्वाच्छेद	९-१४	उत्कृष्ट परिमाणालुगम	६१-६२
उत्कृष्ट अद्वाच्छेद	९-११	जघन्य परिमाणालुगम	६२-६३
जघन्य अद्वाच्छेद	१२-१४	त्रैत्रालुगम	६४-६७
सर्व-नोसर्वबिभक्ति	१४	उत्कृष्ट त्रैत्रालुगम	६४-६५
उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टवि०	१४	जघन्य त्रैत्रालुगम	६६-६७
जघन्य-अजघन्यवि०	१४	स्पर्शालुगम	६८-७०
सर्वस्थिति और अद्वाच्छेदकी		उत्कृष्ट स्पर्शालुगम	६८-७०
उत्कृष्ट स्थितिमें अन्तर कथन	१४-१५	जघन्य स्पर्शालुगम	७०-७०
उत्कृष्ट बिभक्ति और उत्कृष्ट		कालालुगम	७०-७६
अद्वाच्छेदमें अन्तर कथन	१५	उत्कृष्ट कालालुगम	७०-७२
सर्वबिभक्ति और उत्कृष्ट		जघन्य कालालुगम	७३-७६
बिभक्तिमें अन्तर कथन	१५	अन्तरालुगम	७८-८२
सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुववि०	१५-१६	उत्कृष्ट अन्तरालुगम	७८-८१
		जघन्य अन्तरालुगम	८०-८२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भावानुगम	६३	कालानुगम	१७५-१८०
अल्पबहुत्वानुगम	६३-६५	अन्तरानुगम	१८०-१८५
उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम	६३-६४	भावानुगम	१८५
जघन्य अल्पबहुत्वानुगम	६४-६५	अल्पबहुत्वानुगम	१८५-१८६
भुजगारके १३ अनुयोगद्वार	६५-१२७	स्थानप्ररूपणा	१८६-१९०
समुत्कीर्तनानुगम	६५-६६	उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति	१९१-५४४
स्वामित्वानुगम	६६-६७	अर्थपद और उसकी व्याख्या	१९१-१९२
कालानुगम	६८-१०८	स्थिति पदकी व्याख्या	१९२
अन्तरानुगम	१०८-१११	उत्तरप्रकृति पदकी व्याख्या	१९२
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग विचय	१११-११३	चौबीस अनुयोग द्वार	१९३-४४४
भागाभागानुगम	११३-११४	अनुयोगद्वारोंका नाम निर्देश	१९३
परिमाणानुगम	११४-११५	भुजगार आदि अनुयोगद्वारोंका २४	
क्षेत्रानुगम	११६-११७	अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव	१९३
स्पर्शानुगम	११७-१२०	अद्वाच्छेद	१९४-२१४
कालानुगम	१२१-१२२	उत्कृष्ट स्थिति अद्वाच्छेद	१९४-२०२
अन्तरानुगम	१२३-१२५	मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति	१९४-१९५
भावानुगम	१२६	सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी	
अल्पबहुत्वानुगम	१२६-१२७	उत्कृष्ट स्थिति	१९५-१९६
पदनिक्षेपके ३ अनुयोगद्वार	१२७-१३५	सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति	१९७
समुत्कीर्तना	१२७-१२८	नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति	१९७-१९८
उत्कृष्ट समुत्कीर्तना	१२७-१२८	चारों गतियोंमें सब कर्मोंकी	
जघन्य समुत्कीर्तना	१२८	उत्कृष्ट स्थिति	१९९
स्वामित्वानुगम	१२९	१४ मार्गणाओंमें उच्चारणके	
उत्कृष्ट स्वामित्वानुगम	१२९-१३३	अनुसार उत्कृष्ट स्थिति	१९९-२०२
जघन्य स्वामित्वानुगम	१३३-१३४	जघन्य स्थिति अद्वाच्छेद	२०२-२१४
अल्पबहुत्व	१३४-१३५	मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और	
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१३४-१३५	वारह कषायोंकी जघन्य स्थिति	२०३-२०५
जघन्य अल्पबहुत्व	१३५	सम्यक्त्व, लोभसंज्वलन, स्त्रीवेद	
वृद्धिके १३ अनुयोगद्वार	१३६-१८६	और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति	२०५-२०७
समुत्कीर्तना	१३६-१३७	क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति	२०७-२०८
स्वामित्वानुगम	१३८-१४१	मानसंज्वलनकी " "	२०८-२०९
कालानुगम	१४१-१४६	मायासंज्वलनकी " "	२०९
अन्तरानुगम	१४६-१६०	पुरुषवेदकी " "	२०९-२१०
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	१६०-१६४	छह नोकषायोंकी " "	२१०
भागाभागानुगम	१६४-१६६	गतियोंमें जघन्य स्थिति जानने	
परिमाणानुगम	१६६-१६८	की सूचना	२११
क्षेत्रानुगम	१६८-१६९	१४ मार्गणाओंमें उच्चारणके अनु-	
स्पर्शानुगम	१६९-१७५	सार जघन्य स्थिति	२११-२२५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उच्चारणके अनुसार नोकषायोंके		और जुगुप्सा	२६६
वन्धक कालका अल्पबहुत्व	२१३	सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व	२७०
इस विषयमे व्याख्यानार्थका		स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति	२७०-२७१
अभिप्राय	२१३-२१४	चार गतियोंमें	२७२
सर्व-नोसर्वस्थितिविभक्ति	२२६	उच्चारणके अनुसार काल	२७२-२६०
उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टस्थिति०	२२६	जघन्य स्थितिका काल	२६०-३१५
जघन्य-अजघन्यस्थिति०	२२६-२२७	मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मि-	
सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवस्थि०	२२७-२२८	थ्यात्व, सोलह कषाय और	
एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व	२२६-२६६	तीन वेद	२६०-२६१
उत्कृष्ट स्थितिका स्वामित्व	२२६-२४१	छह नोकषाय	२६१-२६२
मिथ्यात्व	२२६-२३०	जघन्य स्थिति और जघन्य अद्धा-	
सोलह कषाय	२३०	च्छेद तथा उत्कृष्ट स्थिति और	
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व	२३१-२३२	उत्कृष्ट अद्धाच्छेदका विचार	२६१-२६२
नौ नोकषाय	२३३-२३४	उच्चारणके अनुसार जघन्य	
१४ मार्गणाओंमें उच्चारणके		स्थितिका काल	२६२-३१५
अनुसार स्वामित्व	२३४-२४१	अन्तर	३१६-३४५
जघन्य स्थितिका स्वामित्व	२४१-२६६	उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर	३१६-३६०
मिथ्यात्व	२४१-२४२	मिथ्यात्व और १६ कषाय	३१६-३१७
सम्यक्त्व	२४३	नौ नोकषाय	३१७-३१८
सम्यग्मिथ्यात्व	२४४	सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व	३१८-३१९
अनन्तानुबन्धी चार	२४५-२४७	उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट स्थिति-	
मध्यकी आठ कषाय	२४८-२४९	का अन्तर	३१९-३३०
क्रोधसंज्वलन	२४९-२५०	जघन्य स्थितिका अन्तर	३३२-३४५
मान और माया संज्वलन	२५०	मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय	
लोभ संज्वलन	२५१	और नौ नोकषाय	३३१
स्त्रीवेद	२५१-२५२	सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानु-	
पुरुषवेद	२५२-२५३	बन्धी चार	३३१-३३२
नपुंसकवेद	२५३	उच्चारणके अनुसार जघन्य स्थिति-	
छह नोकषाय	२५३-२५४	का अन्तर	३३२-३४५
नारकियोंमें जघन्य स्वामित्व	२५४-२५८	नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	३४५-३५३
शेष गतियोंमे " "	२५८	अर्थपद	३४५-३४६
शेष मार्गणाओंमें उच्चारणके अनु-		उत्कृष्ट स्थितिका भङ्गविचय	३४६-३४९
सार जघन्य स्वामित्व	२५८-२६६	मिथ्यात्वकी अपेक्षा भङ्गविचय	३४६-३४८
काल	२६६-३१५	शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	३४८
उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका काल	२६७-२६८	उच्चारणके अनुसार भङ्गविचय	३४८-३४९
मिथ्यात्व	२६७-२६८	जघन्य स्थितिका भङ्गविचय	३४९-३५३
सोलह कषाय	२६८-२६९	अर्थपद	३५०
पुंसकवेद, अरति, शोक, भय		मिथ्यात्वकी अपेक्षा भङ्गविचय	३५०-३५१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शेव प्रकृतियोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	३५१	मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय	
उच्चारणके अनुसार भङ्गविचय	३५१-३५३	और छह नोकषाय	४१०-४११
भागाभागानुगम	३५४-३५७	सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-	
उत्कृष्ट भागाभागानुगम	३५४-३५५	नुबन्धी चार	४११
जघन्य भागाभागानुगम	३५६-३५७	तीन संज्वलन और पुरुषवेद	४१२-४१३
परिमाणानुगम	३५८-३६३	लोमसंज्वलन	४१३
उत्कृष्ट परिमाणानुगम	३५८-३५९	स्त्रीवेद और नपुंसकवेद	४१३-४१४
जघन्य परिमाणानुगम	३६०-३६३	नरकगतिमें सब प्रकृतियोंके अन्तर	
क्षेत्रानुगम	३६४-३६७	का विचार	४१५
उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम	३६४	उच्चारणके अनुसार जघन्य अन्तर	४१५-४२४
जघन्य क्षेत्रानुगम	३६५-३६७	भावानुगम	४२४-४२५
स्पर्शानुगम	३६८-३६७	उत्कृष्ट भावानुगम	४२४
उत्कृष्ट स्पर्शानुगम	३६८-३७८	उपशान्तकषाय गुणस्थानमें सब	
ओषसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें		प्रकृतियोंका औद्योगिक भाव	
स्पर्शानके मतभेदका निर्देश	३६८	कैसे बनता है इस शांकाका	
जघन्य स्पर्शानुगम	३७९-३८७	परिहार	४२४
तिर्यञ्चमें कुछ प्रकृतियोंकी अपेक्षा		जघन्य भावानुगम	४२४-४२५
स्पर्शानमें पाठभेद	३८०	सन्निकर्ष	४२५-५२४
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३८७-४०६	उत्कृष्ट सन्निकर्ष	४२५-४९४
उत्कृष्ट काल	३८७-३९४	मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आल-	
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके		म्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४२५-४५४
उत्कृष्ट कालका स्वतन्त्र निर्देश	३८३-३८९	सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आल-	
उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट काल	३८९-३९४	म्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४५५-४५८
जघन्यकाल	३९४-४०६	सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका	
मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय		अवलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४५८-४५९
और तीन वेद	३९४-३९५	सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका	
सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-		आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४५९
नुबन्धी चार	३९५-३९६	स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका आलम्बन	
छह नोकषाय	३९६	लेकर सन्निकर्ष विचार	४५९-४७२
उच्चारणके अनुसार जघन्य काल	३९६	शेव प्रकृतियोंकी अर्थात् हास्य, रति,	
चूर्णिसूत्र, वपदेवकी उच्चारण		और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका	
और बीरसेन द्वारा लिखित		आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४७२-४७५
उच्चारणमें पाठभेदका निर्देश	३९८-४०६	मतभेदका उल्लेख	४७४
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	४०६-४२४	नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका आल-	
उत्कृष्ट अन्तर	४०६-४१०	म्बन लेकर सन्निकर्षका निर्देश	४७६-४८२
सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर	४०६-४०७	अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी	
उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट अन्तर	४०७-४१०	उत्कृष्ट स्थितिका आलम्बन लेकर	
जघन्य अन्तर	४१०-४२४	सन्निकर्षका निर्देश	४८२-४८५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट सन्निकर्ष	४८५-४९४	नरकगतिमें सब प्रकृतियोंके अल्प-	
जघन्य सन्निकर्ष	४९४-५२४	बहुत्व का विचार	५२६-५२७
मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका		उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट स्थिति	
आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४९४	अल्पबहुत्व	५२८-५३०
शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका		उच्चारणके अनुसार जघन्य स्थिति	
आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४९५	अल्पबहुत्व	५३०-५४२
उच्चारणके अनुसार जघन्य सन्निकर्ष	४९५-५२४	उच्चारणके अनुसार वन्धक कालकी	
अल्पबहुत्व	५२४-५४४	अपेक्षा संदृष्टि सहित सब	
स्थिति अल्पबहुत्व	५२४-५४२	प्रकृतियोंके अल्पबहुत्वका निर्देश	५३१-५३२
उत्कृष्ट स्थिति अल्पबहुत्व	५२४-५३०	चिरन्तन व्याख्यानाचार्यके द्वारा	
नौ नोकषाय	५२४-५२५	निर्दिष्ट अल्पबहुत्व	५३२-५३३
सोलह कषाय	५२५	दोनों अल्पबहुत्वोंमें मतभेदका	
सम्यग्मिथ्यात्व	५२५	उल्लेख	५३३
सम्यक्त्व	५२५-५२६	तिर्यञ्चगतिमें उक्त दोनों अल्प-	
चूर्णसूत्र और उच्चारणका आलम्बन		बहुत्वोंकी अपेक्षा पुनः विचार	५३५
लेकर कालप्रधान और निषेकप्रधान		जीव अल्पबहुत्व	५४२-५४४
स्थितिका उदाहरण सहित निर्देश	५२५-५२६	उत्कृष्ट जीव अल्पबहुत्व	५४२-५४३
मिथ्यात्व	५२६	जघन्य जीव अल्पबहुत्व	५४३-५४४

### शुद्धि

पृष्ठ २२७ के मूलकी ७ वीं पंक्ति इस पृष्ठकी प्रथम पंक्ति है ।





कसायपाहुडस्स

ट्टि दि वि ह्त्ती

तदियो अत्थाहियारो







सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुरिणसुत्तसमण्ड  
सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइडं

# क सा य पा हु डं

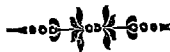
तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियांविरइया टीका

## जयधवला

तस्य

द्विदिविहत्ती याम विदिओ अत्थाहियारो



अंताइ-मज्झरहिया जाइ-जरा-मरणंतपोरड्डा ।  
संसारलया तमहं जेणं च्छिण्णा जिणं वंदे ॥

---

जिन्होने आदि, मध्य और अन्तसे रहित तथा जाति, जरा और मरणरूपी अनन्त पोरसे व्याप्त संसाररूपी बेलको छेद दिया है उन जिनदेवको मैं (वीरसेन स्वामी) नमस्कार करता हूँ ।

विशेषार्थ—यहां संसारको बेलकी उपमा दी है । बेलका आदि भी है, मध्य भी है और

❀ द्विदिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिद्विदिविहत्ती चव उत्तरपयडि-  
द्विदिविहत्ती चव ।

§ १. द्विदिविहत्ति त्ति अहियारो किमट्टमागओ ? पुवं पयडिविहत्तीए  
जाणाविदअट्टावीसमोहकम्मसहावस्स सिस्सस्स तेसिं चव अट्टावीसमोहकम्माणं  
पवाहसरूवेण आदिविवज्जियाणमेगेसमयपवद्धविसेसप्पणाए सादिसपज्जव-  
साणाणं जहण्णुकस्सट्टिदीओ चोदस-मग्गण-ट्टाणाणि अस्सिदूण पखवणट्टं द्विदिविहत्ती  
आगया । सा दुविहा मूलपयडिद्विदिविहत्तीउत्तरपयडिद्विदिविहत्तीभेदेण । तिधिहा  
किण्ण होदि ? ण, मूलत्तरपयडिद्विदिवदिरिच्चाए अण्णिस्से पयडिद्विदीए अभावादो ।  
पोकम्मपयडिरूव-रसादीणं द्विदीणं द्विदीओ अत्थि, ताओ एत्थ किण्ण उच्चंति ?

अन्त भी है तथा उसकी पोरें भी स्वरूप होती हैं, पर यह संसार ऐसी बेल है जो सन्तान-  
क्रमसे अनादि कालसे चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा, अतः उसके  
आदि, मध्य और अन्तका निर्णय नहीं किया जा सकता है । तथा उसमें अनन्त जन्म, जरा  
और मरण होते रहते हैं । ऐसी संसाररूपी बेलको जिन जिनेन्द्रदेवने छेद दिया उन्हें मैं  
( वीरसेन स्वामी ) नमस्कार करता हूँ । यहाँ प्रश्न होता है कि जिसके आदि, मध्य और  
अन्तका पता नहीं उसका छेद कैसे किया जा सकता है । समाधान यह है कि यद्यपि नाना  
जीवोंकी सन्तानकी अपेक्षा संसार आदि, मध्य और अन्तसे रहित है फिर भी कोई एक  
भव्य जीव उसका अन्त कर सकता है । इस प्रकार उक्त मंगल गाथामें वीरसेन स्वामीने  
दोनों प्रकारके संसारके स्वरूपका निर्देश कर दिया है ।

❀ स्थितिविभक्ति दो प्रकारकी है—मूलप्रकृति स्थितिविभक्ति और  
उत्तरप्रकृति स्थितिविभक्ति ।

§ १. शंका—स्थितिविभक्ति यह अधिकार किसलिये आया है ?

समाधान—पहले जिस शिष्यको प्रकृतिविभक्ति नामक अधिकारके द्वारा मोहनीयकी  
अट्टाईस प्रकृतियोंके स्वभावका ज्ञान करा दिया है उसे प्रवाहकी अपेक्षा आदिरहित और प्रत्येक  
समयमें बंधनेवाले एक एक समयप्रवद्धविशेषकी अपेक्षा सादि तथा सान्त उन्हीं मोहनीयकी  
अट्टाईस कर्मप्रकृतियोंकी चौदह मार्गणाओंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका कथन करनेके  
लिये यह स्थितिविभक्ति नामक अधिकार आया है ।

वह स्थितिविभक्ति मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिके भेदसे  
दो प्रकारकी है ।

शंका—वह तीन प्रकारकी क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि; मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिको  
छोड़कर प्रकृतियोंकी अन्य स्थिति नहीं पाई जाती है, अतः स्थितिविभक्ति तीन प्रकारकी  
नहीं होती ।

शंका—नोकर्म प्रकृतियोंके रूप और रसादिककी स्थितियाँ पाई जाती हैं, उनका यहाँ

ण, कम्मपयडिद्विदिपरुवणाए पंक्ताए णोकम्मद्विदिपरुवणाए असंभवादो ।

§ २. का मूलपयडिद्विदी णाम ? अट्टावीसपयडीणं पयडिसमाणत्तणेण एयत्त-  
सुवगयाणं द्विदिविसेसा मूलपयडिद्विदी । कथं पुत्रभूद्विदीणमेयत्तं ? सरिसत्तणेण  
पयडीए । ण च पयडिसरिसत्तमसिद्धं, उप्पणमोहपयडीए पढमसमयप्पहुडि  
अविणासादो मोहपयडीसरुवेणेव अवट्टाणुवलंभादो । मोहपयडिद्विदीए सामण्णाए  
आदिविवज्जियाए कथं परुवणा कीरदे ? ण, पवाहरुवेण अणादिमोहपयडिद्विदि  
मोत्तूण एगसमयम्मि दुक्कमोहासेसपयडीणं मोहपयडित्तणेण एयत्तसुवगयाणं द्विदीए  
परुवणा कीरदि त्ति दोसाभावादो । एवं संते मूलपयडिद्विदि त्ति कथं जुज्जदे ?  
ण, सन्वेसिं समयपवद्धाणं पयडिसमूहस्स मूलपयडित्तसुवगमाभावादो । का पुण

कथन क्यो नहीं किया ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि कर्मप्रकृतियोंकी स्थितिकी प्ररूपणा करते समय नोकर्मकी स्थितिकी प्ररूपणा करना असंभव है, अतः यहाँ नोकर्मप्रकृतियोंकी स्थितियोंका ग्रहण नहीं किया है ।

§ २. शंका—मूलप्रकृतिस्थिति किसे कहते हैं ?

**समाधान**—प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा एकत्वको प्राप्त हुई अट्टाईस प्रकृतियोंकी जो स्थिति-विशेष है उसे मूलप्रकृतिस्थिति कहते हैं ।

**शंका**—जब कि सब प्रकृतियोंकी स्थितियाँ अलग अलग हैं, तब उनमें एकत्व कैसे हो सकता है ?

**समाधान**—प्रकृतिसामान्यकी अपेक्षा सभी प्रकृतिधाँ एक हैं, अतः उनकी स्थितियोंमें एकत्व माननेमें कोई बाधा नहीं आती ।

यदि कहा जाय कि प्रकृतियोंकी सदृशता असिद्ध है सो भी बात नहीं है, क्योंकि मोहप्रकृतिके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर जब तक उसका विनाश नहीं होता तब तक उसका मोह-प्रकृतिरूपसे ही अवस्थान पाया जाता है, इसलिये उनमें सदृशता माननेमें कोई बाधा नहीं आती है ।

**शंका**—मोहकर्मकी सामान्य स्थिति आदिरहित अर्थात् अनादि है, अतः उसकी प्ररूपणा कैसे की जा सकती है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि प्रवाहरूपसे अनादिकालीन मोहकर्मकी स्थितिको छोड़कर एक समयमें जो मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियाँ बन्धको प्राप्त होती हैं जो कि मोहप्रकृति सामान्यकी अपेक्षा एक हैं, उनकी स्थितिकी यहाँ प्ररूपणा की गई है, इसलिये कोई दोष नहीं है ।

**शंका**—यदि ऐसा है तो मूलप्रकृतिस्थिति कैसे बन सकती है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि संपूर्ण समयप्रवद्धोंको जो प्रकृतिसमूह है उसे यहाँ मूलप्रकृतिरूपसे स्वीकार नहीं किया है ।

**शंका**—तो फिर यहाँ मूलप्रकृति पदसे किसका ग्रहण किया है ?

एत्थ मूलपयडी ? एगसमयम्मि वद्धासेसमोहकम्मवखंधाणं पयडिसभूहो मूलपयडी णाम । तिस्से द्विदी मूलपयडिद्विदी । पुध पुध अट्टावीसमोहपयडीणं द्विदीओ उत्तरपयडिद्विदी णाम । एवं द्विदिविहत्ती दुविहा चेव होदि ।

§ ३. उत्तरपयडिद्विदिविहत्तीए परूविदाए मूलपयडिद्विदिविहत्ती णियमेणेव जाणिज्जदि तेण उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती चेव वचन्वा ण मूलपयडिद्विदिविहत्ती, तत्थ फलाभावादो । ण, दव्वट्ठियपज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठं तप्परूवणादो । एत्थतण वे वि 'च' सद्दा समुच्चए दट्ठन्वा । एगेणेव 'च' सद्देण समुच्चयट्ठावगमादो विदिय 'च' सद्दो अणत्थओ चि णावणेदु' सक्किज्जदे । अप्पिदेगणयं पडुच्च परूवणाए कीरमाणए मूलपयडिद्विदिविहत्ती उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती च उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती मूलपयडिद्विदिविहत्ती चेदि एग'च'सद्दुच्चारणं मोत्तूण विदिय ( च ) सद्दुच्चारणाए अभावेण पुणरुत्तदोसाभावादो । 'एव'सद्दो इदिसदत्थे दट्ठन्वो; अवहारणत्थस्स एत्थासंभावादो ।

**समाधान**—एक समयमे बंधे हुए संपूर्ण मोहनीय कर्मके स्कन्धोके प्रकृतिसमूहका यहां मूलप्रकृतिरूपसे ग्रहण किया है । उस मूलप्रकृतिकी स्थितिको मूलप्रकृतिस्थिति कहते हैं । तथा मोहनीयकी पृथक् पृथक् अट्टाईस प्रकृतियोंकी स्थितियोंको उत्तरप्रकृतिस्थिति कहते हैं । इस प्रकार स्थितिभिक्तिके दो प्रकारकी ही होती है ।

§ ३. शंका—उत्तर प्रकृतिस्थितिभिक्तिका कथन करनेपर मूलप्रकृतिस्थितिभिक्तिका नियमसे ज्ञान हो जाता है, अतः उत्तरप्रकृतिस्थितिभिक्तिका ही कथन करना चाहिये, मूलप्रकृतिस्थितिभिक्तिका नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिभिक्तिका कथन करनेमे कोई फल नहीं है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका अर्थात् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयवाले शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये दोनों ही 'च' शब्द समुच्चयरूप अर्थमें जानना चाहिये ।

उपर्युक्त सूत्रमे आये हुए दोनों ही 'च' शब्द समुच्चयरूप अर्थमें जानना चाहिये । एक ही 'च' शब्दसे समुच्चयरूप अर्थका ज्ञान हो जाता है, अतः दूसरा 'च' शब्द अनर्थक है इसलिये उसे निकाला नहीं जा सकता है क्योंकि अप्रति एक नयकी अपेक्षा कथन करनेपर द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा 'मूलपयडिद्विदिविहत्ती उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती च' इस प्रकार और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा 'उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती मूलपयडिद्विदिविहत्ती च' इस प्रकार प्राप्त होता है अतः एक 'च' शब्द के उच्चारणके सिवाय दूसरे 'च' शब्दका उच्चारण नहीं रहता, अतः पुनरुक्त दोष नहीं प्राप्त होता है । सूत्रमे जो 'एव' शब्द आया है वह 'इति' शब्दके अर्थमें जानना चाहिये, क्योंकि यहां उसका अवधारणरूप अर्थ नहीं हो सकता है ।

**विशेषार्थ**—यहां स्थितिभिक्तिके दो भेद किये गये हैं—मूलप्रकृतिस्थितिभिक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिभिक्ति । 'मूलप्रकृति' पदसे अवाप्तर भेदोंकी गणना न कर सामान्य मोहनीय कर्मका ग्रहण किया है और 'उत्तरप्रकृति' पदसे मोहनीयके प्रत्येक भेदका पृथक् पृथक्

❀ तत्थ अट्टपदं एगा द्विदी द्विदिविहत्ती, अणेगाओ द्विदीओ द्विदिविहत्ती ।

§ ४. तत्थ दोण्हं पि द्विदिविहत्तीणं पुञ्जुत्ताणभेदप्रट्टपदं उच्चदे । तं जहा, एगा द्विदी द्विदिविहत्ती । विहत्ती भेदो पुधभावो त्ति एयट्ठो । द्विदीए विहत्ती द्विदिविहत्ती जेणेवं द्विदिविहत्तीसदो द्विदिभेदपरूवओ, तेण मूलपयडिद्विदीए विहत्तित्तं णत्थि, एकस्से भेदाभावादो । भावे वा ण सा मूलपयडिद्विदी, एकस्से पयडीए द्विदिवहुत्तविरोहादो त्ति उच्चे एगा द्विदी द्विदिविहत्तित्ति त्ति परिहारो परूविदो । कधमेकस्से द्विदीए णाणत्तं ? ण, एकस्से वि द्विदीए पदेसभेदेण पयडि-भेदेण च णाणत्तुत्तलंभादो । ण च पयडिपदेसभेदो द्विदिभेदस्स कारणं ण होदि; भिण्ण-

ग्रहण किया है। यद्यपि प्रवाह रूपसे मोहनीय कर्म अनादि है पर यहां प्रत्येक समयमें जो समयप्रवृद्ध प्राप्त होता है उसकी स्थिति ली गई है इसलिए स्थितिविभक्तिकी अवधि वन जाती है। उसमें जो प्रत्येक भेदकी विवक्षा क्रिये बिना सामान्य रूपसे मोहनीयको स्थिति प्राप्त होती है वह मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति है और प्रत्येक भेदकी जो स्थिति प्राप्त होती है वह उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति है। यहां सामान्य और विशेषरूपसे मोहनीयकी स्थितिका ही ग्रहण किया है इसलिए वह दो प्रकारकी वतलाई है। नोकर्मका प्रकरण न होनेसे वह उसकी स्थितिका ग्रहण नहीं किया है। सूत्रमें दो 'च' शब्द आये हैं सो वे दोनों ही समुच्चयार्थक जानने चाहिए। प्रथम 'च' शब्द द्वारा मुख्यरूपसे मूलप्रकृति स्थितिविभक्तिका और गौणरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिका समुच्चय होता है। तथा दूसरे 'च' शब्द द्वारा मुख्यरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिका और गौणरूपसे मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका समुच्चय होता है। शेष विवेचन स्पष्ट ही है।

❀ अब उन दोनों स्थितिविभक्तियोंके अर्थपदको कहते हैं—एक स्थिति स्थितिविभक्ति है और अनेक स्थितियां स्थितिविभक्ति हैं।

§ ४. अब पूर्वोक्त दोनों ही स्थितिविभक्तियोंके इस अर्थपदका खुलासा करते हैं। जो इस प्रकार है—एक स्थिति स्थितिविभक्ति है। विभक्ति, भेद और पृथग्भाव ये तीनों एकार्थवाची शब्द हैं। और स्थितिकी विभक्ति स्थितिविभक्ति कही जाती है। यतः स्थितिविभक्ति शब्द स्थितिभेदका कथन करता है, और इसलिये मूलप्रकृतिकी स्थितिमें विभक्तियां नहीं वनती हैं, क्योंकि एकमें भेद नहीं हो सकता। यदि एकमें भेद माना जाय तो वह मूलप्रकृतिस्थिति नहीं ठहरती, क्योंकि एक प्रकृतिकी अनेक स्थितियां माननेमें विरोध आता है इस प्रकार आक्षेप करने पर 'एगा द्विदी द्विदिविहत्ती' इस प्रकार कहकर उस आक्षेपका परिहार किया है।

शंका—एक स्थितिमें नानात्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक स्थितिमें भी प्रदेशभेद और प्रकृतिभेदकी अपेक्षा नानात्व पाया जाता है।

यदि कहा जाय कि प्रकृतिभेद और प्रदेशभेद स्थितिभेदका कारण नहीं है सो भी बात नहीं है, क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकृति और प्रदेशोंमें पाई जानेवाली स्थितिको एक माननेमें विरोध



❀ तत्थ अणियोगद्वाराणि ।

§ ६ तत्थ मूलपयडिद्विदिविहतीए अणियोगद्वाराणि वचच्वाणि अण्णहा परूव-  
णाणुववचीदो । किमणिओगद्वारं णाम ? अहियारो भण्णमाणत्थस्स अवगमोवाओ ।

❀ सव्वविहती णोसव्वविहती उक्कस्सविहती अणुक्कस्सविहती  
जहणविहती अजहणविहती सादियविहती अणादियविहती धुव-  
विहती अद्धुवविहती एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंग-

स्थितियोंके भेदकी अपेक्षा स्थितिभेद क्यों नहीं हो सकता है अर्थात् हो सकता है क्योंकि एक प्रकृतिमें अपने स्थितिविशेषकी अपेक्षा भेद मानते हुए उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें अपने स्थिति भेदकी अपेक्षा और अपनेसे भिन्न अन्य प्रकृतियोंकी स्थितियोंके भेदकी अपेक्षा यदि स्थिति भेद न माना जाय तो विरोध आता है ।

विशेषार्थ—प्रश्न यह है कि एक स्थितिको स्थितिविभक्ति पदके द्वारा कैसे सम्बोधित कर सकते हैं, क्योंकि जो स्थिति स्वरूपतः एक है उसमें भेदकी कल्पना नहीं की जा सकती है । इसका कई प्रकारसे समाधान किया है । प्रथम तो यह बतलाया है कि स्थिति एक हो कर भी उसमें प्रकृति और प्रदेशोंकी अपेक्षा भेद सम्भव है, इसलिए एक स्थितिको भी स्थितिविभक्ति कहा है । फिर भी यह समाधान स्थितिकी मुख्यतासे नहीं हुआ इसलिए अन्य प्रकारसे इस प्रश्नका समाधान किया गया है । इसमें बतलाया है कि कर्म आठ हैं और उनमेंसे यहां मोहनीयकी मूलप्रकृतिस्थिति विवक्षित है । यतः वह अन्य ज्ञानावरणविकी मूलप्रकृतिस्थितिसे भिन्न है इसलिए यहां मूलप्रकृतिस्थितिके साथ विभक्ति पद जोड़ा गया है । इस प्रकार यह शंकाका उत्तर तो हो जाता है पर इससे एक स्थितिका स्वरूपगत भेद समझमें नहीं आता । इसलिए आगे इसे प्रकट करनेके लिए चौथे प्रकारसे समाधान किया गया है । इसमें बतलाया है कि जब मूलप्रकृतिस्थितिमें उत्कृष्ट आदि भेद सम्भव हैं तब उसके साथ विभक्ति पर जोड़नेमें क्या बाधा है । इस प्रकार एक स्थिति स्थितिविभक्ति है और अनेक स्थिति स्थितिविभक्ति है यह सिद्ध होता है ।

❀ अब मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें अनुयोगद्वार कहते हैं ।

§ ६. मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें अनुयोगद्वार कहना चाहिये, अन्यथा उसकी प्ररूपणा नहीं हो सकती है ।

शंका—अनुयोगद्वार किसे कहते हैं ?

समाधान—कहे जानेवाले अर्थके जाननेके उपायभूत अधिकारको अनुयोगद्वार कहते हैं ।

❀ यथा—सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, और अन्तर तथा नाना जीवों



विचथ्रो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो अप्पावहुअं च भुजगारो पदण्णिकखेवो वड्डी च ।

§ ७. एदाणि मूलपयडिद्विदिविहत्तीए अणियोगद्वाराणि । एत्थ अंतिल्लो 'च'सदो उत्तसमुच्चयदो । अप्पावहुअंते द्विदो 'च'सदो अवुत्तसमुच्चयदो । तेण एदेसु अणियोगद्वारेसु अवुत्तस्स अद्धाच्छेदाणिओगद्वारस्स भागाभागभावाणिओगद्वाराणं च गहणं कदं । एत्थ मूलपयडिद्विदिविहत्तीए जदि वि सण्णियासो ण संभवइ तो वि उत्तो; उत्तरपयडीसु तस्स संभवदंसणादो । एत्थ मोत्तूण तत्थेव किण्ण वुच्चदे ? सच्चं, तत्थ चेव वुत्तो ण एत्थ । जदि एवं, तो किण्णावणिज्जदे ? ण, मूलुत्तरपयडिद्विदिविहत्तीणं साहारणभावेण परूविदाणिओगद्वारेसु द्विदसण्णियासस्स अवणयणुवायाभावादो ।

• ❀ एदाणि चेव उचारपयडिद्विदिविहत्तीए कादन्वाणि ।

§ ८. सुगममेदं;अरूणाहियाणमेदेसिं तत्थ संभवादो ? संपहि एदेसिमणियोगद्वारेहि मूलपयडिद्विदिविहत्ती वुच्चदे । तं जहा,अद्धाच्छेदो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ

की अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष और अल्पवहुत्व तथा भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि ।

§ ७. ये मूलप्रकृति स्थिति विभक्तिके विषयमे अनुयोगद्वार होते हैं । इस सूत्रमें जो अन्तमें 'च' शब्द आया है वह उक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है । तथा अल्पवहुत्व पदके अन्तमें जो 'च' शब्द स्थित है वह अनुक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है, इसलिए इस 'च' शब्दके द्वारा इन उपर्युक्त अनुयोगद्वारोंमें अनुक्त अद्धाच्छेद अनुयोगद्वार तथा भागाभाग और भाव अनुयोग द्वारोंका ग्रहण किया गया है ।

यद्यपि यहाँ मूलप्रकृतिस्थिति विभक्तिमें सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है तो भी वह यहाँ पर कहा गया है, क्योंकि उत्तर प्रकृतियोंमें उसकी सम्भावना देखी जाती है ।

शंका—सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको यहाँ न कह कर वहाँ उत्तर प्रकृतियों के प्रकरणमें क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—यह ठीक है, क्योंकि सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको वहाँ उत्तर प्रकृतियोंके प्रकरणमें ही कहा है यहाँ मूल प्रकृतिके प्रकरणमें नहीं ।

शंका—यदि ऐसा है तो यहाँसे उसे क्यों नहीं अलग कर दिया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थिति विभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थिति विभक्ति इन दोनोंके विषयमें साधारणरूपसे ये अनुयोगद्वार कहे गये हैं, इसलिये इनमें स्थित सन्निकर्षको अलग करनेका कोई कारण नहीं है ।

❀ उत्तरप्रकृतिस्थिति विभक्तिके विषयमें ये ही अनुयोगद्वार कहने चाहिये ।

§ ८. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि न्यूनता और अधिकतासे रहित ये सभी अनुयोगद्वार उत्तर प्रकृतिस्थिति विभक्तिके विषयमें संभव हैं ।

अथ इन अनुयोगद्वारोंके द्वारा मूलप्रकृतिस्थिति विभक्तिका कथन करते हैं । यथा—जघन्य और उक्कष्टके भेदसे अद्धाच्छेद दो प्रकारका है ।

च । बहुसु अणिओगहारोसु संतेसु अद्वाछेदो चैव पढमं किमट्ठं वुचदे ? ण, अद्वाछेदे अणवगए संते उवरिमअहियारपरुवज्जमाणत्थाणमवगमावखुवत्तीदो ।

§ ६. उक्कसे पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहणीयउक्कससट्ठिदिविहती केत्तिया ? सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ पडिबुण्णाओ । कुदो ? अकम्मसरूवेण ट्ठिदा कम्मइयवग्गणक्खंधा मिच्छत्तादिपच्चएण मिच्छत्तकम्म-सरूवेण परिणदसमए चैव जीवेण सह बंधमागदा सत्तवाससहस्साबाधं मोत्तूण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीसु जहाकमेण णिसित्ता सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिभेत्तकालं कम्मभावेणच्छिय पुणो तेसिमकम्मभावेण गमखुवलंभादो । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय-मखुससतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-वेज्जिय०-तिण्णिवेद-वत्तारि-कसाय-मदिसुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्सा०-भवसिद्धि०-अभव०-मिच्छाइट्ठि०-सण्णि-आहारि त्ति ।

शंका—बहुतसे अनुयोगद्वारोंके रहते हुए सबसे पहले अद्वाच्छेदका ही कथन क्यों किया ? समाधान—नहीं, क्योंकि अद्वाच्छेदके अज्ञात रहनेपर आगेके अधिकारोंके द्वारा कहे जानेवाले अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । अतः सबसे पहले अद्वाच्छेदका कथन किया जा रहा है ।

§ ६. उत्कृष्ट अद्वाच्छेदका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कितनी है ? पूरी सत्तर कोडाकोडी सागर है ; क्योंकि जो कामैणवर्गणाओंके स्कन्ध अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे मिथ्यात्व कर्मरूपसे परिणत होनेके समयमें ही जीवके साथ बन्धको प्राप्त होकर सात हजार वर्षप्रमाण आवाधा कालसे कम सत्तर कोडाकोडी सागरके समयमें यथाक्रमसे निषेकभावको प्राप्त हो जाते हैं और सत्तर कोडाकोडी सागर कालतक कर्मरूपसे रहकर पुनः वे अकर्म भावको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार सभी नारवी, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, योनिमती तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिणी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पाँच लेख्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

विशेषार्थ—बन्धकालमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तरकोडाकोडी सागर प्रमाण प्राप्त होती है, अतः ओघसे मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद सत्तर कोडाकोडी सागर कहा है । आगे और जितनी मार्गैणार्ण गिनाई हैं वे सब संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अवस्थाके रहते हुए सम्भव हैं और उनके मिथ्यात्व गुणस्थानके सद्भावमें मिथ्यात्वका यह उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव है इसीलिये इनके कथनको ओघके समान कहा है । शुक्ललेख्यमें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अवस्था और मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है परन्तु शुक्ललेख्यमें अन्तःकोटाकोटीसे अधिक

§ १० पंचिन्द्रियतिरिक्त्वअपज्ज० मोह० उक्क० सत्तरिसागरीवमकोडाकोडीओ  
 अंतोमुहुत्तणाओ । एवं मणुसअपज्ज०-वादरेइंदियअपज्जत्त-सुहमेंइंदियपज्जत्ता-  
 पज्जत्त-सव्वविगल्लिंदिय-पंचि०अपज्ज०-वादरपुढवि०अपज्ज०-वादरआउ०अपज्ज०-  
 वादरवणप्फदि०पत्तेयअपज्ज०-तेउ-वाउ०-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०-  
 पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सुक-  
 सम्मादिट्ठि-वेदग०-सम्माभिच्छादिट्ठि च्चि ।

§ ११ आणदादि जाव सव्वट्ठ च्चि मोह० उक्क० अद्धच्छेदो अंतोकोडाकोडीए ।  
 एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयच्छेदो-

स्थिति नहीं बंधती अतः उसको यहाँपर नहीं ग्रहण किया है और इसी कारण आनतादि  
 उपरिम विमानोंको भी छोड़ दिया है ।

§ १०. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंके मोहनीय कर्मकी स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम  
 सत्तर कोडाकोडी सागर है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,  
 सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर पृथ्वी-  
 कायिक अपर्याप्त, वादर जलकालिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त,  
 अग्निकायिक, वायुकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक  
 अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर वायु-  
 कायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुका-  
 यिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त,  
 सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सब निर्गोद, त्रस अपर्याप्त, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
 अचधिज्ञानी, अचधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
 जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिस मनुष्य या तिर्यंचने सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिका बन्ध  
 किया वह यदि मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है तो अन्तर्मुहूर्तके पश्चात्  
 ही उत्पन्न हो सकता है इसके पहले नहीं, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तके मोहनीयकी स्थितिका  
 उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागर ही प्राप्त होता है अधिक नहीं । इसके  
 सिवा और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद इसी प्रकार  
 जानना चाहिए, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्तर्मुहूर्तके पहले  
 उस उस मार्गणास्थानको नहीं प्राप्त होता है । सादि मिथ्यादृष्टि सात प्रकृतिकों सत्तावाले जिसने  
 मोहनीयका उत्कृष्ट बंध किया है वह स्थिति कांडक घात किये बिना वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर  
 लेना है अतः उस सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टिके मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम  
 सत्तर कोडाकोडी सागर पाया जाता है । इसी प्रकार मिश्र गुणस्थानमें भी जानना चाहिए ।

§ ११. आनत कल्पसे लेकर सर्वाथिसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद  
 अन्तः कोडाकोडी सागर प्रमाण है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी,  
 अगत्तवेदी, अकथायी, मनःपर्यवज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-

परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-खइय०-उवसम०-सासणसम्मादिट्ठि चि ।

§ १२ एइंदियसु मोह० उक्क० अद्वाच्छेदो० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समयूणाओ । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्ज०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउ०--वादरआउपज्ज०--वादरवणप्फदिपत्तेय०--वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०--ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-असण्णि-अणाहारि चि ।

एवमुक्त्सओ अद्वाच्छेदो समत्तो ।

विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्प्रायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ--नौ अनुविश और पाँच अनुत्तर, विमानोमें तो सकलसंयमी सम्यग्दृष्टि ही पैदा होता है । किन्तु आनतादि चार कल्पोंमें और नौ ग्रैवयकमें मिथ्यादृष्टि जीव भी उत्पन्न हो सकता है । पर ऐसा जीव द्रव्यलिङ्गी मुनि संयतासंयत अवश्य होगा और ऐसे जीवके कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोड़ीकोड़ी सागरसे अधिक नहीं पाई जाती है । तथा आनतादिकमें उत्पन्न होनेके पश्चात् भी इसके स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिवाले कर्मका ही बन्ध होता है, अतः आनतादिकमें मोहननीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोड़ी सागर कहा है । इनके सिवा और जितनी मागोणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार मोहननीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोड़ी सागर घटित कर लेना चाहिए । यद्यपि इनमें कई ऐसी मार्गोणाएँ हैं जिनमें अन्तःकोडाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिवन्ध नहीं होता पर प्राक्तन सत्त्वकी अपेक्षा वहाँ भी यह अद्वाच्छेद उपलब्ध हो जाता है ।

§ १२. एकेन्द्रियोमें मोहननीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अद्वाच्छेद एक समय कम सत्तर कोडाकोड़ी सागर है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर पृथ्वी कायिक, वादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ--जो देव मोहननीयकी सत्तर कोडाकोड़ी प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और दूसरे समयमें मरकर एकेन्द्रियादिकमें उत्पन्न होते हैं उन एकेन्द्रियादिकके मोहननीयकी स्थिति-का उत्कृष्ट अद्वाच्छेद एक समय कम सत्तर कोडाकोड़ी सागर पाया जाता है । इसी प्रकार इस अपेक्षासे अस्तित्वोके मोहननीयकी स्थितिका एक समय कम सत्तर कोडाकोड़ी प्रमाण अद्वाच्छेद कहना चाहिये । किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अद्वाच्छेदका कथन करते समय देव और नरक पर्यायसे तिर्यचोमें उत्पन्न कराकर कहना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अद्वाच्छेदका कथन करते समय मनुष्य और तिर्यच पर्यायसे नारकियोंमें उत्पन्न कराकर कहना चाहिये । कामणकाययोगी और अनाहारकोंमें उत्कृष्ट अद्वाच्छेदका कथन करते समय चारो गतिके जीवोकी अपेक्षा कहना चाहिये, क्योंकि जब विवक्षित गतिके जीव भवके अन्तमें मोहननीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके और मरकर औदारिकमिश्रकाययोगी आदि होते हैं तब उनके मोहननीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद एक समय कम सत्तर कोडाकोड़ी सागर देखा जाता है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अद्वाच्छेद समाप्त हुआ ।

§ १३ जहण्णअद्धाच्छेदानुगमेणं दुविहो णिइदेसो ओवेण आदेसेण य । तत्थ ओवेण मोह० जहण्णिया अद्धा केत्तिया ? एगा द्विदी एगसमइया । एवं मणुसतिय-पंचिंदिय०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०-अवगद०-लोभक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-सुहुमसांपरा०-संजद-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक०-भवसिद्धि०-सम्मदि०-खइय०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ १४ आदेसेण ऐरइएसु मोह० सागरोवमसहस्सस्स सत्तसत्तभागा पल्लिदो-वमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया । एवं पढमाए पुढवीए पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचिं०-तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोगिणी-पंचिं०तिरि०अपज्ज-मणुसअपज्ज० [देव-] भवण०-वाण०-पंचिंदियअपज्ज० वत्तव्वं ।

§ १५. विद्यादि जाव सत्तमि त्ति मोह० अंतोकोडाकोडीए । एवं

§१३. जघन्य अद्धाच्छेदानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओषनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्यकाल कितना है ? एक समयवाली एक स्थितिप्रमाण जघन्यकाल है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, अरगतवेदी, लोभकवादी, आभिनिवेशिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी सूक्ष्म-सांपरायिक संयत, संयत, चक्षुदर्शनी, अक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेद्यावाले, मव्य, सम्य-गृष्टि, चायिकसम्यगृष्टि, संज्ञा और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहणकर सुक्ष्मसांपरायिकके अन्तिम समयमें स्थित रहता है उसके मोहनीयका एक समयवाला एक स्थितिप्रमाण अद्धाच्छेद उपलब्ध होता है वहां अन्य जितनी मार्गाणाएँ गिनाई हैं उनमें क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है इसलिये इनमें मोहनीयका अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

§१४. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति हत्तार सागरके सात भागोंमें से पत्योपमके संख्यातवें भाग कम सात भागप्रमाण होती है । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके जीवोंके तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्ष्यपर्याप्त, मनुष्य लक्ष्यपर्याप्त, देव, भवनवासी व्यन्तर और पंचेन्द्रिय लक्ष्य-पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—असंज्ञी पंचेन्द्रियके मोहनीयका उच्छ्र स्थितिबन्ध पत्यके संख्यातवें भाग कम हजार सागर प्रमाण होता है और यह जीव सामान्यसे नारकियोंमें, प्रथम पृथ्वीके नारकियोंमें, देवोंमें, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें तथा मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सरकर उत्पन्न हो सकता है इसलिए तो इन मार्गाणाओंमें मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है । मात्र ऐसे असंज्ञी जीवको इनमें उत्पन्न करानेके पहले प्राक्तन सत्त्व इससे अधिक नहीं रखना चाहिए । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच आदि चार अवस्थावाला असंज्ञी पंचेन्द्रिय भी होता है इसलिए इनमें भी मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

§१५. दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति

जोदिसियादि-जाव संव्वड्-वेडव्विय०-वेडव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-  
अकसाय०-विहंग०-परिहार०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदय०-उव-  
सम०-सासण०-सम्मामि० वक्तव्वं ।

§ १६. तिरिक्ख० मोह० जह० सागरोवम सत्तसत्तभागा पल्लिदोवमस्स  
असंखेज्जदिभागेण ऊणया । एवं संव्वएइंदिय-पंचकाय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-  
मदि-सुदअण्णण०-असंजद-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि ति ।  
संव्वविगल्लिदिय० मोह० जह० सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपण्णासाए सागरोवम-  
सदस्स सत्त सत्तभागा पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया । तसअपज्ज०  
वेइंदियअपज्जत्तभंगो ।

§ १७. वेदाणुवादेण इत्थि०-णवुंस० मोह० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर होती है । इसी प्रकार ज्योतिषी देवोसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, वैक्रि-  
यिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी आहारकमिश्र काययोगी अकषायी, विभंग-  
ज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्य-  
गृष्टि, उपशमसम्यगृष्टि, सासादनसम्यगृष्टि और सम्यग्मिथ्यागृष्टि जीवोंके कहना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें स्थितिवन्ध और प्राक्तन सत्त्व अन्तः  
कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण भी सम्भव होनेसे इनमे मोहनीयका जघन्य अद्वाच्छेद उक्त प्रमाण  
कहा है ।

§ १६. तिर्यञ्चोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमके  
असंख्यातवें भाग कम सात भागप्रमाण है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय,  
औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी मल्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन  
लेश्यावाले, अभन्य, मिथ्यागृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिए । सभी विक-  
लेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्रमसे पच्चीस, पचास और सौ सागरके सात भागोंमें-  
से पत्योपमके संख्यातवें भाग कम सात भाग प्रमाण है । त्रस लब्धपर्याप्तकोंके द्वीन्द्रिय लब्ध-  
पर्याप्तकोंके समान जघन्य स्थिति जाननी चाहिए ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोमे मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व पत्यका असंख्यातवां भाग  
कम एक सागर प्रमाण प्राप्त होता है और एकेन्द्रिय तिर्यञ्च ही होते हैं, इसलिए इनमे मोहनीयका  
जघन्य अद्वाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है । यहाँ अन्य एकेन्द्रिय आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई  
हैं उन मार्गणावाले जीव भी एकेन्द्रिय हो सकते हैं इसलिए उनका कथन उक्त प्रमाण  
कहा है । इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदिकके जघन्य स्थितिसत्त्वको ध्यानमें रखकर उनमें  
मोहनीयका जघन्य अद्वाच्छेद पत्यका संख्यातवों भाग कम क्रमसे पच्चीस, पचास और सौ सागर  
कहा है ।

§ १७. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके मोहनीय कर्मकी  
जघन्य स्थिति संख्यात हजार वर्ष है । पुरुषवेदी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति संख्यात

पुरिस० मोह० जह० संखेज्जाणि । कोह-माण-माय० मोह० जह० चत्तारि-बे-एकवस्साणि  
पडिबुण्णाणि । सामाइय-छेदो० मोह० जह० अंतोमु० ।

एवमद्वाछेदो समत्तो ।

§ १८. सव्वविहत्ती-णोसव्वविहत्तीअणुगमेण दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण  
य । तत्थ ओघेण सव्वाओ द्विदीओ सव्वविहत्ती, तदूणं णोसव्वविहत्ती । एवं  
जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

- § १९. उक्कस्स-अणुक्कस्स० दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
सव्वुक्कस्सिया द्विदी उक्कस्सविहत्ती । तदूणा अणुक्कस्सविहत्ती । एवं णेदव्वं जाव  
अणाहारए त्ति ।

§ २० जहण्णाजहण्ण० दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
सव्वजहण्णद्विदी जहण्णद्विदिविहत्ती । तदुवरिमाओ अजहण्णद्विदिविहत्ती । एवं  
णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति । सव्वद्विदीए अद्वाछेदम्मि भणिदउक्कस्सद्विदीए च को

वर्ष है । तथा क्रोधी, मानी और माया कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्रमसे परिपूर्ण  
चार, दो और एक वर्ष है । सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके मोहनीय कर्मकी  
जघन्य स्थिति अन्तमुर्त है ।

**विशेषार्थ**—उक्त तीन वेदवाले और क्रोधादि तीन कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी यह  
स्थिति क्षपकश्रेणिमें अपने अपने उदयके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इन मार्गणाओं-  
में मोहनीयका जघन्य अद्वाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

इस प्रकार अद्वाच्छेद समाप्त हुआ ।

§ १८. सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सर्व स्थितियाँ सर्वविभक्ति  
है और उससे न्यून नोसर्वविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानकर कथन  
करना चाहिये ।

§ १९. उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्टविभक्ति  
है और उससे न्यून स्थिति अनुत्कृष्टविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक  
कथन करना चाहिए ।

§ २०. जघन्यविभक्ति और अजघन्यविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे जघन्य स्थिति जघन्यस्थिति  
विभक्ति है और उससे ऊपरकी सब स्थितियाँ अजघन्य स्थितिविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक  
मार्गण तक ले जाना चाहिए ।

**शंका**—सर्वस्थिति और अद्वाच्छेदमें कही गई उत्कृष्ट स्थितिमें क्या भेद है ?

भेदों ? बुच्चदे--चरिमणिसेयस्स जो कालो सो उक्कस्सअद्वाच्छेदम्मि भण्णिदउक्कस्सट्ठिदी णाम । तत्थतणसव्वणिमेयाणं समूहो सव्वट्ठिदी णाम । तेण दोण्हमत्थि भेदो । उक्कस्सविहत्तीए उक्कस्सअद्वाच्छेदस्स च को भेदो ? बुच्चदे--चरिमणिसेयस्स कालो उक्कस्सअद्वाच्छेदी णाम । उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती पुण सव्वणिसेयाणं सव्वणिसेयपदेसाणं वा कालो । तेण एदेसिं पि अत्थि भेदो । एवं संते सव्वुक्कस्सविहत्तीयां णत्थि भेदो त्ति णासंक्खिज्जं । तायां पि णयविसेसवसेण कथंचि भेदुवलभादो । तं जहा--समुदायपहाणा उक्कस्सविहत्ती । अवयवपहाणा सव्वविहत्ति त्ति ।

§ २१. सादि०४ दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४ ? सादि० अद्घुव० । अजह० किं सादि०४ ?

**समाधान**—अन्तिम निषेकका जो काल है वह उत्कृष्ट अद्वाच्छेदमें कही गई उत्कृष्ट स्थिति है । तथा वहाँ पर रहनेवाले सम्पूर्ण निषेकोंका जो समूह है वह सर्वस्थिति है, इसलिए इन दोनोंमें भेद है ।

**शंका**—उत्कृष्ट विभक्ति और उत्कृष्ट अद्वाच्छेदमें क्या भेद है ?

**समाधान**—अन्तिम निषेकके कालको उत्कृष्ट अद्वाच्छेद कहते हैं और समस्त निषेकोंके या समस्त निषेकोके प्रदेशोंके कालको उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति कहते हैं, इसलिए इन दोनोंमें भी भेद है । ऐसा होते हुए सर्वविभक्ति और उत्कृष्ट-विभक्ति इन दोनोंमें भेद नहीं है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि नय विशेषकी अपेक्षा उन दोनोंमें भी कथंचित् भेद पाया जाता है । वह इस प्रकार है—उत्कृष्ट विभक्ति समुदायप्रधान होती है और सर्वविभक्ति अवयवप्रधान होती है ।

**विशेषार्थ**—उत्कृष्ट अद्वाच्छेद, सर्वस्थिति-विभक्ति और उत्कृष्टस्थिति-विभक्ति ये शब्द प्रयोगमें आते हैं, इतना ही नहीं; इन नामवाले स्वतन्त्र अधिकार भी हैं, इसलिए इनमें क्या भेद है यही यहाँ बतलाया गया है । सुलासा इस प्रकार है—मान लो किसी जीवने मिथ्यात्वका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध किया । ऐसी अवस्थामें सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरके अन्तिम समयमें स्थित जो निषेक है उसका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण हुआ, क्योंकि इतने काल तक इसके सत्तामें रहनेकी योग्यता है । यह तो उत्कृष्ट अद्वाच्छेदका उदाहरण है । तथा इस उत्कृष्ट स्थिति-बन्धके होने पर जो प्रथम निषेकसे लेकर अन्तिम निषेक तक निषेक रचना होती है वह सर्वस्थिति-विभक्ति है, क्योंकि यहाँ सर्व पद द्वारा सब निषेक लिए गए हैं । अब रही उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति सो इसमें उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध होने पर प्रथम निषेकसे लेकर अन्तिम निषेक तककी सब स्थितियोंका ग्रहण किया है । यहाँ सत्ताका प्रकरण होनेसे सत्ताकी अपेक्षा इस अन्तरको घटित कर लेना चाहिए । इतना विशेष जानना चाहिए कि यह सब जहाँ ओघ उत्कृष्ट सम्भव हो वहाँ ओघ उत्कृष्ट कहना चाहिए और जहाँ ओघ उत्कृष्ट सम्भव न हो वहाँ आदेश उत्कृष्ट प्राप्त कर लेना चाहिए ।

§२१. सादि, अनादि, भ्रव और अद्घुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेश-निर्देश । उनसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट-विभक्ति, अनुकृष्ट-विभक्ति



अणादिय० ध्रुवा वा अद्भुवा वा । एवमचक्खु०-भवसिद्धि० । एवरि भवसि०  
ध्रुवं एत्थि । सेसासु मग्गणासु उक्क० अणुक्क० जह० अजह० सादि-अद्भुवाओ ।

एवं सादि-अद्भुवाणुगमो समत्तो ।

§ २२. सामिच्चं दुविधं-जहणं उक्कस्सं च । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो  
णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्सट्ठिदी कस्स ? अण्णदरस्स,  
जो चउट्टाणियजवमज्जस्स उवरि अंतोकोडाकोडिं वंधंतो अच्छिदो उक्कस्ससंकिसेसं  
गदो । तदो उक्कस्सट्ठिदी पवद्धा तस्स उक्कस्सयं होदि ।

एवमोघपरूवणा गदा ।

और जघन्यविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि  
और अध्रुव है । अजघन्य विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव  
है ? अनादि ध्रुव और अद्ध्रुव है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।  
इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंके ध्रुव यह विकल्प नहीं है । शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट,  
जघन्य और अजघन्य ये चारों सादि और अध्रुव हैं ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कादाचित्क है और जघन्य  
स्थितिविभक्ति क्षणिकके सूक्ष्मसाम्प्राय गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है इसलिए ये तीनों  
सादि और अध्रुव कही हैं । किन्तु अजघन्य स्थितिविभक्तिका विचार इससे कुछ भिन्न है ।  
वात यह है कि जघन्य स्थितिविभक्तिके प्राप्त होनेके पूर्व तक अनादि कालसे अजघन्य स्थिति-  
विभक्ति होती है इसलिए तो वह अनादि कही है और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव तथा अभव्योंकी  
अपेक्षा ध्रुव कही है । इसमें सादि विकल्प सम्भव नहीं है, क्योंकि एक बार इसका अन्त  
होने पर पुनः इसकी उत्पत्ति नहीं होती । अचक्षुदर्शन और भव्य ये दो मार्गणाएँ क्रमसे  
क्षीणमोह गुणस्थानके अन्त तक और अयोगिकेवली गुणस्थान तक निरन्तर बनी रहती  
हैं इसलिए इनमें ओघपरूपणा अविकल घटित होनेके कारण वह उक्त प्रकार कही है ।  
मात्र भव्य मार्गणाएँ अजघन्य स्थितिविभक्तिका ध्रुवपना सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया  
है । शेष मार्गणाएँ कादाचित्क हैं इसलिए उनमें चारों स्थितिविभक्तियोंके सादि और अध्रुव  
ये दो विकल्प कहे हैं । केवल अभव्य मार्गणा रह जाती है क्योंकि यह कादाचित्क नहीं है पर  
इसमें ओघके अनुसार जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति सम्भव नहीं है इसलिए इसमें  
भी चारों स्थितिविभक्तियाँ सादि और अध्रुव कही हैं ।

इस प्रकार सादि-अध्रुवानुगम समाप्त हुआ ।

. २२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्ट स्वामित्वका  
प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे  
ओघनिर्देशकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो चतुःस्थानीय यवमध्यके ऊपर अन्तः  
कोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिको बांधता हुआ स्थित है और अनन्तर उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त होकर  
जिसने उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध किया है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

इस प्रकार ओघपरूपणा समाप्त हुई ।

§ २३. एवं सत्तपुढविणेरइय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिदिय०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउन्विय०-तिण्णिवेद-चचारिकसाय-मदिमुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-अचक्खु०-चक्खुदं०-पंचले०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि०-सण्णि०-आहारि चि ।

§ २४. पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णदरस्स सण्णि-पंचि०तिरिक्खो वा मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिभग्गो होदूण द्विदिघादमका-ऊण पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तापसु उववण्णो तस्स पढमसमयउववण्णल्लयस्स उक्कस्सिया टिदी । एवं मणुस्सअपज्ज०-वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-वादरपुढवीअपज्ज०-वादरआउ०अपज्ज०-वादरवण-प्फदिअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद०-सव्ववाउ०-सव्वतेउ०-तसअपज्जत्ते चि ।

§ २५. आणदादि जाव उवरिमगेवज्ज० उक्क० कस्स ? जो दव्वलिंगी उक्कस्स-ट्ठिदिसंतक्कम्मिमओ पढमसमयउववण्णो तस्स । अणुहिसादि जाव सव्वट्ठे चि मोह०

§ २३. इसी प्रकार अर्थात् ओघप्ररूपणाके समान सातो पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, योनिमती तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोशेगी, पांचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों प्रकारके वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, चक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेखावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ २४. पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिका बंध करके और वहांसे च्युत होकर स्थितिका घात न करके पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमे उत्पन्न हुआ है, उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्य, बादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक तथा उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक व उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सभी निगोद, सभी वायुकायिक, सभी अग्निकायिक और त्रस लब्धपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५. आनत स्वर्गसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देवोंमे उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्ता है ऐसा जो द्रव्यलिगी जीव आनतादि स्वर्गोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । अनुदिशसे

उक० कस्स० ? अण्णदरस्स जो वेदयसम्माइंटी तप्पाओग्गुक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ पढमसमए उववण्णो तस्स ।

§ २६. एइंदिय-वादरेइंदियपज्ज० मोह० उक० कस्स ? अण्णदरस्स जो देवो उक्कस्सद्विदिं वंधमाणो मदो पढमसमए जादो तस्स उक्कस्सद्विदी । एवं पुढवि०-आउ०-वणप्फदि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउ०-वादरआउ-पज्ज०-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपज्जत्तो त्ति वत्तव्वं ।

§ २७. ओरालियमिस्स० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० देवो णेरइओ वा उक्कस्सद्विदिवंधमाणो मदो तिरिक्खेसु उववण्णो पढमसमयओरालियमिस्सो जादो तस्स उक्कस्सिया द्विदी । वेउन्वियमिस्स० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सद्विदिं वंधमाणो मदो णेरइएसु उववण्णो पढमसमए वेउन्वियमिस्सो जादो तस्स उक्कस्सिया द्विदी । आहार० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्मा-दिदी तप्पाओग्गुक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ पढमसमए आहारओ जादो तस्स उक्कस्सिया द्विदी । आहारमिस्स० मोह० उक० कस्स ? वेदग० उक० पढमसमयजादस्स । कम्मइय० उक० कस्स ? अण्णद० चउगइओ उक्कस्सद्विदिं वंधिदूण मदो तिरिक्खेसु

लेकर सर्वांसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मोहनीयकी तत्प्रा-योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§२६. एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो देव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर मरा और उक्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ उसके एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रियमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी-कायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक और वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २७. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक देव वा नारकी जीव मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर मरा और तिर्यचोमे उत्पन्न होकर पहले समयमें औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ? वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट किसके होती है ? जो कोई एक मनुष्य या तिर्यच मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति बांध कर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होगया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । आहारकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके तत्प्रायोग्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है ऐसा कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारकाययोगी होगया उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारक-

जेरइएसु वा उववण्णो तस्स पढमसमयउववण्णल्लयस्स उक्कस्सिया द्विदी ।

§ २८. अवगद० मोह० उक्क० कस्स ? जो चउव्वीसविहत्तिओ तप्पाओ-गुक्कस्सद्विदिसंतकम्मेण पढमसमयअवगदवेदो जादो तस्स उक्कस्सिया द्विदी । एवमकसा०-सुहुथ०-जहाक्खाद० वत्तव्वं ।

§ २९. आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सद्विदिसंतकम्मेण तप्पाओगेण द्विदिघादमकाज्जण सम्मचं पड्विवण्णो तस्स पढमसमय-वेदयसम्माइद्विस्स उक्कस्सयद्विदिसंतकम्मं । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय० वत्तव्वं । मणपज्ज० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्मादिद्वी संजदो तप्पाओ-गुक्कस्सद्विदिसंतकम्मो पढमसमयमणपज्जवणाणी जादो तस्स उक्कस्सद्विदिसंतकम्मं । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० वत्तव्वं ।

§ ३०. सुक्क० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ द्विदिघादमकद्वेलाए चव परावत्तिदपढमसमयसुक्कलेस्सा तस्स उक्कस्सिया द्विदी ।

मिश्रकाययोगी हो गया उसके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । कार्यणकाययोगी जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? कोई एक चारों गतिका जीव मोहनीयकी स्थिति बांधकर मरा और तिर्यच या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ २८. अपगतवेदी जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विना जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव अपगतवेदी जीवोंके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्ताके साथ अपगतवेदी हुआ उसके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार अकवायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

§ २९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके तत्प्रायोग्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है और जो स्थितिघात न करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उस मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मनःपर्ययज्ञानके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक संयत वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मनःपर्ययज्ञानी हुआ उसके पहले समयमे मोहनीयका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व पाया जाता है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ३०. शुक्ललेखावाले जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है और जिसने स्थिति घात करके उसी समय शुक्ललेखाको प्राप्त कर लिया है ऐसे किसी भी शुक्ललेखावाले जीवके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ३१. खड्य० उक० कस्स ? अण्णद० पढमसमयखड्यसम्मादिट्टिस्स तस्स उकस्सिया ट्टिदी । उवसम० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० पढमसमय-उवसाभिदुदंसणमोहस्स उवसमसम्मादिट्टिस्स तस्स उकस्सिया ट्टिदी । सासण० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसासणसम्मादिट्टिस्स । सम्भाभि० मोह० उक० कस्स ? ट्टिदिसंतकम्मघादमकाऊण पढमसमयसम्भाभिच्छाड्डी जादो तस्स । असण्णि० एड्दियभंगो । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्ससामिच्चं समत्तं ।

§ ३२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० ट्टिदी कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स जहण्णट्टिदी । एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि-कायजोगि०-

§ ३१. ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसने दर्शनमोहनीय कर्मकी उपशमना की है ऐसे किसी भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक जीव स्थितिसत्त्वका घात न करके सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । असंज्ञी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । तथा अनाहारक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति कर्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां पर ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके क्रमसे ज्ञायिकसम्यक्त्व, उपशमसम्यक्त्व और सासादनसम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहा गया है । सो इसका कारण यह है कि एक तो इन मार्गणाओंमें पूर्व मार्गणासे आनेपर जितना अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है उतना स्थितिवन्ध नहीं होता । दूसरे प्रथम समयके बाद उत्तरोत्तर स्थितिसत्त्व हीन होता जाता है, अतएव इन मार्गणाओंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका स्वामी प्रथम समयवाले जीवको कहा है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुरुस्थानमें मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके तथा उसका घात न करके आना सम्भव है और ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सबसे अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है, इसलिए इसके भी उक्त प्रकारसे आनेपर उत्कृष्ट स्थिति कही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

§ ३२. अब जयन्य स्वामित्व प्रकृत है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंध-निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे आंधनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जयन्यस्थिति किसके होती है ? किसी भी क्षपक जीवके सकषाय अवस्थाके अन्तिम समयमें अर्थात् क्षपक सूक्ष्मसाम्भराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जयन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य,

ओरालि०-अवगद०--लोभक०-आभिणि०-मुंद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०--सुहुम०-  
चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि-आहारि चि ।

§ ३३. आदेसेण णेरइएसु मोह० जह० कस्स ? अण्णद० असण्णिपच्छायदस्स विदियसमयविग्गहे वट्टमाणस्स तस्स जहण्णिणा द्विदी । एवं पढमपुढवि०-देव-  
भवण०-वाण० वत्तव्वं । विदियादि जाव छट्ठि चि मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो उक्क० आउअट्ठिदीए उववण्णो अप्पिदपुढविसु अंतोमुहुत्तेण पढमसमत्तं पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणताणुवंधिचउक्कं विसंजोइय चरिमसमयणिप्पिदमागओ तस्स जहण्णिणा द्विदी । एवं जोइसि० ।

§ ३४. सत्तमाए पुढवीए मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो उक्क० आउअट्ठिदीए उववण्णो अंतोमुहुत्तेण पढमसमत्तं पडिवण्णो पुणो अणताणुवंधिचउक्कं विसंजोइय

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, लोभकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपथेयज्ञानी, संयत, सूक्ष्मसांपरा-  
यिकसंयत, चतुदशैनी, अचतुदशैनी, अवधिदशैनी, शुक्ललेख्यावाले, भव्य, सम्प्रदृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी, और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३. आदेशकी अपेक्षा नरकियोंमें मोहनीय की जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो असंज्ञि-  
योंमेंसे नरकमें आया है और जो विग्रहगतिके दूसरे समयमें विद्यमान है ऐसे नारकीके मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी जीवोंके तथा सामान्य देव, भवन-  
वासी और व्यन्तर देवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—असंज्ञी जीव नरकमें उत्पन्न हो सकता है और उसके विग्रहगतिके असंज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध होता है इसलिए यहां असंज्ञियोंमेंसे आए हुए नारकी जीवके द्वितीय विग्रहमें जघन्य स्थिति कही है । मात्र ऐसे असंज्ञी जीवके प्राक्तन सच्च तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे अधिक नहीं होना चाहिए । यह असंज्ञी प्रथम नरकके समान भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें भी उत्पन्न होता है इसलिए प्रथम नरक, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें यह स्वामित्व इसी प्रकार दिया है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है । जो कोई एक जीव दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक अपनी अपनी पृथिवीके अनुसार उत्कृष्ट आयुको लेकर उत्पन्न हुआ है, तथा जिसने उत्पन्न होनेके अन्तर्मूर्त कालके बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तर अन्तमुद्भूत कालके द्वारा अनन्तानुबन्धी चतुष्करी विसंयोजना की है उस जीवके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति जाननी चाहिये ।

§ ३४. सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको लेकर सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ तथा अन्तमुद्भूत कालके पश्चात् जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्व

अंतोमुहुच' जीवियमत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो जावदि सक्का ताव संतकम्मस्स हेट्ठा वंधिय से काले समट्ठिदिं वंधिय वोलेहदि त्ति तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं ।

§ ३५. तिरिक्खगइ० मोह० जह० कस्स ? अण्णदरस्स जो एइंदिओ हदसमु-पत्तियं काऊण जाव सक्का ताव संतकम्मस्स हेट्ठा वंधिय से काले समट्ठिदिं वोलेहदि त्ति तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । एवं सव्वएइंदिय-पंचकाय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णण-असंजद०-तिण्णि लेस्सा०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ३६. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि मोह० जह० कस्स ? जो एइंदियपच्छायदो द्विदीए कयहदसमुप्पत्तिओ पढमविदियविग्गहे वट्टमाणो तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-तस अपज्जचे त्ति वत्तव्वं । णवरि विगलिंदिएसु सत्थाणे वि सामित्तमविरुद्धं दट्ठव्वं ।

§ ३७. सोहम्मीसाणादि जाव सव्वट्ट० मोह० जह० ? अण्णद० दो बारे

प्राप्त किया है, पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके वहां रहा और जब जीवनमे अन्तमु हुत काल शेष रह जाय तब मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जहां तक शक्य हो वहां तक सत्तामें स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमे जो सत्तामें स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३५. तिर्यचगतमे मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो कोई एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिकको करके जय तक शक्य हो तव तक सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमे सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पांचो स्थावरकाय, औदारिकमिश्र काययोगी, कार्मण काययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिनी इन तीन प्रकारके तिर्यचोमे मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो एकेन्द्रियोंमेंसे लौटकर आया है, जिसने स्थितिका हतसमुत्पत्तिक किया है और जो पहले या दूसरे विग्रहमे स्थित है उस पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त या योनिनी तिर्यचके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच लव्य-पर्याप्तिक, मनुष्य लव्यपर्याप्तिक, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लव्यपर्याप्तिक और त्रस लव्यपर्याप्तिक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रिय जीवोमे स्वस्थानकी अपेक्षा भी स्वामित्वके कथन करनेमे कोई विरोध नहीं आता । अर्थात् जो विकलेन्द्रियोंमेसे भी विकलेन्द्रियोंमें लौटकर आया है उसके भी जघन्य स्थितिसत्त्व हो सकता है ।

§ ३७. सौयमं और पेशान ह्वगंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी जघन्य

उवसमसेदिमाख्ढो पच्छा दंसणमोहं खविय अप्पण्णो उक्कसाउट्टिदीए उववण्णो तस्स चरिमसमयणिप्पिदमाणयस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं ।

§ ३८. वेउच्चिय० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० सव्वट्ठ० देवस्स खइय-सम्मादिट्ठिस्स उवसंतकसायपच्छायदस्स सगसगुक्कसाउट्टिदिचरिमसमए वेउच्चिय-कायजोगे वट्टमाणस्स तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । वेउच्चियमिस्स० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० खइयसम्मा० उवसंत० पच्छायदस्स चरिमसमयवेउच्चियमिस्स-कायजोगिस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । आहार० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० खइयसम्माइट्ठिस्स से काले मूलसरिं पविसंतस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । आहारमिस्स० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० खइयसम्मा० से काले सरिपज्जत्तिं कोहदि (काहदि) च्चि तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ३९. वेदाखुवादेण इत्थिवेद० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० अणियट्ठिखवओ चरिमसमए इत्थिवेदओ तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । एवं पुरिस०-णवुंस० वचुव्वं ।

§ ४०. कोह०-माण०-माय० जह० कस्स ? अण्णद० अणियट्ठिखवओ

स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक जीव उपशमश्रेणी पर दो बार चढ़ा है अनन्तर दर्शनमोहनीयका न्य करके आद्युक्तकी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको लेकर सौधर्मादिसे उत्पन्न हुआ है उसके वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३८. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो चायिकसम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय गुणस्थानसे सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ तथा जो अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें वैक्रियिककाययोगमें विद्यमान है उस सर्वार्थसिद्धिमें रहनेवाले वैक्रियिककाययोगी जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो चायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशान्तकषाय गुणस्थानसे आकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके वैक्रियिकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । आहारककाययोगी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो चायिकसम्यग्दृष्टि आहारककाययोगी जीव तदनन्तर समयमें मूल शरीरमें प्रवेश करेगा उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो चायिकसम्यग्दृष्टि आहारकमिश्रकाययोगी जीव तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३९. वेदमार्गाणके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो स्त्रीवेदी अनिष्टचित्तक जीव है उसके स्त्रीवेदके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये ।

§ ४०. क्रोध, मान और मायाकषायवाले जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके



अण्णपणो चरिमसमए वट्टमाणो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । अकसा० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० चरिमसमयअकसायस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । विहंग० मोह० जह० क० ? अण्ण० जो उवरिमगेवज्जदेवो चउवीससंतकम्मिओ अवसाणे मिच्छत्तं गंतूण चरिमसमयविहंगणाणी जादो तस्स० जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ४१. सामाइय-छेदो० जह० कस्स ? अण्ण० अणियद्विखवओ चरिमसमय-साभाइय-छेदोवट्टावण० संजमो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । परिहार० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० जो दो वारे उवसमसेहिं चट्ठिय पच्छा खविददंसण-मोहणीओ देवेसु तेत्तीससागरोवममेत्ताउद्विदिमणुपालिय मणुस्सेसुववज्जिय समय-विरोहेण पडिवण्णपरिहारसुद्धिसंजमो तस्स चरिमसमयपरिहारसुद्धिसंजदस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । संजदासंजद० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो खइयसम्मा० परिहारस्स भण्णिविहाणेणागंतूण चरिमसमयसंजदासंजदो जादो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ४२. तेउ०—पम्म० परिहार० भंगो । णवरि चरिमसमयतेउपम्मलेस्सालावो कायव्वो ।

होता है ? जो अनिष्टवृत्तिक्षपक क्रोध, मान और मायाकषायके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । अकषायी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि अकषायी जीव है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । विभंगज्ञानी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? चौबीस प्रकृतियोंकी रूताधाला जो उपरिम भ्रैवेयकका देव आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर विभंगज्ञानी हो गया है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ४१. सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो अन्तिम समयवर्ती अनिष्टवृत्ति क्षपक है उस सामायिकसंयत और छेदो-पस्थापना संयत जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? दो वार उपशमश्रेणीपर चढ़कर अनन्तर जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय किया है ऐसा जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें उत्पन्न होकर और वहां तेतीस सागर प्रमाण आयुको समाप्त करके अनन्तर मनुष्योमे उत्पन्न होकर जिस प्रकार आगममें वताया है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि संयमको प्राप्त हुआ है उस परिहारविशुद्धि संयतके अन्तिम समयमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । संयतासंयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि परिहारविशुद्धि संयत जीव आगममे जिस प्रकार विधि वताई है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि संयमको त्यागकर संयतासंयत हो गया है उस संयतासंयतके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ४२. पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व परिहार

§ ४३. वेदग० मोह० जह० क० ? अण्णद० चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणी-  
यस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । उवसम० मोह० जह० क० ? अण्ण० उवसमसेदीए द्विदि-  
घादं कादूण अघट्टिदिगलणाए च गालिय से काले वेदयसम्मादिट्ठी होहिदि चि जो  
ट्ठिदो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । सासण० मोह० ज० कस्स ? अण्णद० चरिमसमय०  
सासण० तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । सम्माभि० मोह० ज० क० ? अण्णद० चउवीस-  
संतकम्मिओ जो चरिमसमयसम्माभिच्छादिट्ठी तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं ।

एवं सामित्त' समत्त' ।

§ ४४. कालो दुविहो-जहण्णओ उक्खस्सओ चेदि । तत्थ उक्खस्सए पयदं । दुविहो  
णिहेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्खस्सट्ठिदी केवचिरं कालादो  
होदि ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोसुहुत्तं । अणुक० केवचिरं ? जह० अंतोसुहुत्तं, उक्क०  
अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । एवं मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-  
भव०-अभव०-मिच्छादि० चि वत्तव्वं ।

विशुद्धिसंयत जीवोके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पीतलेश्या और पद्मलेश्या-  
वाले जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व कहते समय अन्तिम समयमें पीतलेश्या और पद्म-  
लेश्या प्राप्त कराके उसका कथन करना चाहिये ।

§ ४३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जिसके  
दर्शनमोहनीयका चय नहीं हुआ है ऐसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके अन्तिम समयमें मोहनीयका  
जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व  
किसके होता है ? जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीमें स्थितिघात करके और अधस्तन-  
स्थिति गलनाके द्वारा स्थितिको गला कर तदनन्तर समयमें वेदकसम्यग्दृष्टि होगा उसके मोह-  
नीयका जघन्य-स्थितिसत्त्व होता है । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थिति-  
सत्त्व किसके होता है ? जो सासादनसम्यग्दृष्टि हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य  
स्थितिसत्त्व होता है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता  
है । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ है उसके अन्तिम समयमें  
मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ४४. काल दो प्रकारका है—जघन्यकाल और उत्कृष्ट काल । उनमेंसे पहले उत्कृष्ट काल-  
का प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उसमें  
से ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय  
और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थिति सत्त्वका काल कितना है ? जघन्य  
काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है जिसका प्रमाण अनन्तकाल  
है । इसी प्रकार मत्थज्ञानी, भ्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अंभव्य और मिथ्यादृष्टि  
जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ४५. आदेसेण गिरयगईए गेरइएसु मोह० उक्क० केवचि० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० केवचिरं० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवभाणि । पढमादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० केवचिरं० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० एकक्क० तिणिण० सत्त० दस० सत्तारस० वावीस० तेत्तीससागरोवभाणि ।

§ ४६. तिरिक्ख० मोह० उक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । एवं कायजोगि०-णवुंस० वत्तव्वं ।

**विशेषार्थ**—मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उत्कृष्ट स्थिति सत्त्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। उत्कृष्ट स्थिति बन्धकी व्युच्छित्ति होने पर पुनः उसका बन्ध क्रमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही होता है। इस बीच अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध होने लगता है और सत्त्व भी अधःस्तन स्थिति गलनाके द्वारा उत्तरोत्तर न्यून होता जाता है इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल होनेसे इस कालमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्व रहता है, इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओष प्ररूपणा अधिकल घटित हो जाती है, इसलिए इनकी प्ररूपणा ओषके समान कही है।

§ ४५. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेत्तीस सागर है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, चाईस और तेत्तीस सागर है।

**विशेषार्थ**—यहाँ सर्वत्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओषके समान घटित कर लेना चाहिए। नरकमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय निम्न प्रकार होता है—जिस नारकाने भवके उपान्त्य समयमें उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको बांधा है और तीसरे समयमें भरकर जो अन्य पर्यायको प्राप्त हो गया उसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ४६. तिर्यचोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असंख्यात् पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। इसी प्रकार काययोगी और नृपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये।

§ ४७. पंचिदियतिरिक्खतियस्सि मोह० उक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अतोसुहुत्तं । अणुक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगसणुक्कस्सट्ठिदी । एवं मणुसतियस्स ।

§ ४८. पंचि०तिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्क० केव० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० केव० ? जह० खुदाभवग्गहणं समऊणं, उक्क० अंतोसुहुत्तं । एवं मणुस-अपज्ज० ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोमे अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिए । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओषके समान घटित कर लेना चाहिये । जब कोई जीव असंख्यात पुद्गल परिवर्तनकाल तक एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहता है तब उसके काययोग और नर्पुसकवेद ही होता है अतः काययोग और नर्पुसकवेदमें भी मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल तिर्यचोके समान बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४७. पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और योनिमती तिर्यचोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोमे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओषके समान तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एकसमय नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिये । इनका खुलासा हम पहले कर ही आये हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि किसी भी तिर्यचके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिके भीतर मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध न हो यह सम्भव है । यहाँ स्थितिसे कायस्थिति का ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार अन्यत्र भी जहाँ भवस्थितिसे कायस्थिति अधिक हो वहाँ भी स्थिति पदसे कायस्थितिका ही ग्रहण करना चाहिये । उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोकी कायस्थिति क्रमसे पंचानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य, सैंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य होती है । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इनकी कायस्थिति क्रमशः सैंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य, तेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य होती है ।

§ ४८. पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनो एक समय है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्यके जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोके बन्धसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती नहीं । हां जिसने संबन्धी पर्याप्त अवस्थामें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और वह स्थिति घात न करके अन्तर्मुहूर्त कालके होनेपर मरकर उक्त जोत्रोमे उत्पन्न हो गया तो उसके

§ ४६. देवाणं पारगभंगो । भवणादि जाव सहस्सार त्ति उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अप्पणो उक्कस्सट्ठिदी । आणदादि जाव सव्वट्ठ० मोह० उक्क० केव० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० जहणुट्ठिदी० समज्जणा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी संपुण्णा ।

§ ५०. ईदिएसु मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० एगस० । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । एवं वादरेइंदिय० । पावरि अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्सकालो वादरट्ठिदी । वादरेइंदियपज्ज० उक्कस्सट्ठिदीए ईंदियभंगो । अणुक्क० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं (एगसमयूणं), उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।

उत्पन्न होनेके पहले समयमें अपनी पर्यायमें सम्भव स्थितिकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम खुदाभव-प्रहण प्रमाण प्राप्त होता है । तथा एकेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकका उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्तं बतलाया है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्तं प्राप्त होता है । मनुष्य लब्धपर्याप्तकोंके भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल घटित कर लेना चाहिए ।

§ ४६. देवोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल नारकियों के समान जानना चाहिये । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों सत्त्वकाल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट अपनी अपनी सम्पूर्ण उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

विशेषार्थ—आनतसे सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट आयु नहीं होती अतः वहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम तेतीस सागर और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर होगा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५०. एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुदाभवप्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय जीवोंके कहना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल वादर स्थिति प्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा इनके

§ ५१. वादरेईदियअपज्ज०-सुहुमेईदियअपज्ज०-विगलिंदियअपज्ज०-पंचिदिय-अपज्ज०-पंचकाय०-वादरअपज्ज०-तोसि सुहुमअपज्ज०-तसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्ख अपज्जत्तभंगो ।

§ ५२. सुहुमेईदिय० उक्क० केव० ? जहणुक्कस्सेण एयसमओ । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहणं समऊणां, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं पंचकायसुहुमाणं पज्जत्ताणं ।

§ ५३. सुहमेईदियपज्ज० केव० ? जहणुक्कस्सेणेगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोसुहुचं समयूणं, उक्क० अंतोसुहुत्तं । एवं पंचकायसुहम० ।

अनुकृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उकृष्ट संख्यात हजार वर्ष है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उकृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही प्राप्त होती है अतः इनके मोहनीयकी उकृष्ट स्थितिका जघन्य और उकृष्टकाल एक समय कहा । साथ ही यह उकृष्ट स्थिति लब्धपर्याप्तक एकेन्द्रिय और सूक्ष्म जीवोके नहीं प्राप्त होती, अतः अनुकृष्ट स्थितिका जघन्यकाल पूरा खुदाभवग्रहण प्रमाण कहा । एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण होनेसे इनके अनुकृष्ट स्थितिका उकृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोकी कायस्थिति क्रमशः अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण व संख्यात हजार वर्ष काल प्रमाण होनेसे इनके केवल अनुकृष्ट स्थितिके उकृष्टकालमें एकेन्द्रियोसे अन्तर है । वांकी सब एकेन्द्रियोंके समान है । सो इसका उल्लेख पहले किया ही है ।

§ ५१. वादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय वादर लब्धपर्याप्तक, पांचों स्थावर काय सूक्ष्म लब्धपर्याप्तक और त्रस लब्धपर्याप्तक जीवोके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि सभी लब्धपर्याप्तक जीवोके उकृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उकृष्टकाल एक समान होता है, अतः उक्त सब लब्धपर्याप्तक जीवोकी उकृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये ।

§ ५२. सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मोहनीयकी उकृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उकृष्ट दोनों एक समय है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम खुदाभव-ग्रहणप्रमाण है और उकृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोक प्रमाण है । इसी प्रकार पांचों सूक्ष्म स्थावर-कायिक जीवोके कहना चाहिये ।

§ ५३. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोके मोहनीयकी उकृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उकृष्ट दोनों एक समय है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उकृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पांचों सूक्ष्म स्थावरकायिक पर्याप्तकोंके जानना चाहिये ।

§ ५४. विगलिंदिय० मोह० उक्क० केव० ? जहण्णुक्क० एयसमओ । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहणं समयऊणं, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । एवं विगलिंदियपज्जत्ताणं पि । णवरि अणुक्कस्सजहण्णकालो अंतोमुहुचं समयऊणं ।

§ ५५. पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी ।

§ ५६. पुढवि०-वादरपुढवि०--आउ०-वादरआउ० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० एगसमओ । अणुक्क०-जह० खुदाभवग्गहणं, उक्क० सगसगुक्क-स्सट्ठिदी । वादरपुढविपज्ज०-वादरआउ०पज्ज० उक्क० के० ? जह० एगसमओ,

§ ५४. विकलेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंके भी जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्म एकेन्द्रियसे लेकर आगे जितनी मार्गणाओमें काल कहा है उन सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमे ही प्राप्त हो सकती है, अतः सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालका कथन करते समय जहाँ खुदाभवग्रहण प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहाँ एक समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण जघन्य काल कहा और जहाँ अन्तमुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहाँ एक समय कम अन्तमुहूर्त प्रमाण जघन्य काल कहा । तथा जहाँ जो उत्कृष्ट काल सम्भव है वहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल तत्प्रमाण कहा ।

§ ५५. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्व कोटि पृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर, पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरपृथक्त्व, त्रसकाधिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रसकायिक, पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो हजार सागर वतलाई है अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त स्थिति प्रमाण जानना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार नारकियोंके घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार वहाँ भी घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६. पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, जलकायिक और वादर जलकायिक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुदाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर जलकायिक पर्याप्त

उक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तमेगसमऊणं, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।

§ ५७ तेउ०--बादरतेउ०--बादरतेउपज्ज०--वाउ०--बादरवाउ०--बादरवाउपज्ज० उक्क० जहणुक्कस्सेण एगसमओ, अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहणं समऊणं । णवरि पज्जत्ताणयंतोमुहुत्तं समऊणं । सव्वेसिमणुक्कस्सुक्कस्सं सगसगुक्कस्सट्ठिदी ।

§ ५८. वणप्फदिकाइयाणमेइं दियभंगो । बादरवणप्फदिकाइयाणं बादरेइं दिय-

जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है। और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात हजार वर्ष है।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है। पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण कही है। बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति उत्कृष्ट कर्मस्थिति प्रमाण कही है। तथा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और बादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष प्रमाण कही है सो इस क्रमसे उक्त जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये।

§ ५७. अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है। तथा उपर्युक्त सभी जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है।

**विशेषार्थ**—उक्त कायवाले जीवोंके भवके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। पर्याप्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और शेषका खुदाभवग्रहण प्रमाण है अतः इस जघन्य कालमेंसे उत्कृष्ट स्थितिके कालके एक समय घटा देने पर जो एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल बचता है वह इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल है। इनमेंसे कौन किसका काल है यह तुलासा मूलमें ही किया है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिकका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिकका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है और बादर अग्निकायिक पर्याप्त तथा बादर वायुकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इस प्रकार इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ऊपर कही गई अपनी अपनी कास्थिति प्रमाण जानना।

§ ५८. वनस्पतिकायिक जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान, बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके बादर



भंगो । बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ताणं बादरेईदियपज्जत्तभंगो ।

§ ५६. पंचमण०-पंचवचि० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं वेउच्चियकाय० वत्तव्वं । ओरालि० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वावीसवाससहस्साणि देसूणाणि । ओरालियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० खुदाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्क० अंतोमु० ।

§ ६०. वेउच्चियमिस्स० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं समऊणं, उक्क० अंतोमु० । एवमाहारमिस्स०-उवसम०-सम्मामि० वत्तव्वं । आहार० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । (अणुक्क०) ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्कवाद० वत्तव्वं । कम्मइय० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगस०, अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

एकेन्द्रिय जीवोंके समान और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान काल जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इनके सब प्रकारसे एकेन्द्रिय और उनके भेद-प्रभेदोंके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल बन जाता है ।

§ ५६. पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके कहना चाहिये । औदारिककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वका ओषके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । औदारिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६०. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । आहारककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । कामेण-काययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक

§ ६१. इत्थि० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । एवं पुरिस० ।

समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । यही बात वैक्रियिक काययोगमें जानना चाहिये । औदारिक काययोगमें अनुकृष्ट स्थितिके उत्कृष्टकालमे कुछ विशेषता है । बातयह है कि औदारिक-काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्षप्रमाण है और इतने काल तक जीवके इसमें मोहनीयकी अनुकृष्ट स्थिति पाई जाती है, अतः औदारिककाययोगमे अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । औदारिक मिश्रकाययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अतः औदारिकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । पर ऐसा जीव निर्वृत्यपर्याप्त होगा । इससे सिद्ध हुआ कि लब्धपर्याप्तक औदारिक मिश्रकाययोगके अनुकृष्ट स्थिति ही होती है । अब यदि कोई जीव तीन मोड़ा लेकर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो तो उसके खुदाभवग्रहणप्रमाण कालमें से तीन समय और कम हो जायेंगे अतः औदारिकमिश्रकाययोगमें अनुकृष्ट स्थितिका जघन्यकाल तीन समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण कहा । तथा इसके अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है । वैक्रियिकमिश्र-काययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है, अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्ट स्थितिके इस एक समयको कम कर देने पर जो वैक्रियिकमिश्रका एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है वह अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है । आहारकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये क्योंकि इनके भी पहले समयमे ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है । तथा इस एक समयको कम कर देने पर उक्त मार्गणाओंको जो एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल शेष बचता है वह उनकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल है और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है । आहारककाययोगके पहले समयमे ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसमे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जो जीव एक समय तक आहारक काययोगके साथ रहकर दूसरे समयमें मरणादि निमित्तोंसे अन्य योगको प्राप्त हो जाते हैं उनके अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है अतः आहारक काययोगमे अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त आहारक काययोगके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा । अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसोपराधिक संयत और यथाख्यातसंयत इन मार्गणाओंकी स्थिति आहारक काययोगके समान है अतः इनमे उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका काल आहारककाय योगके समान कहा । कार्मणकाय योगके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसमे भी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है अतः इसमें अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है ।

§ ६१. स्त्रीवेदी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ६२. चत्वारिकसाय० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ६३. विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि अणुक्क० उक्क० तेत्तीस सागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० केव० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदयसम्मादि० । णवरि वेदयसम्मत्तम्मि अणुक्क० छावट्टि-सागरोवमाणि । मणपज्ज० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं संजद०-परिहार०-संजदासंजद० । सामा-इय-छेदो० एवं चेव । णवरि अणुक्क० जह० एगसमओ । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

**विशेषार्थ—**स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । जो स्त्रीवेदसे अपगतवेदको प्राप्त हुआ जीव उपशमश्रेणीसे उतरते हुए एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर अन्य-वेदी हो गया उस स्त्रीवेदीके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । या जिस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी जीवने उत्कृष्ट स्थितिके पश्चात् एक समयके लिये अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया और दूसरे समयमें वह मर कर अन्यवेदी हो गया उस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदीके अनु-त्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी पत्योपमशतपृथक्त्व व सागरोपमशतपृथक्त्व स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६२. चारों कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तात्पर्य यह है कि चारों कषायोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमे उक्त प्रमाण काल बन जाता है ।

§ ६३. विभंगज्ञानी जीवोंके सातवीं पृथिवीके समान जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर है । आभिनि-बोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधि-दर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेद-कसम्यक्त्वमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल पूरा छयासठ सागर है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसी प्रकार संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । तथा सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । पर

१. केव० जह० उक्क० केव० जहणु० इति पाठः ।

§ ६४. किण्ह०--णील०--काउ०--तेउ०--पम्म० मोह० उक्क० ओघभंगो ।  
अणुक्क० जह० अंतोमु० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । सुक्क० मोह०  
उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरोव-

इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय होता है। चक्षु-दर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**—विभंगज्ञान पर्याप्त अवस्थामें ही होता है अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालको अन्तर्मुहूर्त कम तेत्तीस सागर कहा। शेष कथन सुगम है। आमिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतिज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा। जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्दृष्टि रहा पश्चात् सम्यक्त्वसे च्युत हो गया या सम्यक्त्व प्राप्तिके बाद जिसने अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर लिया उसके उक्त तीन ज्ञानोंके रहते हुए अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा आमिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका उत्कृष्टकाल चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर है अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर कहा। यहाँ पर अधिकसे चार पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये। अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल कहना चाहिये। किन्तु वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर है, अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर होगा। जो जीव मनःपर्ययज्ञानको प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः मनःपर्ययज्ञानीके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा मनःपर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है, अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि-प्रमाण कहा। यहाँ कुछ कमसे आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त लिया है। पूर्वकोटिसे इतना काल कम कर देना चाहिये। संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतकी स्थिति मनःपर्ययज्ञानके समान है अतः इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके कालको मनःपर्ययज्ञानके समान कहा। परन्तु इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धिसंयतका उत्कृष्ट काल ३२ वर्ष कम एक पूर्वकोटि वर्ष है और संयतासंयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष है। जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और एक समय तक नौवें गुणस्थानमें रह कर मर जाता है उसके सामायिक और छेदो-पस्थापना संयतका जघन्य काल एक समय पाया जाता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। शेष कथन मनःपर्ययज्ञानके समान है। त्रसपर्याप्तसे चक्षु-दर्शनीकी स्थितिमें अन्तर नहीं है अतः चक्षुदर्शनीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल त्रस-पर्याप्तके समान कहा।

§ ६४. कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल प्रारंभकी तीन लेश्यावालोंके अन्तर्मुहूर्त और पीत तथा पद्मलेश्यावालोंके एक समय है। तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। शुक्ल लेश्यावाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है।

माणि सादिरेयाणि । एवं खइय० वत्तव्वं ।

§ ६५. सासण० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० एग-समओ, उक्क छ आवलियाओ । सण्णि० पुरिसभंगो । असण्णि० एइंदियभंगो । आहारि० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगटिदी । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक तेतीस सागर है । इसी प्रकार द्वायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मरते समय यदि अशुभ लेश्या हो तो दूसरी पर्यायमें उत्पन्न होने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक वही लेश्या बनी रहती है पर पीत और पद्म लेश्याकी यह बात नहीं, क्योंकि उक्त लेश्यावाला यदि कोई देव तिर्यचोंमें उत्पन्न होता है तो उसके तिर्यच पर्यायमें कापोत लेश्या हो जाती है, अतः तीन अशुभ लेश्याओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है । तथा पीत और पद्म लेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त हो जाता है । जैसे किसी पीत या पद्म लेश्यावाले देवने आयुके उपान्त्य समयमें मोहनीयका उत्कृष्ट बंध किया और अन्तके एक समयमें पीत तथा पद्म लेश्याके साथ अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाला हो गया । फिर मरकर तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेसे लेश्या पलट गई । इस प्रकार पीत व पद्मलेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय होता है । शुक्ल लेश्याके तो पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । लेश्याओंमें शेष कथन सुगम है । द्वायिकसम्यक्त्व की स्थिति शुक्ल लेश्याके समान है, अतः इसके कथनको शुक्ल लेश्याके समान कहा । इतनी विशेषता है कि शुक्ल लेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है और द्वायिक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है । अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपना अपना काल कहना चाहिये ।

§ ६५. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल छह आवली है । सब्धी जीवोंके पुरुषवेदी जीवोंके समान जानना चाहिये । असब्धी जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए । आहारक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कार्यण काययोगियोंके समान जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है, अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । किन्तु सासादनसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थिति पहले समयमें ही प्राप्त हो सकती है । अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जो आहारक उपान्त्य समयमें उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त करके अन्त समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे

§ ६६. जहण्णए पयदं दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० के० ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अजहण्ण० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो वा । एवमचक्खु०—भवसि० । सादिसपज्जवसिदभंगो अजहण्णस्स णत्थि; जहण्णद्विदीदो चरिमसमयसुहुमसांपराइयखवयस्स अजहण्णद्विदीए णिवायाभावादो । उवसंतकसाए मोहोदयवज्जिदे हेट्ठा णिवदिदे अजहण्णद्विदीए सादिचं किण्ण वेप्पदे ? ण, उवसंतकसाए वि मोह० अजहण्णद्विदीए सब्भावुवर्लभादो ।

§ ६७. आदेसेण णिरय० मोह० जह० जहएयुक्क० एगसमओ । अजहएण०

समयमे मरकर अनाहारक हो जाता है उसके आहारकके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है और उत्कृष्टकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अध-सर्पिणी उत्सर्पिणी प्रमाण है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६६. अब जघन्य कालानुगम प्रकरण प्राप्त है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिका कितना सत्त्वकाल है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल अनादि अनन्त और अनादि-सान्त है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये । अजघन्य स्थितिका सादि-सान्त भंग नहीं है, क्योंकि क्षणक सूक्ष्मसापरायिक जीवके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है और उससे जीवका अजघन्य स्थितिमें पतन नहीं होता । अर्थात् सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षणक सूक्ष्मसापरायिक जीवके अन्तिम समयमें होती है और वह जीव तदनन्तर क्षीणमोह हो जाता है पुनः वह अजघन्य स्थितिमें लौटकर नहीं जाता है, अतः अजघन्य स्थितिका सादि-सान्त भंग नहीं है ।

शंका—मोहनीय कर्मके उदयसे रहित उपशान्तकपाय जीव जब नीचे दसवें गुणस्थानमें आता है तब उसके अजघन्य स्थितिका सादिपना क्यों नहीं लिया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशान्तकपायमें भी मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका सद्भाव पाया जाता है, अतः सामान्यकी अपेक्षा मोहनीयकी अजघन्य स्थितिमें सादि-सान्त भंग नहीं बनता ।

विशेषार्थ—क्षणक सूक्ष्मसापराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें सूक्ष्म लोभका उदयरूप निषेक शेष रहता है जो उसी समय फल देकर निर्जाण हो जाता है, अतः ओघसे मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा पूरे मोहनीयका अभाव होकर पुनः उसका सद्भाव नहीं होता, अतः ओघसे मोहकी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त ही होता है, सादि-सान्त नहीं । इनमेंसे अनादि-अनन्त काल अभव्योंकी अपेक्षा कहा और अनादि-सान्त काल भव्योंकी अपेक्षा कहा । यह ओघप्ररूपणा अचक्षुदर्शनवाले और भव्योंके अविकल धन जाती है, अतः इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि भव्योंके मोहकी अजघन्य स्थितिका अनादि-अनन्त विकल्प नहीं बनता । अथवा जो भव्य अभव्योंके समान हैं उनकी अपेक्षा यह विकल्प भव्योंके भी बन जाता है ।

§ ६७. आदेशसे नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट

जह० एगसमओ, उक० सगुक्कस्सट्टिदी । पढमाए ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक० सागरोवमं । विदियादि जाव छट्टि ति मोह० ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णेण जहण्णट्टिदी, उक्कस्सेण उक्कस्सट्टिदी । सत्तमाए पुढवीए मोह० जहण्णट्टिदी जह० एगसमओ, उक० अंतोमु० । अजहण्ण० ज० अंतोमु०, उक० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उक्कष्ट सत्त्वकाल अपनी उक्कष्ट स्थितिप्रमाण है । पहले नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उक्कष्ट सत्त्वकाल एक सागर है । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उक्कष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उक्कष्ट स्थितिप्रमाण है । सातवें नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उक्कष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उक्कष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उक्कष्ट स्थितिवंधमेंसे पल्लोपमके संख्यातवें भाग प्रमाण कम जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करके पुनः जघन्य स्थिति सत्त्व हानिके समय ही जघन्य स्थिति सत्त्वके समान स्थितिको बांधकर दो समय विग्रह करके नरकगति में उत्पन्न होता है और विग्रहमें असंज्ञी पंचेन्द्रियके जघन्य स्थिति सत्त्वसे हीन स्थितिका बंध करता है उसके दूसरे विग्रहके समय मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः नरकमें जघन्यस्थितिका जघन्य और उक्कष्टकाल एक समय कहा । तथा ऐसे नारकीके पहले समयमें अजघन्यस्थिति छती है अतः नरकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा नरकमें अजघन्य स्थितिका उक्कष्ट काल नरककी उक्कष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । सामान्य नारकियोंके समान पहले नरकमें भी मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । पहले नरककी उक्कष्ट स्थिति एक सागर है अतः यहाँ अजघन्य स्थितिका उक्कष्टकाल एक सागर कहा । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तकके नारकियोंके मोहकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कष्ट काल एक समय कहा । किन्तु यह जघन्य स्थिति अपने अपने नरककी उक्कष्ट स्थितिवाले जीवके ही प्राप्त हो सकती है सो भी सबके नहीं, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपने अपने नरककी जघन्य स्थितिप्रमाण और उक्कष्टकाल अपने अपने नरककी उक्कष्ट स्थितिप्रमाण कहा । सातवें नरकमें उक्कष्ट आयुवाला जो नारकी पर्याप्त पूर्ण करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दूसरे अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अनन्तानुबन्धी स्थितिसत्कर्मकी विसंयोजना कर जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ पुनः मिथ्यात्वमें जितने काल तक शक्य हो उतने काल तक स्थिति सत्कर्मसे हीन बंध करके अगले समयमें सत्त्व स्थितिसे अधिक स्थिति बंध करेगा, उस जीवके जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है और जो सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बंध करता रहता है उसके जघन्य स्थितिका उक्कष्टकाल अन्त-

§ ६८. तिरिक्ख० मोह० जहण्णद्विदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज-  
हण्ण० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं मदि-मुदअण्णाण०-असंजद०-  
अभव०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति वत्तव्वं । णवरि असण्णिवज्जिएसु अज . ज० अंतोमु० ।

§ ६९. पंचिदियतिरिक्खवचउक्कम्मि मोह० जहण्णद्विदी जह० एगसमओ, उक्क०  
बे समया । अजहण्ण० जह० खुदाभवगहणं विसमऊणं, अंतोमुहुचं विसमऊणं । एत्थ

मुहूर्त होता है । तथा जघन्य स्थितिके बाद जो अन्तमुहूर्त काल शेष रह जाता है वह अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल है । तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल सातवें नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है, यह स्पष्ट ही है ।

§ ६८. तिर्यच गतिमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि असंज्ञियोंको छोड़कर शेष मत्यज्ञानी आदि जीवोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियके प्राप्त होती है और वह कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त काल तक रहती है; क्योंकि प्रत्येक स्थितिका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तमुहूर्त है । अतः इनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । तथा जो तिर्यच जघन्य स्थितिके बाद एक समय तक अजघन्य स्थितिके साथ रहा और भरकर दूसरे समयमें अन्य गतिको प्राप्त हो गया उसके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा तिर्यच पर्यायमें मोहनीयकी अजघन्य स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक-प्रमाण है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा । यह जो ऊपर सामान्य तिर्यचोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल कहा वह एकेन्द्रियोंकी प्रधानतासे कहा है और एकेन्द्रिय पर्यायके रहते हुए मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, असंयम, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी ये मार्गणाएँ सम्भव हैं ही अतः इनका कथन तिर्यचोंके समान जानना । किन्तु ऊपर अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल जो एक समय कहा है वह असंज्ञी अवस्थामें ही प्राप्त होता है शेष मार्गणाओंमें नहीं, क्योंकि जो जीव जघन्य स्थितिके बाद एक समय तक अजघन्य स्थितिको प्राप्त हुआ और तदनन्तर भरकर अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है इसके असंज्ञी मार्गणा तो बदल जाती हैं पर ऊपर कहीं हुई मार्गणाएँ नहीं बदलतीं अतः मत्यज्ञानी आदि उपर्युक्त शेष मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त जानना चाहिये ।

§ ६९. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, योनिमती और लब्धपर्याप्त इन चार प्रकारके तिर्यचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल दो समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल पंचेन्द्रिय तिर्यच और लब्धपर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यचोंमें दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यचोंमें दो समय कम अन्तमुहूर्त है । यहां मूलोच्चारणाका पाठ है कि उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य



मूलोच्चारणापाठों जह० एयसमओ त्ति । तत्थायमहिप्पाओ एइंदिएसु समयुत्तरमसण्णि-  
ट्ठिदिं सण्णिट्ठिदिघादवसेण कादूण गदस्स पदमविग्गहे तदुवलंसंभवो त्ति । उक्क-  
स्सेण सगट्ठिदी ।

§ ७० मणुसतिय० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जह०

स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । इसका यह अभिप्राय है कि जो संज्ञी एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने संज्ञीकी स्थितिका घात किया । अनंतर वह मरकर एक समय अधिक असंज्ञीके योग्य स्थितिके साथ उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले विग्रहमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—जो एकेन्द्रिय दो मोड़ा लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यचचतुष्कमें उत्पन्न होते हैं उनके पहले और दूसरे समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः इनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा । तथा इन दो समयोंको खुदाभवग्रहणप्रमाण अन्तमुर्द्धत कालमें घटा देने पर जो दो समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण काल शेष रहता है वह पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय लब्धव्यपर्याप्तक तिर्यचोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जो दो समय कम अन्तमुर्द्धत काल शेष रहता है वह पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । इन चार प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है ऐसा मूलोच्चारणामें पाठ पाया जाता है सो उसका यह तात्पर्य है कि पहले कोई एक संज्ञी जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर उस एकेन्द्रियने संज्ञीकी स्थितिका घात किया और ऐसा करते हुए जब उसके असंज्ञीकी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिक स्थिति शेष रह गई तब वह मरकर उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हो गया, इस प्रकार इन चारों प्रकारके तिर्यचोंके पहले मोड़ेके समय अजघन्य स्थिति प्राप्त हो गई और स प्रकार अजघन्य स्थितिका भी एक समय काल बन जाता है । वात यह है कि एकेन्द्रियोसे लेकर असंज्ञी तक जो जीव मर कर संज्ञियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके अनाहारक अवस्थामे असंज्ञीके योग्य स्थितिका ही बन्ध होता है । हों ऐसे जीवोंके शरीर ग्रहण करनेके समयसे लेकर संज्ञियोंके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगता है । अतः ऐसे संज्ञी जीवोंके पहले और दूसरे मोड़में असंज्ञियोंकी जघन्य स्थिति भी पाई जाती है और यही इनकी जघन्य स्थिति हो जाती है । अब यदि कोई जीव एक समय अधिक असंज्ञियोंकी जघन्य स्थितिके साथ संज्ञियोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले मोड़ेमें अजघन्य स्थिति ही कही जायगी । यही सबव है कि मूलोच्चारणामें उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी माना है । तथा उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें जिसके जितनी कायस्थिति हो उतनी उनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । किसके कितनी कायस्थिति है यह अन्यत्रसे जान लेना चाहिये ।

§ ७०. सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य

खुदाभवग्रहणं अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगद्धिदी । मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअप-  
ज्जत्तभंगो ।

§ ७१. देव० मोह० जहण्णाद्धिदी जहएणुक्क० एगसमओ । अजह० जह० एगस-  
मओ, उक्क० सगद्धिदी । भवण०-वाण० मोह० जहण्णाद्धिदी जहण्णुक्क० एयसमओ ।  
अजह० जह० एयसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सद्धिदी । जोदिसियादि जाव सन्वट्ठ० ति  
जह०द्धिदि० जहएणुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जहएणुक्क० जहएणुक्कस्सद्धिदी ।

स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल सामान्य मनुष्योंके खुदाभवग्रहणप्रमाण और शेष दोके अन्तमुहुर्त है तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोके समान जानना ।

**विशेषार्थ**—सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जो एक समय बतलाया है सो इसका खुलासा जिस प्रकार ओघप्ररूपणके समय कर आये हैं उस प्रकार कर लेना चाहिये । तथा सामान्य मनुष्यका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके मनुष्योंका जघन्य काल अन्तमुहुर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल उक्त प्रमाण कहा । तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट कायस्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । इस विषयमें लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यकी स्थिति लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान है, अतः इसके जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान कहा ।

§ ७१. देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थिति-  
प्रमाण है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—जिस प्रकार सामान्य नारकियोंके मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिए । तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि इतने काल तक उनके मोहकी अजघन्य स्थिति पाई जा सकती है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थ-  
सिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर यह जघन्य स्थिति उत्कृष्ट आयुवालेके होती है और वह भी सबके नहीं अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा ।

§ ७२. इदिय० मोह० जह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोसुहुत्त० । अज० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं सुहुमेइदिय० । बादरेइदिय०—बादरेइदियपज्ज० मोह० जहण्णट्टिदि० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोसु० । अजहण्ण० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । बादरेइदियअपज्ज० सुहुमपज्ज०—सुहुमअपज्ज० मोह० जहण्णाजहण्णट्टिदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोसु० । एवं विगल्लिदियअपज्ज० पंचकायाणं बादरअपज्ज०—सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियभिंसस० वत्तव्वं ।

§ ७३. विगल्लिदिय-विगल्लिदियपज्ज० मोह० जहण्णट्टिदी जह० एगसमओ, उक्क० वे समया; परत्थाणसामिच्चालवणादो । अजहण्ण० जह० खुदाभवग्गहणं विसमऊणं अंतोसुहुत्तं विसमऊणं एगसमओ वा, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

§ ७२. एकेन्द्रिय जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय, जीवोंके जानना चाहिये । बादरएकेन्द्रिय और बादरएकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय बादर लब्धपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्मपर्याप्तक और लब्धपर्याप्तक तथा औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य एकेन्द्रिय और उनके जितने भेद प्रभेद हैं उनमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य तिर्यचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि जिसकी जितनी कायस्थिति बतलाई है उसके उतने काल तक मोहनीयकी अजघन्य स्थिति पाई जा सकती है । किन्तु एकेन्द्रिय जीवोंके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण ही होता है । तथा विबलत्रय अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय बादर अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त तथा औदारिकमिश्र-काययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त होता है, क्योंकि इनका उत्कृष्ट काल इससे अधिक नहीं है ।

§ ७३. विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें मोनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल दो समय है । यह काल परस्थान स्वामित्वका अवलम्बन करनेसे प्राप्त होता है । तथा मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल

§ ७४ पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी ।

§ ७५. पंचकायसुहुमाणं सुहुमेइदियभंगो । वादरपुहवि०-वादरआउ०-वादर-तेउ०-वादरवाउ०-वादरवणप्फदिपरोय० तेसि पज्जत्त० जहण्णट्ठिदी ज० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । वणप्फदि०-णिगोद०

क्रमसे दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और दो समय कम अन्तमुहूर्त है या एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात हजार वर्ष है ।

**विशेषार्थ**—जिस एकेन्द्रियने हतसमुत्पत्ति क्रमसे विकलत्रयके योग्य जघन्य स्थिति प्राप्त की अनन्तर वह मरा और दो मोड़ोंके साथ विकलत्रयोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले और दूसरे मोड़में जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः विकलत्रयके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा । यहां यह जो जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है सो जो जीव एकेन्द्रियोंमेंसे आकर विकलत्रयोंमें उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षासे बतलाया है यही यहाँ परस्थान स्वाभित्यका अधलम्बन है । तथा इन दो समयोंको खुदाभवग्रहणप्रमाण और अन्तमुहूर्त कालसे घटा देने पर जो दो समय कम खुदाभव-ग्रहणप्रमाण काल शेष रहता है वह सामान्य विकलत्रयोंके मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जो दो समय कम अन्तमुहूर्त काल शेष रहता है वह पर्याप्त विकलत्रयोंके मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा इन दोनों प्रकारके विकलत्रयोंके अजघन्य स्थितिका जो जघन्यकाल एक समय बतलाया है सो यह मूलोच्चारणके पाठके अनुसार बतलाया है और इसका खुलासा जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच चतुष्करके कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये । उक्त दोनों प्रकारके विकलत्रयोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है और इतने कालतक इनके मोहनीयकी अजघन्य स्थिति प्राप्त होनेमें बाधा नहीं आती है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है ।

§ ७४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुदाभवग्रहण प्रमाण और अन्तमुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७५. पाँचों स्थावरकाय तथा उनके सूक्ष्म जीवोंके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है । वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर अधिकायिक, वादर धायुक्कायिक और वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर जीवोंके तथा इन सब पर्याप्त जीवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । वनस्पतिकायिक और

एइदियभंगो । पंचिदियअप०-तस०अप० पंचि०तिरिक्वअपज्जत्तभंगो ।

§ ७६. पंचमण०-पंचवचि० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एयसमओ । अज-  
हण्ण० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांपराय०-जहा-  
करवाद० वत्तव्वं ।

§ ७७. ओरालिय० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० ज०  
एगसमओ, उक्क० वावीस वाससहस्साणि देसूणाणि । वेउव्विय० मणजोगिभंगो ।  
वेउव्वियमिस्स० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णुक०  
अंतोमुहुत्तं । कायजोगि० मोह० जहण्णट्टिदी० जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण०  
जह० एगसमओ, जहण्णविहत्तियदुचरिमसमए कायजोगेण परिणदम्मि तदुवलंभादो ।  
उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्टा । एवं णवुंस० वत्तव्वं । आहार०मणजोगि-  
भंगो । आहारमिस्स० वेउव्वियमिस्सभंगो । कम्मइयं० मोह० जहण्णट्टिदी जह-  
ण्णुक० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

निगोद जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान है । पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक और त्रस लब्धपर्याप्तक जीवोंके पंचेन्द्रियतिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकोंके समान है ।

§ ७६. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तु हूत है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक-संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिए ।

§ ७७. औदारिक काययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम बाइस हजार वर्ष है । वैक्रियिककाययोगी जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमु हूत है । काययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । जो जघन्य स्थिति विभक्तिके द्विचरम समयके काययोगके होनेपर पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अनन्त कालप्रमाण है जिसका प्रमाण अस्ख्यात पुग्दल परिवर्तन है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये । आहारक काययोगी जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । आहारक-मिश्रकाययोगी जीवोंके वैक्रियिकमिश्र काययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । तथा कामरुकाय-योगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके दशवें गुणस्थानके अन्तमें जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय

§ ७८. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे० मोह० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । पुरिस० मोह० जहणुट्टिदी जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी ।

कहा । तथा पांचों मनोयोग और पांचों अजघन्ययोगोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त बन जाता है । औदारिककाययोगमें अजघन्य स्थितिके उत्कृष्टकालमें विशेषता है । वात यह है कि औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है अतः इसमें अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । शेष कथन मनोयोगियोंके समान है । वैक्रियिककाययोगमें भी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मनोयोगके समान जानना । किन्तु जो चायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे स्वार्थसिद्धिमें जाता है उसके भवके अन्तिम समयमें यदि वैक्रियिककाययोग हो तो वैक्रियिककाययोगमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः वैक्रियिककाययोगमें इस प्रकार जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय घटित करके कहना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है, अतः इसमें जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इसमें अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा । काययोगमें जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मनोयोगके समान घटित कर लेना चाहिये । काययोगमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है । इसका कारण यह बतलाया है कि जिस समय जघन्य स्थिति हुई उसके उपान्त्य समयमें यदि काययोग हो तो काययोगमें अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है । उदाहरणार्थ दशमें गुणस्थानके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है । वह यदि अन्तिम दो समयके लिये काययोगी हो जाय तो काययोगमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है । काययोगका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है, अतः इसमें अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । काययोगियोंके समान नपुंसकोके कथन करना चाहिये । किन्तु नपुंसके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है इतना विशेष जानना । आहारक काययोगमें मनोयोगीके समान जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल पाया जाता है । किन्तु इतना विशेष है कि आहारक काय योगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७८. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पुरुषवेदी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—नपुंसके स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा जानना चाहिए, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । उपशम श्रेणीसे उतर कर जो जीव एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता

§ ७९. चत्वारिकसाय० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ८०. आभिणि०—सुद०—ओहि० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जहण्णुक्कस्सेण जहण्णुक्कस्सट्टिदी । एवं मणपज्जव०—संजद-सामाइय-छेदो-परिहार०—संजदासंजद०—ओहिदंस०—सुक्कले०—सम्मादि-खइय०—वेदग० वत्तव्वं । विहंग० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

है। तथा पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त है, अतः पुरुषवेदमे अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७९. चारों कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुं हूर्त है ।

**विशेषार्थ**—क्षपक जीवके अपनी अपनी कषायके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा प्रत्येक कषायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है, अतः इनमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त कहा ।

§ ८०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार मनःपयर्थज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, द्वायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । विभंगज्ञानी जीवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । चक्षुदर्शनी जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी क्षपक जीवके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । शेष कथन सुगम है । मूलमें और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी जघन्य स्थितिके स्वाभित्वका विचार करके जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयका कथन करना चाहिये । जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपरिम ग्रैवेयकवासी देव आयुके अन्तिम अन्तमुं हूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया उसके अन्तिम समयमें विभंगज्ञानमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है । तथा जो अवधिज्ञानी शेष देव या नारकी अन्तिम समयमें मिथ्यादृष्टि हो जाता है उसके विभंगज्ञानमे अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल विभंगज्ञानके उत्कृष्ट काल

§ ८१. किण्ह०-णील०-काउ० मोह० जहण्णद्विदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगसमओ, उक्क० सगद्विदी । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो ।

§ ८२. उवसम०-सम्मामि० आहारमिस्सभंगो । सासण० मोह० जहण्णद्विदी जहएणुक्क० एगसमओ । अजह० जह० एगसमओ, उक्क० छ आवलियाओ । सण्णि० पुरिसभंगो । आहार० मोह० जहण्णद्विदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० ज० खुदा-भवग्गहणं तिसमऊणं । उक्क० सगद्विदी । अणाहार० कम्मइयभंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ ८३. अंतराणुगमो दुविहो—जहण्णमुक्कस्सं चेदि । उक्कस्से पयदं ।

प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । चक्षुदर्शनवालोंमें असं पर्याप्त मुख्य हैं, अतः चक्षुदर्शनके कथनको त्रसपथप्रकोके समान कहा ।

§ ८१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुद्धृत है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्मस्वर्गके समान जानना चाहिए । पद्मलेश्यावाले जीवोंके सहस्रारस्वर्गके समान जानना चाहिये ।

§ ८२. उपशस सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके आहारकमिभ्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिए । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और काल छह आवली है । संज्ञी जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान जानना चाहिये । आहारक जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कार्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—कृष्णादि तीन लेश्याओंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सामान्य तिर्यचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि अपने अपने उत्कृष्ट काल तक अजघन्य स्थितिके निरन्तर रहनेमें कोई बाधा नहीं आती है । आहारकके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा जो तीन मोहसे लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है उसके आहारककाल तीन समयकम खुदाभवग्रहणप्रमाण पाया जाता है, अतः आहारकके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण कहा । अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

§ ८३. अन्तराणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तराणुगमका

१. प्रती ज० एगसमओ खुदा—ईति पाठः ।



दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तंत्य ओघेण उक्कस्सट्ठिदीअंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणुक्क० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं तिरिक्ख०—कायजोगि०-णवुंस०—मदि-मुदअण्णाण-असजद०-अचक्खु०—भवसिद्धि—अभवसिद्धि—मिच्छादिद्वि चि वत्तवं ।

§ ८४. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसुणाणि । अणुक्कस्स० ओघभंगो । पढमादि जांव सत्तामि च्चि मोह० उक्क० अंतरं केवचिरं० ? ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसुणा । अणुक्क० ओघभंगो ।

प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तमुं हूत है और उत्कृष्ट अंतरकाल अनन्तकाल प्रमाण है। जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है। अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अंतरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंतमुं हूत है। इसी प्रकार तिर्यच, काययोगी, नपुंसकवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—ऐसा नियम है कि जिसने कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगे तो कमसे कम अन्तमुं हूत कालके पहले उस जीवमें उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करनेकी योग्यता नहीं आ सकती अतः मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुं हूत कहा। तथा किसी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति बांधी अनन्तर वह अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगा और मर कर एकेन्द्रियादिमें उत्पन्न होकर अनन्त काल तक वहां धमता रहा। पुनः एकेन्द्रियोंमें अनन्त कालके पूरे हो जाने पर वह संज्ञी पंचेन्द्रिय हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् उसने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया। इस प्रकार इस जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है अतः ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा। ऐसा नियम है कि उत्कृष्ट स्थितिका बंध एक समय तक भी होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतर एक समय प्राप्त हो जाता है। तथा उत्कृष्ट स्थितिका निरन्तर बन्ध अंतमुं हूत काल तक होता है अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुं हूत प्राप्त हो जाता है। मूलमें सामान्य तिर्यच आदि और जितनी मार्गाणाएँ गिनाई हैं उनमें ही यह ओघ प्ररूपणा घटित होती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

§ ८४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतरकाल अंतमुं हूत है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल ओघके समान है। पहले नरकसे लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अंतर काल कितना है ? जघन्य अंतरकाल अंतमुं हूत है और उत्कृष्ट अंतरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है।

§ ८५. पंचिदियतिरिक्वतिय० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० पुच्च-  
कोडिपुधत्तं । अणुक्क० ओघभंगो । एवं मणुसतिय० । पंचि०तिरि०अपज्ज० मोह०  
उक्क० अणुक्क० गत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वद्व०-सव्व-  
एहंदिय-सव्वविगलंदिय-पंचिदियअपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउ-  
व्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०--कम्मइय०-अवगद०-अकसाय-आभिणि०-सुद०-  
ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-  
ओहिदंस०-सुक्कलेस्स०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-  
असण्णि०-अणाहारि ति वचत्तवं ।

§ ८६. देव० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० अट्टारस सागरोवमाणि सादि-  
रेयाणि । अणुक्क० ओघभंगो । भवणादि जाव सहस्सारे ति उक्क० अंतरं केव० ? ज०  
अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देस्सणा । अणुक्क० ओघभंगो ।

§ ८७. पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०मोह०उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०,  
उक्क० सगट्टिदी देस्सणा । अणुक्क० ओघं । एवमित्थि०-पुरिस०-चक्खु०-पंचलेस्सा०-

§ ८५. पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंमें मोह-  
नीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल पूर्वकोटिप्रथक्त्व है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और  
मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक जीवोंमें  
मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्य,  
आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध-  
पर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्धपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, चैत्रियकमिश्रकाययोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, आभिनि-  
वोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपथ्यज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत,  
परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी,  
शुक्लेश्यावाले, सम्यग्गृष्टि, चायिकसम्यग्गृष्टि, वेदकसम्यग्गृष्टि, उपशमसम्यग्गृष्टि, सासादनसम्यग्गृष्टि,  
सम्यग्मिथ्यागृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ८६. देवगतिमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और  
उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान  
है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ?  
जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति  
प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है ।

§ ८७. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार

सण्णि०-आहारि० ति ।

§ ८८. पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेडन्विय०-चचारिक० मोह०उक्क०णत्थि अंतरं । अणुक्क० ओघं । विहंग०सत्तमपुढविभंगो । एवमुक्कस्स-ट्टिदिअंतराणुगमो समत्तो ।

स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चन्दुदर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेख्यावाले, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ८९. पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और क्रोधादि चारों कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है । विभंगज्ञानी जीवोंके अन्तरकाल सातवीं पृथिवीमे कहे गये अन्तरकालके समान है ।

**विशेषार्थ**—आदेशसे अन्तरकालका खुलासा करते समय जहां जो विशेषता होगी उसीका स्पष्टीकरण करेंगे शेषका खुलासा ओघके समान जानना । सामान्यसे नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है, अतः यहां उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होगा । इसी प्रकार प्रथमादि नरकोंमे भी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण घटित कर लेना चाहिये । सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यचोंकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है । पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सेतालिस पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है और योनिमती तिर्यचोंकी उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है । किन्तु भोगभूमिमें उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती अतः प्रत्येकके कालमेंसे तीन पत्य कम कर देना चाहिये और इस प्रकार जो प्रत्येकका पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण काल शेष रहता है वही उनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । इसमें भी प्रारम्भका पर्याप्त होने तकका काल और कम कर देना चाहिये । जिसका मूलमे निर्देश नहीं किया । इसी प्रकार मनुष्य त्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण लेना चाहिये । यहाँ सामान्य मनुष्यकी सेतालिस, पर्याप्त मनुष्यकी तेईस और मनुष्यनीकी सात पूर्वकोटियों लेनी चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होनेके प्रथम समय में ही होती है जो संज्ञी पंचेन्द्रिय से मरकर उत्पन्न हुआ है । इनके वन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट इनमेंसे किसी भी स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता ऐसा कहा है । मूलमें लब्धपर्याप्तक मनुष्योंसे लेकर अनाहारक तक और भी जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनके भी इसी प्रकार समझना चाहिए । देवोंमें बारहवें स्वर्गतक ही मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और बारहवें स्वर्गकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः सामान्यसे देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति हो उसमेंसे कुछ कम प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये । आगे और जितनी मार्गणाएं बतलाई हैं उनमें भी इसी प्रकार विचारकर खुलासा कर लेना चाहिए । हां पांचों मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और चारो कषायोंमे उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि इनका काल इतना कम है जिससे इनके कालके भीतर दोवार उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती । किन्तु जिसने अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ इन मार्गणाओंको प्राप्त किया और मध्यमें एक समय

§ ८६. जहणणए पयदं । दुविहो णिहेसो-ओघेण-ओदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जहण्णाजहण्णाद्विदीयां णत्थि अंतरं । एवं विदियादि जाव छट्ठी पुढवी० सव्व पंचिदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-ओदिसियादि जाव सव्वट्ट-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचि-दिय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स-इत्थि०-पुरिस०-णनुंसय-अवगद०-चत्तारिकसाय-अकसाय-वि-हंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-वक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण-तिण्णिले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्माभि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

तक या अन्तमुहूर्त कालतक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हुआ तो उसके अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त प्रमाण बन जाता है । अतः उक्त मार्गाणांओंमें अनुकृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान कहा । यद्यपि काययोग और औदारिक काययोगका काल बहुत अधिक है पर यह काल एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक जीवोंके ही प्राप्त होता है अतः इनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ८६. अब जघन्य स्थिति अन्तरानुगम प्रकृत है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सभी मनुष्य, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अकषायी, विभंगज्ञानी, आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूत्रमसांपराधिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेशवाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संबी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपक जीवके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है अतः ओघसे जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं बनता । इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, लोअकषायी, आभिनियोधिक-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सूत्रमसांपराधिकसंयत, चक्षुदर्शनी, अक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ल लेशवाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि, संबी और आहारकके जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी क्षपकका दसवें गुणस्थान पाया जाता है । दूसरे नरकसे छठे नरक तक नारकी, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी अकषायी, परिहारविशुद्धि

§ ६०. आदेसेण णिरयगईए मोह० जहण्ण० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगसमओ । एवं पढमपुढवि-देव-भवण०-वाण०-कम्मइय-अणाहारि त्ति । सत्तमाए मोह० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ६१. तिरिक्ख० मोह० जह०ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अभवसि०-

संयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके अपने अपने उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता । सभी पंचेन्द्रियतिर्यच, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, और ब्रस अपर्याप्तकोके उत्पन्न होते समय ही जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी अन्तर नहीं होता । स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोध, मान और माया कषायवाले जीवोंके नौवें गुणस्थानमें अपने अपने क्षयके अन्तिम समयमें और सामायिक संयत व छेदोपस्थापनावाले जीवोंके क्षयकाके नौवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता । विभंगज्ञानमे उपरिम प्रैवेयकके देवके आयुके अन्तिम समयमे मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है, अतः अन्तर नहीं होता । पीत लेख्यावाले और पद्मलेख्यावाले परिहारविशुद्धि संयतके समान जानना ।

§ ६०. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाज नहीं है । अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । सातवीं पृथिवीमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमु हूत है ।

**विशेषार्थ**—जो असंखी जीव नरकमे दो विग्रहसे उत्पन्न होता है उसके दूसरे विग्रहके समय जघन्य स्थिति सम्भव है अतः सामान्यसे नारकियोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा । क्योंकि ऐसे नारकीके प्रथम और तृतीयादि समयोंमें अजघन्य स्थिति हुई और दूसरे समयमे जघन्य स्थिति रही, अतः अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल एक समय प्राप्त हो गया । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकाल एक समयको घटित कर लेना चाहिये । सातवें नरकमें जब आयुमे अन्तमु हूतकाल शेष रह जाता है तब कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमु हूत काल तक जघन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है । तथा इस नारकीके इस जघन्य स्थितिके पश्चात् पुनः अजघन्य स्थिति हो जाती है, अतः यहाँ अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूत बन जाता है । तथा जघन्य स्थिति दो बार नहीं प्राप्त होती इसलिये उसका अन्तरकाल नहीं बनता ।

§ ६१. तिर्यचगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमु हूत है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमु हूत है । इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य,

मिच्छादिद्वी०-असण्णि ति । एइंदिय० तिरिक्खभंगो । वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्ज०-  
वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्ज०-सुहुमेइंदियअपज्ज० मोह० जह०  
अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुचं ।  
एवं चचारि काय० । णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा । वणप्फदि० एइंदियभंगो ।

§ ६२. ओरालियमिस्स० मोह० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । अज०  
ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । किण्ह-णील-काउ० सत्तमपुढविभंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोके कहना चाहिये । एकेन्द्रियोके तिर्यचोके समान जानना चाहिये ।  
वादा एकेन्द्रिय, वादा एकेन्द्रियपर्याप्तक, वादा एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोके मोहनीयकी जघन्य  
स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर-  
काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकायिक जीवोके जानना  
चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम  
अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । वनस्पतिकायिक जीवोके एकेन्द्रियोके समान  
जानना चाहिये ।

§ ६२. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । कृष्ण, नील और कापोतलेखावाले जीवोंके सातवीं पृथिवीके  
समान है ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिके समान आदेशसे जघन्य स्थितिके सम्बन्धमे भी यह नियम  
समझना चाहिये कि जिसके जघन्य स्थितिके पश्चात् अजघन्य स्थिति हो जाती है उसे पुनः जघन्य  
स्थितिको प्राप्त करनेमे कमसे कम अन्तमुहूर्त काल अवश्य लगता है तथा जिसने तिर्यच पर्यायमे  
जघन्य स्थितिको प्राप्त किया पुनः वह अजघन्य स्थितिको प्राप्त करके यदि निरन्तर उसीके  
साथ रहे तो उसे पुन. जघन्य स्थितिके प्राप्त करनेमे अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण  
काल लगता है अतः तिर्यचोंमे जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर  
असंख्यात लोकप्रमाण प्राप्त होता है यह सिद्ध हुआ । तथा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक  
समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त होता है अतः तिर्यचोंमे अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा । मूलमें गिनाई गई मत्स्यज्ञानी आदि मार्गणाश्रमों  
अन्तरकाल प्राप्त करनेकी यही विधि जानना, अतः इनमे जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तर  
कालको सामान्य तिर्यचोंके समान कहा । तथा आगे जो वादा एकेन्द्रियादिकोंके जघन्य और  
अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल कहा उसमें केवल जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरकालमे ही विशेष-  
पता है । शेष सब कथन सामान्य तिर्यचोके समान है । बात यह है कि इन वादा एकेन्द्रियादिककी  
उत्कृष्ट कायस्थिति भिन्न भिन्न है अतः इनमे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी  
अपनी कायस्थितिप्रमाण ही कहना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है  
अतः इसमे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । कृष्ण, नील व कापोतलेखा-

§ ६३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण भण्णमाणे तत्थ णाणाजीवेहि उक्कस्सभंग-  
विचए इदमट्टपदं—जे उक्कस्सस्स विहत्तिया ते अणुक्कस्सस्स अविहत्तिया । जे अणु-  
क्कस्सस्स विहत्तिया ते उक्कस्सस्स अविहत्तिया । एदेण अट्टपदेण दुविहो णिहेसो  
ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सट्टिदीए सिया सव्वे जीवा अवि-  
हत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।  
एवं तिण्णि भंशा ३ । अणुक्क० ट्टिदीए सिया सव्वे विहत्तिया, सिया विहत्तिया च  
अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-मणुस-  
तिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ट०-सव्वएइंदिय-सव्वविगळिंदिय-सव्वपंचिंदिय-इक्ककाय-  
पंचमण०-पंचवचि०--कायजोगि०-ओरालिय०--वेउव्विय०--ओरालियमिस्स०-कम्म-  
इय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मण-

वाले एकेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । एकेन्द्रियोंमें उक्त लेश्याओंका काल  
अन्तमुहूर्त है जो अजघन्य स्थितिके जघन्यकालसे छोटा है अतः जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है  
परन्तु उक्त लेश्याओंका काल जघन्य स्थितिके कालसे बड़ा है अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर  
एक समय और उल्टा अन्तर अन्तमुहूर्त घटित हो जाता है जो सातवीं पृथिवीके समान है ।  
शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६३. अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमका कथन करते हैं । उसमें भी नाना  
जीवोंकी अपेक्षा उल्टा भंगविचयके कथनमें यह अर्थपद है—जो उल्टा स्थितिभक्तिवाले हैं वे  
अनुल्टा स्थितिभक्तिवाले नहीं हैं । जो अनुल्टा स्थितिभक्तिवाले हैं वे उल्टा स्थिति-  
भक्तिवाले नहीं हैं । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी उल्टा स्थितिभक्तिसे रहित  
हैं । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उल्टा स्थितिभक्तिसे रहित हैं और एक जीव  
मोहनीयकी उल्टा स्थितिभक्तिवाला है । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उल्टा  
स्थितिभक्तिसे रहित हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी उल्टा स्थितिभक्तिवाले हैं ।  
इस प्रकार उल्टा स्थितिभक्तिकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं । तथा अनुल्टा स्थिति-  
भक्तिकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी अनुल्टा स्थितिभक्तिवाले हैं । कदाचित्  
बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुल्टा स्थितिभक्तिवाले हैं और एक जीव मोहनीयकी अनुल्टा  
स्थितिभक्तिसे रहित है, कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुल्टा स्थितिभक्तिवाले हैं  
और बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुल्टा स्थितिभक्तिसे रहित हैं ये तीन भंग होते हैं । इसी  
प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके  
मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकले-  
न्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक  
काययोगी, वैक्रियककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, तीनों वेदवाले, श्रौधादि  
चारों कषायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रतज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,

पज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-  
ओहि०-उल्लेस्सा०-भव०-अभव-सम्भादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छा०-सण्णि०-असण्णि०  
आहारि०-अणाहारि चि ।

§ ६४. मणुसअपज्ज०-उक्कस्सविहत्तिपुज्जा अट्ठभंगा । अणुक्कस्सविहत्तिपुज्जा  
वि अट्ठभंगा । एवं वेजज्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-  
सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्भामि० ।

एवमुक्कस्सभंगविचओ समचो ।

मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत,  
असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेख्यावाले, भव्य, अभव्य,  
सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सही, असंही, आहारक और  
अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ६४. लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उच्छृष्ट स्थितिविभक्ति पूर्वक आठ भंग होते हैं और  
अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिपूर्वक भी आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार वैकृतिकसिंश्रकाययोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत,  
यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके  
जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—निश्चित सिद्धान्तके अनुसार व्यवस्थाके द्योतक वाक्यको अर्थपद कहते हैं ।  
यहाँ निश्चित सिद्धान्त यह है कि जो उच्छृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे अनुच्छृष्ट स्थितिवाले नहीं  
होते और जो अनुच्छृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे उच्छृष्ट स्थितिवाले नहीं होते । इससे यह व्यवस्था  
फलित हुई कि उच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंसे अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव भिन्न नहीं और  
अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंसे उच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव भिन्न नहीं । फिर भी एकवार  
उच्छृष्ट स्थितिवालोंको और दूसरी वार अनुच्छृष्ट स्थितिवालोंको मुख्य करके भंगोंका समूह  
किया जाय तो प्रत्येककी अपेक्षा तीन तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं । जो मूलमें गिनाये हीं हैं ।  
वात यह है कि उच्छृष्ट स्थितिवाला जीव कदाचित् एक भी नहीं रहता, तथा कदाचित्  
एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं । अब यदि इन तीन विकल्पोंको मुख्य करके  
भंग कहे जाते हैं तो उनकी सूत्र निम्न होती है—(१) कदाचित् सब जीव उच्छृष्ट स्थिति-  
विभक्तिवाले होते हैं । (२) बहुत जीव उच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं और एक  
जीव उच्छृष्ट स्थिति विभक्तिवाला होता है । (३) कदाचित् बहुत जीव उच्छृष्ट स्थिति-  
विभक्तिवाले होते हैं और बहुत जीव उच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं । यह तो उच्छृष्ट  
स्थितिकी अपेक्षा कथन हुआ । अब यदि इसके स्थानमें अनुच्छृष्ट स्थितिवालोंको मुख्य कर  
देते हैं और उच्छृष्ट स्थितिवालोंको गौण तो उन्हीं भंगोंकी शक्य निम्न हो जाती है—(१) कदाचित्  
सब जीव अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं । (२) कदाचित् बहुत जीव अनुच्छृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले होते हैं और एक जीव अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाला होता है ।  
(३) कदाचित् बहुत जीव अनुच्छृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और बहुत जीव अनुच्छृष्ट स्थिति-  
विभक्तिवाले होते हैं । सब नारकियोंसे लेकर अनाहारको तक मूलमें जितनी मार्गणाएँ गिनाई  
हैं । उनमें यह औघप्ररूपणा वन जाती है अर्थात् उन मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार उच्छृष्ट और  
अनुच्छृष्ट स्थितिवालोंकी अपेक्षा तीन तीन भंग वन जाते हैं, अतः इनकी प्ररूपणाको औघके



§ ६५. जहण्णयम्मि अट्टपदं । तं जहा—जे जहण्णस्स विहत्तिया ते अजहण्णस्स अविहत्तिया, जे अजहण्णस्स विहत्तिया ते जहण्णस्स अविहत्तिया । एदेण अट्टपदेण दुविहो णिद्दोसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह०—जहण्ण—द्विदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा । एवमजह० । णवरि विहत्तिया पुवं भाणियवं । एवं सत्तसु पुदवीसु सव्वपंचिदियतिरिक्ख—मणुसतिय—सव्वदेव—सव्वविगल्लिदिय—सव्वपंचिदिय—वादरपुहवि०पज्ज०—वादरआउ० पज्जत्त०—वादरतेउ०—पज्ज०—वादरवाउ०पज्ज०—वादरवणप्फदि०पत्तेय०पज्ज०—सव्वतस०—पंचमण०—पंचवचि०—

समान कहा । किन्तु लब्धपर्याप्तक मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है अतः इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंमेंसे प्रत्येकके आठ आठ भंग हो जाते हैं । इसी प्रकार और जितनी सान्तर मार्गणाएँ हैं उनमें तथा अपगतवेदी, अकपायी और यथाख्यातसंयत इन तीन मार्गणाओंमें भी आठ आठ भंग प्राप्त होते हैं ।

वह आठ भंग इस प्रकार हैं—एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (१), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (२), एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (३), अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (४) एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (५), एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (६), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (७), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (८) ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भंगविचय समाप्त हुआ ।

§ ६५. नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य भंगविचयके कथनमें जो अर्थपद है वह इस प्रकार है— जो जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । जो अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं और एक जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाला है । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं इस प्रकार जघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं । इसी प्रकार मोहनीयकी अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा भी तीन भंग होते हैं । इतनी विशेषता है कि अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा कथन करते समय 'विहत्तिया' का पहले कथन करना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भंगोंमें अविभक्तिवालोंका पहले कथन किया है उसी प्रकार अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भंगोंमें पहले विभक्तिवालोंका कथन करना चाहिये । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यक्, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादरजलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादरवायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी ब्रह्म, पांचों मनोयोगी,

काययोगि०-ओरालि०-वेडव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-विहंग०-आभिणि०-सुद०-  
ओहि०-मणपज्जव०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-  
ओहिदंस०-तिण्णिलेस्सा०-भवसिद्धि०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-सण्णि-आहारि ति ।

§ ९६. तिरिक्खव० मोह० ज० अज० गियमा अत्थि । एवं सव्वएइदिय-  
पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादर-  
आउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-  
सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-पज्जत्ता  
पज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज-वणप्फदि-णिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्म-  
इय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-  
अणाहारि च ।

§ ९७. मणुसअपज्ज० उक्कस्सभंगो । एवं वेडव्वियमिस्स०-आहार०-आहार-  
मिस्स-(अवगद-) अकसाय-सुहुम०-जहवखाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।  
एवं णाणाजीवेहि भंगविचञ्चो समत्तो ।

पांचों वचनयोग, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, धिमंगझानी, आभिनिवोधिकझानी, श्रुतझानी, अवधिझानी, मनःपर्ययझानी, संयत, सामा-  
यिकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले  
श्रवणदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षातिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि  
संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ९६. तिर्यचोमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले और अजघन्य स्थिति विभक्ति-  
वाले जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर  
पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक  
पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक,  
वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक  
शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मण्यकाययोगी, मत्स्यझानी,  
श्रुताझानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक  
जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ९७. लव्यपर्याप्तक मनुष्योंके उल्लूक स्थिति विभक्तिके समान यहां भी आठ आठ भंग  
हैं । इसी प्रकार वैक्रियकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी,  
अकपायी, सूक्ष्मसंपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और  
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६८. भागाभागानुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहो उक्कस्सट्ठिदि—विहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । अणुक्क० सव्वजी० के० भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइंदिय-वणप्फदि०-णिगोद०-काययोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णनु०स०-चचारिक्कसाय-मदि-सुद—अण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिलेरसा-भवसिद्धि०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि—आहारि०-अणाहारि चि ।

§ ६९ आदेसेण णेरइएसु मोहो उक्क० सव्वजी० के० भागो ? असंखे० भागो । अणुक्क० सव्वजी० केवडिओ भागो ? असंखेज्जा भागा । एवं सव्वपुढवि०-सव्वपंचि०तिरिक्ख-पणुस-पणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वविग-लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वपुढवि०-सव्वआउ०-सव्वतेउ०-सव्ववाउ०-वादरवणप्फदि०

विशेषार्थ—उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा भंगविचयका कथन करते समय ओघ और आदेशसे जिन भंगोंको पहले बतला आये हैं वे भंग यहां जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसी प्रकार बन जाते हैं । किन्तु सामान्यतिर्यच और एकेन्द्रियोसे लेकर अनाहारक तक मूलमें गिनाई हुई कुछ मार्गाणां ऐसी हैं जिनमें जघन्य स्थितिवाले बहुत जीव और अजघन्य स्थितिवाले बहुत जीव नियमसे पाये जाते हैं, अतः यहाँ ( १ ) मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं । ( २ ) मोहनीयकी अजघन्य स्थिति-विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं ये दो भंग ही प्राप्त होते हैं ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६८. भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट भागा-भागानुगमको प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, काय-योगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६९. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यच, सामान्य मनुष्य, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अप्रिकायिक, सभी वायुकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर,

पत्तेय०-पज्जत्तापज्जत्त—सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०—  
इत्थि०-पुरिस०—विहग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंस०-  
तिण्णिण्ले०-सम्मदि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि चि ।

§ १००. मणुसपज्ज०-मणुसि० मोह० उक्क० सव्वजी० के० भागो ? संखे०-  
भागो । अणुक्क० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । एवं सव्वद०-आहार०-आहार-  
मिस्स०-अवगद०-अकसाय-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-खेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-  
जहाक्खाद० ।

एवमुक्कस्सभागाभागो समत्तो ।

§ १०१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदूदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधि दर्शनवाले, पीत आदि तीन लेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १००. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदापस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—भागाभागमे कौन किसके कितने भागप्रमाण हैं इसका विचार किया जाता है । प्रकृतमे सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे उत्कृष्ट स्थिति और अनुकृष्ट स्थितिवाले जीव किसके कितने भाग हैं यह बतलाया गया है । लोकमें जितने उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवाले जीव हैं उनमें अनन्तवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और अनन्त बहुभाग अनुकृष्ट स्थितिवाले हैं । मार्गणाओंकी अपेक्षा उनकी प्ररूपणा तीन प्रकारसे हो जाती है । कुछ मार्गणाओंमे उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवालोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । कुछ मार्गणाओंमे असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले और असंख्यात बहुभाग अनुकृष्ट स्थितिवाले हैं । तथा कुछ मार्गणाओंमें संख्यातवें भागप्रमाण जीव उत्कृष्ट स्थितिवाले और संख्यात बहुभागप्रमाण जीव अनुकृष्ट स्थितिवाले हैं । इन सब मार्गणाओंके नाम मूलमे गिनाये हैं । इसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोंके भागाभागका सुलासा समझना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभाग समाप्त हुआ ।

§ १०१. अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थिति-

मोह० ज० सव्वजीवा० केवडि० ? अणंतिमभागो । अज० सव्वजी० के० ? अणंता भागा । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसिद्धिय-आहारि ति ।

§ १०२. आदेसेण पेरइएसु मोह० ज० सव्वजी० के० ? असंखे० भागो । अज० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस — मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलंदिय-सव्वपंचिदिय-इकाय-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ० मिस्स०-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदा०-संजद०-असंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-इत्थेस्सा — अभव०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-अणाहारि ति ।

§ १०३. मणुसपज्ज०-मणुसिणी० मोह० जह० सव्वजी० के० ? संखे० भागो । अज० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । एवं सव्वद्व० आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद० ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । मोहनीयकी अजघन्य स्थितिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिक काययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १०२. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव विवक्षित-जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकी जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले नारकी जीव कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, लघ्व्यपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्त्रज्ञानी, श्रुतज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेख्यावाले, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, चाधिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०३. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी,

§ १०४. परिमाणानुगमो दुविहो— जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिइदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहं उक्कस्सद्विदिविहत्तिया जीवा केत्तिया ? असंखेज्जा । अणुकं केत्तिया ? अणंता । एवं तिरिक्खसव्वएइंदियं—चणप्फदिं—णिगोदं—कायजोगिं—ओरालिं—ओरालियमिस्सं—कम्मइयं—णवुंसं—चत्तारिकसायं—मदिं—सुदअण्णणं—असंजदं—अचक्खुं—तिण्णिले—भवसिं—अभवसिं—भिच्छां—असण्णिं—आहारिं—अणाहारिं त्ति ।

§ १०५. आदेसेण णेरइएसु मोहं उक्कं अणुकं केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं सत्तपुहविं—सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपज्जं—देवं—भवणादि जाव सहस्सारं—सव्वविगल्लिदियं—सव्वपंचिदियं—चत्तारिकायं—सव्वतसं—पंचमणं—पंचवचिं—वेउव्वियं—वेउव्वियमिस्सं—इत्थिं—पुरिसं—विहंगं—आभिणिं—सुदं—ओहिं—संजदासंजदं—चक्खुं—ओहिंदंसं—तिण्णिले—सम्मादिं—वेदयं—उवसमं—सासणं—सम्माभिं—सण्णिं त्ति ।

§ १०६. मणुसं मोहं उक्कं के ? संखेज्जा । अणुकं असंखेज्जा ।

मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविबुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ १०४ परिमाणानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उच्छृष्ट । उनमेंसे उच्छृष्ट परिमाणानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, ओघादि चारों कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उच्छृष्ट और अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यच, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्सार तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार कायवाले, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, खीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आमिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०६. मनुष्योंमें मोहनीयकी उच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुच्छृष्ट स्थितिविभक्तिवाले कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार आनतसे लेकर अपराजित

एवमाणदादि जाव अवरारइद० खइय०दिट्टि ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० उक्क० अणुक्क० केत्ति० ? संखेज्जा । एवं सव्वट्ट०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद० ।

एवमुक्कस्सओ परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ १०७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिइदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? अणंता । एव कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति ।

§ १०८. आदेसेण ऐरइएसु मोह० ज० अज० केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं पढमपुढवि०-सव्वपंचिदिय—तिरिक्ख—मणुसअपज्ज०-देव०-भवण०-वाण०-सव्व—विगल्लिदिय—पंचिदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-तसअपज्जत्तो ति ।

तकके देव और द्वायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोमे उल्कष्ट और अनुल्कष्ट स्थितिविभक्तितवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वाथ-सिद्धिके देव, आहारकक्राययोगी, आहारकमिश्रक्राययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्यय-ज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—इसमें ओघ और आदेशसे उल्कष्ट और अनुल्कष्ट स्थितिवाले जीवोंकी संख्या बतलाई गई है । आघसे उल्कष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात और अनुल्कष्ट स्थितिवाले जीव अनन्त हैं । तथा आदेशसे संख्याकी प्ररूपणा चार भागोंमें बट जाती है । कुछ मार्गणाएं अनन्त संख्यावाली हैं जिनमें ओघरूपणा घटित हो जाती है । कुछ मार्गणाएं असंख्यात संख्यावाली हैं जिनमें उल्कष्ट और अनुल्कष्ट दानो स्थितिवाले असंख्यात हैं । कुछ मार्गणाएं असंख्यात संख्यावाली हैं परन्तु उनमें उल्कष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अनुल्कष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं । तथा कुछ मार्गणाएं संख्यात संख्यावाली हैं जिनमें उल्कष्ट स्थितिवाले और अनुल्कष्ट स्थितिवाले दोनों संख्यात हैं । मार्गणाओके नाम मूलमें गिनाये हैं ।

इस प्रकार उल्कष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ १०७. अब जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है ? उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिकक्राययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारो कषायवाले, अचतुर्दशनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, और त्रस लब्धपर्याप्तक जीवोंका परिमाण जानना चाहिये ।

§ १०६. विद्यादि जाव छट्टि त्ति मणुस०-जोदिसियादि जाव अवराइद-पंचि०-  
पंचि० पञ्ज०-तस-तसपञ्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वि०-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-  
पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिणिले०-  
सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि० मोह०ट्टिदि० के० ?  
संखेज्जा । अज्ज० के० ? असंखेज्जा ।

§ ११०. सत्तमाइए मोह० ज० अज्ज० केत्ति० ? असंखेज्जा । तिरिक्ख० मोह०  
ज० अज्ज० के० ? अयांता । एवं सव्वएइंदिय-सव्वचणप्पदि०-सव्वणिगोद०-  
ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-तिणिले०—अभव०-मिच्छा—  
दिट्ठि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ १११. मणुसपञ्ज०-मणुसिणी० मोह० ज० अज्ज० केत्तिया ? संखेज्जा ।  
एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपञ्ज०-संजद०-सामाइय-  
छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाकखादसंजदां त्ति ।

एवं परिमाणानुगमो समचो ।

§ १०६. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सामान्य मनुष्य, ज्योतिषियोंसे लेकर  
अपराजित तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी,  
वैक्रियिकका ययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकाज्ञानी,  
श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले,  
सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मि-  
थ्यादृष्टि और संबन्धी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।  
तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

§ ११०. सातवीं पृथिवीमे मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव  
कितने हैं ? असंख्यात हैं । तिर्यचोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव  
कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिक्रायिक, सभी निगोद, औदा-  
रिकमिश्रकाययोगी, कामरूपाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुतज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्या-  
वाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंबन्धी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १११. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्ति-  
वाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी,  
आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत,  
छंदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके  
जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य स्थिति कृपक जीवके दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त  
होती है । अतः ओघकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं । तथा इनके अतिरिक्त



§ ११२. खेताणुगमो दुविहो जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पगदं । दुविहो णिदूदसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहो उक्क० केवडि खेचे ? लोणस्स असंखे०भागे । अणुक्क० के० खेचे ? सव्वलोए । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय०—पुढवि०—वादरपुढवि०—वादरपुढविअपज्ज०—सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त—आउ०—वादरआउअपज्ज-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुम-तेउ-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०—वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियभिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय—मदि—सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णले०भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि ति ।

मोहनीयकर्मकी सत्तावाले शेष सब जीव अजघन्य स्थितिवाले हुए और उनका प्रमाण अनन्त है अतः ओघसे अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त कहे । तथा मार्गणाओकी अपेक्षा विचार करने पर कहीं ओघ जघन्य स्थिति सम्भव है और कहीं आदेश जघन्य स्थिति सम्भव है । इसीप्रकार कहीं जघन्य स्थितिका काल एक समय है और कहीं अन्तमुहूर्त, अतः जहां जिस प्रकारसे जघन्य स्थितिवाले जीवोंका कर्म या अधिक संख्य होता है वहां उसके अनुसार उनकी संख्या कही । किन्तु अजघन्य स्थितिवालोंकी संख्या सर्वत्र अपनी अपनी मार्गणाकी संख्याके अनुसार जानना चाहिये । अर्थात् जिस मार्गणामे अनन्त जीव हैं उस मार्गणामें अजघन्य स्थितिवाले जीवोंकी संख्या अनन्त जानना । तथा जिस मार्गणामें जीव असंख्यात या संख्यात हैं उसमे अजघन्य स्थितिवाले जीवोंकी संख्या असंख्यात या संख्यात जानना ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ११२. क्षेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट क्षेत्रानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमे रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदा-रिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहा-रक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ११३. आदेशेण णेरइएसु मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेत्ते ? लो० असंखे०भागे । एवं सत्तपुढवि०-णेरइय-सव्वपचिंदियतिरिक्ख०-सव्वमणुस्स-सव्वदेव-सव्वविगळिंदिय-सव्वपचिंदिय-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउ-पज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय०पज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउच्चिय-वेउ०मिस्स०-[आहार०-]आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसाय-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंसण०-तिण्णिलेस्सा-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि ति ।

§ ११४. वादरवाउपज्ज० उक्क० के० खेत्ते ? लो० असंखे०भागे । अणुक्क० लो० संखे०भागे ।

### एवमुक्कस्सखेत्ताणुगो समत्तो ।

§ ११३. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय त्रियंच, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी ब्रह्म, पांचों मनोयोगी, पांचों बचनयोगी, वैकिकिकाय-योगी, वैकिकिमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदवाले, अकषायी, विभंगज्ञानी, आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथा-ख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदगसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११४. वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ-ओघसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं और मार्गाणुओघमेंसे किसीमें असंख्यात हैं और किसीमें संख्यात । अतः उत्कृष्ट स्थितिवालोक क्षेत्र सर्वत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिवालोकें ओघ या आदेशसे जिनका प्रमाण अनन्त है उनका क्षेत्र सब लोक कहा । और जिनका प्रमाण असंख्यात है उनका क्षेत्र तीन प्रकारका है । किन्हीं मार्गाणुओंका सब लोक क्षेत्र है, किन्हींका लोकका संख्यातवां भाग क्षेत्र है और किन्हींका लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र है । तथा जिन मार्गाणुवालोकें प्रमाण संख्यात है उनका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही है । जिन मार्गाणुवालोकें जितना क्षेत्र है उनके नाम मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ११५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० अजह० उक्कस्सभंगो । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ११६. आदेसेण णिरयगदीए मोह० जह० अजह० उक्कस्सभंगो । एवं सत्त-पुढवीसव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वतस०-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय-पज्ज०-पंचमण०-पंचवच्चि०-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विइंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मण०पज्ज०-संजद०-सामाइय०-खेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदस०-तिण्णले०-सम्भादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्भाभि०-सण्णि त्ति । णवरि वादरवाउपज्ज० जह० अजह० लोगस्स संखे०भागे ।

§ ११७. तिरिक्ख० मोह० जह० अजह० के० खेत्ते ? सव्वलोए । एवं सव्व-एइंदिय-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुयपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादर-

§ ११५. अब जघन्य स्थितिविभक्ति क्षेत्रानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा क्षेत्रका कथन उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा क्षेत्र उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी त्रस, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिकपर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अकपायी, विभंगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, भ्रुतज्ञानी, अबधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाथिक संयत, खेदोपस्थापनासंयत, परिवारविञ्जुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, पीत आदि तीन लेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिक-सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संबी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवोंमें जघन्य स्थितिविभक्तित्वाले और अजघन्य स्थितिविभक्तित्वाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

§ ११७. तिर्यचोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तित्वाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं । सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक

आउ०-वाद्रआउअपज्ज०-सुहुमआउ-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[वाद्रतेउ०-]वाद्रतेउअपज्ज०-  
सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वाद्रवाउ०-वाद्रवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-पज्जत्ता  
पज्जत्त-वाद्रवणप्फदि०-पत्तेय०-तेसिमपज्ज०-सव्वणवणप्फदि०-सव्वणिगोद०ओरालिय-  
मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-तिण्णिलेस्सा-अभवसि०-मिच्छादि०-  
असण्णि-अणाहारि चि ।

§ ११८. एत्थ मूलुच्चारणापाठो—तिरिक्ख० मोह० जह० लोग० संखे० भागे ।  
अज० संव्वलोगे । एदस्साहिप्पाओ सत्थाणविमुद्धवादरेइंदियपज्जत्तएसु चैव जहण्ण-  
सामिच्चं जावमिदि । एवमेइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वाउ-वाद्रवाउ०-तदपज्जत्तायं  
च वत्तव्वं । एदम्मि अहिप्पाए चत्तारिकाय-तेसिं वाद्र-तदपज्जत्तायं जह० लोग०  
असंखे० भागे । अज० संव्वलोगे । मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-तिण्णिले०-अभव०-  
मिच्छादिद्वि-असण्णीणं वाद्रवाउभंगो । एतदणुसारेण च पोसयं णेदव्वमिदि एद-  
मेत्थ पहाणं ।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो ।

अपर्याप्त, जलकायिक, वाद्रजलकायिक, वाद्रजलकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, अपर्याप्त, अग्निकायिक, वाद्र अग्निकायिक, वाद्र अग्निकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, अपर्याप्त, वायुकायिक, वाद्र वायुकायिक, वाद्रवायुकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त, वाद्र वनस्पतिकायिक, प्रत्येक शरीर, वाद्र वनस्पतिकायिक, प्रत्येक शरीर, अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कामरूपकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभम्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११८ यहाँ पर मूलोच्चारणाका पाठ है कि तिर्यंचोमें मोहनीयको जघन्य स्थितिबिभक्तवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तवाले जीव सब लोकमें रहते हैं । इसका यह अभिप्राय है कि स्वस्थान विशुद्ध वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्तकोमें ही जहाँ तक जघन्य स्वामित्व है वहाँ तक उन्नत क्षेत्र प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि तिर्यंचोमें जघन्य स्थिति वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्तकोके ही प्राप्त होती है और उनका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागसे अधिक नहीं, इसलिये सामान्य तिर्यंचोमें जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र उन्नत प्रमाण घतलाया है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, वाद्र एकेन्द्रिय, वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त, वाद्र एकेन्द्रिय अपर्याप्त, वायुकायिक, वाद्र वायुकायिक और वाद्र वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये । तथा इस अभिप्रायानुसार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके वाद्र और उनके वाद्र अपर्याप्त जीवोंमें जघन्य स्थितिबिभक्तवाले जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं, तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तवाले जीव सब लोकमें रहते हैं । मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभम्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके वाद्र वायुकायिक जीवोंके समान क्षेत्र है । तथा इसीके अनुसार सर्वशूनका कथन करना चाहिये । इस प्रकार यही विवक्षा यहाँ पर प्रधान है ।

विशेषार्थ—ओषसे जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और मार्गणाच्चोकी अपेक्षा

§ ११६. पोसणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च । उक्कस्से पयदं ।  
दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० के० खेचं  
पोसिदं ? लोग० असंखे० भागो अट्ट-तेरहचोदस भागा वा देसूणा । अणुक्क० खेच-  
भंगो । एवं कायजोगि०-चचारिकसाय-मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-  
भव०-अभव०-मिच्छादि०-आहारि चि ।

किसीमें अनन्त हैं, किसीमें असंख्यात और किसीमें संख्यात हैं। इनमेंसे जिन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिवाले संख्यात जीव हैं उनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। जिन मार्गणाओंमें असंख्यात हैं उनमेंसे कुछ मार्गणाएं तो ऐसी हैं जिनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। जैसे सातों नरकोके नारकी आदि। तथा वादरवायुकायिक पर्याप्त वह मार्गणा ऐसी है जिसकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है। इनके अतिरिक्त जो अनन्त संख्यावाली और असंख्यात संख्यावाली मार्गणाएं शेष रहती हैं उनकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक प्राप्त होता है। जैसे सामान्य तिर्यच, एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक आदि। पर इस विषयमें मूलोच्चारणमें जो पाठ पाया जाता है उसका यह अभिप्राय है कि मूलमें असंख्यात संख्यावाली और अनन्त संख्यावाली जिन मार्गणाओंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है उनमेंसे पृथिवीकायिक आदि चार स्यावरकाय, उनके वादर तथा वादर अपर्याप्त जघन्य स्थितिवाले जीवों का क्षेत्र तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है और इन्हे छोड़कर शेष सब जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। सो वीरसेन स्वामीने इस मतभेदका यह कारण बतलाया है कि ऊपर जो सब लोक क्षेत्र कहा है वह मारणान्तिकसमुद्रात् आदिकी अपेक्षासे कहा है और मूलोच्चारणमें जो कुछका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है वह स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षासे कहा है, अतः दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है। फिर भी वीरसेन स्वामी इन दोनोंमेंसे मूलोच्चारणके अभिप्रायको प्रधान मानते हैं और उसके अनुसार स्पर्शनके कथन करनेकी सूचना भी करते हैं। अब रहा ओघ और आदेश से अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सो ओघ या आदेशसे जिसका जितना क्षेत्र बतलाया है, अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसका उतना ही क्षेत्र जानना चाहिये। क्योंकि सर्वत्र यद्यपि जघन्य स्थितिवाले जीव कम हो जाते हैं फिर भी इससे अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा उनके क्षेत्रमें न्यूनता नहीं आती।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ ११६. स्पर्शानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट स्पर्शानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघ निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कयायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असं-यत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो लोकके असंख्यात वें भाग प्रमाण

§ १२०. आदेसेण गिरय० मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेरं पोसिद ? लोगस्स असंखे० भागो छचोइस भागा वा देसूणा । पढमाण खेतभगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेरं पोसिद ? लोग० असंखे० भागो एक-वे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोइस भागा देसूणा ।

§ १२१. तिरिक्ख० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो छ चोइस भागा वा देसूणा । अणुक्क० के० खेरं पोसिद ? सव्वलोगो । एवमोरालि०-णवुंस० वत्तव्वं ।

स्पर्श वतलाया है वह वर्तमान कालकी मुख्यतासे वतलाया है, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सातों नरकोंके नारकी, संबन्धी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, पर्याप्त मनुष्य व वारहवें स्वर्ग तकके देवोंके ही सम्भव है। पर इन सबका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है। त्रसनालीके चौदह भागमेसे जो कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण स्पर्श वतलाया है वह अतीत कालकी अपेक्षासे वतलाया है क्योंकि विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैकियिक पदसे परिणत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम आठ भाग स्पर्श किया है और मारणांतिक समुद्रातसे परिणत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम तेरह भाग स्पर्श किया है। मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए तैजस, आहारक और उपपाद ये तीन पद सम्भव नहीं। हां स्वस्थानस्वस्थानपद अचरय होता है सो इसकी अपेक्षा स्पर्श लो हके असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिये। तथा मोहनीयकी अनुकृष्ट स्थितिवालोका क्षेत्र जब कि सब लोक है तब स्पर्श तो सब लोक होगा ही। कुछ मार्गाणां भी ऐसी हैं जिनमे यह ओघ प्ररूपया अविकल बन जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। जैसे काययोगी आदि।

§ १२०. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकातिमें नारकियोमे मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागमेसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमे स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमे मोहनीय की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागमेसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत कालीन स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागमेसे कुछ कम छह भाग प्रमाण वतलाया है। इसीसे यहां पर मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके दोनों प्रकारका स्पर्श उक्तप्रमाण कहा। विशेषकी अपेक्षा जिस नरकका अतीत कालीन जितना स्पर्श वतलाया है उतना ही जान लेना चाहिये जो मूलमे वतलाया ही है। यहां हमने पदविशेषोंका उल्लेख नहीं किया है सो यह सब विशेषता जीवद्वाराएसे जान लेनी चाहिये।

§ १२१. तिर्यच गतिमे तिर्यचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागमेसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुकृष्ट स्थितिभक्तिवाले जीवोंने कितने

§ १२२. पंचिंदियतिरिक्खवतियम्मि उक्क० तिरिक्खवोर्धं । अणुक्क० के० खे० पो० ? लोम० असंखेभागो सव्वलोगो वा । पंचिंदियतिरिक्खवअपज्ज० मोह उक्क० लोम० असंखे० भागो । अणुक्क० लोम० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । एवं मणुस-अपज्ज० ।

क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोर्धमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचोर्धे ही सम्भव है और इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, अतः तिर्यचोर्धमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोर्धका अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम कुछ बढे चौदह भागप्रमाण बनलानेका कारण यह है कि ऐसे तिर्यचोर्धने मारणान्तिक समुद्रघात द्वारा नीचे कुछ कम कुछ राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । क्योंकि जिन तिर्यचोर्धने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो रहा है उनका संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, मनुष्य और नारकियोंमें ही मारणान्तिक समुद्रघात करना सम्भव है । तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थिति सब जातिके तिर्यचोर्धे सम्भव है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोर्धका सब लोक स्पर्श बतलाया है । औदारिककाययोग और नपुंसकवेदमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः इनके स्पर्शको सामान्य तिर्यचोर्धे समान बतलाया है ।

§ १२२. पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यचोर्धे उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाले जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यचोर्धे समान है । तथा उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोर्धमें अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पंचेन्द्रियतिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सामान्य तिर्यचोर्धे जो उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवों का स्पर्श कहा है वह पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक की मुख्यतासे ही कहा है अतः इन तीन प्रकारके तिर्यचोर्धमें उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोर्धे समान बतलाया है । किन्तु उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोर्धमें अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंके स्पर्शमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि इन तीन प्रकारके तिर्यचोर्धका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंने स्पर्श उक्त प्रमाण बतलाया है । जो तिर्यच या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हेंके पहले समयमें मोहनीयकी आदेश उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । किन्तु इनके अतीतकालीन और वर्तमानकालीन क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, अतः यहां मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले लब्धपर्याप्तक तिर्यचोर्धका दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । वैसे पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यचोर्धका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है जो इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्भव है, अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके दोनों प्रकारका स्पर्श

§ १२३. मणु०-मणुसपञ्ज०-मणुसिणीसु उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो । अणुक्क० लोग० असंखे० भागो सञ्चलोगो वा ।

§ १२४. देवेसु मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेत्त० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ट-णव चोइसभागा वा देसुणा । एवं सोहम्पीसाण० वत्तञ्चं । भवण०-वाण०-जो-दिसि० मोह० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्टधुट्ट-अट्ट-णव चोइसभागा वा देसुणा । सणक्कुमारदि जाव सहस्सारे त्ति मोह० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्टचोइस भागा वा देसुणा । आणद-पाणद-आरणच्चुद० मोह० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो

उक्त प्रमाण वतलाया है । इस विषयमे मनुष्य लब्धपर्याप्तकोंकी स्थिति पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यचोंके समान है अतः मनुष्य लब्धपर्याप्तकोंका स्पर्श पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके समान वतलाया है ।

§ १२३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग कहनेका कारण यह है कि ऐसे मनुष्य संख्यात ही होते हैं और इनका उत्कृष्ट स्थितिके साथ सर्वत्र मारणान्तिक समुद्घात करना सम्भव नहीं, अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्श इससे अधिक नहीं प्राप्त होता । किन्तु उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक वतलाया है जो मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्भव है अतः अनुत्कृष्ट स्थितिवाले उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंका स्पर्श उक्त प्रमाण कहा ।

§ १२४. देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके कहना चाहिये । भवत्वासी, अन्तर और व्योतिपी देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सानल्लुमारसे लेकर सहस्वार स्वर्ग तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनन, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है । तथा उक्त देवोंमें मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया



छचोहस भागा वा देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं औरालियमिस्स-वेडव्वियमिस्स-आहार-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-झेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदे त्ति ।

§ १२५. एइंदिय० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो णव चोहसभागा वा देसूणां । अणुक्क० सव्वलोगो । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्ज० । सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वादरेइंदियअपज्ज० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोगस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अणुक्क० सव्वलोगो । एवं पंचकाय-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-त्ताणं ।

है । अच्युत स्वर्गके ऊपर देवोंके स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अर्थात् नौप्रियक आदिके देवोंके समान औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—ब्रह्माण्ड आदिमे सामान्य देवोंका व भवतवासी आदि देवोंका जो वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्श वतलाया है वही यहाँ उत्कृष्ट अनुकृष्ट स्थितिवाले उक्त देवोंका स्पर्श जानना चाहिये जो मूलमें वतलाया ही है । अन्तर केवल आनतादिक चार कल्पोंके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पर्शमें है । वात यह है कि आनतादिक चार कल्पोंमें जो द्रव्यलिगी मुनि उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति हाँती है और इनके अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम छह वटे चौदह राजु विहार आदिके समय प्राप्त होता है । इस प्रकार आनतादिकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान व अतीत स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । मूलमे औदारिकमिश्र आदि मार्गणाओंमें इसी प्रकार है यह वतलाया है सो इसका भाव यह है कि इन मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श अपने अपने क्षेत्रके समान जानना चाहिये । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

§ १२५. एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त और वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पांचों स्थावरकाय, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—जिन देवोंने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके अनन्तर समयमें मरकर एकेन्द्रिय पर्याप्तको प्राप्त किया उन्हीं एकेन्द्रियोंके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः इनका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्श

§ १२६. सव्वविगळिंदिय० मोह० उक्क० लोग० असंखे० भागो । अणुक० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । एवं पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्वं ।

§ १२७. पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस-तसपज्ज० मोह० उक्क० ओधं । अणुक० लोग० असंखे० भागो अट्ठचोदस भागा वा देसूणा सव्वलोगो वा । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-सण्णि चि ।

कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है । यहां तीसरी पृथिवीतक दो राजु और ऊपर सात राजु इस प्रकार नौ राजु लेना चाहिये । तथा अनुक्कष्ट स्थितिवाले एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक कहा । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें यह व्यवस्था अविकल घटित हो जाती है इसलिये इनके स्पर्शको एकेन्द्रियोंके समान कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका सब लोक स्पर्श मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा ही जानना चाहिये । जो संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्य मोहनीयकी उक्कष्ट स्थितिका वन्ध करके सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त तथा वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी उक्कष्ट स्थिति होती है । अब यदि इनके वर्तमान स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है और अतीत कालीन स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह सब लोक प्राप्त होता है । यही सबव है कि यहां उक्त मार्गणाओंमें उक्कष्ट स्थितिवालोंने वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्श सब लोक प्रमाण बतलाया जाना सम्भव है अतः उक्त मार्गणाओंमें अनुक्कष्ट स्थितिवालोंने स्पर्श सब लोक कहा । यहां वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका सब लोक स्पर्श उपपाद और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा ही जानना चाहिये । पांचो सूक्ष्म स्थावरकाय आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा ।

§ १२६. सभी विकलेन्द्रिय जीवोंमें मोहनीयकी उक्कष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंमें लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका तथा अनुक्कष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंमें लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका और सब लोक चेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक और त्रस लब्धपर्याप्तक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ-सब विकलेन्द्रियोंमें उक्कष्ट स्थिति उन्हींके होती है जो संज्ञी तिर्यच और मनुष्योंमेंसे आकर यहाँ उत्पन्न होते हैं । अतः इनमें उक्कष्ट स्थितिवालोंने दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । तथा सब विकलेन्द्रियोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुक्कष्ट स्थितिवालोंने दोनों प्रकारका स्पर्श उक्तप्रमाण कहा है । यही व्यवस्था पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंमें बन जाती है अतः इनके कथनको सब विकलेन्द्रियोंके समान कहा ।

§ १२७. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उक्कष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श ओधके समान है । तथा अनुक्कष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श लोकका असंख्यातवें भाग, त्रसनालके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और सब लोक है । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षु-दर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-पंचेन्द्रियादि चार मार्गणाओंमें अनुक्कष्ट स्थितिवालोंने स्पर्श तीन प्रकारका बतलाया है । लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श वर्तमानकालकी अपेक्षासे बतलाया है, क्योंकि

§ १२८. कायाखुवादेण पुढवि-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-आउ०-वादर-  
 आउ०-वादरआउपज्ज०-वणप्फदि-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव  
 पज्ज० मोह० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० सव्वलोगो । णवरि तिण्हं पज्जत्ताणं  
 मोह० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । वादरपुढविअपज्ज०-वादर  
 आउअपज्ज०-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउ-  
 अपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो  
 वा । णवरि वादरपुढविअपज्ज० [ -वादरआउ०अपज्ज०- ] वादरतेउ०अपज्ज०-  
 [ वादरवाउअपज्ज०- ] वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्जत्ताणं सव्वलोगोसणं णत्थि ।  
 अणुक्क० सव्वलोगो । वादरवाउ०पज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो  
 वा । अणुक्क० लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा । वादरतेउ०पज्ज० मोह० उक्क०  
 के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा ।

जितने क्षेत्रमें उक्त मार्गावाले जीव निवास करते हैं । उनके वर्तमान क्षेत्रका प्रमाण लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक प्राप्त नहीं होता । कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्श विहारवत् स्वस्थान आदिकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि इन जीवोंके ये पद दो राजु नीचे और छह राजु ऊपर इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं । तथा सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणान्तिक और उपपाद् पदकी अपेक्षासे कहा है । कुछ और मार्गाणं हैं जिनमें उक्त व्यवस्था ही प्राप्त होती है । जैसे पांचों मनोयोगी आदि ।

§ १२८. कायमार्गाणके अनुवादसे पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी-  
 कायिक पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर  
 वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त  
 जीवोंमें मोहनीयकी उच्छृष्ट स्थितिबिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्शन एकैन्द्रियोंके समान है । तथा  
 अनुच्छृष्ट स्थितिबिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्शन सब लोक है । इनकी विशेषता है कि उक्त तीन  
 प्रकारके पर्याप्त जीवोंमें अनुच्छृष्ट स्थितिबिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्शन लोकका असंख्यातवें भाग  
 और सब लोक है । वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक,  
 वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायु-  
 कायिक अपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उच्छृष्ट  
 स्थिति बिभक्तित्वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।  
 इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक  
 अपर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके  
 सर्वलोक स्पर्शन नहीं है । तथा अनुच्छृष्ट स्थिति बिभक्तित्वाले उक्त जीवोंका स्पर्शन  
 सब लोक है । वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उच्छृष्ट स्थितिबिभक्तित्वाले  
 जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । तथा अनुच्छृष्ट  
 स्थितिबिभक्तित्वाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । वादर  
 अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उच्छृष्ट स्थितिबिभक्तित्वाले जीवोंने कितने क्षेत्रका  
 स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुच्छृष्ट स्थिति-  
 बिभक्तित्वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

§ १२६. वेउव्विय० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० ? लो० असंखे० भागो अट्ट-तेरह चोदस भागा वा देसूणा० । कम्मइय० मोह० उक्क० लो० असं० भागो तेरह-चोदसभागा वा देसूणा । [अणुक्क० सव्वलोगो ।] आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० अणुक्क० लो० असं० भागो अट्टचोदस भागा वा देसूणा । एवमोहिदंस० सम्मादि०-वेदय०-उवसम०-सम्मामि० ।

**विशेषार्थ**—यहां पृथिवीकायिक आदिमें उत्कृष्ट स्थितिवालोकोंका स्पर्श एकेन्द्रियोंके समान वतलाकर भी अनुकृष्ट स्थितिवालोकोंका स्पर्श अलगसे वतलाया है। उसका कारण यह है कि उपर्युक्त मार्गणाओंमेंसे कुछमें तो अनुकृष्ट स्थितिवालोकोंका दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक वन जाता है पर उनके पर्याप्तकोंमें वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है क्योंकि वादरपृथिवीकायिक पर्याप्तक आदि जीवोंने वर्तमानमें लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श किया है। वस इतनी विशेषताके लिये ही उक्त मार्गणाओंमें अनुकृष्ट स्थितिवालोकोंका स्पर्श अलगसे कहा है। वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हीं जीवोंमें प्राप्त होती है जो संज्ञी तिर्यक या मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति वांधकर पश्चान् इनमें उत्पन्न होते हैं। अब यदि इनके वर्तमान और अतीत स्पर्शका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः यहां उक्त मार्गणाओंमें सब लोक प्रमाण स्पर्शका निषेध किया है। यद्यपि वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागका और सब लोकका स्पर्श करते हैं किन्तु मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जब विचार करते हैं तब उनका लोकके संख्यातवें भागके स्थानमें लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण ही स्पर्श प्राप्त होता है, क्योंकि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यक या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके पश्चान् वादर पर्याप्त वायुकायिकोंमें उत्पन्न होते हैं। उनके वर्तमान कालीन स्पर्शका योग लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण ही होता है। हां यदि अतीत कालीन उपपादकी अपेक्षा इसका विचार करते हैं तो वह सब लोक वन जाता है।

§ १२६. वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। कार्मणकाययोगियोंमें माहनीय की उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सबलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिद्वानी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिशाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिए।

**विशेषार्थ**—वैक्रियिक काययोगमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवालोकोंका स्पर्श तीन प्रकार का वतलाया है। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श वर्तमानकालकी अपेक्षा वतलाया है, क्योंकि वैक्रियिककाययोगियोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। अतीतकालीन स्पर्श पदविशेषोंकी अपेक्षा दो प्रकारका है, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु। इनमेंसे पहला विहारवन् स्वस्थान, वेदना, कयाव और वैक्रियिक

§ १३०. संजदासंजद-संजद० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० लोग० असंखे०-भागो छचोदस भागा वा देसूणा । एवं सुक्कले० । तेउले० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो ।

§ १३१. किण्ह०-णील०-काउ० उक्क० के० खे० पो० ? लोंग० असंखे०-भागो छ-चदु-वे-चोदसभागा देसूणा । अणु० सन्वलो० ।

§ १३२ खइय० मोह० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०-भागो अट्टचोदस भागा वा देसूणा ।

§ १३३. सासण० मोह० उक्क० लोग० असंखे०-भागो अट्टचोदस भागा वा देसूणा । अणुक्क० अट्ट-वारहचोदस भागा वा देसूणा । असण्णि० एइंदियभंगो ।

पदेकी अपेक्षा कहा है और दूसरा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कहा है । कामणकाययोगियोंका स्पर्श यद्यपि सब लोक है किन्तु यहां उत्कृष्ट स्थितियालोकका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग है और अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु है, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति संबन्धी पर्याप्तके ही होती है । अब यदि ऐसे जीव दूसरे समयमें मरकर कामणकाययोगी होते हैं तो उनका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिये यहां वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग कहा । तथा उत्कृष्ट स्थितिवाले कामणकाययोगियोंने अतीत कालमें नीचे कुछ कम छह राजु और ऊपर कुछ कम सात राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है अतः इनका अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु कहा । आभिनिवोधिकज्ञानादि मार्गणाश्रमों उस मार्गणाका जो स्पर्श है वही यहां उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

§ १३०. संयतासंयत जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ल-लेश्यावाले जीवोंका स्पर्श है । पीतलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सौधर्मके देवोंके समान है । तथा पद्मलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सहस्रार स्वर्गके देवोंके समान है ।

§ १३१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागों में से कुछ कम छह, चार और दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३२. चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३३. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ

अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं उक्कस्सपोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १३४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिइदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० के० खे० पो० ? लोम० असंखे० भागो । अज० सव्वलोगो । एवं काययोगि-ओरालि०-णवुंस०-चचारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति ।

§ १३५ आदेसेण णेरइय० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । पढमाए खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति मोह० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्स० भंगो ।

और कुछ कम चारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंखी जीवोंका स्पर्श एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अनाहारी जीवोंका स्पर्श कार्मणकाययोगियोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—संयतासंयतके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेके पहले समयमें होती है पर उस समय मारणान्तिक समुद्घात सम्भव नहीं, अतः इन दोनों मार्गणाश्रमोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग कहा है और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श इन मार्गणाश्रमोंके स्पर्शके समान ही कहा है । कृष्ण लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सातवें नरककी मुख्यतासे, नील लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श पांचवें नरककी मुख्यतासे और कापोत लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श तीसरे नरककी मुख्यतासे कहा है । सासादनोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्श बतलाया है वह देवोंकी प्रधानतासे कहा है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १३६. अथ जघन्य स्पर्शनानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघ निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंने सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार काययोगी औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षणक्षणमें प्राप्त होती है और क्षणकोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है अतः यहाँ ओघसे जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श-लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक है यह स्पष्ट ही है । मूलमें गिनाई गई काययोगी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें ओघके समान स्पर्श बन जाता है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

§ १३७. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवों का स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंके समान है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शके समान है ।

§ १३६, तिरिक्ख० मोह० जह० अजह० के० खे० पोसिदं ? सव्वलोगो । एवं सव्वेइंदिय-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त - तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुम-वाउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तये०-तस्सेव अपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणि-गोद०-ओरालियमिस्स-फम्मइय-मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-असंजद-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । एत्थ खेत्तभिम भणिदविहाणेण मूलुच्चारणाए पाठ-भेदो अणुगंतवो । तद्विप्पाएण तिरिक्खेसु लोगस्स असंखे० भागमेत्तपोसणुवलंभादो ।

**विशेषार्थ--**नारकियोंमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोक का क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वतलाया है । स्पर्श भी उतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो असंखी नरकमें उत्पन्न होते हैं जन्हीं नारकियोंके विग्रहके दूसरे समयमे जघन्य स्थिति होती है । किन्तु असंखी जीव पहले नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और पहले नरकका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है अतः सामान्यसे नारकियोंमे जघन्य स्थितिवालोक स्पर्श क्षेत्रके समान वतलाया है । अजघन्य स्थितिवालोकमें जघन्य स्थितिवालोक छोड़कर शेष सबका समावेश हो जाता है अतः सामान्यसे अजघन्य स्थितिवालोक स्पर्श अनुकृष्टके समान वतलाया है । पहली पृथिवीके नारकियोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है अतः यहां पहली पृथिवीके जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकियोंका स्पर्श क्षेत्रके समान कहा है । दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थिति उन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें होती है जिन्होंने नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्भूत वाद् सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है । तथा सातवें नरकमें उन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके होती है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहे हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हां गये हैं । अब यदि इन जीवोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण ही प्राप्त होता है और इन द्वितीयादि नरकोंके नारकियोंका क्षेत्र भी इतना ही है अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिवालोक स्पर्श क्षेत्रके समान वतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोकके स्पर्शका तुलासा जैसा ऊपर कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये ।

§ १३६. तिर्यचगतिमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिभिक्खिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायु-कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निर्गोद, औदारिक, मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, भक्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभन्य, मिथ्यादृष्टि, असंखी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । यहां पर क्षेत्रानुगममें कही

§ १३७. सव्वपंचिदियतिरिक्खाणं जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । एवं सव्वमणुस० ।

§ १३८. देव० मोह० ज० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । भवणादि जाव आरणच्चुदे त्ति जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । उवरि खेत्तभंगो । एवं वेजन्विधमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाह्य छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

गर्ह विधिसे मूलोच्चारणाके अनुसार पाठभेद जान लेना चाहिये । उसके अभिप्रायानुसार तिर्यचोंमें लोकका असंख्यातवां भागमात्र स्पर्शन प्राया जाता है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके होती है तथा अजघन्य स्थितिवालोंमें भी एकेन्द्रिय ही मुख्य हैं और वे सब लोकमें पाये जाते हैं अतः तिर्यचोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक वतलाया है । इसी प्रकार मूलमें जो सब एकेन्द्रिय आदि मार्गाणां गिनाई हैं उनमें भी तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु मूल उच्चारणमें इन सत्रका जघन्य स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वतलाया है । सो वह स्वस्थानस्वस्थान पदकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

§ १३७. सभी पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श-क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंके समान है । इसी प्रकार सभी मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय आदि तिर्यचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति उन्हीं तिर्यचोंके पहले और दूसरे विग्रहमें होती है जो एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर उक्त तिर्यच हुए हैं । अब यदि इनके क्षेत्रका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । स्पर्शनमें भी इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अतः सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान वतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान वतलानेका कारण यह है कि अजघन्य स्थितिमें जघन्य स्थितिको छोड़कर शेष सब स्थितियोंका ग्रहण हो जाता है और इसलिये इनका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान वत जाता है । सब मनुष्योंके भी इसी क्रमसे स्पर्शनका कथन करना चाहिये । इसका यह तात्पर्य है कि सब प्रकारके मनुष्योंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पर्शके समान है ।

§ १३८. देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले देवोंके स्पर्शके समान है । भवनवासियोंसे लेकर आरण अच्युत स्वर्ग तकके देवोंमें जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले उक्त देवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले उक्त देवोंके स्पर्शके समान है । अच्युत स्वर्गके ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान है । इस प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अत-पायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्म-सांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।



§ १३६. सञ्चविगलिदिय-पंचिदियअपज्ज-० तसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्खअप-  
ज्जत्तभंगो । पंचि- [पंचि०-] पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज०  
अणुक्कस्सभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्रवृ०-  
सण्णि त्ति ।

§ १४०. वादरपुह्विपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय  
पज्ज० मोह० ज० अज० लोग० असंखे० भागो सञ्चलोगो वा । वादरवाउपज्ज०  
मोह० ज० अज० लोग० संखेज्जदिभागो सञ्चलोगो वा ।

§ १४१. वेडव्विय० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । एव-  
माभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-  
उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १४२ कालाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं ।  
दुविहो णिइ सो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० केवचिरं कालादो ?

§ १३६. सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रसअपर्याप्त जीवोंमें स्पर्श पंचे-  
न्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तकोके समान है । पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें  
मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थिति-  
विभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उन्हींके अनुत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों  
वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४०. वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक  
पर्याप्त और वादर धनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अज-  
घन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।  
वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने  
लोकके संख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १४१. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श  
उनके क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उनके अनुत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शके समान है । इसी प्रकार आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, द्वायिकसम्यग्दृष्टि,  
वेदगसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्भिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।  
इस प्रकार स्पर्शानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४२. कालानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उक्कृष्ट । उनमेंसे उक्कृष्ट कालानुगमका  
प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी

१—प्रती अज० लोग० असंखे० भागो सञ्चलोगो वा । वादरवाउपज्ज० अणुक्कस्सभंगो  
इति पाठः ।

जह० एगसमओ, उक० पलिदो० असंखे०भागो । अणुक० के० ? सव्वदा । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंच-ले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छाइदि-सण्णि-आहारि ति ?

§ १४३. पंचिंदियतिरि०अपज्ज० मोह० उक० केव० ? जह० एगसमओ,उक० आवलि० असंखे०भागो । अणुक० सव्वदा । एवं सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-पंचि-दियअपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सुक०-सम्मादि०-वेदय०-असण्णि-अणाहारि ति ।

§ १४४. मणुसतिय० मोह० उक० के० ? जह० एगसमओ, उक० अंतोसुहुत्तं । अणुक० सव्वदा । मणुसअपज्ज० मोह० उक० के० ? जह० एगसमओ, उक० आवलि० असंखे०भागो । अणुक० के० ? जह० खुदाभवगहणं समउणं । उक० पलिदो० असंखे०भागो । आणदादि जाव सव्वद० मोह० उक० केव० ? ज० एग-

अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अतुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? सर्वकाल है । इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यच, सामान्य देव, भवन-वासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेइयावाले, मच्य, अभच्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १४३. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीवोंका सत्त्व-काल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । तथा अतुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार सभी एके-न्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्र-काययोगी, कर्मणकाययोगी, अभिनित्रोधिकज्ञानी, भूतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेइयावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १४४. सामन्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अतुत्कृष्ट हूत है । तथा अतुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । लच्यपर्याप्तक मनु-ष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अतुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है । जघन्य एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट पत्योपमके असंख्यातवें

समओ, उक्क० संखेज्जा समया | अणुक्क० सव्वद्धा । एवं षणपज्ज०-संजद०-सामा-  
इय-छेदो०-परिहार०-त्वइयसम्भाइटि ति ।

§ १४५. वेउळ्वियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क०  
आवलि० असंखे० भागो । अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।  
एवमुवसम०-सम्भामि० वत्तन्वं ।

§ १४६. अवगद० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया ।  
अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमकसा०-सुहुमसांपरा०-जहक्खादे ति ।  
[ एवं आहार०-आहारमि० । णवरि आहारमि० अणुक्क० जह० अंतोमु० । ]

§ १४७. सासण० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०-  
भागो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समचो ।

भागप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-  
वाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत,  
सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना  
चाहिये ।

§ १४५. वैकिक्रिमिप्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका  
सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।  
तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्निमध्यादृष्टि  
जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १४६. अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल  
एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका  
जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अकपायी,  
सूत्रमसांपराधिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए । इसी प्रकार आहारक व  
आहारकमिश्रकाययोगियोंके जानना चाहिए । परन्तु आहारकमिश्रकाययोगमें अनुत्कृष्ट स्थिति  
विभक्तिवालोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है ।

§ १४७. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका  
जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ--नाना जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध कमसे कम एक समय तक  
और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग कालतक होता है । इसके पश्चात् एक भी जीव  
मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करनेवाला नहीं रहता, इसलिए नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकी

उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गाणाएँ हैं जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित होती है, अतः उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा । उन मार्गाणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं । इनके अतिरिक्त और जितनी मार्गाणाएँ हैं उनमेंसे आठ सान्तर मार्गाणाओंको तथा अपगतवेद, अकषाय और यथाख्यातसंयत इन तीन मार्गाणाओंको छोड़कर शेष सब मार्गाणाओंको अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल सर्वदा है, क्योंकि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । तथा उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय है, क्योंकि इन मार्गाणाओंमें एक समयतक उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होकर दूसरे समयमें उसका विरह सम्भव है । हां इनमें उत्कृष्टकाल भिन्न भिन्न प्रकार पाया जाता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है । फिर भी यहाँ उसके कारणका संक्षेपमें विचार कर लेते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकोमें एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । अब यदि नाना जीव निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिके धारक हों तो वे आबलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे उसके बाद इनमें उत्कृष्ट स्थितिका नियमसे अन्तरकाल आ जाता है, अतः इनमें उत्कृष्टस्थितिका उत्कृष्ट काल आबलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । मूलमें निर्दिष्ट सब एकेन्द्रिय आदि कुछ मार्गाणाओंकी स्थिति इसी प्रकारकी है अतः इनमें भी उत्कृष्टस्थितिका उत्कृष्ट काल उत्कृष्टकाल कहा । सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्योंमें एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । परन्तु इनका प्रमाण संख्यात है अतः लगातार संख्यात नाना जीव भी क्रमशः यदि उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हों तो भी उस सब कालका जोड़ अन्तमुहूर्तसे अधिक नहीं होगा । यही कारण है कि इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । यद्यपि सामान्य मनुष्योंकी संख्या असंख्यात है फिर भी यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके प्रकरणमें सामान्य मनुष्योंमें लब्धपर्याप्त मनुष्य प्रधान नहीं हैं । आनतादि कल्पोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है जिसका काल एक समय है और यहाँ मनुष्य जीव ही मरकर उत्पन्न होते हैं । अब यदि आनतादि कल्पोंमें उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव लगातार उत्पन्न हों तो संख्यात समय तक ही उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि उनमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य ही संख्यात हैं । अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । यही बात मनःपर्ययज्ञान आदि मूलमें गिनाई गई शेष मार्गाणाओंमें जानना चाहिए । अब रही सान्तरमार्गाणाओं और अपगतवेद आदि तोन मार्गाणाओंकी बात । सो इनमें कालका खुलासा निम्न प्रकार है—लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । अब यदि अन्तरके बाद नाना जीव एक साथ उत्कृष्ट स्थितिके धारक हुए तो दूसरे समयमें उनकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति हो जायगी अतः लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा भी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । यही बात शेष मार्गाणाओंमें जज्ञ लेना चाहिए । लब्धपर्याप्तक मनुष्य यदि निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिके धारक होते रहे तो आबलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक ही होंगे, अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल आबलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । यही बात वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मार्गाणाओंके विषयमें जानना चाहिये । तथा उत्कृष्ट स्थितिके धारक लब्धपर्याप्तक मनुष्य एक साथ उत्पन्न हुए और दूसरे समयसे उनका उत्पन्न होना ही बन्द हो गया ता लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम खुदासवग्रहण प्रमाण प्राप्त होगा । तथा लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्टकाल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल भी इतना ही प्राप्त होता है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट

§ १४८. जहणए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा सामया । अज० सवद्धा । एवं विदि-यादि जाव छट्ठि त्ति मणुसतिय-जोदिसियादि जाव सव्वट्ठ०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०--तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०--मणपज्ज०-विहंग०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परि-हार०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंसण०-तिण्णिले०-भवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-सण्णि०-आहारि० त्ति ।

§ १४९. आदेसेण णेरइघेसु मोह० जह० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०-भागो । अज० केव० ? सवद्धा । एवं पढमाए । एवं सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव०-भवण०-वाण०-सव्वविगल्लिदिय-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्वं । सत्तमाए० मोह०

काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जानना । नाना जीवोंकी अपेक्षा भी वैकृतिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मध्यादृष्टि जीवोंका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । यदि मनुष्य उपशमश्रेणी पर निरन्तर चढ़े तो संख्यात समय तक ही चढ़ेगे और उन सवके कालका जोड़ अन्तमुहूर्त ही होगा अतः अपगतवेद, अक-षाय, सूक्ष्मसम्परायसंयम और यथाख्यातसंयममे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । सासादनसम्यक्त्वका जघन्यकाल एक समय है अतः इसमे अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४८. अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्ति-वाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैकृतिक काययोगी, तीनों वेद-वाले, क्रोधादि चारों कर्षावाले, आभिनिर्वोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अर्धविज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, विभंगज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेख्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि, सब्बी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४९. आदेश निर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? सर्वदा है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये । सातवीं पृथिवीमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्ति

जह० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । अज० सव्वद्धा ।

§ १५०. तिरिक्ख० मोह० जह० अज० सव्वद्धा । एवं सव्वएइदिय-पुढवि०-  
वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादर-  
आउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[वादरतेउ०]-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वादर-  
वणप्फदिपत्तेय तस्सेव अपज्ज०-सव्ववणप्फदि-सव्वणिमोद-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-  
मदि-सुदअण्णाण-असंजद-तिण्णिले०-अभवसि०-भिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ १५१. मणुसअपज्ज० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०-  
भागो । अज० के० ? जह० खुदाभवग्गहणं विसमउणं एगसमओ वा, उक्क०  
पलिदो० असंखे० भागो ।

§ १५२. चत्तारिकायवादरपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज० जह० ज० एग-  
समओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । अज० सव्वद्धा ।

वाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाज एक समय है और उच्छ्रष्ट सत्त्वकाल पत्योपमका असंख्यातवों  
भाग है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है ।

§ १५०. तिर्यचोभे मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल  
सर्वदा है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जल-  
कायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म  
अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर  
वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर  
अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्माणकाययोगी,  
मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभन्य, मिथ्यादृष्टि, असंखी और  
अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १५१. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य  
सत्त्वकाल एक समय है और उच्छ्रष्ट सत्त्वकाल आवलीका असंख्यातवों भाग है । तथा अजघन्य  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण या  
एक समय है और उच्छ्रष्ट पत्योपमका असंख्यातवों भाग है ।

§ १५२. पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय वादर पर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक  
प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक  
समय है और उच्छ्रष्ट सत्त्वकाल पत्योपमका असंख्यातवों भाग है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्ति-  
वाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है ।

§ १५३. वेजन्वियमिस्स० मोह० जह० केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समय। अज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो। एवमुवसम०-सम्भाभि० वत्तवं। आहार० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समय। अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवमवगद० अकसा०-सुहुय०-जहाक्खाद०-संजदे चि। आहारमिस्स० मोह० जह० [ज०] एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समय। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु०।

§ १५४. सासण० मो० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समय। अज० ज० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो।

### एवं कालाणुगमो समतो।

§ १५३. वैक्रियकमिश्रकाययोगियों मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना सत्त्वकाल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। आहारककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है।

§ १५४. सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

**विशोपार्थ**—मोहनीयकी जघन्य सत्त्वस्थिति क्षपकसूक्ष्मसांपरायिक जीवके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है। तथा क्षपकश्रेणी पर चढ़नेका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है, अतः ओघसे जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। ओघसे अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मूलमें दूसरीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारकी, मनुष्यत्रिक आदि कुछ ऐसी मार्गाणां गिनाई है जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है। इसके कारण भिन्न भिन्न हैं। दूसरी पृथिवीसे लेकर नारकियोंमें और ज्योतिषियोंमें तो यह कारण है कि जो उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हों और उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तमुहूर्त कालमें सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तातुवन्वी चतुष्ककी विसंयोजना कर लें, उनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है। ऐसे जीव भरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होंगे अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा। यही कारण है कि इन मार्गाणांओमें जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। सर्वार्थसिद्धि और वैक्रियककाययोगमें भी करीब इसी प्रकारका कारण जानना चाहिये। विभंगज्ञानमें यह कारण है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपरिम प्रवेयकका देव यदि अन्तिम अन्तमुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो उस

विभंगज्ञानीके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति पाई जाती है। ये मरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनके भी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त जो शेष मार्गणाएं गिनाई हैं उनकी जघन्य स्थिति मनुष्य पर्यायमें ही प्राप्त होती है अतः उनमें भी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा। तथा इन सब मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। नारकियोंमें एक जीव की अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अब यदि इनमें नाना जीव जघन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे अतः इनमें जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी आदि मार्गणाओंमें जानना चाहिये जिनका निर्देश मूलमें किया ही है। सातवीं पृथिवीमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। तिर्यचोंमें जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अनन्त है, अतः यहाँ जघन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा। मूलमें सब एकेन्द्रिय आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। यद्यपि उनमें बहुतसी मार्गणाओंमें जीवोंका प्रमाण असंख्यात है फिर भी वह संख्या बहुत बड़ी है अतः उनमें अजघन्य स्थितिवालोंका काल सर्वदा मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं आती। लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक जीवकी अपेक्षासे एक समय है। यदि इनमें नाना जीव जघन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग कालतक ही होंगे। अतः इनमें जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असंख्यातवें भाग कहा। जो एकेन्द्रिय जीव दो विग्रहके साथ लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हो रहा है उसके प्रथम विग्रहमें अजघन्य स्थिति होकर दूसरे समयमें जघन्य स्थिति होगी और विग्रहके दो समय खुदाभवग्रहण प्रमाण आयुमेसे कम कर देने पर शेष आयुका काल भी अजघन्य स्थितिका है अतः अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय या दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण कहा है। लब्धपर्याप्तक मनुष्य सान्तर मार्गणा है जिसका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र है अतः अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवें भाग कहा। वादर पृथिवीकायिक आदि पर्याप्तकोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। यदि इनमें नाना जीव जघन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल तक होंगे अतः इनकी जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवें भाग कहा है। वैक्रियिकमिश्र काययोगयोमें जघन्य स्थिति चायिक सन्ध्याष्टि उपशांतमोहसे मरकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले जीवके वैक्रियिकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें होती है। यतः इसका जघन्यकाल एक समय है अतः इसका जघन्यकाल एक समय कहा। पर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण संख्यात है अतः इनमें निरन्तर संख्यातसे अधिक काल तक उत्पन्न नहीं हो सकते अतः इनका उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। इसी प्रकार उपक्षम सन्ध्याष्टि, सन्ध्यागमध्याष्टि, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यातसंयत और सासादनकी प्ररूपणा घटित कर लेनी चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओंमें अन्तिम समयमें ही जघन्य स्थिति विभक्ति होती है। अजघन्य स्थितिके विषयमें हर एक मार्गणाकी जो विशेषता है वह मूलमें दी ही है।

इस प्रकार कालालुंगम समाप्त हुआ।



§ १५५. अंतराणुगमो दुविहो—जहणञ्चो उक्कसओ चेदि । उक्कसए पयदं । दुविहो णिहंसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कसट्टिदिविहत्तियाण-मंतरं के० ? जह० एगसमञ्चो, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो । अणुक० णत्थ अंतरं । एवं सत्तपुढवि०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वपिगल्लिदियं-सव्वपंचिदिय-सव्वपंचकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउ व्विय०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-वत्तारिक०-मदि-सुदअ-ण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-असंजद०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण०-छलेस्सा-भवसिद्धि०-[अभव०-] सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छादि०-सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि चि ।

§ १५६. मणुसअपज्ज० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक० [ जह० एगसमओ, उक्क० ] पलिदो० असंखेभागो । एवं सासण०-सम्माभि०दिट्ठि चि । वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० ओघं । अणुक० जह० एगसमञ्चो, उक्क० वारस मुहुत्ता । आहार०-आहार-

§ १५५. अन्तराणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तराणुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा मोहनीयकी अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यक, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पांचों स्थावरकाय, सभी व्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचन-योगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, कामणकाय-योगी, तीनों-वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिवो-धिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अघधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, असंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, छहों लेखावाले, भन्य, अभन्य, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्य दृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १५६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पर्यकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है । आहारककाययोगी,

१ मूलप्रतौ विगल्लिदियपज्जपंचि इति पाठः ।

मिस्त० मोह० उक्क० ओघं । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुपत्तं । एवम-  
कसा०-जहाक्खादसंजदे ति ।

§ १५७. अवगद० मोह० उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क०  
छम्मासा । एवं सुहुमसंपराय० वत्तव्वं । उवसम० उक्क० ओघं । अणुक्क० जह०  
एगसमओ, उक्क० चउवीसमहोरत्ते । अथवा अकसा०-जहाक्खाद०-अवगद०-  
सुहुम० मोह० उक्क० वासपुपत्तं । उवसम० चउवीसमहोरत्ते० सादि० । सासण०  
पल्लो० असंखे०भागो । खइय० छम्मासा ।

### एवमुक्कस्सओ अंतराणुगमो समत्तो ।

और आहाकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल  
ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व है । इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ १५७. अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल  
ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । इसी प्रकार सूक्ष्मसांप्रायिक संयत जीवोंके कहना  
चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान  
है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल चौबीस दिन रात है । अथवा, अकषायी; यथाख्यातसंयत, अपगतवेदी और सूक्ष्म-  
सांप्रायिकसंयत जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल  
वर्षपृथक्त्व है, उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें साधिक चौबीस दिनरात है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें  
पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और क्षाधिक सम्यग्दृष्टियोंमें छह महीना है ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव यदि संसारमें न हों तो कमसे कम एक समय तक  
और अधिक से अधिक अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक नहीं होते हैं अतः यहाँ  
उत्कृष्टस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण  
कहा । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं कहा ।  
मूलमें सातों पृथिवियोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन  
जाती है अतः उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा । तथा इनके अतिरिक्त और जितनी  
मार्गणाएँ हैं उनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है अतः उन सबमें  
उत्कृष्टस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा ।  
हाँ इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका भी अन्तरकाल पाया जाता है जिसका खुलासा निम्न प्रकार  
है—लब्धपर्याप्तिक मनुष्य, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तर पल्लके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । उपशमश्रेणीका जघन्य अन्तर एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । क्षपक अपगतवेद और सूक्ष्मसंपरायसंयमका जघन्य

§ १५८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० छमासा । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-लोभकसाय-आभिणि-सुद०-ओहि०-संजद-सामाइय-छेदो-चक्खु०-अच-क्खु०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि०-आहारि ति । णवारि ओहि-णाण० वासपुधत्तं ।

§ १५९. आदेसेण णेरइएसु जह० अज० उक्कस्साणुक्कस्सभंगो । एवं सत्त-पुढवि०-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव-भवणादि जाव सव्वद्व०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदिय-

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है, अतः इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल उक्तः प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ पहले जो उपशमश्रेणीका अन्तरकाल कहा उससे मोहसंस्कर्षवाले अकपायी और यथाख्यातसंयतोंका अन्तरकाल लेना चाहिए। यहाँ अथवा कहकर कुछ मार्गणाओंके अन्तरकालमें कुछ फरक बतलाया है जो मूलमें ही दर्ज है। अकपायी, यथाख्यातसंयत, अपगतवेदी और सूक्ष्मसांपरायिक संयतमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोपशमश्रेणीमें ही होते हैं और उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है अतः अथवा कहकर इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व कहा गया है। परन्तु कुछ आचार्यों का मत यह भी रहा है कि सभी उपशम श्रेणीवालोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती बहुत कम जीवोंके होती है। अतः उनके मतानुसार अकपायी आदि में उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान अंगुलका असंख्यातवां भाग भी कहा है जो संभवतः वीरसेन स्वामीको भी इष्ट था। तथा उन्होंने अथवा कहकर दूसरे मतका भी उल्लेख कर दिया है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और ज्ञानिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरके विषयमें मतभेद जान लेना चाहिये। यह अन्तर मूलमें दिया ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १५८. अब जघन्य अन्तरानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकपायी, आभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदो-पस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेखावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञानिकसम्यग्दृष्टि, संबन्धी और आहारकोके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है।

§ १५९. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंके अन्तरकालके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर

अपज्ज०-तसअपज्ज०-चत्तारिकायवाद्दरपज्जत्त-[ वाद्दरवणप्फ०पत्तेयपज्ज०-वेउव्विय-  
कायजोगि-]विहंग०- परिहार०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदयसम्मादिहि चि ।

§ १६०. तिरिक्ख०मोह० जह० अज्जह० णत्थि अंतरं । एवं सव्वएइंदिय-चत्तारि-  
काय-तेसिं वाद्दरअपज्ज०-सुहुम०-पज्जत्तापज्जत्त-वाद्दरवणप्फदिपत्तेय०-अपज्ज०-वण-  
प्फदि-णिगोद०-वाद्दर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिम्मस०-कम्मइय०-मदि-सुद-  
अण्णाण-असंजद०-तिण्णिलेस्सि०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि चि ।

§ १६१. मणुसिणीसु मोह० ज० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । अज०  
णत्थि अंतरं । एवं मणपज्ज० । ओहिदंस० ओहिणाणिभंगो । मणुसअपज्ज० उक्क-  
स्सभंगो । वेउव्वियमिस्स० उक्कस्सभंगो । आहार०-आहारमिस्स० उक्कस्सभंगो ।

§ १६२. इत्थि०-णवुंस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । पुरिस०  
जह० जह० एगसमओ, उक्क० वासं सादिरियं । अज० तिण्हं पि णत्थि अंतरं ।

सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, पृथिवीकायिक आदि चार  
स्थावरकाय वाद्दर पर्याप्त, 'वाद्दर वनस्पति प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वैक्रियिकक्राययोगी, विभंगज्ञानी,  
परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके  
कहना चाहिये ।

§ १६०. तिर्यचोमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा अन्तरकाल  
नहीं है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, चारों स्थावरकाय, चारों स्थावरकाय वाद्दर, चारों स्थावरकाय  
वाद्दर अपर्याप्त, चारों स्थावरकाय सूक्ष्म, चारों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त, चारों स्थावरकाय सूक्ष्म  
अपर्याप्त, वाद्दर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वाद्दर वनस्पतिकाय प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सामान्य  
वनस्पति, निगोद, वनस्पतिकायिक वाद्दर, वनस्पतिकायिक वाद्दर पर्याप्त, वनस्पतिकायिक वाद्दर  
अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त,  
वाद्दर निगोद, वाद्दर निगोद पर्याप्त, वाद्दर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त,  
सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी,  
असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभन्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ १६१ मनुष्यिनयोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल  
एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका  
अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके जानना चाहिये । अवधिदर्शनवाले जीवोंके  
अवधिज्ञानवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें इनके उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति-  
वाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें इनके उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । तथा आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी  
जीवोंमें इनके उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

§ १६२. स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । पुरुषवेदी जीवोंमें जघन्य स्थिति-

अवगद० मोह० ज० ज० एगसमओ, उक्क० छमासा । एवमजहण्णट्टिदीए वि  
वत्तव्वं । एवं सुहुमसंप० । कोह०—माण०—माय० पुरिस०भंगो । अकसाय० उक्कस्स-  
भंगो । एवं जहाक्खाद० वत्तव्वं । उवसम०—[सासण०—]सम्माप्पि० उक्कस्सभंगो ।  
एवमंतराणुगमो समत्तो ।

विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है । तथा तीनों ही वेदवाले जीवोंमें अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । अगता-  
वेदियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और  
उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा इनके अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा भी इसीप्रकार  
कथन करना चाहिये । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके कहना चाहिये । क्रोध, मान और  
माया कषायवाले जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कहना चाहिये । अकषायी जीवोंके इनके उत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना  
चाहिये । तथा उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके इनके उत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

**विशेषार्थ—** जब एक समयके अन्तरसे जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका  
जघन्य अन्तरकाल एक समय पाया जाता है और जब छह महीनाके अन्तरसे जीव क्षपकश्रेणीपर  
चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना पाया जाता है । ओघसे अजघन्य स्थितिका  
अन्तर नहीं है यह तो स्पष्ट ही है । सामान्य मनुष्य आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें  
भी इसी प्रकार अन्तर समझना चाहिये, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें वे सब मार्गणाएं सम्भव हैं अतः  
उनमें जघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान बन जाता है । और वे मार्गणाएं निरन्तर हैं अतः  
उनमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं पाया जाता । किन्तु अवधिज्ञानी जीव यदि क्षपकश्रेणी पर  
न चढ़ें तो वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं चढ़ते हैं अतः इनमें जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथ-  
क्त्व कहा है । सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका  
अन्तर इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है । सामान्य तिर्यक आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं  
हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः इनमें उनका अन्तर-  
काल सम्भव नहीं । मनुष्यिनी, मनःपर्ययज्ञानी, खीवेद और नपुंसकवेद इन मार्गणाओंमें क्षपक-  
श्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः इनमें जघन्य स्थितिका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । यही बात अवधिदर्शनकी है । पर  
इनमें अजघन्य स्थितिका अन्तरवाला नहीं पाया जाता । लब्धपर्याप्तकमनुष्य, वैक्रियकमिश्रकाय-  
योगी, आहारकषाययोगी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर इनकी उत्कृष्ट और  
अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । पुरुषवेदमें कमसे कम  
एक समय तक और अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक क्षपकश्रेणी नहीं प्राप्त होती, अतः  
इसमें जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा  
है । किन्तु इसमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है । मोह  
सत्कर्मवाले क्षपक अपगतावेद और क्षपक सूक्ष्मसम्पराय संयमकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है अतः इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा । क्रोध, मान और माया कषायका कथन पुरुषवेदके  
समान है, क्योंकि इन तीनों कषायोंका क्षपकश्रेणीमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर  
साधिक एक वर्ष पाया जाता है । मोहनीयसत्कर्मवाले अकषायी और यथाख्यातसंयत उपशमश्रेणीमें

§ १६३. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

§ १६४. अप्पाबहुआणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविधो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा मोहो उक्कस्स-द्विदिविहत्तिया जीवा । अणुक्क० अणंतगुणा । एवं तिरिकव-सव्वएइंदिय-सव्ववणफ्फदि०-सव्वणिओद०-कायजोगि०-ओसलिय०-ओरालियमिस्स०--कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण०--असंजद-अचक्खु०--तिणिले०--भवसि०--अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०--अणाहारि ति ।

§ १६५. आदेसेण णेरइएसु मोहो सव्वत्थोवा उक्क० । अणुक्क० असंखेज्ज-गुणा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंच-वचि०-वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-

ही होते हैं अतः इनमे जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान बन जाता है । इसी प्रकार उपशम सम्यक्त्व, सासादन और सम्यग्मिध्यात्वमे उत्कृष्ट स्थितिके समान अन्तर जानना, क्योंकि ये तीनों सान्तर मार्गणाएँ हैं अतः इनके जघन्य स्थितिके अन्तरमें उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरसे कोई विशेषता नहीं आती ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

भावाणुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदायिक भाव है ।

इस प्रकार भावाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १६४. अल्पबहुत्वाणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेसे उत्कृष्ट अल्प-बहुत्वाणुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्टस्थितिबिभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव अनन्तरगुणे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र-काययोगी, कर्मणकाययोगी, नरुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंब्धी, आहारक और अनारहक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १६५. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव असंख्यातरगुणे हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, सभी ब्रह्म, पौषों मनोयोगी, पौषों वचनयोगी, चैक्रियकाययोगी,

संजदासंजद-चक्रु०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादि-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०  
सम्माभि०-सणित्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी०-सवत्रथोवा उक्क० । अणुक्क० संखेज्ज-  
गुणा । एवं सव्वद्व०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसाय०-मणपज्ज०-  
संजद-सामाइय-खेदो०-परिहार०-सुहुमसांपरा०-जहाकवादसंजदे त्ति ।

एवमुक्कस्सअप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

§ १६६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण जह० अजह० उक्कस्स०भंगो । एवं कायजोगि-ओरालि०-णवंसु०-चत्तारिकसा०-  
अचक्रु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ १६७. आदेसेण णेरइएसु मोह० जह० अज० उक्कस्साणुक्कस्सभंगो । एवं  
सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद-सव्व-  
एइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छक्काय०-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालियमिस्स०-  
वेडविय०-वेडवियमिस्स०-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-  
आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-असंजद-चक्रु०-ओहिदंस-पंचले०-सुक्क०-

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अचधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियामें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारक-काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मनःप्रययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, ज्ञेदोपस्थापनासंयत, परिहारविद्युद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपराधिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६६. अब जघन्य अल्पबहुत्वानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अल्पबहुत्वके समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६७. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अल्पबहुत्वके समान है । इसी प्रकार सातो पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामेणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्पज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अचधिज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनी, अवधि-

अभव०-सम्मादि०-खड्य०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि०-मिच्छादि०-सणिण-  
असणिण-अणाहारि ति ।

§ १६८. मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वत्थोवा जह० । अजह० सखेज्जगुणा ।  
एवं सव्वद्व०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाह्य-  
छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खादसंजदे ति ।

एवमप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

—:०:—

एवं चउवीस-अणियोगद्वाराणि समत्ताणि ।

§ १६९. भुजगारे तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्वाराणि-समुक्चित्तादि जाव  
अप्पावहुए ति । समुक्चित्ताणुगमेण दुविहो णिहंसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण मोह० अत्थि भुज०-अप्पद०-अवट्ठिदविहत्तिया जीवा । एवं सत्तसु पुढवीसु  
सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय-सव्वविगळिंदिय-  
सव्वपंचिंदिय-पंचकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालिय-  
मिस्स-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय-तिणिवेद-चत्तारिकसा०-मदि-सुदअण्णाण०-  
विहंग०-असंजद०-चक्खु-अचक्खु०-पंचलेस्सा०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि०-

दर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-  
सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संबी, असंबी  
और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६८. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े  
हैं । इनसे अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुरो हैं । इसी प्रकार सर्वाथिसिद्धिके देव,  
आहारकक्राययोगी, आहारकमिश्रक्राययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत,  
सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, पहिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात-  
संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।

—❧—

§ १६९. भुजगार स्थितिविभक्तिके कथनमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्वतक तेरह  
अनुयोगद्वार हैं । उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और  
आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थिति-  
विभक्तिवाले जीव हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, सभी मनुष्य, सामान्य  
देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी  
पंचेन्द्रिय, पांचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदा-  
रिकक्राययोगी, औदारिकमिश्रक्राययोगी वैक्रियिकक्राययोगी, वैक्रियिकमिश्रक्राययोगी, कामण-  
क्राययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत,  
चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संबी, असंबी,



सण्ण-असण्ण-आहारि-अणाहारि चि ।

§ १७०. आणदादि जाव सन्वद्व० मोह० अत्थि अप्पदरविहत्तिया । एवमाहार०-  
आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-  
छेदो०-परिहार०-सुहूमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-मुक्क०-  
सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवं समुक्त्तिणाणुगमो समत्तो ।

§ १७१. साभित्ताणुगमेण दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मोह० भुज० अवटि० कस्स ? अण्णद० यिच्छादिद्विस्स । अप्पदर० कस्स ? अण्ण०

आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १७०. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी अल्पतर स्थिति-  
विभक्तियाले जीव हैं । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी,  
अकपायी, अभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत,  
छेदोपस्थापनासंयत, परिहारावशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत,  
अवधिदर्शनी शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,  
सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनोंका विचार  
किया जाता है । इसके अवान्तर अधिकार तेरह हैं । जो निम्न हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक  
जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन,  
काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व । इनमेंसे पहले यहां समुत्कीर्तनाका विचार करते हैं—ओघसे  
भुजगारस्थितिवाले, अल्पतर स्थितिवाले और अवस्थित स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं । जो कर्म  
स्थितिसे अधिक स्थितिको प्राप्त हो उसे भुजगारस्थितिवाला कहते हैं । जो अधिक स्थितिसे  
कम स्थितिको प्राप्त हो उसे अल्पतरस्थितिवाला कहते हैं और जिसकी पहले समयके समान दूसरे  
समयमें स्थिति रहे उसे अवस्थित स्थितिवाला कहते हैं । इस प्रकार ओघकी अपेक्षा इन तीनों  
प्रकारके जीवोंका पाया जाना सम्भव है । सातों पृथिवीके नारकी आदि प्रायः बहुत सी मार्ग-  
णाओमें इसी प्रकारकी स्थिति है अतः वहां भी ओघके समान तीनों प्रकारकी स्थितिवाले जीव  
जानना चाहिये, क्योंकि जिन भार्गणाओमें मिथ्यादर्शन सम्भव है वहां तीनों विभक्तियां बन सकती  
हैं । केवल आनतसे लेकर नौ प्रैवयक तकके देव तथा शुक्ललेख्यावाले इसके अपवाद हैं । किन्तु  
आनतादि कल्पोंमें, शुक्ललेख्यामें और सम्यग्दर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली शेष भार्गणाओमें पहले  
समयमें प्राप्त हुई स्थितिसे द्वितीयादि समयोंमें स्थिति उत्तरोत्तर घटती जाती है, अतः इनमें  
केवल एक अल्पतर स्थिति ही जाननी चाहिये ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १७१. स्वामित्वाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्ति किसके होती  
है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी

सम्मादिद्विस्स मिच्छाद्द्विस्स वा । एवं सत्तसु पुढवीसु तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय-  
मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-  
पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्विय-  
मिस्स०-कम्मइय०--तिणिवेद-चत्तारिकसा०-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्सा-  
भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि०-अणाहारि चि ।

§ १७२. पंचिदियतिरि०अपज्ज० मोह० भुज० अप्पद० अवट्ठि० कस्स ?  
अण्णदरस्स । एवं मणुसअपज्ज०-सन्वएइंदिय-सन्वविमालिंदिय-पंचिदियअपज्ज०-  
पंचकाय-तसअपज्ज०-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि चि ।

§ १७३. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे चि अप्पदर० कस्स ? अण्ण० सम्मा-  
दिद्विस्स मिच्छादिद्विस्स वा । [एवं सुक्क० ।]णवाणुदिसादि जाव सन्वट्ठे चि अप्पदर० कस्स ?  
अण्णदरस्स सम्माद्द्विस्स । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-  
सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय०-झेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-  
जहाक्खाद०संजद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदग०-उवसम०-  
सासण०-सम्मामिच्छादिद्वि चि ।

एवं सामिच्चाणुगमी समचो ।

सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य  
तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार स्वर्गतकके  
देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी,  
औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मण-  
काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले,  
कृष्णादि पांच लेखावाले, भव्य, संज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १७२. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित  
स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सभी  
एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, मत्यज्ञानी,  
श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाये ।

§ १७३. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्ति  
किसके होती है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । इसी प्रकार शुक्ल  
लेखावालोंके कहना चाहिये । नौ अनुदिशिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थिति-  
विभक्ति किसके होती है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी,  
आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनः-  
पयेयज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, जेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत,  
यथाख्यातसंयत, संयतासयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-इस वातका उल्लेख हम पहले कर आये हैं कि मिथ्यादृष्टिके भुजगार आदि तीनों

§ १७४. कालानुगमणं दुविहो गिहंसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुजं जहं एगसमओ, उक्कं चत्तारिं समया । अप्पदं जहं एगसमओ, उक्कं तेवद्विसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि अंतोमुहुत्तंभहि एहि सादिरेयं । अवद्विदं जहं एगसमओ, उक्कं अंतोमुं । एवमचक्खुं—भवसिद्धिं ।

स्थिति विभक्तियां सम्भव हैं और सम्यग्दृष्टिके केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही सम्भव है । इस अनुयोगद्वारमें इसी दृष्टिसे विचार किया गया है । पूर्वोक्त सूचनानुसार सामान्य सिद्धान्त यह निष्पन्न हुआ कि सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव तीनों स्थिति विभक्तियोंके स्वामी हैं और सम्यग्दृष्टि जीव केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्तिके ही स्वामी हैं । आदेशकी अपेक्षा भी विचार करनेका मूल यही है । आनतसे लेकर नौ भ्रैवैयक तकके देवोंको व शुक्ललेखावालोंको छोड़कर शेष जिन मार्गणाओमें मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन सम्भव है वहां मिथ्यादृष्टियोंको तीनों स्थिति विभक्तियोंके स्वामी जानना चाहिये और सम्यग्दृष्टियोंको केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्तिका ही स्वामी जानना चाहिये । ऐसी मार्गणाओके नाम मूलमें गिनाये ही हैं । इतना विशेष जानना कि यहां सम्यग्दृष्टि पदसे सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि इनके भी एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही होती है । मनुष्य अपर्याप्त आदि कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें एक मिथ्यादर्शन ही सम्भव है अतः यहां तीनों स्थिति विभक्तियोंका स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव होता है । यद्यपि इस कसायपाहुडके अनुसार इनमें कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें सासादनसम्यक्त्व भी पाया जाता है पर उसकी अपेक्षासे यहां पृथक् कथन नहीं किया । फिर भी उसकी अपेक्षा विचार करने पर एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही प्राप्त होती है । अर्थात् ऐसे एकेन्द्रियादि जीव जो सासादनसम्यग्दृष्टि होंगे वे सासादनसम्यक्त्वके काल तक एक अल्पतर स्थिति विभक्तिके ही स्वामी होंगे । आनत कल्पसे लेकर नौ भ्रैवैयक तकके देवोंके तथा शुक्ल-लेखावालोंके मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन दोनों सम्भव हैं फिर भी यहां एक अल्पतर स्थिति ही होती है, अतः उक्त स्थानोंमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवको अल्पतर स्थिति विभक्तिका ही स्वामी धतलाया है । शेष मार्गणाओमें अल्पतर स्थिति विभक्तिका स्वामी सम्यग्दृष्टि ही होता है, क्योंकि उनमें मिथ्यादर्शन सम्भव ही नहीं है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७४. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार स्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय हैं । अल्पतर स्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर हैं । अवस्थितस्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त हैं । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—किसी जीवने एक समय तक भुजगार स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें वह अल्पतर या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने लगा तो भुजगारका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव पहले समयमें अद्वाच्यसे स्थितिको बढ़ाकर बंधता है, दूसरे समयमें संक्षेपच्यसे स्थितिको बढ़ाकर बंधता है, तीसरे समयमें भरकर और एक विग्रहसे संक्षियोंमें उत्पन्न होकर असंक्षियों के योग्य स्थितिको बढ़ाकर बंधता है और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके संक्षीके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बंधता है तब उस जीवके भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय प्राप्त होता है, इस प्रकार भुजगार स्थितिका जघन्यकाल

एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय समझना चाहिये। इसका विशेष खुलासा इस प्रकार है— यहाँ एक स्थितिके बन्धके योग्य कालको अद्धा कहा है। जो कमसे कम एक समयतक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होता है। तात्पर्य यह है कि किसी जीवके विचक्षित एक स्थितिका बन्ध हो रहा है तो वह बन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक होगा। इसके पश्चात् वह बदल जायगा और तब उससे न्यून या अधिक स्थितिका बन्ध होने लगेगा। पर यहाँ भुजगारकी स्थिति विवक्षित है अतः अधिकका बन्ध कराना चाहिए। पर इस प्रकार अद्धाक्षयसे बंधनेवाली स्थितिमें फरक पड़ जानेपर भी स्थितिबन्धके कारणभूत संक्लेशरूप परिणामोंमें नियमसे बदल होगा ही यह नहीं कहा जा सकता। किसी जीवके अद्धाक्षयके साथ संक्लेशक्षय हो जाता है और किसी जीवके अद्धाक्षयके पश्चात् भी संक्लेशक्षय होता है। केवल अद्धाक्षयके होने पर स्थितिमें अधिकसे अधिक वृद्धि पत्यके असंख्यातवै भागप्रमाण ही हो सकती है अधिक नहीं, क्योंकि एक एक क्रोधादि क्रमारूप परिणामखण्ड उक्त प्रमाण स्थितिबन्धका ही कारण होता है। पर संक्लेश क्षयके होने पर अधिकसे अधिक संख्यात सागर स्थिति बढ़ सकती है और घट भी सकती है। किन्तु यहाँ भुजगारकी विवक्षा है, इसलिये वृद्धि ही लेनी चाहिये। इस प्रकार जब किसी एकेन्द्रिय जीवके पहले समयमें अद्धाक्षयसे स्थितिमें वृद्धि होती है, दूसरे समयमें संक्लेशक्षयसे स्थितिमें वृद्धि होती है। तब उसके भुजगारके दो समय तो एकेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हो जाते हैं। तथा वह जीव यदि तीसरे समयमें मरा और एक मोड़के साथ संज्ञियोगे उत्पन्न हुआ तो उसके तीसरे समयमें असंज्ञीके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगेगा और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण कर लेनेके कारण संज्ञीके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगेगा। इस प्रकार उसी जीवके भुजगारके दो समय संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हुए। इस तरह भुजगारके कुल समय चार हुए। अतः भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल चार समय कदा। जो जब एक समय तक अल्पतर स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके अल्पतरका जघन्यकाल एक समयका पाया जाता है। तथा जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त काल तक अल्पतर स्थितिका बन्ध किया। अनन्तर वह तीन पत्यकी आयु लेकर भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ आयुमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर उसने सम्यक्त्वको ग्रहण किया। अनन्तर वह छद्यासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यग्मिथ्यात्वमें रहा और वहाँसे पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरी बार छद्यासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् मिथ्यात्वमें गया और इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया और वहाँसे च्युत होकर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक उसने अल्पतर स्थितिबन्ध किया पश्चात् वह भुजगार स्थितिबन्ध करने लगा। इस प्रकार अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एक सौ त्रैसठ सागर प्राप्त होता है। एक स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि कोई जीव स्थितिबन्धके समान स्थितिका बन्ध करता है तो वह कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक ही ऐसा कर सकेगा इसके पश्चात् उसके नियमसे अल्पतर या भुजगार स्थितिका बन्ध होने लगेगा, अतः अवस्थित स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। अचक्षुवशेन और भव्य ये दो मार्गणाएँ छद्मस्थ जीवके सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों दशाओंमें सर्वदा रहती हैं अतः इनमें ओषध प्ररूपणा वन जाती है, और इसीलिए इनके कथनको ओषधके समान कहा।

§ १७५. आदेसेण खेरइय०.मोह० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० वे समया । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अवट्टि० ओघ-भंगो । पढमादि जाव सत्तमि चि भुज०-अवट्टि० णिर०ओघं । अप्प० जह० एग-समओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्टिदी देसूणा ।

§ १७६. तिरिक्ख० मोह० भुज० अवट्टि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पल्लिदीवमाणि सादिरेयाणि अंतोमुहुत्तेण । पंचिदियतिरिक्ख०-पंचि-तिरिक्खपज्ज०-पंचि०तिरिक्खजोणिणीसु भुज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद०-अवट्टि० तिरिक्खोघं । पंचि०तिरि०अपज्ज० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद०-अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं

§ १७५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोमे मोहनीयकी भुजगार स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय हैं । अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर हैं । तथा अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान हैं । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमे भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान हैं । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण हैं ।

**विशेषार्थ**—नरकमे अद्वाक्षय और संक्लेशक्षयसे दो भुजगार समय प्राप्त होते हैं अतः यहाँ भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा । कोई एक असंज्ञी दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न हुआ और उसके यदि दूसरे विग्रहमें अद्वाक्षयसे तीसरे समयमे शरीरको ग्रहण करनेसे तथा चौथे समयमे संक्लेशक्षयसे भुजगार स्थितिवन्ध हुआ तो इस प्रकार नरकमें भुजगार स्थितिके तीन समय भी प्राप्त हो सकते हैं पर यहाँ पहले कथनकी ही मुख्यता है अतः उच्चारणावृत्तिमे उसीका उल्लेख किया है । जिस जीवने नरकमे उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यक्त्वका ग्रहण कर लिया है और जो अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यात्वमे गया उसके नरकमे अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । शेष कथन ओघके समान घटित कर लेना चाहिए । इसी प्रकार प्रथमादि नरकोमे भी कथन करना चाहिये । किन्तु वहाँ अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना चाहिये । यद्यपि पहले नरकमे सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है और उसके अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है । किन्तु ऐसा जीव पहले नरककी उत्कृष्ट स्थितिके साथ नहीं उत्पन्न होता अतः पहले नरकमे भी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक सागरप्रमाण प्राप्त होता है ।

§ १७६. तिर्यञ्चोमे मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है । पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तक और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिमती जीवोमे भुजगार स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल सामान्य तिर्यञ्चोके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोमें भुजगार स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

पंचिंअपज्ज० ।

§ १७७. मणुसतिय० भुज०-अवट्ठि० णिरओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पळ्ळिदोवमाणि पुव्वकोडित्तिभागेण सादिरेयाणि । मणुसिणीसु अंतो-मुहुत्तेण सादिरेयाणि । मणुसअपज्ज० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० वे समया । अप्पद०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ १७८. देवेषु भुज०-अवट्ठि० णिरओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क०

काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवो के जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ—**त्रिस तिर्यचने पूर्व पर्यायमें अन्तमुहूर्त तक अल्पतर स्थितिका वन्ध किया । पश्चात् मरकर तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो गया उसके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पल्य पाया जाता है । सामान्य तिर्यचोंमें शेष कथन ओघके समान है । यदि कोई अन्य इन्द्रियवाला जीव पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहला समय अद्वाक्षयसे दूसरा समय शरीरको ग्रहण करनेसे और तीसरा समय संक्लेशक्षयसे भुजगार स्थितिका प्राप्त होता है, अतः इनमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल तीन समय बड़ा । शेष कथन सुगम है । पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक और पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है अतः इनके अल्पतर और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ १७९. सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । अल्पतर स्थिति-भिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पल्य है । मनुष्यनियोंमें अल्पतर स्थितिभिक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पल्य है । मनुष्य अपर्याप्तकोमें भुजगार स्थितिभिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिभिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ—**सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंमेंसे एक पूर्वकोटिकी आयु-वाले जिस मनुष्यने त्रिभागके शेष रहनेपर मनुष्यायुका वन्ध करके पद्भ्वात् क्षायिकसन्धग्रहणको प्राप्त कर लिया है वह मरकर उत्तम भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयुके साथ उत्पन्न होता है । इसके त्रिभागसे लेकर अन्त तक निरन्तर स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिका ही वन्ध होता रहता है अतः अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य प्राप्त होता है । किन्तु सन्धग्रहण जीव मरकर खीवेदी नहीं होता अतः मनुष्यनियोंके अल्पतर स्थितिका काल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पल्य ही प्राप्त होगा । यहां अन्तमुहूर्तसे पूर्व पर्यायके और तीन पल्यसे उत्तम भोग-भूमिके अल्पतर स्थितिके कालका ग्रहण करना चाहिये । लब्धपर्याप्तक मनुष्यका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इसके अल्पतर और अवस्थितस्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ १८०. देवोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तिका काल सामान्य नारकियोंके

तेतीस सागरोवमाणि । भवणादि जाव सहस्सारे त्ति एवं चेव । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । भवण०-वाण०-जोदिसि० सगट्ठिदी अंतो-मुहुत्तूणा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० जह० जहणट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी ।

§ १७६. एइंदिय०भुज०-अवट्ठि० यणुसभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो असंखे०भागो । एवं वादरेइंदिय-सुहुमेइंदिय-चत्तारिकाय-तेसिं वादर-सुहुम-वणप्फदि-वादरवणप्फदि-सुहुमवणप्फदि-णिगोद-वादरणिगोद-सुहुमणिगोदे त्ति । एदेसिं पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च एवं चेव । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगु-क्कस्सट्ठिदी ।

§ १८०. विगलिंदिय-विगलिंदियपज्जत्ताणं भुज०-अवट्ठि० एइंदियभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । विगलिंदियअपज्ज० भुज०-अवट्ठि०

समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतक इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । उसमें भी भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ-भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार तकके देवोंके तीनों प्रकारकी स्थितियोंका वन्ध होता है । अतः सहस्रार स्वर्गतक अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त हो जाता है । पर इतनी विशेषता है कि भवन-त्रिकोंमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता अतः वहां अल्पतरका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा । किन्तु आनतसे सर्वार्थसिद्धितक अल्पतर स्थितिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा, क्योंकि वहां एक अल्पतर स्थितिका ही वन्ध होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ १७६. एकेन्द्रियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल मनुष्योंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके वादर और सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर निगोद और सूक्ष्म निगोद जीवोंके जानना चाहिये । इन वादर एकेन्द्रिय आदिके जो पर्याप्त और अपर्याप्तक भेद हैं उनके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

§ १८०. विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय

विगलिदियभंगो । अप्पद० मणुसअपज्जत्तभंगो ।

§ १८१. पंचि०-पंचि०पज्ज० भुज०-अवट्ठि० पंचि०तिरिक्खभंगो । अप्पद० मूलोघं । तस-तसपज्ज० भुज०-अवट्ठि०-अप्पद० मूलोघं । तसअपज्ज० भुज० ओघं । अप्पद०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमौरालियमिस्स० वत्तव्वं । णवरि भुज० उक्क० तिण्णिण समया ।

और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोंके मुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल विकलेन्द्रियोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंमें भी अद्भ्याक्षय और संक्षेपक्षयसे मुजगारके दो समय प्राप्त होते हैं अतः इनमें मुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल भी मनुष्योंके समान कहा । तथा एकेन्द्रियके निरन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक अल्पतर स्थितिका होना सम्भव है, क्योंकि जिस एकेन्द्रियके संबन्धी पंचेन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व है वह उसे पत्य के असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक घटाता रहता है । अतः एकेन्द्रियोंमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । वादरएकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय तथा पंचों स्थावरकाय और उनके वादर और सूक्ष्म जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पत्यके असंख्यातवें भागसे अधिक है, अतः इनमें भी एकेन्द्रियोंके समान काल बन जाता है । किन्तु इन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त भेदोंका काल कम है अतः इनमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । इसी प्रकार विकलत्रय पर्याप्त और विकलत्रय अपर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट काल का विचार करके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना । शेष कथन सुगम है ।

§ १८१. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंके मुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल मूलोघके समान है । त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके मुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल मूलोघके समान है । त्रस अपर्याप्तकोंके मुजगार स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके मुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल तीन समय है ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोमें सब पंचेन्द्रिय जीव आ जाते हैं । उनमें पंचेन्द्रिय तिर्यच्च भी सम्मिलित हैं अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच्चोंके जिस प्रकार मुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार इनके भी जानना चाहिए । तथा ओघसे अल्पतर स्थितिका जो उत्कृष्ट काल बतलाया है वह पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके ही प्राप्त होता है अन्यके नहीं, अतः इनके अल्पतर स्थितिका काल ओघके समान कहा । ओघसे मुजगार आदि तीनों विभक्तियोंका जो काल कहा है वह त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके अविकल बन जाता है, अतः इनकी प्ररूपणको ओघके समान कहा । त्रस अपर्याप्तकोका उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूत है, अतः इनके अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूत कहा । जो एकेन्द्रिय या विकलत्रय पंचेन्द्रिय त्रसोंमें उत्पन्न होता है उसके मुजगार स्थितिके चार समय प्राप्त होते हैं । किन्तु इनमें मुजगारका पहला समय विग्रह गतिमें हो जाता है और



§ १८२. पंचमण०-पंचवचि०—वेउच्चिय०--वेउच्चियमिस्स० मणुसअपज्जत्त-  
भंगो । कायजोगि० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो०  
असंखे०भागो । ओरालि० भुज०-अवट्ठि० मणुसअपज्जत्तभंगो । अप्पद० जह० एग-  
समओ, उक्क० वावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि । आहार० अप्पद० जह० एगसमओ,  
उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० अप्पद० जहण्णुक्क० अंतोमु० । कम्मइय० भुज० ज०  
एगसमओ, उक्क० वे समया । एवम्पद० । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि  
समया ।

विग्रहितमें औदारिकमिश्रकाययोग पाया नहीं जाता, अतः इस योगमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा जो भव ग्रहण अद्वात्तय और संक्लेशक्तयके कारण प्राप्त होता है ।

§ १८२. पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्र-  
काययोगी जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोके समान जानना चाहिये । काययोगी जीवोंके भुजगार  
और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य  
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । औदारिक काय-  
योगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल मनुष्य अपर्याप्तकोके समान है ।  
तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम वाईस हजार  
वर्ष है । आहारक काययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और  
उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य और  
उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । कार्मणकाययोगी जीवोंके भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक  
समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । इसी प्रकार अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल जानना  
चाहिये । तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन  
समय है ।

**विशेषार्थ**—पांचों मनोयोग, पांचों वचनयोग, वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाय-  
योगमे भुजगार स्थितिविभक्तिका अद्वात्तय और संक्लेशक्तयसे दो समय ही उत्कृष्टकाल प्राप्त  
होता है तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन योगोंका  
इससे अधिक उत्कृष्टकाल नहीं पाया जाता, अतः इनमें भुजगार आदि स्थितियोंके कालको  
लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके समान कहा । काययोगमे सब काययोगोंका अन्तर्भाव हो जाता है और  
भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय काययोगमें ही बनता है अतः इसमे भुजगार और  
अवस्थितस्थितिके कालको ओघके समान कहा । तथा सामान्य काययोगका उत्कृष्टकाल तो  
असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । पर वह एकेन्द्रियके ही पाया जाता है और एकेन्द्रियके  
अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा, अतः काययोगमे भी अल्पतर  
स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जानना । औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूर्त कम  
बाईस हजार वर्ष है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । आहारक-  
काययोग और आहारकमिश्रकाययोगमे अल्पतर स्थितिविभक्ति ही होती है अतः इनका जो  
जघन्य और उत्कृष्टकाल है तत्प्रमाण ही इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल जानना  
चाहिये । कार्मणकाययोगका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है, अतः इसमे  
अवस्थित स्थितिविभक्तिका तो जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय बन जाता

§ १८३. इत्थि० भुज०-अवष्टि० पंचिदियतिरिक्त्वभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पणवण्णपल्लिदोवमाणि देसूणाणि । एवं पुरिस० । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि अंतोमुहुत्तम्भहिएहि सादिरयं । णवंस० भुज०-अवष्टि० ओघं । अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अवगद० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं अकसाय०-सुहुमसांपरा०-जहाक्खाद० वत्तव्वं ।

§ १८४. चत्तारिकसाय० ओरालियभिस्सभंगो । णवरि भुज० ओघं ।

है, क्योंकि एक स्थितिका तीन समय तक बन्ध होना असंभव नहीं है, क्योंकि एक स्थितिका उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तमुर्हूर्तप्रमाण पाया जाता है । परन्तु इसमें भुजगार और अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय ही प्राप्त होता है, क्योंकि इसमें अद्वात्तय और संक्लेशत्तय ये दो अवस्थाएं ही सम्भव हैं । अतएव इनमें भुजगार और अल्पतरका अधिकसे अधिक दो समय काल ही प्राप्त होगा । शेष कथन सुगम है ।

§ १८३. स्त्रीवेदमें भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यंचोके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य है । इसी प्रकार पुरुषवेदमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रैसठ सागर है । नपुंसकवेदमें भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एकसमय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । अपगतवेदी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिए ।

**विशेषार्थ—**देवीकी उत्कृष्ट स्थिति पचवन पल्य है । अब यदि कोई जीव इस आयुके साथ देवी हुआ और उसने अन्तमुर्हूर्तके वाद सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया और जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा तो उसके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम पचवन पल्यप्रमाण प्राप्त होता है । ओघसे अल्पतर स्थितिका जो उत्कृष्टकाल कहा वह पुरुषवेदकी अपेक्षा ही घटित होता है, अतः पुरुषवेदमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुर्हूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रैसठसागर कहा । नपुंसकवेदमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल सातवें नरककी अपेक्षा प्राप्त होगा, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा । अपगतवेदमें अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है और मोहनीय सत्कर्मवाले अपगतवेदका जघन्यकाल एक समय तथा उत्कृष्टकाल अन्तमुर्हूर्त है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुर्हूर्त कहा । अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंकी स्थिति अपगतवेदी जीवोंके समान है अतः इनके भी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जानना । शेष कथन सुगम है ।

§ १८४. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंके औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके भुजगार स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है ।

**विशेषार्थ—**भुजगार स्थितिके चार समय अपर्याप्त अवस्थामे प्राप्त होते हैं और उस

§ १८५. मदि०सुदअण्णाण० भुज०-अवट्टि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० एकत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । विभंग० भुज०-अप्पद०-अवट्टि० सत्तमपुट्ट-विभंगो । णवरि अप्पद० एकत्तीससागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० अप्पद० जह० अंतोमु०, उक्क० ब्वावट्टिसागरो० सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मा-भि०-वेदयसम्मादिट्टि ति । णवरि वेदयसम्मादिट्टिसु ब्वावट्टिसागरोवयाणि संपु-ण्णाणि । मणपज्ज० अप्पद० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोटी देसूणा । एवं संजद-परिहार०-संजदासंजदा ति ।

समय कोई भी एक कषाय पाई जा सकती है अतः चारों कषायोंमें भुजगार स्थितिका काल ओघके समान कहा । एक कषायका उत्कृष्टकाल अन्तमुहुत्त है अतः शेष कालकी औदारिक मिश्रकाय-योगके साथ समानता घटित हो जाती है । शेष कथन सुगम है ।

§ १८५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है । विभंगज्ञानी जीवोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिभिक्तिका काल सातवीं पृथिवीके नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिभिक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त कम इकतीस सागर है । आमिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य काल अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पूरे छयासठ सागर होते हैं । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य काल अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है । इसी प्रकार संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—प्रारम्भके दो अज्ञानोंके रहते हुए अधिकसे अधिक अल्पतर स्थितिभिक्त नौवें प्रैवेयकमे पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थितिभिक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक इकतीस सागर कहा । यहाँ साधिकसे नौवें प्रैवेयकके पिछले भवके अन्तका अन्तमुहुत्तकाल और अगले भवके प्रारम्भका अन्तमुहुत्तकाल लेना चाहिये, क्योंकि इन कालोंमे भी इस जीवके अल्पतर स्थितिका पाया जाना सम्भव है । किन्तु विभंगज्ञानमें अल्पतर स्थितिभिक्तिका काल अन्तमुहुत्त कम इकतीस सागर ही प्राप्त होता है जो कि उपरिस नौवें प्रैवेयकमें अपर्याप्त अवस्थाके अन्तमुहुत्त कालको कम कर देनेसे प्राप्त होता है । अभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, अवधिदर्शन और सामान्य सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर और वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्टकाल पूरा; छयासठ सागर है और इनके एक अल्पतर स्थिति ही सम्भव है अतः इनके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा इन सबका जघन्यकाल अन्तमुहुत्त है, अतः इनमे अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तमुहुत्त कहा । मनःपर्ययज्ञानका जघन्यकाल अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है अतः इसमे अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके भी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जान लेना चाहिये ।

§ १८६. सामाइय-च्छेदो० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पुक्वकोडी देसूणा । असंजद० णवुंसभंगो । णवरि अप्पद० उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरैयाणि । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । किण्ह०-णील०-काउ० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । तेउ०-पम्म० भुज०-अवट्ठि० सोहम्मभंगो । अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । सुक्क० अप्प० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरैयाणि । एवं खइय० वत्तच्चं ।

§ १८७. अभव०-मिच्छादि० मदिअण्णाणिभंगो । उवसम०-सम्मामि० आहार-मिस्सभंगो । सासण० अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० ज्जावळियाओ । सण्णि० भुज० ज० एगसमओ उक्क० वेसमया । अप्पद०-अवट्ठि० ओघं । असण्णि० भुज० पंचिदियतिरिक्खभंगो । अप्पद०-अवट्ठि० एइंदियभंगो । आहारि० भुज०-

§ १८६. सामायिकसंयत और छेदोपस्थानासंयत जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। असंयत जीवोंके नपुंसक-वेदी जीवोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। चक्षुदर्शनी जीवोंके त्रस पर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए। कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके मुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओषके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंके मुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सौधर्म कल्पके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तमुं हूतं और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीससागर है। इसी प्रकार त्रायिकसम्यग्दष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

**विशेषार्थ—**जो अनुत्तर विमानवासी एक समय कम तेतीस सागरकी आयुवाला देव च्युत होकर एक कोटि पूर्वकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आयुके अन्तमें संयमकी प्राप्त हो सिद्ध हो गया उसके नौ अन्तमुं हूतं कम पूर्व कोटिकालसे अधिक तेतीस सागर असंयतका उत्कृष्टकाल होता है। अतः असंयतके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर कहा। शुक्ल लेश्यामें दो अन्तमुं हूतं अधिक ३३ सागर जानना चाहिये किन्तु शुक्ललेश्याके कालमें सर्वार्थसिद्धिसे पूर्व और पश्चात् भवके अन्तका और प्रथम अन्तमुं हूतं काल सम्मिलित करना चाहिये। संज्ञीके मुजगारका उत्कृष्टकाल दो समय अद्वाचय और संक्लेशचयसे प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है।

§ १८७. अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके मत्त्वज्ञानी जीवोंके समान जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवलीप्रमाण है। संज्ञी जीवोंके मुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओषके समान है। असंज्ञी जीवोंके मुजगार स्थितिविभक्तिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान

अवट्टि० ओरोरालियमिस्सभंगो । अप्पदर० ज० एगसमओ, उक्क० ओघभंगो ।  
अणाहार० कम्मइयभंगो ।

एवं कालानुगमो समत्तो ।

§ १८८. अंतरानुगमेण दुविहो णिद्वेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मोह० भुज०-अवट्टि० अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगसमओ, उक्क०  
तेवट्टिसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि अंतोमुहुत्तवभहिएहि सादिरेयं । अप्पद०  
जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं । एवं पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-  
पुरिस०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि-सण्णि०-आहारि ति ।

§ १८९. आदेसेण णेरइएसु भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस  
सागरोवमाणि देसूणाणि । अप्पद० ओघं । पढयादि जाव सत्तमि ति भुज०-अवट्टि०  
अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अप्पद० ओघं ।

है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिभिक्तिका काल एकेन्द्रियोंके समान है । आहारक  
जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तिका काल औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान  
है । तथा अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल ओघके समान है ।  
अनाहारक जीवोंके कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्वेश दो प्रकारका है-ओघनिर्वेश और आदेशनिर्वेश । उनमेंसे  
ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तिका अन्तरकाल कितना है ?  
जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन पलय और अन्तमुर्तु हूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है ।  
अल्पतर स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुर्तु है ।  
इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पुरुषवेदी, चक्षुर्वर्शनी, अचक्षुर्वर्शनी,  
भन्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-एक कालमें एक जीवके भुजगार आदि स्थितियोंमेंसे कोई एक ही स्थिति  
होगी और इन तीनोंका जघन्यकाल एक समय है अतः जघन्य अन्तर भी इतना ही प्राप्त होता  
है । तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुर्तु हूर्त और तीन पलय अधिक एकसौ त्रेसठ सागर  
है और उस समय अन्य दो स्थितियोंका पाया जाना सम्भव नहीं, अतः भुजगार और अवस्थित  
स्थितिका अन्तरकाल अल्पतरस्थितिके उत्कृष्टकाल प्रमाण कहा । तथा अवस्थितका उत्कृष्टकाल  
अन्तमुर्तु हूर्त है, अतः अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुर्तु हूर्त कहा । पंचेन्द्रिय आदि कुछ मार्ग-  
णाओमें यह अन्तरकाल बन जाता है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

§ १८९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तिका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है । तथा अल्पतर स्थिति-  
भिक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक  
नरकमें भुजगार और अवस्थित स्थितिभिक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिभिक्तिका  
अन्तरकाल ओघके समान है ।

§ १६०. तिरिक्ख० भुज०-अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । अप्प० ओघं । पंचि०तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि० जोणिणी० भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोटिपुयचं । अप्पद० ओघं । पंचि०तिरि०अपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिय० भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । अप्पद० ओघं ।

§ १६१. देवेसु भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० अट्टारस सागरो० सादिरैयाणि । अप्प० ओघं । भवणादि जाव सहस्सार चि भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अप्प० ओघं० । आणदादि जाव सच्च-ट्टेत्ति अप्प० णत्थि अंतरं ।

§ १६०. तिर्यचोमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपुथक्त्व है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोमे भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है ।

§ १६१. देवोमे भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अट्टारह सागर है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।

**विशेषार्थ**—सामान्य तिर्यञ्चके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तीन पल्य वतला आये हैं । पर जिस तिर्यञ्चके यह काल प्राप्त होता है उसके तिर्यञ्च पर्यायके रहते हुए पुनः भुजगार और अवस्थित स्थिति नहीं प्राप्त होती, क्योंकि वह जीव तिर्यञ्चसम्बन्धी अल्पतर स्थितिके कालको समाप्त करके देवपर्यायमे चला जाता है, अतः एकेन्द्रियोमे जो अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल वतलाया है वह सामान्य तिर्यञ्चके भुजगार और अवस्थितस्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यञ्च त्रिकके अल्पतर स्थितिका जो साधिक तीन पल्य उत्कृष्टकाल वतलाया है उसे इनके भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल माननेपर वही आपत्ति खड़ी होती है जो सामान्य तिर्यञ्चोंके उक्त स्थितियोंके अन्तरकालका स्पष्टीकरण करते समय वतला

§ १६२. सन्वएइंदिय-सन्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज० पंचि०तिरिक्खअप-  
ज्जत्तभंगो । पंचकाय०-तसअपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-वेजन्विय० पंचि-  
दियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एवमोरालियमिस्स-वेजन्वियमिस्स० वत्तव्वं । काय-  
जोगि० भुज०-अवट्ठि० ज० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो० असेँखे०भादो । अप्पद०  
ज० एगसमओ, उक्क० अंतोसुहुत्तं । आहार-आहारमिस्स० अप्पद० णत्थि अंतरं ।  
एवमवगद०-अकसा०-आभिण्णि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-झेदो०-  
परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०--ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-  
वेदय०-उवसम०-सम्माभि०-सासण०दिट्ठि ति । कम्मइय० भुज०-अप्पद० णत्थि

आये हैं अतः इनके भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण  
कहा है । कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर मरा और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोमे  
उत्पन्न हुआ और सेतालीस पूर्वकोटि तक पंचेन्द्रिय असंज्ञियोंमें भ्रमणकर फिर संज्ञी पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च हो गया । इस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोमे भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर  
सेतालीस पूर्वकोटि होता है । क्योंकि जिस असंज्ञी जीवके संज्ञी पंचेन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व  
होता है उसको घटानेके लिए सेतालीस पूर्वकोटिसे भी अधिक काल चाहिये परन्तु असंज्ञी  
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चमें भ्रमण करनेका उत्कृष्टकाल सेतालीस पूर्वकोटि है अतः उक्त काल कहा । इसी  
प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोमे पन्द्रह पूर्वकोटि और योनिमित्तमें सात पूर्वकोटि कहना  
चाहिए । मनुष्यमें असंज्ञी नहीं होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि काल कहा है  
मनुष्य त्रिकके यद्यपि अल्पतरका उत्कृष्टकाल साधिक तीन पत्य वतलाया है पर वह इनके  
भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर नहीं हो सकता । आपत्ति वही आती है जिसका  
पहले उल्लेख कर आये हैं । अतः इनके भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम  
पूर्वकोटि प्रमाण जानना चाहिये । कुछ कमसे यहाँ प्रारम्भके आठ वर्षका और अन्तके  
अन्तमुद्धृत कालका प्रदण क्रिया है । देवोमे यद्यपि अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर  
वतलाया है । पर भुजगार और अवस्थित स्थितियों सहस्रार स्वर्गतक ही होती हैं और  
सहस्रार कल्पकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः इनके भुजगार और अवस्थित  
का उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ १६२. सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च  
अपर्याप्तकोके समान जानना चाहिये । पाँचों स्थावरकाय, त्रसअपर्याप्तक, पाँचो मनोयोगी, पाँचों  
वचनयोगी, औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोके समान  
जानना चाहिये । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना  
चाहिये । काययोगी जीवोके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुद्धृत है । आहारक-  
काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोके अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।  
इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी,  
संयत, सामायिकसंयत, ज्ञेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यात  
संयत, संयतासंयत, अवधिदर्शीनी, शुक्ललेदयावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । कार्मण-

अंतरं । अवट्टि० जहण्णुक्क० एगसमओ । एवमणाहारि० ।

§ १६३. वेदाणुवादेण इत्थि० भुज०-अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पण-  
वण्ण पल्लिदोवमाणि देसूणाणि । अप्प० ओघं । पवुंसं भुज०-अवट्टि० जह० एग-  
समओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अप्पद० ओघं । एवमसंजद० ।

§ १६४. चत्तारिकसाय० मणजोगिमंगो । मदिअण्णाण-मुदअएणाण०  
भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० एकक्कीस सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।  
अप्पद० ओघं । विहंगं भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अप्पद०  
ओघं । पंचले० भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अप्पद०  
ओघं । अभव०-मिच्छादि० मदिअण्णाणिभंगो । असण्णि० कायजोगिमंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ १६५. खाणाजीवेहिं भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहंसो-ओघेण आदेसेण य ।  
तत्थ ओघेण भुज० अप्प० अवट्टि० णियमा अत्थि । एवं तिरिक्ख-सञ्चएइदिय-पुढवि०-

काययोगी जीवोके भुजगार और अल्पतर स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । तथा अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोके जानना चाहिये ।

§ १६३. वेद मार्गणके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोके भुजगार और अवस्थित स्थिति बिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पत्य है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । नपुंसकवेदी जीवोके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार असंयत जीवोके जानना चाहिये ।

§ १६४. चारों कषायवाले जीवोके मनोबोगी जीवोके समान जानना चाहिये । मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इक्कीस सागर है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । विभंगज्ञानी जीवोके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । कृष्ण आदि पाँच लेश्यावाले जीवोके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोके मत्यज्ञानी जीवोके समान जानना चाहिए । तथा असंखी जीवोके काययोगी जीवोके समान जानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६५. नाना जीवोकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तियाले



वादरपुढवि०-वादरपुढवि०अपञ्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपञ्जत्तापञ्जत्त-आउ०-वादर-  
 आउ०-वादरआउअपञ्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपञ्जत्तापञ्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०  
 [वादरतेउ०] अपञ्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपञ्जत्तापञ्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउ-  
 अपञ्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ०पञ्जत्तापञ्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०तस्सेव अप्पञ्ज०-  
 सव्ववणप्फदि०-सव्वण्णिगोद०-कायजोमि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-  
 एवुंस०-चत्तारिक०-सदि-सुदअएणाण-असंजद०-अचक्खु०-तिएणालेसिय-भव०-  
 अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि ति ।

§ १६६. आदेसेण णेरइएसु अप्पद० अवट्ठि० णियमा अत्थि । भुज० भजियवं  
 सिया एदे च भुजगारविहत्तिओ च । सिया एदे च भुजगारविहत्तिया च २ । धुवे  
 पक्खिचं तिण्णि भंगा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचि०तिरि०-मणुसतिय०-देव०-भव-  
 णादि-जाव सहस्सार०-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-वादरपुढवीपञ्ज०-वादरआउ-  
 पञ्ज०-वादरतेउपञ्ज०-वादरवाउपञ्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयपञ्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-  
 पंचवचि०-वेउन्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि ति ।

जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी-  
 कायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
 पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म  
 जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक,  
 वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक  
 अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म  
 वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर  
 वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी,  
 औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों  
 कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, भ्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य,  
 अमव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव  
 नियमसे हैं । तथा भुजगार स्थितिबिभक्तिवाले जीव भजनीय हैं । ( १ ) कदाचित् बहुत  
 अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव होते हैं और एक भुजगार स्थितिबिभक्तिवाला  
 जीव होता है । ( २ ) कदाचित् बहुत अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव होते हैं  
 और बहुत भुजगार स्थितिबिभक्तिवाले जीव होते हैं । इन दोनों भंगोंको ध्रुव भंगमें मिला देनेपर  
 तीन भंग होते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य, पर्याप्त  
 और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके  
 देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादरजलकायिक पर्याप्त,  
 वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी  
 त्रस, पंचों मनोयोगी, पंचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, ऋषीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी,  
 चक्षुदर्शनी, पतिलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११७. मणुसअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा । एवं वेच्चवियमिस्स० । आण-  
दादि जाव सव्वट्ठेत्ति अप्पद० गियमा अत्थि । एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-  
संजद०-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-  
खइय०-वेदएत्ति । आहार०-आहारमिस्स० सिया अप्पदरविहत्तिओ च सिया अप्पदर-  
विहत्तिया च । एवमवगद०-अकसां०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सम्माभि०-सासण-  
सम्मादिट्ठि ति ।

एवं पाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

§ ११८. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्वेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण भुज० सव्वजीव० के० भागो ? असंखे०भागो । अवट्ठि० सव्वजी० के० ?  
संखे०भागो । अप्पद० सव्वजीव० के० भागो ? संखेज्जा भागा । एवं सत्तसु पुदवीसु  
सव्वतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार-सव्वएइंदिय-सव्वविगळि-

§ ११९. 'मनुष्य अपर्याप्तकोमे सभी पद भजनीय हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी  
जीवोंके जानना चाहिये । आन्त कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले  
जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत  
सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ल-  
लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, त्वायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आहारक-  
काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमे कदाचित् अल्पतर स्थितिविभक्तिवाला एक  
जीव होता है, कदाचित् अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं । इसी प्रकार  
अपगतवेदी, अकषाथी, सूक्ष्मसांप्रायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि  
और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—अपसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले नाना जीव  
सर्वदा पाये जाते हैं । पर मार्गणाओंमें विचार करनेपर कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें ओघ  
प्ररूपणा बन जाती है । कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिवाले नाना  
जीव तो नियमसे हैं तथा भुजगार स्थितिवाला कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् अनेक  
जीव होते हैं । इस प्रकार इन दो अभ्रुव भंगोंमे पहला ध्रुवभंग मिला देनेपर तीन भंग हो जाते  
हैं । कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें तीनों पद भजनीय हैं । जैसे लब्धपर्याप्तक मनुष्य आदि ।  
अतः यहां २६ भंग होंगे । कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें एक अल्पतर स्थितिवाले ही जीव होते हैं  
और कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें अल्पतर स्थितिवाला कदाचित् एक जीव होता है और  
कदाचित् नाना जीव होते हैं । जैसे आहारक काययोगी आदि । अतः यहां दो भंग होंगे ।

इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ १२०. भागाभागाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ?  
असंख्यातवें भाग हैं । अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें  
भाग हैं । अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं ।

दिय-सव्वपंचिदिय-पंचकाय०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-वेचव्विय०-वेच०मिस्स०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि चि ।

§ १६६. मणुसपज्जत्तमणुसिणीसु भुज० सव्वजी० के० भागो ? संखे०भागो । एवमवट्ठिदि० । अप्पदर० संखेज्जा भागा । आणदादि जाव सव्वट्ठा चि णत्थि भागाभागं । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहि-दस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवं भागाभागाणुगमो समतो ।

§ २००. परिमाणानुगमेण दुविहो णिहं सो ओवेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ? अणता । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णवुंस०-चत्तारिकसाय-

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवन-वासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकजेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पांचों स्थावरकाय, सभी त्रसकाय, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-योगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चतुर्दशनी, अचतुर्दशनी, कृष्णादि पांच लेख्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६६. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले संख्यातवें भाग हैं । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले संख्यात बहुभाग हैं । आनत कल्पसे लेकर स्वार्थसिद्धि पर्यन्त जीवोंके भागाभाग नहीं हैं; क्योंकि वहाँ एक अल्पतर पद ही पाया जाता है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मति-ज्ञानी, भ्रतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुभल-लेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागाणुगम समाप्त हुआ ।

§ २००. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक,

मदिसुदअण्णाण०—असंजद—अचक्खु—तिणिले०—भवसि०—अभवसि०—मिच्छादि०—  
असणिण०—आहारि०—अणाहारि ति ।

§ २०१. आदेसेण णेरइएसु भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं  
सत्तसु पुढवीसु सव्वर्पिं०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०—देव--भवणादि जाव सह-  
स्सार०—सव्वविगल्लिदिय-सव्वर्पिं०—चत्तारिकाय-वादरवणप्फदिपत्तेय०—पज्जत्तापज्जत्त-  
सव्वतस०—पंचमण०—पंचवचि०—वेउव्विय०—वेउव्वियमिस्स-इत्थि०—पुरिस०—विहंग०—  
चक्खु०—तेउ०—पम्म०—सण्णित्ति ।

§ २०२. मणुसपज्ज०—प्रणुसिणी० भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ?  
सखेज्जा । आणदादि जाव अवराइदत्ति अप्पदर० केत्ति० ? असंखेज्जा ।  
एवमाभिणि०—सुद०—ओहि०—संजदासंजद०—ओहिदंस०—सम्मादि०—खइय०—वेदय०—  
उवसम०—सासण०—सम्माभिच्छादिद्वि ति । सव्वट्ठे० अप्पद० केत्तिया ? संखेज्जा ।  
एवमाहार०—आहारमिस्स०—अवगद०—अकसा०—प्रणपज्ज०—संजद०—सामाइयछेदो०  
परिहार०—सुहु०—जहाक्खादसं जदेत्ति । सुक्क० आभिणि०भंगो ।

सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी  
नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कथायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि  
तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना  
चाहिए ।

२०१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले  
जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च  
सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव,  
सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, वादर वनस्पतिकायिक  
प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर  
अपर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैकृतिककाययोगी, वैकृतिकमिश्र-  
काययोगी, खांवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले; पद्मलेश्यावाले और  
संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २०२. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोगे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्ति  
वाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । आनत कल्पसे लेकर अपराजित कल्पतकके देवोंमें अल्पतर  
स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सो प्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,  
संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,  
सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर  
स्थितिबिभक्तिवाले देव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्र-  
काययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःप्रययज्ञानो, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत,  
परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।  
शुक्ललेश्यावाले जीवोंका कथन मतिज्ञानी जीवोंके समान है

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

§ २०३. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिदोसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोए । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदिसुदअण्णाण-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवासि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि ति ।

§ २०४. आदेसेण णेरइएसु भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खे०? लोग० असंखे०-भागे । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलि-दिय-सव्वपंचिंदिय-वादरपुढवि०पज्ज०-वादरआउ०पज्ज०-वादरतेउ०पज्ज०-वादरवाउ०पज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउण्विय०-वेउण्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादिट्ठी-खइय०-वेदय०-

**विशेषार्थ**—ओघसे तीनों स्थितिविभक्तिवाले अनन्त हैं वह तो स्पष्ट है पर मार्गणाओमें जिस मार्गणाका जितना प्रमाण है उसमें सम्भव स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सामान्यरूपसे उतना ही प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् जिस मार्गणाका प्रमाण अनन्त है उसमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अनन्त ही है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । किन्तु जहां एक ही स्थिति हो वहां एक की अपेक्षा ही कथन करना ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०३ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनसेसे आघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारो कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २०४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले प्रत्येक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अत्रिकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, खोवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अकवायी, विभंगज्ञानी, सतिज्ञानी, श्रतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-

उवसम०—सासण०—सम्भामि०—सणि ति । णवरि वादरवाउ०पज्ज० लोण०  
संखे०भागो ।

§ २०५. पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०-  
पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउ०अपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउ०पज्जत्ता-  
पज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउ०पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०  
वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरअणफदिपरायअपज्ज०-  
भुज० अण्पद० अवहि० के० खेचे ? सव्वलोगे ।

•एवं खेत्ताणुगमो सप्तो ।

§ २०६. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्वेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापराधिकसंयत, यथाख्यातसयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी,  
पीत आदि तीन लेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायाधिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,  
सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि  
वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका वर्तमान क्षेत्र लोकका संख्यातर्वो भाग है ।

§ २०५. पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म  
पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर  
जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्मजलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादरअग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त,  
सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायु-  
कायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायु-  
कायिक अपर्याप्त, वादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर  
अपर्याप्तकोमे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तियाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ।  
सर्व लोकमे रहते हैं ।

विशेषार्थ—ओघसे तीनों स्थितिवाले जीव अनन्त हैं अतः उनका क्षेत्र सब लोक वन  
जाता है । पर मार्गणाओंकी अपेक्षा क्षेत्रका विचार करनेपर दो विकल्प प्राप्त होते हैं । जिन  
मार्गणाओंमें तीनों स्थितिवालोंका प्रमाण अनन्त है उनका तो सब लोक क्षेत्र है ही । साथ ही  
पृथिवीकायिक आदि असंख्यात संख्यावाली कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमे भी तीनों स्थिति-  
वालोक क्षेत्र सब लोक है । तथा इनके अतिरिक्त शेष जितनी मार्गणाएँ हैं उनमें अपनी अपनी  
सम्भव भुजगार आदि स्थितियोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातर्वे भागप्रमाण ही क्षेत्र जानना  
चाहिये । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त जीव इसके अपवाद है क्योंकि उनके तीनों स्थितियोंकी  
अपेक्षा लोकके संख्यातर्वे भाग प्रमाण क्षेत्र पाया जाता है । तात्पर्य यह है कि मार्गणाओंकी  
अपेक्षा जिस मार्गणाका जो क्षेत्र है वही यहाँ अपनी अपनी सम्भव स्थितिबिभक्तिकी अपेक्षा  
प्राप्त होता है ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०६. स्वर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश

भुज० अप्पद० अवट्टि० खेतभंगो । एवं तिरिक्ख०—णवगेवज्जादि जाव सव्वट्ट०—  
सव्वएइंदिय—पुढवि०—[ वादरपुढवि० ] वादरपुढवि०—अपज्ज०—सुहुमपुढवि०—सुहुम—  
पुढवि०—पज्जत्तापज्जत्त—आउ०—वादरआउ०—वादरआउअपज्ज०—सुहुमआउ०—सुहुम—  
आउअपज्जत्तापज्जत्त—तेउ०—वादरतेउ०—वादरतेउअपज्ज०—सुहुमतेउ०—सुहुमतेउअपज्जत्ता—  
पज्जत्त—वाउ०—वादरवाउ०—वादरवाउअपज्ज०—सुहुमवाउ०—सुहुमवाउअपज्जत्तापज्जत्त—  
वादरवणप्फदिपत्तेय०—वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०—कायजोगि०—ओरालि०—  
ओरालियमिस्स०—वेउव्ठियमिस्स०—आहार०—आहारमिस्स—कम्मइय—णवुंस०—अवगद०—  
चत्तारिकसाय—अकसा०—मदिसुदअण्णाण०—णणपज्ज०—संजद—समाइयच्छेदो०—परिहार०—  
सुहुम०—जहाअवाद०—असंजद०—अचक्खु०—तिण्णिले०—भवसि०—अभवसि०—मिच्छादि०—  
असण्णि०—आहारि०—अणाहारि ति ।

§ २०७. आदेसेण गिरय० भुज० अप्पद० अवट्टि० केव० खे० पो० ?  
लोग० असंखे० भागो छ चोइसभागा वा देसूणा । पढमपुढवि० खेतभंगो । विदि-  
यादि जाव सत्तमि ति भुज० अप्पद० अवट्टि० के० खेनं पोसिदं ? लोग० असंखे०  
भागो एक वे तिण्णि चत्तारि पंच छ चोइस भागा वा देसूणा ।

उनमेसे ओषकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, नौ प्रवेयकसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकैन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादरजलकायिक, वादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्मजलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादरअग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, नपुंसकवेदी, अगपतवेदी, क्रोधादि चारो कपायवाले, अकषायी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांप्रायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाओमे जिसका जितना क्षेत्र वतला आये हैं उसका उतना स्पर्शन भी जानना चाहिये ।

§ २०७. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमे नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमे स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें

§ २०८. सव्वपंचि० तिरिक्ख० भुज० अप्पद० अवट्टि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । एवं मणुस्स-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदिय अप्पञ्ज०-वादरपुढवि० ( पञ्ज० )-वादरआउ० पञ्ज०-वादरतेउ० पञ्ज०-वादरवाउ० पञ्ज०-वादर-वणप्फदिपत्तेय० पञ्ज०-तसअपञ्ज० । गवरि वादरवाउपञ्ज० लोग० संखे० भागो सव्वलोगो वा ।

§ २०९. देव० भुज० अप्प० अवट्टि० लोग० असंखे० भागो अट्ठणव चोइस-भागा वा देसूणा । एवं सोहम्मिसाणेसु । भवण० वाण० जोदिसि० एवं चेव । गवरि अद्दुट्ट अट्ठ णव चोइसभागा वा देसूणा । सणक्कुमारदि जाव सहस्सारेत्ति के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठचोइस भागा वा देसूणा । आणदादि जाव अच्चुदेत्ति के० खेत्तं पो० ? लोग० असंखे० भागो छ चोइसभागा देसूणा ।

§ २१०. पंचिदिय-पंचि० पञ्ज०-तस-तसपञ्ज० भुज० अप्पद० अवट्टि० के० खे० पो० ? लोग असंखे० भागो अट्ठ चोइसभागा देसूणा सव्वलोगो वा । एवं पंच

भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमेसे क्रमसे कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पाँच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २०८. सभी पंचेन्द्रिय तिर्यचोमे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्ति-वाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सभी मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अम्रिकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्तजीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २०९. देवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोके जानना चाहिये । भवन-वासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । तनी विशेषता है कि इनके अतीतकालीन स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोमेसे कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण होता है । सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ? आनतकल्पसे लेकर अच्युतकल्प तकके देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमेसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २१०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श



मण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-सण्णि त्ति । वेउच्चिय० भुज०  
अप्प० अवट्ठि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ तेरह चोदस भागा वा  
देसूणा ।

§ २११, आभिणी० सुद० ओहि० अप्पद० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०  
भागो अट्ठ चोदस० देसूणा । एवमोहिदंस०-पम्मले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उव-  
सम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ २१२, संजदासंजद० अप्पद० के० खेत्तं पो० ? लोग० असंखे० भागो छ  
चोदस० देसूणा । एवं सुक्क० लेस्सा । तेउ० सोहम्मभंगो । सासण० अप्पद० के०  
खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ वारह चोदस० देसूणा ।

एव पोसूणाणुगमो समत्तो ।

किया है । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, खांवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संखी जीवोंके जानना चाहिये । वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यतातर्वे भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २११. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अचधिज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातर्वे भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, पद्मलेश्यावाले सम्यग्दृष्टि, द्वायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१२. संयतासंयतोमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातर्वे भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्मस्वर्गके समान स्पर्श है । सासादनसम्यग्दृष्टि अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातर्वे भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ तथा कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—ओषसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका क्षेत्र सब लोक बतलाया है दर्शन भी इतना ही है अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा । इसी प्रकार तिर्यच आदिकमें स्पर्श जाननेकी सूचना की है । इसका यह अभिप्राय है कि उन मार्गणाओंमें, जिनका जितना क्षेत्र है स्पर्श भी उतना ही है । हां, सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनका स्पर्श क्षेत्रसे भिन्न है । अतः उनका पृथक् कथन किया । फिर भी जीवद्वाराके स्पर्शन अनुयोग द्वारसे उन मार्गणाओंमेंसे जिसका जितना स्पर्श बतलाया है वही यहाँ उस उस मार्गणामें भुजगार आदि सम्भव पदोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है । जो मूलमे बतलाया ही है । अब अमुक मार्गणामे अमुक स्पर्श क्यों प्राप्त होता है इसका विशेष खुलासा स्पर्शन अनुयोगद्वारसे जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २१३. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ औघेण भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० केवचिंरं कालादो हंति ? सव्वद्धा । एवं 'तिरिक्ख-सव्व-एहंदिय-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जचा-पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्जत्त-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्ज०-वाउ०-वादर-वाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-भिच्छादिही-असण्णि०-आहारि०-अणाहारिं ति ।

§ २१४. आदेसेण णेरइएसु भुज० के० ? जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अप्पद०-अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिदिय-तिरिक्ख०-देव-भवणादि जाव सहस्सारे ति सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-वादरपुढवि-पज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउन्विय०-इत्थि०-परिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णिं ति ।

§ २१३. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? सब काल है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मण्यकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोमे भुजगार स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उच्छृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? सर्व काल है । इसी प्रकार सातो पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी त्रिकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी ऋस, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१५. मणुस० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भुज० के० ? ज० एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया । मणुसतिएसु अप्पद०-अवट्टि सव्वद्धा । मणुसअपज्ज० भुज० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अप्प०-अवट्टि० के० ? जह० एगस० उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । एवं वेउव्वियमिस्स० ।

§ २१६. आणदादि जाव सव्वट्टिसिद्धेत्ति अप्पदर० के० ? सव्वद्धा । एवमा-भिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंसण०-सुकखे०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि त्ति ।

§ २१७. आहार०-आहारमिस्स० अप्पदर० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । णवरि आहारमिस्स० जहणु० अंतोमु०, अवगद० अप्प० के०? ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तो । एवमकसा०-मुहुम०-जहाक्खाद०संजदे त्ति । उवसम० अप्पद० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । एवं सम्माभि०-सासण० । णवरि सासण० जह० एयसमओ ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ २१५. मनुष्योंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सर्वदा है। लघ्व्य-पर्याप्तक मनुष्योंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्ति का कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये।

§ २१६. आन्त कल्पसे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है। इसी प्रकार आग्निबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ २१७. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्ति वाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहुत्तं है। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट दोनों काल अन्तमुहुत्तं हैं। अपगतवेदी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्तं है। इसी प्रकार अकपायी, सूक्ष्मसांपरायिक-संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तमुहुत्तं और उत्कृष्टकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सम्यगिच्छ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जघन्यकाल एक समय है।

§ २१८. अंतराणुगमेण दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
 भुज्ज०-अप्पद०-अवट्ठि० अंतरं केवचिरं० ? णत्थि अंतरं । एवं तिरिकख०-सच्च-  
 एइंदिय-पुहवि०-बादरपुहवि०-बादरपुहविअपज्ज०-सुहुमपुहवि०-सुहुमपुहविपज्जत्ता-  
 पज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार करनेपर ओघसे तीनो स्थितियां निरन्तर  
 है, अतः उनका काल सर्वदा कहा । मार्गणाओंमें कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें ये सर्वदा पाई  
 जाती हैं । जैसे सामान्य तिर्यच आदि । कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें अल्पतर और अवस्थित  
 स्थितियां तो सर्वदा पाई जाती हैं पर भुजगार स्थिति सान्तर है, कभी होती और कभी नहीं भी  
 होती । यदि होती है तो कभसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें  
 भागप्रमाण काल तक होती है । जैसे सामान्य नारकी आदि । किन्तु मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी  
 ये दो मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि ये दोनो  
 मार्गणाएं ही संख्यातसंख्यावाली हैं । कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें तीनो स्थितियां सान्तर हैं  
 क्योंकि वे मार्गणाएं स्वयं सान्तर हैं, अतः उनमें भुजगारका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट  
 काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अल्पतर और अवस्थितका जघन्य काल एक  
 समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । यहाँ यह शंका होती है कि ऐसी  
 मार्गणाओंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और भंगविचय अनुयोगद्वारामे तीनों  
 को भजनीय वतलाया है अतः उनमें अल्पतर और अवस्थित का उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण नहीं  
 बनना चाहिये । सो इसका यह समाधान है कि जब उक्त मार्गणावाले जीव निरन्तर पल्यके  
 असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक होते रहते हैं तब इनमें कदाचित् अल्पतर और अवस्थित  
 स्थितियां नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त काल तक सर्वदा पाई जा सकती हैं अतः इनका उत्कृष्ट काल  
 उक्त प्रमाण बन जाता है । कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें निरन्तर अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है  
 अतः उनमें अल्पतर स्थितिका काल सर्वदा है । यथा—आनत कल्पआदिके देव आदि । कुछ ऐसी  
 मार्गणाएं हैं जिनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा जिनमें एक  
 अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है, अतः उनमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त  
 प्रमाण जानना । यथा—आहारकाययोग आदि । किन्तु आहारकविश्रकाययोगका जघन्य और  
 उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण  
 ही प्राप्त होता है । तथा कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल  
 पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और इनमें एक अल्पतर स्थिति ही सम्भव है, अतः इनमें  
 अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । किन्तु इन मार्गणाओंमें सासादन  
 सम्यग्दृष्टि मार्गणा ऐसी है जिसका जघन्य काल एक समय ही है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका  
 जघन्य काल एक समय जानना चाहिये ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ २१९. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
 उनमें से ओघ की अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थिति विभक्तवाले जीवों का  
 अन्तरकाल कितना है ? इनका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय,  
 पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म  
 पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जल-

तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ-  
बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवण्णफदिपत्तेय-बादरव-  
ण्णफदिपत्तेयअपज्ज०-वण्णफदि-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-  
क्कम्मइय०-णवु'स०-चत्तारिकसाय०-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिणले०-  
भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असरिण०-आहारि०-अणाहारि० त्ति ।

§ २१६. आदेसेण णेरइएसु भुज० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क०  
अंतोसु० । अप्प०-अवट्ठि० एत्थि अंतरं । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-  
मणुसतिय०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वश्रिगालिंदिय-सव्वपंचिंदिय०-  
वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज० - वादरवाउपज्ज० - वादरवण्णफदि-  
पत्तेयपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउविय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-  
चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति ।

§ २२०. मणुसअपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अंतरं के० ? जह० एग-  
समओ, उक्क० पल्लिदो असंखे०भागो । एवं वेउवियमिस्स० । णवरि उक्क० वारस  
सुहुत्ता ।

कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक श्रुपयोप्त, अग्नि-  
कायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पति-  
कायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पति, निगोद, काययोगी,  
औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारो  
कषायकाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य,  
अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवो के जानना चाहिये ।

§ २१६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोमे भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल  
कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तसुहूर्त है । तथा अल्पतर और अवस्थित  
स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय  
तिर्थेन्द्र, सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे  
लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त,  
वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पति-  
कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचों सन्नोयोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिकाययोगी,  
स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ २२०. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले  
जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योपमके  
असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी  
विशेषता है कि इनके उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह सुहूर्त है ।

§ २२१. आखदादि जाव सव्वहसिद्धि त्ति अप्पद० णत्थि अतरं । एवमा-  
भिणि०-सुद०-ओहि०--मणपज्ज०-संजद०--सामाइय-छेदो०--परिहार०-संजदासंजद०-  
ओहिदंस०-सुक्खले०-सम्मदि०-खइय०-वेदय०दिद्धि त्ति ।

§ २२२. आहार०-आहारमिस्स० अप्पद० अंतरं के० ? जह० एगसमओ,  
उक्क० वासपुधत्तं । एवमकसाय-जहाक्खादसंजदे त्ति । अन्नगद० अप्पद० जह० एग-  
समओ, उक्क० छम्मासा । एवं सुहुसांपरायसंजदे त्ति । उवसम० अप्पद० के० ? जह०  
एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरेत्ताणि । सासण०-सम्मामि० अप्पद० जह० एग-  
समओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो ।

एवमंतराखुगमो समत्तो ।

§ २२१. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अबधिज्ञानी, मनःपर्यय-ज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अबधिदर्शनी, शुक्ललेखावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२२. आहारकक्राययोगी और आहारकमिश्रक्राययोगी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षप्रथक्त्व है। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। अपगतवेदी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टि अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्बग्मिध्यादृष्टि अल्पतर स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाण है ।

विशेषार्थ—तीनों स्थितिवाले नाना जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः ओषसे इनका अन्तर काल नहीं बनता। मार्गणाओमे कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमे तीनों स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः उनके कथनको ओषके समान कहा। कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमे भुजगारका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिका अन्तरकाल नहीं है। यथा सामान्य नारकी आदि। इसका कारण यह है कि इनमे केवल भुजगार स्थिति ही सान्तर है फिर भी नाना जीवोंकी अपेक्षा उसका अन्तरकाल अन्तमुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता। आगे मनुष्य अपर्याप्त आदि जितनी मार्गणाओमें भुजगार आदि स्थितियोंके अन्तरकालका कथन किया है उनमे जिस मार्गणाका जितना अन्तर काल है उसमे सम्भव स्थितियोंका उतना अन्तरकाल जानना चाहिये। उदाहरणके लिये लब्धपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवे भागप्रमाण है अतः इसमें भुजगार आदि तीनों स्थितियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवे भागप्रमाण कहा। इसी प्रकार अन्य मार्गणाओमे भी जानना चाहिए ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ २२३. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइयो भावो ।

एवं भावाणुगमो संमत्तो ।

§ २२४. अप्पावहुगाणुगमेण दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा भुज्जंविहत्तिया । अवट्ठिं असंखेणुणा । अप्पदं संखेणुणा । एवं सत्तसु पुढंवीसु सव्वतिरिक्खं-मणुसं-मणुसअपज्जं-देव-भवणादि जाव सहस्सारं--सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिं--पंचकाय-सव्वतस-पंचमणुं-पंचवचिं-कायजोगिं-ओरालियं-ओरालियमिस्सं-वेउत्विचयं-वेउंमिस्सं-कम्मइयं-तिण्णिवेदं-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअएणाणं-विहंगं-असंजदं-चक्खुं-अचक्खुं--पंचलें-भवसिं-अभवसिं-मिच्छादिं-सण्णिं-असण्णिं-आहारि-अणाहारि ति ।

§ २२५. मणुसपज्जं-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा भुज्जं । अवट्ठिं संखेणुणा । अप्पदं संखेणुणा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति अप्पदं णत्थि अप्पावहुगं । एममाहारं-आहारमिस्सं-अवगदं--अकसां-आभिणिं--सुद--ओहिं-मणपज्जं-संजदं-समाइय-छेदो-परिहारं-सुहुमसांपरायं-जहाक्खादं-संजदासंजद-ओहिदंसं-

§ २२३. भावानुगम की अपेक्षा सवत्र ओदयिक भाव है ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§ २२४. अल्पबहुत्वानुगम की अपेक्षा निदेश दो प्रकार का है—ओघनिदेश और आदेश-निदेश । उनमें से ओघ की अपेक्षा भुज्जगारस्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणें हैं । इनसे अल्पतर स्थितिविभक्ति वाले जीव संख्यातगुणें हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियों के नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, लब्ध-पर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियों से लेकर सहस्त्रार स्वर्ग तक के देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पांचो स्थावर काय, सभी ब्रह्म, पांचों मनोयोगी, पांचों वचन योगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अक्षुदर्शनी, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गाणए अनन्त और असंख्यात संख्यावाली हैं अतः इनमें उक्त क्रम बन जाता है ।

§ २२५. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोमें भुज्जगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणें हैं । इनसे अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणें हैं । तात्पर्य यह है कि ये मार्गाणए संख्यात संख्यावाली हैं । सलिये इनमें उक्त क्रम ही घटित होता है । आन्त कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले देवोंका अल्पबहुत्व नहीं है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी अकपायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपराधिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत,

मुक्त०-सम्मादिद्वी-खड्य०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्भामिच्छादिद्वि त्ति ।

एवमप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

एवं भुजगारविहती समत्ता ।

—०—

§ २२६. पदशिक्षेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणिओगहाराणि—समुक्तिगया साभित्तं अप्पावहुअं चेदि । समुक्तिगं दुविहं—जहणयं उक्कस्सयं चेदि । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी उक्क० हाणी उक्कस्समवट्ठाणं च । एवं सत्तसु पुडवीसु सव्व-तिरिक्ख-सव्वमणुस-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-सव्व-पंचिंदिय-पंचकाय-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालिय-मिस्स-वेउव्विय-वेउ०मिस्स-क्रमइय-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ २२७. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अत्थि उक्कस्सिया हाणि । एव-माहार-[आहार]मिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-

अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञाथिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्याहृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें एक अल्पतर स्थिति पाई जाती है इसलिये इनमें अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता।

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

इस प्रकार भुजगार विभक्ति समाप्त हुई।

—०—

§ २२६. अब पदनिष्पेका कथन अबसर प्राप्त है। उसके विषयमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकार की है—जवन्य और उल्लूख। उनमेंसे उल्लूखका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिविभक्तिकी उल्लूख वृद्धि, उल्लूख हानि और उल्लूख अवस्थान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, सभी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पांचो स्थावरकाय, सभी ब्रह्म, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी औरादरिककाययोगी, औरादरिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, काम्यकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेख्यावाले, भव्य, अभव्य, मिध्याहृष्टि, संबी, असंबी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ २२७. आन्त कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीय स्थितिविभक्तिकी उल्लूख हानि है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत,



संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सुकले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवमुक्कस्ससमुत्तिकत्तणायुगमो सयत्तो ।

१२२८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहं अत्थि जहण्णवड्ढी जहण्णहाणी जहण्णयवट्ठारणं च । एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव-भवणादि जाव सहस्सार०—सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-पंचकाय-सव्वतस०-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगी-ओरालिय०-ओरालिय-मिस्स-वेउन्विय-वेउ०मिस्स-कम्मइय०-तिण्णिवेद-चत्तारिक्काय-मदि-मुद अण्णण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि-असण्णि-आहारि०-अणाहारि ति ।

१२२९. आणदादि जाव सव्वट्टसिद्धि ति अत्थि जहं हाणी । एवमाहार०-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-अणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक०-सम्मा-दिद्वी-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेखावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

१२२८. अब जघन्य समुत्कीर्तनानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमें से ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिविभक्तिकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है । इसी प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यक, सभी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पांचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामैककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी असंयत चक्षुदर्शनवाले अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेखावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संबी, असंबी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

१२२९. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंसे मोहनीय स्थितिविभक्तिकी जघन्य हानि है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, अभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेखावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जहाँ स्थितिकी वृद्धि और हानिके अनेक विकल्प सम्भव हैं वहाँ जब वन्ध या सक्रिय द्वारा सबसे अधिक बढ़ाकर स्थिति प्राप्त होती है तब उत्कृष्ट वृद्धि कहलाती है । तथा

एवं समुक्त्तित्ताणुगमो समत्तो ।

§ २३०. सामित्ताणुगमो दुविहो—जहणओ उक्कस्सओ च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरस्स जो चट्टुट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिद्विदिं बंधंतो अच्चिद्धदो द्विदिबंधद्वाए पुण्णाए जेण उक्कस्सद्विदिसंकिलेसं गदेण उक्कस्सद्विदी पवद्धा तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ तेण उक्कस्सद्विदिसंङ्खए हदे तस्स उक्क० हाणी । एवं सत्तमु पुढवीसु तिरिक्ख०—पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०—पंचितिरि०जोणिणी-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०—पंचिदिय-पंचि०पज्ज०—तस-तसपज्ज०—पंचमण०—पंचवचि०—कायजोगि०—आरोलिय०—वेडविय०—तिण्णिवेद-

स्थितिकाण्डकघात आदिके द्वारा जब सबसे अधिक स्थिति घटाई जाती है तब उत्कृष्ट हानि कहलाती है । तथा उत्कृष्ट वृद्धिके बाद जो अवस्थान होता है उसे उत्कृष्ट अवस्थान कहते हैं । ओघसे मोहनीय कर्मकी स्थितिमे ये तीनों पद सम्भव हैं अतः 'ओघसे मोहनीय कर्मकी स्थितिकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होता है' यह कहा है ! इसी प्रकार जिस जिस मार्गणामें अपने अपने योग्य हानि, वृद्धि और अवस्थान सम्भव हैं उस उस मार्गणामे उसके अनुसार उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान जानना चाहिये । किन्तु कुछ ऐसी मार्गणए हैं जिनमे हानि ही होती है । जैसे आनत आदिक । फिर भी वहाँ स्थितिकी हानि एक समय प्रमाण भी होती है और अधिक भी होती है । अतः वहाँ उत्कृष्टपदकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि बतलाई है, उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दो पद नहीं बतलाये । जघन्य वृद्धि आदिका भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि जहाँ उत्कृष्ट वृद्धि आदि सम्भव हैं वहाँ जघन्य वृद्धि आदि भी सम्भव हैं । किन्तु जहाँ उत्कृष्टकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि है वहाँ जघन्यकी अपेक्षा केवल जघन्य हानि है । कारण स्पष्ट है ।

इस प्रकार जघन्य समुत्कीर्तनाणुगम समाप्त हुआ ।

§ २३०. स्वामित्वाणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिबिभक्तिकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोडाकोड़ी स्थितिको बांधकर स्थित है और स्थितिवन्धके कालके पूर्ण होनेपर उत्कृष्ट स्थितिके योग्य संक्लेशसे जिसने उत्कृष्ट स्थिति बांधी है ऐसे किसी एक जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर कालमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक जीव मोह कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला है वह जब उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार स्वर्ग तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैकथिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्तज्ञानी

चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग-असंजद-चक्खु-अचक्खु-पंचले-भवसि-अभवसि-मिच्छादि-सण्णि-आहारि च्ति ।

§ २३१. पंचिंतिरिअपज्ज उक्क वड्ढी कस्स ? जेण तप्पाओग्ग-जहण्णाद्विदि वंधमाणेण उक्कस्सिया द्विदी पवद्धा तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्समवद्वाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ द्विदिघादं करेमाणो पंचिदियतिरिक्खवअपज्जत्तएसु उव-वण्णो तेण उक्कस्सद्विदिखंडगे हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । एवं मणुसअपज्ज-वादरेइंदियअपज्ज-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगल्लिंदिय-पंचिदियअपज्ज-पंच-कायाणं वादरअपज्ज-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-[तेउ-] वादरतेउ-वादरतेउपज्ज-[वाउ-] वादरवाउ-वादरवाउपज्ज-तसअपज्जचे च्ति ।

§ २३२. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो च्ति उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ तेण पढमसम्मत्तं पडिबज्जमाणेण पढमद्विदि-खंडए पादिदे तस्स उक्क-हाणी । अण्णुदिसादि जाव सव्वद्विसिद्धि च्ति उक्क-हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अण्णताणुवंधिचउक्कं विसंजोएमाणो तेण पढमद्विदिखंडए पादिदे तस्स उक्क-हाणी ।

श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेख्यावाले, भव्य अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सखी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३१. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोमे उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिको वांधनेवाले जिस जीवने उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर कालमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो तिर्यच या मनुष्य स्थितिघातको करता हुआ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोमे उत्पन्न हुआ । फिर वहाँ उसके उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करने पर उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय वादर अपर्याप्तक, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्तक, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्तक, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्तक, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३२. आनत कल्पसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय जब प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है । अतुदिससे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जो कोई एक जीव जब प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

§ २३३. एइ'दिय० उक्कस्सवड्ढि-उक्कस्सअवट्टाणाणं पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो पंचिंदिओ उक्कस्सद्विदिघाद-मकाऊण एइ'दिएसु उववण्णो तेण पढमद्विदिखंडए पादिदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । एवं वादरेइ'दिय-वादरेइ'दियपज्ज०-पुढवि० वादरपुढवि-वादरपुढविपज्ज०-आउ०-वादर-आउ०-वादरआउपज्ज०-वणप्फदि - वादरवणप्फदि - वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्त-असण्णि च्चि ।

§ २३४. ओरालियमिस्स० उक्क०वड्ढि-अवट्टा० पंचि०तिरि०अपज्जत्तभंगो । उक्क० हाणी -कस्स ? अण्णदरो जो देवो णेरइओ वा उक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ द्विदिघादमकाऊण ओरालियमिस्सजोगेसु उववण्णो तेण उक्कस्सद्विदिखंडए घादिदे तस्स उक्क० हाणी ।

§ २३५. वेउव्वियमिस्स० उक्क०वड्ढि-अवट्टाणाणं पंचि०तिरि०अपज्जत्त-भंगो । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सद्विदि-संतकम्मिओ द्विदिघादमकाऊण वेउव्वियमिस्स० उववण्णो तेण उक्कस्सए द्विदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । -आहार०-आहारमिस्स० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स अद्दद्विदिं गलेमाणसंतस्स उक्क० हाणी । एवमकसाय-जहाक्खाद०-सासण०दिद्वि च्चि ।

§ २३३. एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानके स्वामित्वका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक पंचेन्द्रिय तिर्यच उत्कृष्ट स्थितिका घात न करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर वहाँ प्रथम स्थिति काण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३४. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानके स्वामित्वका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक देव या नारकी स्थितिघात न करके औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्पन्न होकर वहाँ उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

§ २३५. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानके स्वामित्वका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक तिर्यच या मनुष्य स्थितिघात न करके वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्पन्न होकर वहाँ उत्कृष्ट स्थितिखण्डका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाय-योगियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अद्दा स्थितिकी निर्जरा करता हुआ विद्यमान है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसन्धगृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३६. कम्मइय० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० जेण पंचिदियसण्णिणा विग्गहगदीए वट्टमोणेण तप्पाओग्गट्टिदिसंतकम्मादो तप्पाओग्गउक्कस्सट्टिदिवंधो पवद्धो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो चट्ठमदिओ उक्क० ट्टिदिसंतकम्मिओ ट्टिदिकंदयघादमाढविय विदियविग्गहे ट्टिदिसंतकम्मस्स ट्टिदिवंधए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? अण्ण० जो एइंदिओ तप्पाओग्गट्टिदिसंतकम्मादो वडिहदूण अवट्टिदो तस्स उक्क० अवट्ठाणं । एवमणाहारीणं ।

§ २३७. अवगद० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० इत्थि-पानुंस० वेदखवगस्स पढमे ट्टिदिवंधए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । मदि०-सुद०-ओहिं० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो उक्कस्सट्टिदिसंतकम्मिओ तेण उक्कस्सए ट्टिदिवंधए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । एवं ओहिदिस०-सुक्क०-सम्मादि०-वेदय०दिट्टि ति । मणपज्ज० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण सागरोवमपुधत्तमेत्तमुक्कस्सट्टिदिवंधयं पादिदं तस्स उक्क० हाणी । एवं संजद०-सामाइय-खेदो०-खइय०दिट्टि-परिहार०-संजदासंजद० । सुट्टमसांप० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० खवगस्स चरिमट्टिदिवंधए पादिदे तस्स उक्क० हाणी ।

§ २३८. उवसम० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० अणंताणु० विसंजोयणापढम-

§ २३६. कार्मणकाययोगियामे उक्कष्ट वृद्धि किसके होती है ? विग्रहगतिसमें विद्यमान जो पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव तद्योग्य स्थितिसत्त्ववाले कर्मके साथ तद्योग्य उक्कष्ट स्थितिका बन्ध करता है उस कार्मणकाययोगीके उक्कष्ट वृद्धि होती है । उक्कष्ट हानि किसके होती है ? जिसके मोहनीयकर्मका उक्कष्ट स्थितिसत्त्व है ऐसा चारो गतिका जीव स्थितिकाण्डकघातका आरम्भ करके दूसरे विग्रह में जब स्थितिसत्त्वावाले कर्मके स्थितिकाण्डका घात करता है तब उस कार्मणकाययोगी जीवके उक्कष्ट हानि होती है । उक्कष्ट अवस्थान किसके होता है ? जो एकेन्द्रिय तद्योग्य स्थितिसत्त्व से बढ़ाकर अवस्थित है उसके उक्कष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३७ अणगतवेदियोंमें उक्कष्ट हानि किसके होती है ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका क्षपक जो कोई एक जीव प्रथम स्थितिकाण्डका घात करता है उसके उक्कष्ट हानि होती है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें उक्कष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उक्कष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक जीव उक्कष्ट स्थितिकाण्डका घात करता है उसके उक्कष्ट हानि होती है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंमें उक्कष्ट हानि किसके होती है ? जिसने सागरपृथक्त्व प्रमाण उक्कष्ट स्थितिकाण्डका घात किया है उसके उक्कष्ट हानि होती है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, ज्ञेयोपस्थापनासंयत, चायिकसम्यग्दृष्टि, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । सूत्रमसापरायिक संयतोंमें उक्कष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक क्षपक अन्तिम स्थितिकाण्डका घात करता है उसके उक्कष्ट हानि होती है ।

§ २३८ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उक्कष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक जीव अनन्ताणु-

द्विदिविहृतीए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । अथवा कसायउवसामगस्स पढमद्विदिविहृतीए पादिदे एदं सामिचं वत्तव्वं, उवसमसम्मत्तकालभंतरे अणंताणु० विसंजोयणपक्खवाण-  
ब्भुवगमादो । अथवा एदं पि जाणिय वत्तव्वं, उवसमसेठीए दंसणतियस्स द्विदिविहृतीए-  
संभवाणुवत्तंभादो । सम्मामि० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० उक्कस्सद्विदिसंत-  
कम्मम्मि उक्कस्सद्विदिविहृतीए पादिदे तस्स उक्कस्सिया हाणी ।

एवमुक्कस्ससामिचं समचं ।

§ २३६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
जह० वड्ढी कस्स ? अण्ण० जो समज्जणउक्कस्सद्विदिं वंधमाणो उक्कस्ससंकित्तोसं  
गंतूण उक्कस्सद्विदिं पवड्ढो तस्स जह० वड्ढी । जह० हाणी कस्स ? अण्ण० अथ-  
द्विदिविहृतीए । एगदरत्थ अवट्ठाणं । एवं सत्तमु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-  
देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय०-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-छकाय-  
पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स-वेउच्चिय०-वेउ०मिस्स०-  
कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-तिण्णिअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचत्ते०-  
भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि ति ।

वन्धीकी विसंयोजनाके समय प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।  
अथवा कषायकी उपशमना करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके प्रथमस्थितिलिखण्डका घात करनेपर  
उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वका कथन करना चाहिये, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर  
अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजनाका पक्ष स्वीकर नहीं किया है । अथवा इसका भी जान कर ही कथन  
करना चाहिये, क्योंकि उपशमश्रेणीमे दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके स्थितिघातकी संभावना  
नहीं पाई जाती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमे उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट  
स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक जीव उत्कृष्ट स्थितिलिखण्डका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि  
होती है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

§ २३६. अब जघन्य स्वामित्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो एक  
समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बाधता हुआ उत्कृष्ट संकलेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध  
करता है ऐसे किसी एक जीवके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? अध-  
स्थितिके क्षयसे किसी एक जीवके जघन्य हानि होती है । तथा इनमेसे किसी एकमे अवस्थान होता  
है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, सभी मनुष्य, सामान्य देव, भवन्वासियों-  
से लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले,  
पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी,  
वैकियिककाययोगी, वैकियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषाय-  
वाले, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेख्यावाले, भव्य,  
अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४०. आणदादि जाव सव्वहसिद्धिं चि जह० हाणी कस्स ? अण्ण० अधट्टिदिक्खएण । एवमाहार०-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-मुद० ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदा-संजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्माइट्टि-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-संमामि-च्छादिट्टि चि ।

एवं सामिच्छाणुगमो समत्तो ।

§ १४१. अप्पावहुअं दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहंसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी । वड्डी अत्रट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसाहियाणि । एवं सच्चमु पुढवीसु तिरिक्ख-पंचि०तिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचि०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-वेउउविय०-तिण्णवेद-चत्तारिक०-तिण्णअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-आहारि चि ।

§ २४२. पंचि०तिरिक्खअपज्ज० सव्वत्थोवा उक्क० वड्डी अत्रट्ठाणं च । हाणी संखेज्जगुणा । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-ओरालि-

§ २४०. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोमे जघन्य हानि किसके होती है ? अधःस्थितिके क्षयसे किसी एकके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाय-योगी, अग्रगतवेदी, अकषायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अत्रधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपराधिकसंयत, यथाख्यात-संयत, संयतासंयत, अत्रधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार स्वामित्वालुगम समाप्त हुआ ।

§ २४१. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट हानिवाले जीव सबसे स्तोके हैं । वृद्धि और अत्रस्थान इन दोनोंवाले जीव समान होते हुए भी उत्कृष्ट हानिवाले जीवोंसे विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अत्रक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संधी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४२. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और अत्रस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे उत्कृष्ट हानिवाले जीव संख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय,

यमिस्स-वेउन्वियमिस्स-असणिण चि ।

§ २४३. आणदादि जाव सव्वट्ट० णत्थि अप्पावहुअं । एवमाहार०-आहार-मिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिरिण०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-खेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि चि ।

§ २४४. ईदिएसु सव्वत्थोवा वड्ढी अवट्ठाणं च । हाणी असंखेज्जगुणा । एवं पंचकाय० । कम्मइय० सव्वत्थोवमवट्ठाणं । वड्ढी असंखेज्जगुणा । हाणी असंखेज्जगुणा । एवमणाहार० ।

एवमुक्कस्सप्पावहुअं समचं ।

§ २४५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च तिण्णि वि तुल्लाणि । एवं पेदव्वं जाव अणाहारए चि । आणदादिसु णत्थि अप्पावहुअं, एगपदत्तादो ।

एवं पदणिवखेवो समत्तो ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और असंखी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४३. अनन्त कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके अल्पबहुत्व नहीं है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४४. सभी एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे उत्कृष्ट हानिवाले जीव असंख्यातगुरे हैं । इसी प्रकार सभी पाँचों स्थावरकाय जीवोंके जानना चाहिये । कामणिकाययोगियोंमें अवस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे वृद्धिवाले जीव असंख्यातगुरे हैं । इनसे हानिवाले जीव संख्यातगुरे हैं । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ २४५. अब जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और अवस्थान इन तीनोंवाले जीव समान हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । किन्तु आनातादिकमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि वहाँ एक हानिपद ही पाया जाता है ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ ।



§ २४६. वृद्धि चि तत्थ इमाणि तेरस आणियोगहराणि—समुक्कित्तणादि जाव अप्पाव हुए चि । समुक्कित्तणाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी असंखेज्जगुणहाणी अवट्टाणं च अत्थि । एवं मणुसतिय—पंचिदिय—पंचि० पज्ज०—तस—तसपज्ज०—पंचमण०—पंचवचि०—कायजोगि०—ओरालि०—तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-चक्खु०—अचक्खु०—भवसि०—सण्णि०—आहारए चि ।

§ २४७. आदेसेण णेरइएसु मोह० अत्थि तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी अवट्टाणं च । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुमअपज्ज-देव-भवणादि जाव सहस्सार०—पंचि०अपज्ज०—तसअपज्ज०—ओरालियभिस्स—वेउच्चिय०—वेउ०मिस्स०—कम्मइय—तिण्ण-अण्णाण-असंजद०—पंचले०—अभवं०—मिच्छादि०—असण्णि०—अण्णाहारए चि ।

§ २४८. आणदादि जाव सव्वट्ट० मोह० अत्थि असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी । एवं परिहार०—संजदासंजद०—उवसमसम्माइट्ठि चि । एइदिएसु अत्थि असंखेज्जभागवड्डी तिण्णि हाणी अवट्टाणं च । एवं पंचकाय० । विगलिदिएसु अत्थि दो वड्डी तिण्णि हाणी अवट्टाणं च । आहार०—आहारमिस्स० अत्थि असंखे०—भागहाणी । एवमकसा०—जहाक्खाद०—सासण० । अवगद० अत्थि असंखेज्जभागहाणी [ संखेज्जभागहाणी ] संखे०गुणहाणी । एवं सुहुमसांप०—वेदय०—सम्माभि०दिट्ठीणं ।

§ २४६. अब वृद्धि अनुयोगद्वारका प्रकरण है । उसके कथनमें समुक्तीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार हैं । उनमेंसे समुक्तीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आधनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा तीन वृद्धि, तीन हानि, असंख्यात-गुणहानि और अवस्थान हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीय कर्मकी तीन वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यञ्च, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, तीनों अज्ञानी, असंयत, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४८. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीय कर्मकी असंख्यात भागहानि और संख्यातभागहानि है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और उपशम-सम्यगृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रियोंमें असंख्यातभागवृद्धि, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । इसी प्रकार पाँचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिये । सभी विकलेन्द्रियोंमें दो वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें असंख्यातभागहानि है । इसी प्रकार अकपायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यगृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । अपगतवेदी जीवोंमें असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि

आंभिणि०—सुद०—ओहि० अत्थि चत्तारि हाणीओ । एवं मणपज्ज०—संजद०—सामाइय—  
छेदो०—ओहिदंस०—सुकलेस्सि०—सम्मादिट्ठी०—खइय० ।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता ।

है । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपराधिकसंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आभिनबौधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार हानियाँ हैं । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्लेश्वरया-  
वाले, सन्यग्दृष्टि और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**पदनिक्षेपमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट अवस्थान, जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका कथन किया जाता है । किन्तु वे उत्कृष्ट वृद्धि आदि एक रूप न होकर अनेकरूप होते हैं । इसका ज्ञान पदनिक्षेपसे न होकर वृद्धि अनुयोगद्वारासे होता है, अतः पदनिक्षेप विशेषको वृद्धि कहते हैं—समुत्कीर्तना, स्वाभित्त्व, काल, अन्तर, भाव और अल्पवहुत्व इसके ये तरह अनुयोगद्वारा हैं । इनमेंसे पहले समुत्कीर्तनाका विचार किया गया है । इसकी अपेक्षा ओघसे असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि ये तीन वृद्धियाँ; असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि ये तीन हानियाँ और असंख्यात गुणहानि तथा इनके अवस्थान होते हैं । विवक्षित स्थितिमें जो वृद्धि या हानि होती है वह जब तक उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण रहती है तब तक उसे असंख्यात भागवृद्धि या असंख्यात भागहानि कहते हैं । जब वह वृद्धि या हानि विवक्षित स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण हो जाती है तब उसे संख्यात भाग-  
वृद्धि और संख्यात भागहानि कहते हैं । तथा जब वह वृद्धि या हानि विवक्षित स्थितिसे संख्यातगुणी वृद्धि या हानिरूप हो जाती है तब उसे संख्यात गुणवृद्धि या संख्यात गुणहानि कहते हैं । इसी प्रकार असंख्यात गुणहानिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये । यह असंख्यात गुणहानि केवल अनिवृत्ति-  
क्षपकके ही होती है, अन्यत्र नहीं । अवस्थान सुगम है । यदि वृद्धियोंके वाद अवस्थान हुआ तो वह वृद्धि सम्बन्धी अवस्थान कहलाता है और हानियोंके वाद अवस्थान हुआ तो वह हानि सम्बन्धी अवस्थान कहा जाता है । मनुष्य त्रिक आदि कुल ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें यह ओघप्र-  
रूपणा अविकल घटित हो जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा । नारकियोंमें केवल असंख्यात गुणहानि सम्भव नहीं, क्योंकि वहाँ अनिवृत्ति क्षपक जीव नहीं पाये जाते । शेष सब सम्भव हैं, इसी प्रकार सातों नरकके नारकी आदि मूलमें गिनाई हुई और भी मार्गणाएँ हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा । आनतकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण ही होती है और वह वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर उत्तरोत्तर घटती ही जाती है, जो प्रकृतियोंकी अनन्ता-  
नुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके समय संख्यातवें भागप्रमाण घटती है और शेष समयमें असंख्या-  
तवें भागप्रमाण ही घटती है । अतः यहाँ दो हानियाँ ही कहीं । परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके इसी प्रकार जानना । एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थितिवन्ध पत्यका असंख्यातवों भाग कम एक सागरप्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवन्ध एक सागर प्रमाण होता है, अतः यहाँ वृद्धिरूपसे असंख्यात भागवृद्धि ही सम्भव है, क्योंकि किसी जीवने यदि जघन्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थितिका भी बन्ध किया तो भी जघन्य स्थितिके असंख्यातवें भाग की ही वृद्धि हुई । पर इनके असंख्यात गुणहानिको छोड़ कर शेष तीनों हानियाँ सम्भव हैं, क्योंकि जो संज्ञी

§ २४६. सामित्ताखुगमेण दुविहो णिदोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण तिण्णिण वड्डी अब्बणाणिण कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स । तिण्णिण हाणीओ कस्स ? सम्पादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा । असखे०गुणहाणी कस्स ? आणियट्ठिखवयस्स । एवं मणुसतिय-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-[ काय०- ] ओराखिय०-तिण्णिणवेद-चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णिण०-आहारि ति ।

§ २५०. आदेसेण णेरइएसु तिण्णिण वड्डी अब्बणा० कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स । तिण्णिण हाणी कस्स ? सम्पादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । एवं सच्चरियरय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-वेउच्चिय०-असंजद०-पंचलेस्सा ति ।

पंचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होता है उसके तीनों हानियां वन जाती हैं । पांचो स्थावरकायिक जीवोंमें भी इसी प्रकार जानना । विकलत्रयोंमें जघन्य स्थितिवन्धसे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण अधिक है अतः यहाँ वृद्धिरूपसे संख्यात भागवृद्धि और असंख्यातभागवृद्धि ये दो वृद्धियां ही सम्भव हैं, क्योंकि जब कोई विकलत्रय अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक स्थितिको वांछता है तब उसके असंख्यात भागवृद्धि होती है और जब वह अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक स्थितिको वांछता है तब उसके संख्यातभागवृद्धि होती है । तथा इनके तीन हानियोंका खुलासा एकेन्द्रियोंके समान कर लेना चाहिये । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें मोहनीयकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है और यहाँ स्थितिकाण्डकघात न होकर अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक एक निपेकका ही गलन होता है अतः यहाँ एक असंख्यात भागहानि ही सम्भव है । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । अपगतवेदमें असंख्यात भागहानि उपशमक और क्षपक किसी भी जीवके वन जाती हैं पर संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि क्षपकके ही वनती हैं । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयत और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना । आभिनित्तोधिकज्ञानी आदि जीवोंके चारों हानियां सम्भव हैं यह स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

§ २४६. स्वामित्तानुगमकी अपेक्षा निदेश दो प्रकारका है—ओघनिदेश और आदेश-निदेश । उनसे ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धियां और अबस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं । तीन हानियां किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं । असंख्यात-गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरणक्षपकके होती हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रस पर्याप्तक, पाँचों मनोयोगी, पाँचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, संही और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५०. आदेशकी अपेक्षा नारकियों में तीन वृद्धियां और अबस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं । तीन हानियां किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती हैं । इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार कल्पतकके देव, वैकिक्रिककाययोगी, असंयत और कृष्णादि पाँच लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५१. पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० तिण्णि वड्डी अवट्टाणाणि तिण्णि हाणीओ कस्स ? अण्णदरस्स । एवं मणुसअपज्ज०-पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-तिण्णि अण्णाण-अभव-मिच्छादि०-असण्णि त्ति ।

§ २५२. आणदादि जाव उवरियगेवज्ज० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्ण-दरस्स सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । संखे०भागहाणी कस्स ? अणंताणुवंधि-चउक्कं विसंजोएंतस्स पढमसम्मचं पडिज्जमाणस्स वा । अणुदिसादि जाव सव्व-ट्टिसिद्धि त्ति असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स । संखे०भागहाणी कस्स ? अणंताणुवंधिचउक्कं विसंजोएंतस्स ।

§ २५३. एइंदिएसु असंखेज्जभागवड्डी तिण्णिहाणी अवट्टाणाणि कस्स ? अण्णद० । एवं पंचवहं कायाणं । विगल्लिंदिएसु दो वड्डी तिण्णि हाणी अवट्टाणाणि कस्स ? अण्णद० ।

§ २५४. ओरालियमिस्स० तिण्णिवट्ठि-अवट्टाणाणि कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स । दोहाणियो कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स । असंखे०भागहाणी कस्स ? सम्मादिट्ठि० मिच्छा-दिट्ठिस्स वा । एवं वेउच्चियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारि त्ति । आहार०-आहार-मिस्स० असंखे०भागहाणी कस्स ? अधट्ठिदिं गालयमाणस्स । एवमकसा०-जहा-कवाद०-सासण०दिट्ठि त्ति ।

§ २५१. पंचेन्द्रिय त्रियच अपर्याप्तकोंमें तीन वृद्धियां, अवस्थान और तीन हानियां किसके होती हैं ? किसी एक जीवके होती हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, तीनों अज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंखी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५२. आनात कल्पसे लेकर उपरिम त्रैवैयक तकके देवोंमें असंख्यात भागहानि किसके होती हैं ? किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती हैं । संख्यातभागहानि किसके होती हैं ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके या प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके होती हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें असंख्यातभागहानि किसके होती हैं ? किसी एकके होती हैं । संख्यातभागहानि किसके होती हैं ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके होती हैं ।

§ २५३. एकेन्द्रियोंमें असंख्यातभागवृद्धि, तीन हानियां और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं । इसी प्रकार पांचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिये । विकलेन्द्रियोंमें दो वृद्धियां, तीन हानियां और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं ।

§ २५४. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें तीन वृद्धियों और अवस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं । दो हानियां किसके होती हैं ? मिथ्यादृष्टिके होती हैं । असंख्यात भागहानि किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती हैं । इसी प्रकार वैकियिकमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यात भागहानि किसके होते हैं ? अधःस्थिति गलनाके द्वारा निर्जरा करनेवाले जीवके होती हैं । इसी प्रकार अकयायी, ययाख्यातसंवन और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५५. अत्रगद० असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स उवसामयस्स खवयस्स वा । संखे०भागहाणी संखे०गुणहाणी खवगस्स । आभिणि०-सुद०-ओहि०-तिण्णि हाणीओ कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णियट्ठिखवयस्स । एवं मणपञ्ज०-[ संजद-] समाइय-च्छेदो०-ओहिदंस०-सम्माइट्ठि चि ।

§ २५६. परिहार० असंखेज्जभागहाणि-संखेज्जभागहाणीओ कस्स ? अण्ण० । एवरी संखेज्जभागहाणी अण्णताणुवंधिसंजोएंतस्स दंसणतियखव्वंतस्स वा । एवं संजदासंजद० ! सुहुमसांपरा० असंखेज्जभागहाणी संखेभागहाणी संखेगुणहाणी कस्स ? अण्णदरस्स ।

§ २५७. सुक्कले० तिण्णि हाणीओ कस्स ? सम्मादिट्ठि० भिच्छादिट्ठिस्स वा । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णियट्ठिखवयस्स । खइय० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखे०भागहाणी कस्स ? उवसामयस्स खवयस्स वा । संखेज्जगुणहाणी कस्स ? खवयस्स । असंखेज्जगुणहाणी कस्स ? ओधं ।

§ २५८. उवसम० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद अण्णताणुवंधि० विसंजोएंतस्स कसायोवसामगस्स वा ।

§ २५५. अपगतवेदियोंमें असंख्यात भागहानि किसके होती हैं ? किसी भी उपशामक या क्षपक जीवके होती हैं । तथा संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानि क्षपक जीवके होती हैं । आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानियाँ किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होती हैं । असंख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५६. परिहारविशुद्धिसंयतोंमें असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानि किसके होती हैं । किसी भी जीवके होती हैं । परन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात भागहानि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके या तीन दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके होती हैं । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंमें असंख्यात भागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं ।

§ २५७. शुक्ललेख्यावाले जीवोंमें तीन हानियाँ किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्या-दृष्टि जीवके होती हैं । असंख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं । क्षाधिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं । संख्यात भागहानि किसके होती हैं ? उपशामक या क्षपक जीवके होती हैं । संख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? क्षपकके होती हैं । असंख्यातगुणहानि किसके होती हैं ? इसका कथन ओघके समान है ? अर्थात् असंख्यातगुणहानि अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं ।

§ २५८. उपशामसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं । संख्यातभागहानि किसके होती हैं ? अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले या

वेदय० असंखेज्जभागहाणी संखेज्जगुएहाणी कस्स ? अण्णदरस्स । संखेज्जभाग-  
हाणी कस्स ? अण्णताणुवंधि० त्रिसंजोएतस्स दंसणतियं खवेतस्स वा । सम्मापि०  
तिण्णिहाणीओ कस्स ? अण्णद० ।

एवं सामिच्चाणुगमो समत्तो ।

§ २५६. कालाणुगमणेण दुविहो णिद्वेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
तिण्णि वड्डी केवचिरं कालादो होंति ? जह० एगसमओ, उक्क० वे समय । असंखे०  
भागहाणी केवचि० ? जह० एयसमओ, उक्क० तेवट्टिसागरोमसदं अंतोमुहुत्तभहियं  
पलिदी० असंखे०भागे० सादिरंगं । संखे०भागहाणी केव० ? जह० एगसमओ,  
उक्क० उक्कस्ससंखेज्जं दुरूवूणं । दो हाणी केव० ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।  
अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमचक्खु०-भवसि०-तस-तसपज्ज० ।

कपायोंका उपशम करनेवाले किसी भी जीवके होती है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि और  
संख्यातगुणहानि किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । संख्यात भागहानि किसके होती है ?  
अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके या तीन दर्शनमोहनीयका ज्ञय करनेवाले  
जीवके होती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें तीनों हानियां किसके होती हैं ? किसी भी जीवके  
होती हैं ।

इस प्रकार स्वामित्वालुगम समाप्त हुआ ।

§ २५६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओचनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
उनमेंसे ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धियोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट  
काल दो समय है । असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट  
काल अन्तुसुहूर्त और पत्यका असंख्यातवां भाग अधिक एक सौ त्रैसठ सागर हैं । संख्यात  
भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट संख्यात  
समय प्रमाण हैं । संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि इन दो हानियोंका कितना काल  
है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट  
काल अन्तुसुहूर्त है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके जानना  
चाहिये ।

विशेषार्थ—जब कोई जीव अज्ञान्य या संक्लेशज्ञयसे सत्कर्मके ऊपर एक समय तक  
असंख्यातवें भाग, संख्यातवें भाग या संख्यातगुणी स्थितिको बढ़ाकर बांधता है और दूसरे समयमें  
अल्पतर या अवस्थित स्थितिको प्राप्त करता है तब उसके असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और  
संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । जब कोई एक जीव पहले समयमें अज्ञान्यसे  
और दूसरे समयमें संक्लेशज्ञयसे असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको बढ़ाकर बांधता है तथा तीसरे  
समयमें अल्पतर या अवस्थित स्थितिवन्ध करने लगता है तब उसके असंख्यातभागवृद्धिका  
उत्कृष्ट काल दो समय प्राप्त होता है । जब कोई एक श्रोत्रिय जीव संक्लेशज्ञयसे एक समय तक  
संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको बढ़ाकर बांधता है और दूसरे समयमें मरकर तथा श्रोत्रियोंमें  
उत्पन्न होकर पूर्व स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक वेदश्रोत्रियोंके योग्य जघन्य स्थितिको बांधता है

§ २६०. आदेसेण णेरइएमु असंखेज्जभागवड्डी केव० ? जह० एगसमञ्चो,

तव संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय प्राप्त हाता है। अथवा जो तेइन्द्रिय जीव स्वस्थानमें संक्लेशक्षयसे एक समय तक संख्यात भागवृद्धि करके और दूसरे समयमें भरकर तथा चौइन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर चौइन्द्रियोंके योग्य जघन्य स्थितिवन्ध करता है उसके संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय पाया जाता है। तथा जो एकेन्द्रिय एक मोड़ा लेकर संज्ञियोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले समयमें असंज्ञीके योग्य स्थिति बन्ध होता है जो कि एकेन्द्रियके स्थितिसत्त्वसे संख्यातगुणा है और दूसरे समयमें शरीरको ग्रहण करके संबीके योग्य स्थितिवन्ध होता है जो कि असंज्ञीके योग्य स्थितिवन्धसे संख्यातगुणा है अतः संख्यात गुणवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय है क्योंकि समान स्थितिको बांधनेवाले जिस जीवने एक समय तक पूर्व स्थितिसे असंख्यातवें भाग कम स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें पुनः सत्त्वके समान स्थितिका बन्ध करने लगा उसके असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूतं और पत्यके असंख्यातवें भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। उसका खुलासा इस प्रकार है—कोई मिथ्या-दृष्टि भोगभूमियां, आयुमें पत्योपमका असंख्यातवों भाग शेष रहने पर उपशम सम्यक्त्व को ग्रहण कर संख्यात भागहानि कर, मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। उस समयसे असंख्यात भागहानि प्रारंभ हो गई। आयुके अन्तमें वह वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छयासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा। पुनः अन्तमुं हूतं काल तक सम्यगिमिथ्यात्वके साथ रहा और तदनन्तर वह पुनः वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छयासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा तथा अन्तमें इकतीस सागर की आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यादृष्टि हो गया। तदनन्तर वहांसे च्युत होकर मनुष्योंमें उपज हुआ और एक अन्तमुं हूतके बाद भुजगार स्थितिको प्राप्त हो गया। इस प्रकार इस जीवके असंख्यात भागहानिका उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूतं और पत्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर पाया जाता है। संख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट संख्यात समय प्रमाण है। इसका खुलासा इस प्रकार है—दर्शनमोहनीयकी क्षणायामें या अन्यत्र जब पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकका घात होता है तब संख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा सूक्ष्मसांपरायिक क्षणके अन्तितम दो समय कम उत्कृष्ट संख्यात समय प्रमाण काल तक संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। जो जीव सत्तर कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिके संख्यात बहुभागका घात करता है उसके तथा अन्यत्र अन्तितम काण्डककी अन्तितम फालिके पतनके समय संख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः संख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा अनिष्टिकरणक्षणक अनिष्टिकरण गुणस्थानके सवेद भागमें स्थितिकांडक की अन्तितम फालिके पतनके समय असंख्यात गुणहानि होती है, अतः असंख्यात गुणहानिका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा अवस्थित स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूतं है, क्योंकि, जो जीव एक समय तक अवस्थित स्थितिको प्राप्त होकर दूसरे समयमें भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त हो जाता है उसके अवस्थित स्थिति एक समय तक ही पाई जाती है तथा जो लगातार अन्तमुं हूतं काल तक अवस्थित स्थितिके साथ रहकर भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त होता है उसके अवस्थित स्थितिका अन्तमुं हूतं काल पाया जाता है। अचक्षुदर्शनी, भव्य, त्रस और त्रसपर्याप्तक जीवोंके यह ओष प्ररूपणा अविकल वन जाती है, अतः उनके कथनको ओषके समान कहा।

§ २६०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यातभागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य

उक्क० वे समयया । दो वड्डी० दो हाणी० केव० ? जहण्णुक्क० एगसमओ । असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अवट्ठि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं सव्वणेरइ० । णवरि असंखेज्जभागहाणीए उक्कस्स० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा ।

§ २६१. तिरिक्खेसु तिण्णि वड्डी संखेज्जगुणहाणी अवट्ठि० ओघं । असंखे० भागहाणी ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पळ्ळिदोवमाण सादिरैयाणि । संखेज्ज-भागहाणी जहण्णुक्क० एगसमओ । एवं पंचिदियतिरक्खतियस्स । णवरि संखेज्ज-भागवट्ठि-संखेज्जगुणवड्डीयां जहण्णुक्क० एगसमओ । पंचिदियतिरक्खअपज्ज० तिण्णिवट्ठि-दोहाणि-अवट्ठिदाणं णिरओघभंगो । असंखेज्जभागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिय० पंचिदियतिरक्ख-तियभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणी असंखे० गुणहाणी ओघं ।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय हैं । दो वृद्धियों और दो हानियोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । अवस्थितविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सभी नारकियोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वत्र असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है ।

§ २६१. तिर्यैचोमें तीन वृद्धियों संख्यातगुणहानि और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्प है । तथा संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यैच त्रिकके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । पंचेन्द्रिय तिर्यैच अपर्याप्तिकों में तीन वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तिकों के जानना चाहिये । तथा मनुष्य त्रिकके पंचेन्द्रिय तिर्यैच त्रिकके समान काल है । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यात भागहानि और असंख्यातगुणहानिका काल ओघ समान है ।

**विशेषार्थ**—असंख्यात भागवृद्धि अद्धाक्षय और संक्लेशक्षय दोनों से प्राप्त हो सकती है किन्तु संख्यातभागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि केवल संक्लेशक्षयसे ही प्राप्त होती है अतः नारकियोंमें असंख्यात भागवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा शेष दो वृद्धियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानि अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय ही होती है अतः इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । नरकमें असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । जिस नारकीने नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त काल बाद वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया है और जब आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल



§ २६२. देव० तिण्णि वड्डी दो हाणी अवट्टि० णिरओधं । असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । भवण०-वाण०-जोइसि० एवं चेव । णवरि असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्स-ट्टिदी देसुणा । सोहम्मादि नाव सहस्सार ति एवं चेव । णवरि असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सग०ट्टिदी । आणदादि जाव उवरिमगेवज्ज ति असंखेज्जभागहाणी के० ? ज० अंतोसु०, उक्क० सगुक्कस्सट्टिदी । संखेज्जभागहाणी के० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्टिसिद्धि ति एवं चेव ।

§ २६३. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु असंखे० भागवड्डी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वे समय । असंखेज्जभागहाणी के० ? जह एगसमओ, उक्क०

शेष रह गया तब उसका त्याग किया है उसके असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । शेष कथन सुगम है । प्रथमादि नरकोंमें असंख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष कथन इसी प्रकार जानना । किन्तु असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना । यहाँ कुछ कमसे भवके प्रारम्भका अन्तमुहूर्त काल लेना चाहिये । जो तिर्यक तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य प्राप्त होता है । पंचेन्द्रिय तिर्यक त्रिकके संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि संक्लेशक्षयसे ही प्राप्त होगी अतः यहाँ इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । लब्धपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यकका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । ओषसे संख्यात भागहानि और असंख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट काल कहा है वह मनुष्य पर्याय मे ही बनता है अतः मनुष्यत्रिक के उक्त दो हानियोंका काल ओषके समान कहा । इस प्रकार ओषप्ररूपणाका और नरकादि तीन गतियोंका जो खुलासा किया है उसीसे आगेकी मार्गणाओं मे जहाँ जितनी हानि और वृद्धियाँ सम्भव हो उनके कालका खुलासा हो जाता है अतः आगे नहीं लिखा जाता है । हाँ जहाँ कुछ विशेषता होगी वहाँ अवश्य निर्देश कर दूँगे ।

§ २६२. देवोंमें तीन वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्रार कल्पतक भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेधक तक के देवोंमें असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । संख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धिकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये

§ २६३. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । असंख्यात भागहानिका कितना

पलिदो० असंखे०भागो । दो हाणी केव० ? जहएणुक्क० एगसमओ । अवडि० ओघं । एवं बादरेइदिय-वादरेइदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइदिय-सुहुमेइदियपज्जत्तापज्जत्ताणं । एवरि असंखे०भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वादरे-इदिय-सुहुमेइदिएसु पलिदो० असंखे०भागो । बादरेइदियपज्जत्तौसु संखेज्जाणि वस्स-सहस्साणि । अण्णत्थ अंतोसुहुत्तं ।

§ २६४. विगल्लिदिएसु असंखेज्जभागवड्डी ओघं । संखे०भागवड्डी दो हाणी० अवट्ठिदाणं एिरओघमंगो । असंखेज्जभागहाणी केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । पंचिदिय०-पंचि०पज्ज० मणुसमंगो । एवरि असंखे०भागहाणी० ओघं । पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तमंगो । एवरि तसअपज्ज० संखे०भागवड्डी संखे०गुणवड्डी० ओघं ।

§ २६५. पंचकाय-वादर-सुहुमाणमेइदियमंगो । तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणमेवं चेव । एवरि असंखे०भागहाणी० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी ।

काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पर्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । दो हानियोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है । इसी प्रकार बाश् एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें पर्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष हैं तथा इनके अतिरिक्त शेष वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें अन्तमुं हूतं काल है ।

§ २६४. विकलेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धिका काल ओघके समान है । संख्यात भागवृद्धि, दो हानि और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियों के समान है । तथा असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोके मनुष्योंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका काल ओघके समान है । पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकों के पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि त्रस अपर्याप्तकोके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि का काल ओघके समान है ।

§ २६५ पांचों स्थावरकाय, पाँचों स्थावरकाय वादर और पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । तथा पाँचों स्थावरकाय वादर और सूक्ष्मोंके जो पर्याप्त और अपर्याप्त भेद हैं उनके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात भागहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

§ २७०. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणी के० ? ज० अंतो-मुहुत्त', उक्क० छावदिसागरो० देख्याणि । तिणिण हाणी ओघं । एवमोहिदंस०-सम्मादि० । मणपज्ज० असंखे०भागहाणी जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देख्या । तिणिण हाणी ओघं । एवं संजद० । सामाइय-छेदो०संजदाणमेवं चव । एवरि संखे०भागहाणीए कालो जहणुक्क० एगसमओ । परिहार०-संजदासंजद० असंखे०भागहाणी जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्टिदी । संखे०भागहाणी० जहणुक्क० एगसमओ । सुहुम० अवगदवेदभंगो । असंजद० णवुंसयभंगो । णवरि असंखे०ज्ज-भागहाणीए कालो जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरैयाणि । असंखे०गुणहाणीवि० एत्थि । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । णवरि संखे०भागवड्डी जहणुक्क० एगसमओ ।

§ २७१. किण्ह-णील-काउले० असंजदभंगो । एवरि असंखे०भागहाणीए जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देख्या । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमार-भंगो । सुक्क० असंखे०भागहाणीए जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादि-रैयाणि । तिणिण हाणी ओघं । एवं स्वइय० । णवरि असंखे०भागहाणी ज०

§ २७०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तमु हूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर है । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदशैनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिये । सामाधिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तमु हूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति-प्रमाण है । तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सूक्ष्म-सांपराधिकसंयत जीवोंके अपगतवेदियोंके समान जानना चाहिये । असंयतोंके ननुसकवेदियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । असंयतोंके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है । चक्षुदर्शनवाले जीवोंके त्रसपर्याप्तकोके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ २७१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके असंयतोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्म कल्पके समान जानना चाहिये । पद्मलेश्यावाले जीवोंके सानल्लुमार कल्पके समान जानना चाहिये । शुक्ल लेश्यावाले जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार चाधिकसम्यग्दृष्टि

अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेचीसं साग० सादिरियाणि । वेदयं० असंखे० भागहाणी०  
आभिणि० भंगो । संखे० भागहाणी संखेज्जगुणहाणी जहएणुक्क० एगसमओ ।

§ २७२. सासण० असंखे० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० छ आवलि-  
याओ । सम्मामि० असंखे० भागहाणी जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । वे  
हाणी० वेदयभंगो । सणिण० पंचिदियभंगो । असणिण० दो वड्डी संखे० गुणहाणी०  
अवट्ठि० ओघं । संखे० गुणवड्डी संखे० भागहाणी जहएणुक्क० एगसमओ । असंखे०  
भागहाणीए एइंदियभंगो । अभव० मदि० भंगो । आहारि० दो वड्डी चचारि  
हाणी अवट्ठि० ओघभंगो । संखे० गुणवड्डी जहएणुक्क० एगस० । अणाहारि०  
कम्मइय० भंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ २७३. अंतराणुगमेण दुविहो णिहंसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
असंखेज्जभागवड्डी० अवट्ठि० अंतरं केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरो-  
वमसदं अंतोमुहुत्तं महियतीहि पल्लिदोवमेहि सादिरियं । दो वड्डी० दो हाणी० जह०  
एयसमओ अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । असंखे० भाग-

जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं  
और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के असंख्यात भागहानिका  
काल आभिनिवोधिकज्ञानियोंके समान है । तथा संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य  
और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ २७२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय  
और उत्कृष्ट काल छद् आवली है । सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य  
काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूतं है । तथा दो हानियोंका काल वेदकसम्यग्दृष्टियोंके  
समान है । संबन्धी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । असंबन्धी जीवोंके दो दृष्टियों, संख्यात  
गुणहानि और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा संख्यातगुणवृद्धि और  
संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और असंख्यात भागहानिका  
काल एकेन्द्रियोंके समान है । अभव्य जीवोंके मत्यज्ञानियोंके समान जानना चाहिये ।  
आहारक जीवोंके दो दृष्टियों, चार हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है ।  
तथा संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनाहारक जीवों के कर्मण्य  
काययोगियोंके समान जानना चाहिये ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ २७३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
उनमेसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ?  
जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तमुं हूतं और तीन पल्लोसे अधिक  
एक सौ त्रैसठ सागर है । तथा दो दृष्टियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय  
और अन्तमुं हूतं है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण

हाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे० गुणहाणी० जहणुक्क० अंतो-  
मुहुचं । एवमचक्खु०-भवसि० ।

है। तथा असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। तथा असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**—जब असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थित स्थितिके मध्यमे एक समय तक अन्य स्थितिविभक्ति प्राप्त हो जाती है तब इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा असंख्यात भागहानि और संख्यातभागहानिका मिला कर उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त और तीन पद्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है, अतः असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। जब कोई दो इन्द्रिय जीव पहले समयमे संख्यातभागवृद्धि करता है, दूसरे समयमें अवस्थित स्थितिको प्राप्त होता है और तीसरे समयमें मरकर तथा तेइन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पुनः संख्यातभागवृद्धि करता है तब संख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त होता है, अतः संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा। जो एकेन्द्रिय जीव दो मोड़ा लेकर संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले मोड़ेके समय संख्यातगुणवृद्धि होती है। दूसरे मोड़ेके समय अन्य स्थिति होती है और तीसरे समयमें पुनः संख्यातगुणवृद्धि होती है अतः संख्यातगुण-वृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय कहा। जिस जीवके स्थिति काण्डककी चरम फालिके पतनके समय संख्यातभागहानि हुई पुनः अन्तमुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातभागहानि होती है अतः संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा। तथा उसी जीवके दूरपकृष्टि प्रमाण स्थितिके उपरिम द्विचरम स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातगुणहानि होती है। पुनः अन्तमुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातगुणहानि होती है अतः संख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा। तथा उक्त दानों वृद्धियों और दोनो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है, क्योंकि जिस जीवने संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायमे उक्त दो वृद्धियाँ और दो हानियाँ की पुनः जो मरकर एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न हुआ और वहाँ असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् वहाँसे निकलकर जो संज्ञियोंमे उत्पन्न हुआ और संज्ञी पर्यायमें जिसने पुनः दो वृद्धियाँ और दो हानियाँ कीं उसके उक्त दो वृद्धियों और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है। एक समयके अन्तरसे असंख्यातभागहानिका होना सम्भव है, अतः असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय कहा। तथा अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। अब यदि असंख्यात भागहानिकी अवस्थित स्थितिके अन्तमुहूर्त काल तक अन्तरित कर दिया जाय तो असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तमुहूर्त प्राप्त हो जाता है। अनिवृत्तिकरण रूपके सेवेद भागमे स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असंख्यातगुणहानि होती है पुनः अन्तमुहूर्तके बाद दूसरे स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असंख्यातगुणहानि होती है, अतः असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त प्राप्त होता है। अचक्षुदर्शन और भव्य मार्ग्यामे यह ओष प्रेरूपणा बन जाती है, अतः इनके कथनको ओषके समान कहा।

§ २७४. आदेसेण णेरइय० असंखे० भागवड्डी अवट्टि० जह० एगसमओ । दो वड्डी० दो हाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० देसूणाणि । असंखे० भागहाणी० ओघं । पढमादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सगसगुक्कस्सट्टिदी देसूणा ।

§ २७५. तिरिक्खेसु असंखेज्जभागवड्डी अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । दो वड्डी०-दोहाणी० असंखे० भागहाणी० ओघं । पंचि० तिरिक्खतियम्मि असंखे० भागवड्डी० अवट्टि० ज० एगसमओ । दो वड्डी० संखे० गुणहाणी ज० अंतोमुहुत्तं । उक्क० सव्वेसिं पि पुव्वकोडिपुव्वं । असंखेज्जभागहाणी० आवं । संखे० भागहाणी ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिरिएण पल्लिदोवमाणि अंतोमुहुत्तं महियाणि । एवं मणुसतिय० । णवरि जम्हि पुव्वकोडिपुव्वं तम्हि पुव्वकोडी देसूणा । असंखे० गुणहाणी० ओघं । पंचि० तिरिक्खअपज्ज० असंखे० भागवड्डी० हाणी० अवट्टि० जह० एगसमओ । दो वड्डी० दो हाणी० जह० अंतोमु० । उक्क० सव्वेसिं अंतोमुहुत्तं । एवं मणुसअपज्ज०-पंचि० अपज्ज०-तसअपज्ज०-विहंग० । णवरि तसअपज्ज० दोवड्डी० जह० एगसमओ ।

§ २७४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंके असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा उपर्युक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है । तथा असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये ।

§ २७५. तिर्यञ्चोमें असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा दो वृद्धियों, दो हानियों और असंख्यातभागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा दो वृद्धियों और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व है । असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है तथा संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जहाँ पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है वहाँ मनुष्यत्रिकके कुछ कम पूर्वकोटि कइना चाहिये । तथा असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके असंख्यात-भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक और विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि त्रस अपर्याप्तकोंके दो वृद्धियोंका जघन्य अन्तर काल एक समय है ।

§ २७६. देव० असंखेज्जभागवड्डी० अवट्टि० जह० एगसमओ, दो वड्डी० संखेज्जगुणहाणी० जह० अंतोमुहुचं, उक्क० अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसुणाणि । असंखे० भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । भवणादि जाव सहस्सार चि एवं चेव । णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसुणा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे चि असंखे० भागहाणीए जहणुक्क० एगसमओ । संखे० भागहाणीए जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसुणा । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठेत्ति असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० एगसमओ । संखे० भागहाणी० जहणुक्क० अंतोमु० ।

§ २७६. देवोम असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा दो वृद्धियों और संख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर है । तथा संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है । तथा असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । आनत कल्पसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देवोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अत्रुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—नरकमे स्वस्थानकी अपेक्षा संख्यातभाग वृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि संक्लेश क्षयसे एक समय तक होती है और पुनः इनका होना अन्तमुहूर्त कालके विना सम्भव नहीं है, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । तथा नरकमे असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः असंख्यातभागहानिको छोड़कर शेष सवका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण कहा । तिर्यचोंमे असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पल्य है पर ऐसे जीवके तिर्यच पर्यायके रहते हुए असंख्यातभागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल सम्भव नहीं किन्तु तिर्यचोंमें एकेन्द्रियोंके जो असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है वही इनके असंख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यचत्रिकमे स्वस्थानकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि एक समय तक होकर पुनः अन्तमुहूर्त कालके विना नहीं हो सकती हैं अतः इन दोनोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । तथा तिर्यच त्रिकके असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पल्य बतलाया है किन्तु ऐसा जीव मरकर पुनः तिर्यच पर्यायमे नहीं आता, अतः तिर्यच त्रिकके असंख्यात भागहानिका जो उत्कृष्ट काल है वह तीन वृद्धि, संख्यातगुणहानि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं हो सकता किन्तु इनके संबन्धी अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होकर असंख्यातमें उत्पन्न हो जानेसे असंख्यातभागहानि प्रारंभ हो जाती है । पुनः असंख्यातमें अपने अपने असंख्ययोग्य उत्कृष्ट काल तक, जो क्रमशः ४६, १५ व ७ कोटि पूर्व भ्रमण किया । तथा वहाँ अपनी अपनी असंख्य पर्यायके

§ २७७. एइंदिएसु असंखे० भागवड्डी० हाणी० अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । दो हाणी० णत्थि अंतरं । एवं पंचकायाणं । विगळिंदिएसु असंखे० भागवड्डी हाणी० अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे० भागवड्डी० संखे० भागहाणी० जहणुक्क० अंतोमुहुत्तं । संखे० गुणहाणी० णत्थि अंतरं ।

प्रारम्भमें उक्त तीन वृद्धियां, संख्यात गुणहानि और अवस्थित स्थितिका अन्तर करके उक्त पूर्व कोटि पृथक्त्व काल तक असंख्यात भागहानिके साथ रहा । और संक्षियोंमें उत्पन्न होकर पुनः तीन वृद्धियां, संख्यातगुण हानि और अवस्थित स्थिति प्राप्त हो गई तब जाकर इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण ही प्राप्त होता है । जिस तिर्यचने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय संख्यातभागहानि की । पुनः मिथ्यात्वमें जाकर और अन्तमुहूर्त कालके बाद जो तीन पत्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और जीवनमें अन्तमुहूर्त कालके शेष रह जाने पर जिसने पुनः प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके संख्यात भागहानि की उसके संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पत्य प्रमाण पाया जाता है । मनुष्यत्रिकके असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल तिर्यच त्रिकके समान ही है पर इनके भी असंख्यात भागवृद्धि आदिका उत्कृष्ट अन्तरकाल तत्प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि तिर्यचत्रिकके समान यहां भी वही बाधा आती है । अब यदि कहा जाय कि जिस प्रकार तिर्यच त्रिकके इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण वतला आये हैं उसी प्रकार मनुष्योके भी घटित हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि मनुष्योंमें असंखी न होनेके कारण सम्यक्त्व की अपेक्षा भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण वतलाया है अतः यहां असंख्यात भागवृद्धि आदिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण ही कहा है । जो पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त स्थितिघात करता है उसके एक काण्डकी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातभागहानि या संख्यातगुणहानि हुई । पुनः अन्तमुहूर्तकालके बाद दूसरे काण्डकी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यात भागहानि या संख्यात गुणहानि होगी अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें इनका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । किन्तु त्रस अपर्याप्तकोंमें विकलत्रय भी सम्मिलित हैं, अतः इनके संख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय भी बन जाता है । देवोंमें बारहवें स्वर्गके बाद असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणहानि और अवस्थित स्थिति नहीं पाई जाती अतः इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा । तथा नौ प्रैवेयकके देव सम्यग्दर्शनको प्राप्त करके पुनः मिथ्यात्वमें और मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें जा सकते हैं और इस प्रकार उनके पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्त्व और उसकी विसंयोजना हो सकती है, अतः सामान्य देवोके संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ २७७. एकेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पाँच स्थावरकायिक जीवोके जानना चाहिये । विकसेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तमुहूर्त है । संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा संख्यात गुणहानिका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल जो पत्यके असंख्यातवें



§ २७८. पंचिदिय-पंचि०पञ्ज० असंखे०भागवड्डी० अवट्टि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं अंतोमुहुत्तंभहियतीहि पल्लिदोवमेहि सादिरेयं । असंखे०भागहाणि० अंतरं ज० एगसम०, उक्क० अंतोमु० । दोवड्डी-दोहाणीणं ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं सादिरेयं । असंखे०गुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं तस-तसपञ्जचाणं । णवरि दो वड्डी० जह० एगसमओ ।

भागप्रमाण बतलाया सो इतने काल तक असंख्यात भागहानि उन एकेन्द्रियोंके पाई जाती है जिनकी स्थिति एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे बहुत ही अधिक होती है और इसलिये ऐसे जीवके असंख्यात भागवृद्धि, या अवस्थित या इनका अन्तरकाल यह कुछ भी सम्भव नहीं । किन्तु असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि या अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल उन एकेन्द्रियोंके पाया जाता है जिनका स्थितिसत्त्व एकेन्द्रियोंके स्थितिवन्धके योग्य रह जाता है और इस प्रकार इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं प्रमाण बन जाता है । तथा जिस संज्ञी पंचेन्द्रियने संख्यात भागहानि या संख्यात गुणहानिका प्रारम्भ किया है वह यदि स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालको समाप्त करनेके पहले मरकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो जाय तो उस एकेन्द्रिय जीवके संख्यात भागहानि या संख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः एकेन्द्रियके इनका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । विकलत्रयोंमें संख्यात भागवृद्धि भी सम्भव है अतः इनके अपने स्थितिवन्धके योग्य स्थितिके रहते हुए भी संख्यात भागहानि हो सकती है पर इस प्रकार संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानि अन्तमुं हूतंके पहले नहीं होती, अतः इनका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ २७८. पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित-विभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुं हूतं और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । तथा असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । इसी प्रकार त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके दो वृद्धियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर बतलाया है सो यहां दोनो वृद्धियों और संख्यात गुणहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे तीन पल्य और अन्तमुं हूतं कालका ग्रहण करना चाहिये तथा संख्यात भागहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि पहले असंख्यात भागहानिका जो पल्यका असंख्यातवें भाग अधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल बतला आये हैं वह यहां संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल है और जो अल्पतर स्थितिका अन्तमुं हूतं और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण उत्कृष्ट काल बतला आये हैं वह यहां संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि और संख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल है । तथा उक्त जीवोंके उक्त दो वृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल जो अन्तमुं हूतं प्रमाण बतलाया है सो इसका कारण यह है कि स्वस्थानकी अपेक्षा उक्त स्थिति-

§ २७६. पंचमण०-पंचवचि० असंखे०भागवड्डी० अत्रद्वि० अंतरं के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे०भागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसदोवड्डी-तिण्णिहाणीणं एत्थि अंतरं । एवमोरालियकायजोगीणं ।

§ २८०. कायजोगीसु असंखे०भागवड्डी० अत्रद्वि० ज० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । असंखे०भागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दोवड्डी-दोहाणीणं जह० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगल-परियद्दा । असंखे०गुणहाणी० एत्थि अंतरं । ओरालियमिस्स० असंखे०भाग-वड्डी० अत्रद्वि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखेज्जभागहाणी० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । संखे०भागवड्डी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दोहाणी० संखे०गुणवड्डी० जह० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । वेउन्विय० असंखे०भाग-वड्डी० हाणी० अत्रद्वि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसदोवड्डी-दोहाणीणं एत्थि अंतरं । वेउन्वियमिस्स० असंखे०भागवड्डी हाणी० अत्रद्वि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसपदेसु एत्थि अंतरं । कम्मइय० अत्रद्वि० ज० उ० एगसमओ ।

विभक्तिका इससे कम अन्तरकाल नहीं पाया जा सकता है । तथा त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल जो एक समय वतलाया है सो यह परस्थानकी अपेक्षा जानना चाहिये जिसका खुलासा ओघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं ।

§ २७६. पाँचों मनोयोगी और पाँचा वचनयोगी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल, एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । तथा शेष दो वृद्धियो और तीन हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २८०. काययोगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल पर्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । दो वृद्धियो और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अन्तमुं हूतं तथा उक्कष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । तथा दो हानियो और संख्यात गुणवृद्धिका जघन्य और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । वैक्यिककाययोगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । तथा शेष दो वृद्धियो और दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । वैक्यिकमिश्रकाय-योगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतं है । तथा शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं है । कर्मणकाययोगियोंमें अवस्थितविभक्तिका जघन्य और उक्कष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा

सेसपदानं णत्थि अंतरं । आहार०-आहारमिस्स० असंखे०भागहाणी० णत्थि अंतरं ।  
एवमकसा०-जहाक्खाद०-सासण० । अणाहारीणं कम्मइयभंगो ।

§ २८१. इत्थिवेद० असंखे०भागवड्डी० अवट्ठि० ज० एगसमओ । दो  
वड्डी-दोहाणीणं जह० अंतोमु० । उक्क० पणवण्णपल्लिदोवमाणि देसूणाणि ।  
असंखे०भागहाणी-असंखे०गुणहाणीणमोघभंगो । पुरिस० पंचिदियभंगो । णवुंस०  
असंखे०भागहाणी-अवट्ठिदानं णिरओघं । सेसपदानमोघभंगो । एवमसंजद० ।

शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें  
असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार अकपायी, यथाख्यातसंयत और  
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । अनाहारक जीवोंके कर्मणकाययोगियोंके समान  
जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ-** पांचों मनोयोगों और पांचों वचनयोगोंका तथा एकेन्द्रियोंका छोड़कर शेष  
जीवोंके औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है और विचक्षित किसी एक योगके रहते  
हुए संख्यात भागवृद्धि आदि तथा संख्यात भागहानि आदि दो बार सम्भव नहीं अतः इनके संख्यात  
भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि  
और असंख्यातगुणहानि इन तीन हानियोंका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । काययोगमें असंख्यात भाग  
हानिका जो उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातर्वे भागप्रमाण बतलाया है वही यहाँ असंख्यात भागवृद्धि  
और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । कोई एक त्रस जीव है उसने काययोगके  
रहते हुए संख्यात भागवृद्धि की । पुनः वह काययोगके साथ मर गया और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर  
अनन्त काल तक धमता रहा । तदनन्तर वह त्रस हुआ और वहाँ उसने पुनः संख्यात भागवृद्धि  
की । इस प्रकार इस जीवके संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन  
प्रमाण प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार संख्यात गुणवृद्धि और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल  
यथायोग्य रीतिसे घटित कर लेना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त  
है इसलिये इसमें सम्भव सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण ही प्राप्त होता है ।  
वैकिकिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है और एक योगके रहते हुए संख्यात भागवृद्धि  
और संख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इन  
दो हानियोंका दो दो बार होना सम्भव नहीं अतः वैकिकिककाययोगमें इनका अन्तरकाल नहीं  
बतलाया । यही बात वैकिकिकमिश्रकाययोगके सम्बन्धमें जानना चाहिये । कर्मणकाययोगमें अव-  
स्थित पदका ही उत्कृष्ट काल तीन समय बतलाया है । अब यदि किसी कर्मणकाययोगीने पहले  
और तीसरे समयमें अवस्थित स्थिति की तो उसके अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल  
एक समय पाया जाता है । यहाँ शेष पदोंका अन्तरकाल सम्भव नहीं । यही बात अनाहारकोंके  
जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ २८१. स्त्रीवेदी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर-  
काल एक समय और दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा  
उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पत्य है । तथा असंख्यात भागहानि और  
असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओषके समान है । पुरुषवेदियोंके पंचेन्द्रियोंके समान जानना  
चाहिये । नपुंसकवेदियोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल सामान्य  
नारकियोंके समान है । तथा शेष पदोंका अन्तरकाल ओषके समान है । इसी प्रकार असंयत

णवरि असंखे० गुणहाणी गत्थि । अवगद० असंखे० भागहाणी जहणुक्क० एग-  
समओ । दोहाणीण जहणुक्क० अंतोमु० । एवं सुहुमसांपराय० ।

§ २२२. चत्तारिकसाय० तिण्णि वड्डी० असंखेज्जभागहाणी० अवट्ठि० जह०  
एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे० भागहाणी-संखे० गुणहाणी-असंखेज्जगुणहाणीणं  
जहणुक्क० अंतोमु० ।

§ २२३. मदि-सुदअण्णाणीसु असंखेज्जभागवड्डी [अवट्ठि०] जह० एगसमओ,  
उक्क० एक्कत्तीस सागरो० सादिरेयाणि । सेसमोघ । एवमभव०-भिच्छादिट्ठि ति ।

§ २२४. आभिण्णि०-सुद०-ओहि० असंखे० भागहाणी जहणुक्क० एग-  
समओ । संखे० भागहाणी जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० आवट्ठिसागरोवमाणि देसूयाणि ।

जीवोके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानि नहीं हैं । अपगतवेदियों में असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपराधिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२२. क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंमें तीन वृद्धियों, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि और असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ—**देवीकी उत्कृष्ट आयु पचवन पल्यकी है । अब यदि किसी देवीने उत्पन्न होनेके अन्तमुहूर्त बाद सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया और जीवनमें अन्तमुहूर्त कालके शेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गई तो उसके इतने काल तक असंख्यात भागहानि ही पाई जायगी अतः स्त्रीवेदमें असंख्यात भागवृद्धि, अवस्थित, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पल्य बन जाता है, क्योंकि ये सत्र पद सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पूर्व और बादमें सम्भव हैं । असंख्यात गुणहानि अनिवृत्ति त्पकके ही होती है अतः असंयत जीवके इसका निषेध किया । अपगतवेदमें असंख्यात भागहानि जब संख्यातभागहानि या संख्यातगुणहानिसे एक समयके लिये अन्तरित होजाती है तब असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल पाया जाता है जो कि जघन्य और उत्कृष्ट रूपसे एक समय प्रमाण ही होता है । तथा यहाँ संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओषके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु वहाँ जो जघन्य अन्तरकाल वतलाया है वही यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । अपगतवेदसे सूक्ष्मसांपराधिक संयतके कोई विशेषता नहीं अतः उसके कथन को अपगतवेदके समान जानना चाहिये । चारों कषायोंका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है अतः इनमें सम्भव पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ २२३ मत्त्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर है । शेष कथन ओषके समान है । इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२४. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त

एवं संखेज्जगुणहाणीए । णवरि छावट्टिसागरो० सादिरैयाणि । असंखे०गुणहाणी०  
 ओघं । एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठीणं । मणपज्ज० असंखे०भागहाणी० जहण्णुक० एम-  
 समओ । संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसुणा । दोहाणी०  
 जहण्णुक० अंतोमु० । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०संजदे त्ति ।

§ २८५. परिहार०-संजदासंजद० असंखे०भागहाणी-संखे०भागहाणीणं मण-  
 पज्जयभंगो । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । णवरि संखे०भागवट्ठी० ज० अंतोम० ।

और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छियासठ सागर है । इसी प्रकार संख्या न गुणहानिका जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक छयासठ सागर है । तथा असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि है । तथा दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार संयत, सामाधिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २८५. परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानिका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । चक्षुदर्शनवाले जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—किसी एक मिथ्यादृष्टि मनुष्यने असंख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको किया । अनन्तर वह असंख्यात भागहानिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट आयुके साथ नौवें त्रैवेयकमे उत्पन्न हो गया और वहां से च्युत होकर वह पुनः असंख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर पाया जाता है । आभिनिशोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानिके सम्भव रहते हुए जब अन्य पद एक समयके लिये प्राप्त हो जाते है तभी इनके असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल प्राप्त होता है अतः इनके असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहा । संख्यात भागहानि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके समय आदिमें हुई और ६६ सागर के अन्तिम अन्तमुहूर्तमे दर्शन मोहकी क्षणिके समय हुई अतः इसका अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कम ६६ सागर होता है । संख्यात गुणहानि वेदक सम्यक्त्वके प्रथम समयमे हुई । फिर वेदक सम्यक्त्वमे ३ पूर्वकोटि ४२ सागर काल तक रह कर क्षणिक सम्यग्दृष्टि हो २४ सागर व १ पूर्वकोटिके अन्तिम अन्तमुहूर्त मे क्षणिकश्रेणिके कालमे संख्यातगुणहानि हुई इस प्रकार इसका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कम चार पूर्वकोटियोंसे अधिक छयासठ सागरोपम होता है । मनःपर्ययज्ञानी, परिहारविशुद्धि व संयतासंयतका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है । अतः जिसने इस कालके प्रारंभमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और अन्तमे दर्शनमोहकी क्षणिकी उसके संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्थात्, ८ वर्ष, ३८ वर्ष व ८ वर्ष कम पूर्व कोटि होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ २८६. किण्ह-खील-काउ० तिण्णि वड्डी० अवट्टि० जह० एगसमओ, दोहाणी० ज० अंतोमु० । उक्क० सव्वेसिं सगट्टिदी देसूणा । असंखे० भागहाणी० ओघं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्क० असंखे० भागहाणी० जहएणुक्क० एगसमओ । संखे० भागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एकत्तीस साग० देसूणाणि । संखे० गुणहाणी जहणुक्क० अंतोमु० । असंखे० गुणहाणी० ओघं ।

§ २८७. खइय० असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० एगसमओ । तिण्णि हाणी० जहणुक्क० अंतोमु० । णवरि संखे० भागहाणी० उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि । वेदय० दो हाणीणं ओधिभंगो । संखे० गुणहाणी० गत्थि अंतरं । उवसम० असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० एगसमओ । संखे० भागहाणी० जहणुक्क० अंतोमु० । सम्मामि० असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० एगसमओ । दो हाणी० णत्थि अंतरं ।

§ २८८. [ सण्णीणं पंचिदियभंगो । ] असण्णीसु असंखे० भागवड्डी० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । संखे० भागहाणी ओघं । संखे० भागवड्डी ज० एगसमओ, संखे० गुणवड्डी-दोहाणीणं ज० अंतोमु० । उक्क० सव्वेसिमणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्टा ।

§ २८६. कृष्ण, नील, और कापोत लेश्यावाले जीवोमे तीन वृद्धियों और अवस्थित-विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और दो हानियोका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्म स्वर्गके समान और पद्मलेश्यावाले जीवोंके सहस्रारस्वर्गके समान जानना चाहिये । तथा शुक्ललेश्यावाले जीवोमे असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है । तथा संख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है ।

§ २८७. त्रायिकसम्यग्दृष्टियोमे असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय तथा तीन हानियोका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टियोमे दो हानियोका अन्तरकाल अवधिज्ञानियोके समान है । तथा संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । उपशमसम्यग्दृष्टियोमे असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोमे असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा दो हानियोका अन्तरकाल नहीं है ।

§ २८८. संज्ञी जीवोमे पंचेन्द्रियोके समान भंग है । असंज्ञी जीवोमे असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपसके असंख्यातवे भंगप्रमाण है । संख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । संख्यात भागवृद्धि का जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा संख्यातगुणवृद्धि और दो हानियोका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तर अन्तकाल है जो कि असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ २८९. आहारि० असंखे० भागवट्टी हाणी० अवट्टि० ओघं । संखे० गुणवट्टी दोहाणी० जह० अंतोमु० । संखे० भागवट्टी० ज० एगसमओ, उक्क० अंगुलस्त असंखे० भागो । असंखेज्जगुणहाणी० ओघं ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ २९०. खाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो सिद्धेसो—ओघेण आदे-  
सेण य । तत्थ ओघेण असंखेज्जभागवट्टी-हाणि-अवट्टाणाणि णियमा अत्थि । सेस-  
पदाणि भयणिज्जाणि । भंगा वादालीसुत्तरदुसदमेत्ता २४२ । एवं तिरिक्ख०-  
सव्वेइं दिय-पुढवी०-वादरपुढवी०-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्ता-  
पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-  
तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-  
वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त०-वणप्फदि०-वादरवणप्फदि०-  
वादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-वादरणिगोद०-  
वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदि-  
पत्तेय०-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वादरणिगोदपदिट्ठिद-वादरणिगोदपदिट्ठिद-

§ २९१. आहारक जीवोके असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित-  
विभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । संख्यातगुणवृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल  
अन्तमुं हूर्त है तथा संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । तथा समीका उत्कृष्ट  
अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । तथा असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके  
समान है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ २९० नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और  
आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अव-  
स्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं । भंग दोसौ ब्यालीस होते हैं । इसी  
प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, समी एकेंद्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जल-  
कायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त,  
सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुका-  
यिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक  
पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक  
पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद  
अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक  
प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, वादर-निगोद प्रतिष्ठित, वादर निगोद

अपञ्ज०-कायजोगि०-ओराखिय०--ओरालियमिस्स०-कम्पइय०-णवु'स०-चत्तारि-  
कसाय-मदि-मुदअरणाण०-असंजद०-अचक्खु०-तिणिले०-भवसि०-अभवसि०-  
मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि चि । एवरि भंग जाणिय वत्तवा ।

प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षु-  
दर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेख्यावाले, भव्य, अभव्य, सिध्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अना-  
हारक जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके भंग जान कर कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मोहनीय कर्मकी स्थितिमें असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यात  
गुणवृद्धि ये तीन वृद्धियाँ, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और  
असंख्यातगुणहानि ये चार हानियाँ तथा अवस्थित इस प्रकार आठ पद पाये जाते हैं । इनमेंसे  
असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदवाले नाना जीव नियमसे पाये  
जाते हैं, इसलिये इनका एक ध्रुव भंग हुआ । किन्तु शेष पाँच पद भजनीय हैं । उनमेंसे किसी एक  
पदवाला कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् नाना जीव होते हैं । यह भी सम्भव है कि  
कदाचित् किसी एक पदवाला एक या नाना जीव हो तथा उसी समय उससे भिन्न अन्य पदवाले भी  
एक या नाना जीव हों । इस प्रकार इन भजनीय पदोंके भंगोमें एक ध्रुव भंगके मिलाने पर कुल  
भंगोंका जोड़ २४३ होता है । यथा—

१ ध्रुव भंग

२ संख्यातभागवृद्धिके एक और नाना जीवोंकी  
अपेक्षा

३ कुल जोड़

६ संख्यातभागवृद्धिके प्रत्येक और संख्यातगुण-  
वृद्धिके साथ एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा  
संयोगी भंग

६ कुल जोड़

१८ संख्यात भागहानिके प्रत्येक व पूर्वोक्त दो पदों-  
के साथ संयोगी भंग

२७ कुल जोड़

५४ संख्यातगुणहानि के प्रत्येक व पूर्वोक्त तीन  
पदोंके साथ संयोगी भंग

८१ कुल जोड़

१६२ असंख्यातगुणहानिके प्रत्येक व पूर्वोक्त चार  
पदोंके साथ संयोगी भंग

२४३ कुल जोड़

मूलमें ध्रुव भंगको सम्मिलित न करके केवल भजनीय पदोंके २४२ भंग कहे हैं और ध्रुव  
भंगको अलग बतलाया है । अब यदि इन २४२ भंगोंमें ध्रुव भंग भी मिला दिया जाता है तो कुल  
भंगोंका जोड़ २४३ होता है जैसा कि हमने पूर्वमें घटित करके बतलाया ही है । आगे सामान्य



§ २६१. आदेसेण णेरइप्सु असंखे० भागहाणि-अवट्टायाणि णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । भंगा वादालीसुत्तरदुसदमेत्ता २४१ । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-देव०-भवयादि जाव सहस्सार०-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-वादरपुढवीपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवण प्फदिपत्तेयपज्ज०-वादरणिमोदपदिद्विदपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउच्चिय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-परम०-सण्णि ति ।

तिर्यच आदि मार्गणाओमें जो ओषके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका मतलब यह है कि उन मार्गणाओमें जहां जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असंख्यात भागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित इन तीन पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग है और शेष पद भजनीय हैं । विशेष खुलासा इस प्रकार है—मूलमें गिनाई हुई मार्गणाओमेंसे काययोग, औदारिककाययोग, चारों कषाय, अचक्षुदर्शन, भव्य, आहारक और नपुंसकवेद ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें अतिकल ओष-प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः २४३ भंग प्राप्त होते हैं । सामान्य तिर्यच, औदारिकमिश्रकाय-योगी, कर्मणकाययोगी, मत्तयज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, असंज्ञी, अनाहारक, मिथ्यादृष्टि, अभव्य और कृष्णादि तीन लेश्यावाले ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें असंख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती अतः भजनीय पद चार रह जाते हैं और इसलिये इनमें ध्रुव भंगके साथ कुल भंग ८१ होते हैं । तथा इनके अतिरिक्त जो एकेन्द्रिय और उनके भेद तथा पांच स्थावरकाय और उनके भेद वतलाये हैं । उनमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानिके बिना एक वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित ये पांच पद ही पाये जाते हैं । सो इनमेंसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पद की अपेक्षा एक ध्रुव भंग ही प्राप्त होता है । अब भजनीय पद दो रह जाते हैं, अतः इनमें ध्रुव भंगके साथ कुल नौ भंग होते हैं ।

§ २६१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तियाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष पद भजनीय हैं । भंग दोसौं व्यालीस होते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्त, वादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी व्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें असंख्यात गुणहानिको छोड़कर सात पद हैं पर उनमें असंख्यात भागहानि और अवस्थित ये दो पद ध्रुव हैं तथा शेष पांच पद भजनीय हैं, अतः यहाँ भी भजनीय पदोंके २४२ भंग और एक ध्रुव भंग इस प्रकार कुल २४३ भंग प्राप्त होते हैं । आगे सातो तरहके नारकी आदि कुल और मार्गणाओमें जो सामान्य नारकियोंके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका यह मतलब है कि जहाँ जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असंख्यात भागहानि और अवस्थित इन दो पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग है और शेष पद भजनीय हैं । विशेष खुलासा इस

§ २६२ मणुस्सअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा । एवं वेउव्वियमिस्स०-  
अवगद०-सुहुम०-सम्माभि० । एवरि भंगा जाणिय वत्तव्वा ।

§ २६३. आणदादि जाव सव्वद्वसिद्धि चि असंखेज्जभागहाणी णियमा  
अत्थि । सिया एदे च संखेज्जभागहाणिविहत्तिओ च । सिया एदे च संखे०भाग-  
हाणिविहत्तिया च । ध्रुवसहिदा तिण्णि भंगा । एवं परिहार०-संजदासंजद० ।

§ २६४. आहार०-आहारमिस्स० सिया असंखेज्जभागहाणिविहत्तिओ,  
सिया असंखे०भागहाणीविहत्तिया एवं दोण्णि भंगा २ । एवमकसा०-जहाक्खाद०-  
सासण० । आभिणि०-सुद०-ओहिणाणीसु असंखेज्जभागहाणी णियमा अत्थि । सेस-

प्रकार हैं—मूलमे गिनाई हुई मार्गणाओमेसे सातों नरकके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाय-योगी, विभंगज्ञानी, पीतलेख्यावाले और पद्मलेख्यावाले ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें सामान्य नार-कियोके समान प्ररूपणा बन जाती हैं, अतः इनमें ध्रुव भंग सहित कुल भंग २४३ होते हैं । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनी और संज्ञी ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें असंख्यात गुणहानि और पाई जाती हैं, अतः कुल आठ पदोंमेसे भजनीय पद ६ हो जाते हैं अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग ७२६ हो जाते हैं । विकलत्रयोंमें असंख्यात-भागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि तथा तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार छह पद हैं । इनमेसे चार अभ्रुव हैं, अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग ८१ होते हैं । अब शेष रहीं पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि मार्गणाएं सो उनमें असंख्यात भागवृद्धि, तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार पांच पद हैं । इनमेंसे तीन अभ्रुव हैं, अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग २७ होते हैं ।

§ २६२. मनुष्य अपर्याप्तकोके सभी पद भजनीय हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके भंग जानकर कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—लब्धपर्याप्त मनुष्योंके असंख्यात गुणहानिके सिवा सात पद पाये जाते हैं और ये सब भजनीय हैं, अतः यहां ध्रुव भंगके विना कुल भंग २१८६ होंगे । इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगमे २१८६ भंग जानना चाहिये । अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और सम्यग्मिध्या-दृष्टिके असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, और संख्यातगुणहानि ये तीन पद हैं तथा ये तीनों भजनीय हैं, अतः यहां २६ भंग होंगे ।

§ २६३. आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव नियमसे हैं । तथा कदाचित् असंख्यात भागहानिवाले अनेक जीव हैं और संख्यातभागहानिवाला एक जीव है । कदाचित् असंख्यातभागहानिवाले अनेक जीव हैं और संख्यात भागहानिवाले अनेक जीव हैं । इस प्रकार ध्रुव भंगसहित तीन भंग होते हैं । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २६४. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कदाचित् असंख्यात भाग-हानिवाला एक जीव है और कदाचित् असंख्यातभागहानिवाले अनेक जीव हैं । इस प्रकार दो भंग हैं । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव नियम

पदा भयणिज्जा । एवं मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-वेदो०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मा-  
दि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि त्ति । उवसम० दो हाणी भयणिज्जा ।

एवं शाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

§ २६५. भागाभागानुगमेण दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य ।  
ओघेण असंखे०भागवट्ठी० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखे०भागो । अवट्ठि०  
सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्ज०भागो । असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ?  
संखेज्जा भागा । सेसपदा सव्वजीवा के० ? अणंतिमभागो । एवं तिरिक्ख०-सव्व-  
एइंदिय - वणप्फदि०-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - सुहुमवणप्फदि०-  
सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद० - वादरणिगोद०-वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-  
सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त - कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियभिस्स०-  
कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०

से है । तथा शेषपद भजनीय है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्था-  
पनासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोमे दो हानियां भजनीय हैं ।

**विशेषार्थ**—आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानि  
की अपेक्षा एक ध्रुवपद है और संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यात गुणहानि  
ये तीन पद अध्रुव हैं अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग २७ होंगे । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी,  
संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि और  
चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके २७ भंग जानना चाहिये । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके असंख्यात  
गुणहानि नहीं होती, अतः यहां एक ध्रुवपद और दो भजनीय पद हुए और इसलिये कुल भंग नौ  
होंगे । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानि ये दो पद ही होते  
हैं । किन्तु दोनों भजनीय हैं अतः यहां कुल भंग आठ होंगे ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६५. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
उन्मैसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें  
भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग है । असंख्यात  
भागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । शेष पदवाले जीव सब  
जीवोंके कितने भाग हैं । अनन्तवें भाग हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्प-  
तिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,  
निगोद, बादरनिगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त,  
सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक भिक्शकाययोगी, कार्मणकाययोगी,  
न्युसक्रेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि

अभवसि०-मिच्छादिद्वि०-असण्णि०-आहारि०-अण्णाहारि ति ।

§ २६६. आदेसेण णेरइणसु अवट्ठि० सव्वजी० के० ? संखेज्जदिभागो । असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । सेसपदा सव्वजीवाणं के० ? असंखे०भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्जच-देव-भवणादि जाव सहस्सार० सव्वविगुलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-वत्तारिकाय-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदि०पत्तेय०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-[वेउण्वि०]-वेउण्वियमिस्स०-इत्थि-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्भ०-सण्णि ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । सेसपदा संखेज्जदिभागो । एवमवगद०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-सुहुम०संजदे ति ।

§ २६७. आणदादि जाव अवराइदे ति असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । संखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? असंखे०भागो । एव-

तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिध्यादृष्टि असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**यहां तिर्यच आदि अन्य मार्गणाओंमें जो ओघके समान भागाभाग जाननेकी सूचना की सो उसका यह अभिप्राय नहीं कि इन सब मार्गणाओंमें सब पदोंकी अपेक्षा ओघके समान भागाभाग वन जाता है । किन्तु इसका इतना ही अभिप्राय है कि जहां जितने पद सम्भव हों उनकी अपेक्षा भागाभाग ओघके समान ही जानना । तथा जहां जो पद न हो उसकी अपेक्षा भागाभागका कथन नहीं करना । आगे भी इसी प्रकार विचार करके यथासम्भव भागाभाग जानना चाहिये ।

§ २६६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितविभक्तिवाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । असंख्यात भागहानिवाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । शेष पदवाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोसे लेकर सहस्वार कल्पतकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सभी ब्रह्म, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिकक्राययोगी, वैक्रियिकमिश्रक्राययोगी, स्त्रीवदवाले, पुरुषवेदवाले, विभंग-ज्ञानी, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यनियोमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवों के कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष पदवाले जीव संख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार अपगत-वेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २६७ आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । संख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं, असंख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत

सुवसम०-संजदासंजदायं । सव्वट्ठे असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखे०भागा । संखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखे०भागो । एवं परिहार० ।

§ २६८. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । सेसपदा असंखे०भागो । एवमोहिदंस०-सुक०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-सम्माभिच्छादिट्ठि ति । आहार०-आहारंभिसस०-अकसा०-जहाक्खाद०-सासणसम्मादिट्ठीणं एत्थि भागाभागं ।

एवं भागाभागानुगमो समत्तो ।

§ २६९. परिमाणानुगमेण दुविहो णिदेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ-ओघेण असंखे०भागवट्ठी हाणी० अवट्ठि० केत्तिया ? अणंता । दोवट्ठी० दोहाणी० के० ? असंखेज्जा । असंखे०गुणहाणी० केत्ति० ? संखेज्जा । एवं कायजोभि०-ओरालि०-एवुं स०-चत्तारिकसाय-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति ।

§ ३०० आदेसेण णेरइएसु सव्वपदा केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविग-लिंदिय-पंचिदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-वादरवणप्फदिपत्तेय०-तस्सेव पज्जत्तापज्ज०-

जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं ! संख्यात बहुभाग हैं । संख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार परिहारविद्युद्धि संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २६८. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष पदवाले जीव असंख्यातवें भाग है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्निर्मथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भागाभाग नहीं है ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६९. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तियाँ जीव कितने हैं ? अनन्त है । दो वृद्धियों और दो हानियोंवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा असंख्यात गुणहानिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३००. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सभी नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यक, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्सार-स्वर्गतकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, 'पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर

तसअपज्ज०-वेउच्चिय०-वेउच्चियमिस्स-विहंग०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति ।

§ ३०१. तिरिक्खा ओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवमेईदिय-सञ्चवणप्फदि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-तिण्णत्ते०-अभव०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ३०२. मणुस्सेसु णिरओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी० संखेज्जा । एवं पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । मणुस्सपज्ज०-मणुस्सिणीसु सञ्चपद० के० ? संखेज्जा । एवं सञ्चद्व०-अवगद०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय० ।

§ ३०३. आणदादि जाव अवराजिदा त्ति असंखे०भागहाणी संखे०भागहाणी केत्ति० ? असंखेज्जा । [एवं संजदासंजद० । आहार०-] आहार०मिस्स० असंखे०भागहाणी० केत्ति० ? संखेज्जा । एवमकसाय०-जहाक्खाद०त्ति ।

§ ३०४. आभिण्णि०-सुद०-ओहि० तिण्णि हाणि० केत्तिया ? असंखेज्जा । असंखे०गुणहाणी० संखेज्जा ? एवमोहिदंस०-सुक्क०-सम्मादिट्ठि त्ति ।

काय, धादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, पीतलेखावाले और पद्मलेखावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०१. तिर्यचोंमें असंख्यातभागवृद्धि आदिकी अपेक्षा संख्या ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमे असंख्यात गुणहानि नहीं है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्यणकाययोगी, मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, छृण्णादि तीन लेखावाले, अभन्य, मिथ्यादृष्टि, अस्त्री और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०२. मनुष्योंमें असंख्यात भागवृद्धि आदिकी अपेक्षा संख्या सामान्य नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमे असंख्यात गुणहानिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों षचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुस्ववेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और स्त्री जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यनियों में सभी पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, अपगतवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०३. आनतकल्पसे लेकर अपराजित तकके देवों में असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है । इसी प्रकार अकपायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०४. आभिनयोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात है । तथा अख्यातगुणहानिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेखावाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०५. खड्ग्य० असंखेज्जभागहाणी० के० ? असंखेज्जा । सेसपदा संखेज्जा । वेदग० तिण्णि हाणी० के० ? असंखेज्जा । उवसम० दो हाणी० असंखेज्जा । सासण० असंखे०भागहाणी० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्भायि० तिण्णि हाणी० वेदय०भंगो ।

एवं परिमाणाखुगमो समत्तो ।

§ ३०६. खेत्ताखुगमेण दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवड्डी हाणी अवट्ठि० केवडि खोत्ते ? सच्चलोगे । सेसपदा केवडि खोत्ते ? लोग० असंखेज्ज०भागे । एवमणंतरासीणं ।

§ ३०७. पुढवी-वादरपुढवी-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी-सुहुमपुढवीपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त०-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादर-वाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त० असंखेज्जभागवड्डी-हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सच्चलोगे । सेसपदा० के० ? लोग० असंखेज्ज०भागे । सेससंखेज्जासंखेज्जरासीणं सच्चपदा लोगस्स असंखे०भागे । एवमि वादरवाउ-

§ ३०५. ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोम असंख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा शेष पदवाले जीव संख्यात हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोम तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टियोम दो हानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोम असंख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोम तीन हानिवाले जीवोका प्रमाण वेदकसम्यग्दृष्टियोके समान हैं ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०६. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनन्त संख्यावाली राशियोंके कहना चाहिये ।

§ ३०७. पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीनायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादरजलकायिक, वादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि कायिक, वादरअग्निकायिक, वादरअग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली राशियोंकी अपेक्षा सभी पदवाले जीव

पज्ज० असंखे० भागवड्डी हाणी अवट्ठि० लोगस्स संखेज्जदिभागे ।।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो ।

§ ३०८. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्दो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखेज्जभागवड्डी-हाणी-अवट्ठि० केवड्ठियं खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो । दोवड्डी-दोहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ-चोदसभागा देसुणा सव्वलोगो वा । असंखेज्जणुगहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो । एवं कायजोगि०-चत्तारिकसा०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि च्चि ।

लोकके असांख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें असांख्यातभागवृद्धि, असांख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकका सांख्यातवें भाग है ।

**विशेषार्थ**—ओघसे असांख्यातभागवृद्धि, असांख्यातभागहानि और अवस्थित स्थिति-वाले जीव अनन्त हैं यह परिमाणानुयोगद्वारमे बतला ही आये हैं और अनन्त संख्यावाली राशियोंका स्वस्थानकी अपेक्षा भी सब लोक क्षेत्र वन जाता है, अतः इन तीन पदवाले जीवोंका ओघसे सब लोक क्षेत्र कहा । किन्तु शेष पांच पदवाले जीव बहुत स्वल्प हैं, क्योंकि उन पदोंका अधिकतर त्रसोंसे ही सम्बन्ध है । दो हानियां ऐसी हैं जो स्थावरोंके भी पाई जाती हैं पर जो त्रस स्थितिकाण्डकघातके द्वारा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिको कर रहे हैं ऐसे त्रस यदि मर कर एकैन्द्रियोमे उत्पन्न हों तो उन स्थावरोंके ही वे दो हानियां पाई जाती हैं, अतः शेष पदवालोंका क्षेत्र लोकके असांख्यातवें भागप्रमाण ही वनता है । जितनी भी अनन्त संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमे भी अपने अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिये । तथा सामान्य पृथिवीकायिक आदि कुञ्ज असांख्यात संख्यावाली ऐसी मार्गणाएं हैं जिनका सब लोक क्षेत्र वन जाता है अतः उनमे भी अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा अविकल ओघ प्ररूपणा घटित हो जाती है । पर इनसे अतिरिक्त जितनी भी असांख्यात या संख्यात संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमें सभी सम्भव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असांख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उन मार्गणावाले जीवोंका क्षेत्र ही लोकके असांख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त जीव इस व्यवस्थाके अपवादभूत हैं, क्योंकि उनका क्षेत्र लोकके सांख्यातवें भागप्रमाण है अतः उनमें असांख्यात भागहानि, असांख्यात भागवृद्धि और अवस्थित स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके सांख्यातवें भागप्रमाण जानना और शेष पदोंकी अपेक्षा लोकके असांख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र जानना ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०८. स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

उनमेसे ओघकी अपेक्षा असांख्यात भागवृद्धि, असांख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोकका स्पर्श किया है । दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असांख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोमे से कुञ्ज कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । असांख्यात-गुणहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असांख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, मन्थ और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।



§ ३०९. आदेसेण गेरइएसु सव्वपदा के० खे० पो० ? लोग० असंखेभागो छ चौहस० देसूणा । पढमपुढवि० खेचर्भंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति सव्वपदानं विहत्तिएहि के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो एक वे तिण्णि चत्तारि पंच छ चौहसभागा देसूणा ।

§ ३१०. तिक्खि० असंखे०भागवड्डी-हाणी०--अवट्ठि० के० ? सव्वलोगो । दोवड्डी-दोहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवमो-रालियमिस्स०-कम्मइय०-तिण्णिले०-असण्णि०-अणाहारि ति ।

**विशेषार्थ**—ओघसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदवालोंका स्पर्श सब लोक वतलानेका कारण यह है कि इन पदवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं। संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इन पदवालोंका स्पर्श तीन प्रकारका वतलाया है। लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श वर्तमान कालकी अपेक्षा वतलाया है। कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श विहार, वेदना आदि की अपेक्षा वतलाया है, क्योंकि उक्त पदवालोंका नीचे दो राजु और ऊपर छह राजु तक गमना-गमन पाया जाता है। और सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणान्तिक समुद्रात और उपपादपदकी अपेक्षा वतलाया है। तथा असंख्यात गुणहानिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वतलानेका कारण यह है कि इस पदको नौवें गुणस्थानवाले जीव ही प्राप्त होते हैं। पर नौवें गुणस्थानवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है। कुछ मार्गाणां भी ऐसी हैं जिनमें यह ओघ-प्ररूपणा अविकल वन जाती है। जैसे काययोगी आदि, अतः इनके कथनों ओघके समान कहा।

३०९. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पांच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

**विशेषार्थ**—नरकमें सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जो स्पर्श वतलाया है वही यहाँ सब पदवालोंका स्पर्श है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। कारण यह है कि सब नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हैं अतः सबके सब पद सम्भव हैं और इसीलिये यहाँ प्रत्येक पदकी अपेक्षा वही स्पर्श प्राप्त होता है जो सामान्य नारकियोंके या उस नरकके नारकियोंके वतलाया है।

§ ३१०. तिर्यच्चोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार औदारिक-मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३११. सव्वपंचि०तिरिक्ख० सव्वपदा० के० खेरां पो० ? लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । एवं मणुस्सअपज्ज०-सव्वविगल्लिदिय०पंचिदियअपज्ज०-वादरपुहविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवणप्फदिपणेयपज्ज०-तसअपज्जचे चि । एवरि वादरवाउपज्जत्तएहि असंखेज्जभागवड्डो-हाणी-अवट्ठि० के० खे० पोसिदं ? लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा । मणुसतिय० पंचि०तिरिक्ख-भंगो । एवरि असं०गुणहाणीए ओघभंगो ।

§ ३१२. देवेषु सव्वपदार्णं वि० के० खे० पोसिदं ? लोगस्स असं०भागो अट्ठणव चोदस० देसूणा । एवं सोहम्भीसाणे । भवण०-वाण०-जोइसि० सव्वपदा० के० खे० पो० ? लो० असंखे०भागो अट्ठणवचोदसभागो वा देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारी चि सव्वपदा० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठणवचोदस०

**विशेषार्थ-**तिर्यंचोमे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितपदवाले जीव सब लोकमे पाये जाते हैं अतः इन तीन पदवालोंका स्पर्श सब लोक बतलाया है । संख्यात भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि विभक्तिवाले तिर्यंच जीव पाये तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही जाते हैं किन्तु मारणांतिक और उपपादपदकी अपेक्षा अतीत कालमे इन्होंने सब लोकका स्पर्श किया है इसलिये इनका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्श बतलाया है । औदारिकमिश्रकाययोग आदि मूलमें गिनाई गई कुछ और ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनका स्पर्श तिर्यंचोके समान है अतः उनके कथनका तिर्यंचोके समान कहा ।

§ ३११. सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोमे सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्तकोमे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके संख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । मनुष्यत्रिकके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोके समान स्पर्श जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानिकी अपेक्षा स्पर्श ओघके समान है ।

§ ३१२. देवोंमे सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमे से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और व्योतिपी देवोंमे सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमे से कुछ कम साढ़े तीन भाग और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवों मे सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमे से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनत, प्राणत, आरण्य

देसूणा । आणद-पाणद-आरणच्चुद० सव्वपदा० के० खेत्तं पोसिदं० ? लोग० असंखे०-  
भागो छचोद्दसभागा वा देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं वेउव्वियभिसस०-आहार०-  
आहारभिसस० - अवगद० - अकसा० मणपज्ज० - संजद० - सामाइय-छेदो०-परिहार०-  
सुहुम०-जहाक्खादसंजदे ति ।

§ ३१३. सव्वेइंदिय० असंखेज्जभागवड्डी-हाणी-अवट्ठा० के० खे० पो० ? सव्व-  
लोगो । सेसपद० वि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं  
पुढवी०-वादरपुढवी० - वादरपुढवीअपज्ज० - सुहुमपुढवी०-सुहुमपुढवीपज्जत्तापज्जत्त-

और अच्युत कल्पके देवोंमें सभी पदवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सोलहवें कल्पके ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका वर्तमानकालीन और कुछ अन्य पदोंकी अपेक्षा अतीतकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा अतीतकालीन स्पर्श सब लोक वतलाया है । तथा सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके असंख्यात गुणहानिको छोड़कर सब पद संभव हैं अतः सब प्रकारके तिर्यचोंमें सब पदवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है । मूलमें गिनाई गई मनुष्य अपर्याप्तक आदि सब मार्गणाओमें भी अपने अपने पदोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्पर्श प्राप्त होता है अतः उनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान कहा है । किन्तु वादर घायुकायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । वात यह है कि इन जीवोंने वर्तमानमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और अतीत कालमें सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है अतः उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा इनका स्पर्श उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है । जिन कारणोंसे पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण या सब लोक प्राप्त होता है वे ही कारण मनुष्यत्रिकके भी समझना चाहिये अतः इनमें पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान स्पर्श वतलाया है । किन्तु मनुष्योंके नौवां गुणस्थान भी होता है अतः यहाँ असंख्यातगुणहानि सम्भव है । फिर भी असंख्यात गुणहानिवालोंका जो स्पर्श ओघसे कह आये है वही उक्त पदकी अपेक्षा मनुष्योंके जानना चाहिये क्योंकि यह पद मनुष्योंके ही होता है । देवोंमें जिसका जितना स्पर्श है सब पदोंकी अपेक्षा उसका उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है अतः यहाँ उसका विशेष खुलासा नहीं किया । 'एवं' कह कर मूलमें जो कुछ वैक्रियिकमिश्रकाययोग आदि मार्गणाएं गिनाई हैं वहाँ 'एवं' का यही अर्थ है कि जिस मार्गणाका जितना स्पर्श है अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा उस मार्गणाका उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है ।

§ ३१३. सभी पंचेन्द्रियोमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तियाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा शेष पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त,

आउ०-[-बादरआउ०-] बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउअपज्जत्तापज्जत्त-  
तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउअपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादर-  
वाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउअपज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि०-बादरवण-  
प्फदि०-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-  
णिगोद०-बादरणिगोद०-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्ता-  
पज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्जत्ते चि ।

§ ३१४. पंचिदिय०-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० सव्वपदवि० के० खे०  
पो० ? लोग० असंखे०भागो अद्दुचोद्दस० देसूणा सव्वलोगो वा । णवरि असंखेज्ज-  
गुणहाणी० ओघं । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-गुरिस०-चदखु०-सणिण चि ।

जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक  
पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक,  
बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर  
वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति  
कायिक अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म  
निगोद, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिकः प्रत्येक शरीर और  
बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ-**जैसा कि आद्यमे घटित करके बतला आये हैं तदनुसार असंख्यात भागवृद्धि,  
असंख्यात भागहानि और अवस्थितपदवालोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श सब  
लोक एकेन्द्रियोंमें ही पाया जाता है अतः एकेन्द्रियोंमें उक्त पदवालोंका स्पर्श सब लोक प्रमाण  
बतलाया । किन्तु एकेन्द्रियोंमें शेष पद सबके नहीं पाये जाते हैं किन्तु जो पंचेन्द्रियोंमेंसे आकर  
एकेन्द्रिय होने हैं उन्हींके पाये जाते हैं किन्तु ऐसे जीव स्वल्प होते हैं अतः इनका वर्तमान कालीन  
स्पर्श तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है हां अतीत कालीन स्पर्श सब लोक वन  
जाता है अतः इनमें शेष पदोंकी अपेक्षा वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण  
कहा और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक कहा । मूलमें जो पृथिवी आदि दूसरी मार्गणाएँ गिनाई  
हैं उनमें भी उक्त प्रमाण स्पर्श उसी क्रमसे वन जाता है अतः उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान  
कहा । इसी प्रकार आगे और जितनी मार्गणाओंमें अपने अपने पदोंकी अपेक्षा स्पर्श बतलाया  
है वह उन उन मार्गणाओंके स्पर्शके अनुसार वन जाता है । अतः जिस मार्गणाका जितना स्पर्श  
है अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा उसका उतना स्पर्श जानना चाहिये जिसका निर्देश मूलमें  
किया ही है ।

§ ३१४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें सभी पदवाले जीवोंने  
कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे  
कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इतनी विशेषता है कि  
इनके असंख्यातगुणहानिका स्पर्शन ओघके समान है । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों  
वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चतुर्दर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । वैक्यिक-

वेउक्विय० सव्वपदवि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ट-तेरहचोदस० देसूणा । ओरालि० तिरिकखोयं । एवं णवुंस० ।

§ ३१५. सदि-सुदअण्णां ओघं । णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवम-संजद०-अभव०-सिच्छादिद्वि त्ति । विहंग० पंचिदियभंगो । णवरि असंखेज्जगुण-हाणी णत्थि । आभिणि०-सुद०-ओहि० तिण्णि हाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्टचोदस० देसूणा । असंखे० गुणहाणी ओघं । एवमोहिदंस० सम्भादिद्वि त्ति । एवं वेदय० । णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि ।

§ ३१६. तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्क० तिण्णिहाणी के० खे० पोसिदं ? लोग० असंखे भागो छचोदस० देसूणा । असंखेज्जगुणहाणी० ओघं ।

§ ३१७. खइय० असंखे० भागहाणी० के० खे० पो० ? लो० असं० भागो । अट्टचोदस० देसूणा । सेसपदाणं खेत्तभंगो । उवसम० असंखे० भागहाणी० संखे०-भागहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्टचोदस० देसूणा । सासण०

काययोगियोमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । औदारिककाययोगियोंके स्पर्श सामान्य तिर्यङ्गोके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३१५. मत्त्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । विभंगज्ञानियोंके पंचेन्द्रियोंके समान स्पर्श है । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पायी जाती है । आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है ।

§ ३१६. पीतलेश्यावालोंके सौधर्म कल्पके समान स्पर्शन है ; पद्मलेश्यावालोंके सहस्त्रार कल्पके समान स्पर्श है । तथा शुक्ललेश्यावालोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है ।

§ ३१७. द्वाधिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके शेष पदोकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम

असंखेज्जभागहाणी० के० खे० पो० ? लोण० असंखे०भागो अट्ट-बारहचोइस० देसूणा । सम्मामि० वेदय०भंगो ।

§ ३१८. संजदासंजद० असंखे०भागहाणी० के० खे० पो० ? लोण० असंखे०-भागो छचोइस० देसूणा । संखे०भागहाणी० खेत्तभंगो ।  
एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ ३१९. कालाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवड्डी-हाणी-अवट्ठा० केवचिरं ? सञ्चद्धा । दोवड्डी० दोहाणी० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । असंखे०गुणहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चचारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति ।

आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान स्पर्श जानना चाहिये ।

§ ३१८. संयतासंयतोमें असंख्यात भागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके संख्यात भागहानिकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३१९. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमें से ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा असंख्यात गुणहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षु-दर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार किया जा रहा है । तदनुसार ओघसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित स्थितिवाले जीव अनन्त हैं अतः इनका सद्भाव सर्वदा पाया जाता है । संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि तथा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इनके निरन्तर रहनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । तथा असंख्यात गुणहानि अनिवृत्ति क्षणके ही होती है और अनिवृत्ति क्षणके इसके निरन्तर प्राप्त होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, अतः असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तत्प्रमाण वतलाया । यह ओघ प्ररूपणा काययोगी आदि कुछ मार्गणाओं में अवकिल घन जाती है, अतः उनकी कथनी ओघके समान कही ।

§ ३२०. आदेशेण णेरइएसु असंखोज्जभागहाणी अवट्ठिं के० ? सव्वद्धा । सेसपदा० के० ? जहं एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागे । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव०भवणादि जाव सहस्सर०-पंचि०अपज्ज०-सव्व-विगलिदिय-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादर-वणप्फदिपत्तेयपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउन्विय०-विहंग०-तेउ०-पम्मलेस्से ति ।

§ ३२१. तिरिक्खा ओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवधोरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-तिण्णिलेस्सा०-अभव०-भिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि ति ।

§ ३२२. मणुस० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवं पंचि०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चम्भु०-सण्णि ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव ? णवरि जम्हि आवलि० असंखे०-

§ ३२०. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंसे असंख्यातभागहानि और अवस्थितव्यभिक्त-वाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदवालोंका कितना काल है ? जवन्व काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिकाययोगी, विभंगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंसे असंख्यात भागहानि और अवस्थितस्थिति ये दो ध्रुव पद हैं अतः यहां इनका सर्वदा काल कहा । इसी प्रकार आगे भी जानना । तथा शेष पद अध्रुव हैं फिर भी यदि वे निरन्तर रहें तो कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर पाये जाते हैं अतः शेष पदोंका जवन्व काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । सातों नरकके नारकी आदि कुछ ऐसी मामंगलाएं हैं जिनमें उक्त प्ररूपणा अविकल वन जाती है, अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा ।

§ ३२१. सामान्य तिर्यचोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मण्काययोगी, मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, असन्वय, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२२. सामान्य मनुष्योंके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानिका काल ओघके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पहले जहाँ आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ इनके

भागो तस्मिन् संखेजा समया । णवरि संखे० भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि०  
असंखे० भागो । मणुसअपज्ज० असंखे० भागहाणी-अवट्ठि० के० ? जह० एगसमओ,  
उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । सेसपदवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि०  
असंखे० भागो । एवं वेजन्विमिस्स० ।

संख्यात समय काल कहना चाहिये । तथा इतनी और विशेषता है कि इनके संख्यातभागानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । मनुष्य अपर्याप्तकोमे असंख्यातभागहानि और अवस्थित दिभक्तिवाले जीवोंके कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पर्योपसके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा शेष पदवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोका प्रमाण अनन्त है, अतः उनके सब पदोंका काल ओघके समान वन जाता है । किन्तु इनके असंख्यातगुणहानि नहीं होती, क्योंकि यह पद अनिवृत्तचक्रपकके ही पाया जाता है । औदारिकमिश्रकाययोग आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमे उक्त प्ररूपणा वन जाती है अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य तिर्यचोके समान कहा । मनुष्योंके और सब पदोंका काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यचोके समान है, क्योंकि इनके ध्रुव और अध्रुव पद पंचेन्द्रिय तिर्यचोके समान पाये जाते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि और पाई जाती है । पर यह पद मनुष्योंके ही होता है क्योंकि अनिवृत्ति चक्र गुणस्थान मनुष्य गतिको छोड़कर अन्य गतिवाले जीवोंके नहीं पाया जाता । अतः सामान्य मनुष्योंके इस पदका काल ओघके समान वन जाता है । पंचेन्द्रिय आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमे उक्त प्ररूपणा वन जाती है अतः उनमे सम्भव सब पदोंका काल सामान्य मनुष्योंके समान कहा । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी संख्यान होते हैं, अतः इनके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, और संख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त न होकर संख्यात समय प्राप्त होता है । किन्तु उक्त दोनों मार्गणात्रालोका प्रमाण संख्यात होते हुए भी इनके संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण वन जाता है, क्योंकि पहले एक जीवकी अपेक्षा संख्यातभागहानि का उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट संख्यात समय प्रमाण वतला आये हैं । अब यदि किसी एक पर्याप्तमनुष्य या मनुष्यनीने संख्यातभागहानिका प्रारम्भ किया और वह संख्यात भागहानिके उत्कृष्ट काल तक उसके साथ रहकर जिस समय समाप्त करता है उसी समय किसी उक्त मार्गणावाले अन्य जीवने उसका प्रारम्भ किया तो इस प्रकार निरन्तर संख्यातभागहानिकी प्रवृत्ति आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक पाई जाती है अतः उक्त मार्गणात्राओंमें इसका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । मनुष्य अपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है अतः इस मार्गणाका जो उत्कृष्ट काल है वही यहाँ असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदका उत्कृष्ट काल जानना । किन्तु अन्तरकालके वाद जघ नाना जीव इस मार्गणाको प्राप्त होते हैं तब वे यदि एक समय तक असंख्यातभागहानि या अवस्थित पदके साथ रहे और दूसरे समयमें अन्य पदको प्राप्त हो गये तो इनके उक्त दो पदोंका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है । वैक्रियिकमिश्रकाययोग यह मार्गणा भी सान्तर है, अतः यहाँ भी लब्धपर्याप्त मनुष्योंके समान सम्भव सब पदोंका काल वन जाता है ।



§ ३२३. आणदादि जाव अवराइद ति असंखे०भागहाणी० के० ? सव्वद्धा । संखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं संजदा-संजद० । सव्वे असंखे०भागहाणी० के०? सव्वद्धा । संखेज्जभागहाणी ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । एवं परिहार० ।

§ ३२४. सव्वपइंदिएसु असंखे०भागवट्ठी-हाणी-अवट्ठि० तिरिक्खोवं । सेस-पदवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं पुढवि०-वादर-पुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[-वादरतेउ०-]वादरतेउ-अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-त्राउ०-वादरत्राउ०-वादरत्राउअपज्ज०-सुहुम-त्राउ०-सुहुमत्राउपज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि०-वादरवणप्फदि-वादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि० - सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - वादरवणप्फदिपत्तेयसररी० - तस्सेव अपज्जत्ते ति ।

§ ३२३. आनत्त कल्पसे लेकर अपराजित कल्पतकके देवोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । संख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा संख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आनत्त कल्पसे लेकर अपराजित तकके प्रत्येक स्थान के देवोंका प्रमाण असंख्यात है अतः यहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है । पर सर्वार्थसिद्धिमें देवोंका तथा परिहारविशुद्धि सयतोंका प्रमाण संख्यात है, अतः यहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ३२४. सभी एकेन्द्रियोमे असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है । तथा शेष पदवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२५. आहार० असंखे० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवम-  
कसा०-जहाकवादसंजदे ति । आहारभिसस० असंखे० भागहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।  
अवगद० असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसपदा०  
मणुसपज्जत्तभंगो । एवं सुहुमसांपरा० ।

§ ३२६. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे० भागहाणी० के० ? सवद्धा ।  
सेसपदा० पंचिदयभंगो । एवभीहिदंस०-सुक्क०-सम्मादिट्ठि ति । मणपज्ज०  
असंखे० भागहाणी० के० ? सवद्धा । सेसपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क०  
संखेज्जा समया । णवरि संखे० भागहाणी०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । एवं  
संजद०-सामाइय-छेदोव०-खइय० । णवरि सामाइय-छेदोव० संखेज्जभागहाणी०  
उक्क० संखेज्जा समया ।

§ ३२७. वेदय० असंखेज्जभागहाणी० के० ? सवद्धा । सेसपद० आभिणि०-

§ ३२५. आहारकफाययोगियोमे असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय  
और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना  
चाहिये । आहारकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल  
अन्तमुहूर्त है । अपगतवेदियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य  
काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा काल मनुष्य  
पर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयतों के जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आहारकफाययोग, विवक्षित प्रकारणमें अकषाय और यथाख्यातसंयतका जघन्य  
काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, अतः यहाँ असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट  
काल उक्तप्रमाण कहा । किन्तु आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य काल भी अन्तमुहूर्त है, अतः इसमें  
असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त ही प्राप्त होता है । अपगतवेद और  
सूक्ष्मसांपरायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है अतः इसमें असंख्यात  
भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण वन जाता है । तथा अपगतवेद अवस्था सूक्ष्म  
सांपरायसंयत मनुष्योंके भी होती है, अतः इनमें सम्भव शेष पदोंका काल मनुष्य पर्याप्तकोंके  
समान वन जाता है ।

§ ३२६. आभिनियोधिकज्ञानी, भूतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानिवाले  
जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा काल पंचेन्द्रियोंके समान जानना  
चाहिये । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेख्यावाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।  
मनःपर्ययज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवों का कितना काल है ? सर्वकाल है । तथा शेष  
पदवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।  
इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग  
प्रमाण है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और चायिकसम्यग्दृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयतोंमें  
संख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ३२७. वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यानभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल

भंगो । उवसम० असंखे० भागहाणी० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पल्लदो० असंखे० भागो । संखे० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । सासण० असंखे० भागहाणी० के० ज० एगसमओ, उक्क० पल्लदो० असंखे० भागो । सम्भाभि० असंखे० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लदो० असंखे० भागो । सेसपदाणमोहिभंगो ।

एवं कालाखुगमो समत्तो ।

§ ३२८ अंतराखुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे० भागवट्ठी-हाणी-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । दो वट्ठी-हाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे० गुणहाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा । एवं कायजोगि० - ओरालि० - णवुंस० - चत्तारिक० - अचक्खु० - भवसि० - आहारि त्ति । खवरि खवुंसयवेदे असंखे० गुणहाणी० उक्क० अंतरं वासपुधत्तं । क्रोध-माण-माया-लोभाणं वार्सा सादिरेंयं ।

है । तथा इनके शेष पदाकी अपेक्षा काल अभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा संख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यग्निमथ्यादृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा काल अवधिज्ञानियोंके समान है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३२८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे आघकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिकवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कपायवाले, अचक्षु-दर्शनवाले भव्य और, आहारक जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है नपुंसकवेदमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है और क्रोध, मान, माया और लोभमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

विशेषार्थ—असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितका काल सर्वदा है अतः इनका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि ये क्रमसे क्रम एक समयके बाद और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त कालके बाद नियमसे प्राप्त होती हैं, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । तथा असंख्यातगुणहानि क्षपकश्रेणीमें ही होती है और इसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और छह महीना प्रमाण है, अतः असंख्यातगुणहानिका जघन्य

§ ३२६. आदेसेण गिरयगईए असंखे०भागहाणी-अवद्वि० णत्थि अंतरं । सेसपदारुणं केव० ? ज० एगसमओ, उक० अंतोमुहुत्तं । एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिदिय-तिरिक्ख-पंचि०तिर०पज्ज०-पंचि०तिर०जोण्णणी-पंचि०तिरि०अपज्ज०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउत्वि०-विभंग०-तेउ०-पम्मलेस्से ति ।

§ ३३०. तिरिक्खा० ओघं । णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवमोरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-सदि-सुदअण्णा०-असंजद०-किण्ह-णील-काउ०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि ति ।

§ ३३१. मणुस० गिरओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवं पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमए०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव । णवरि इत्थि०-मणुस्सिणी० असंखेज्जगुणहाणी० वासपुधत्तं । पुरिसवेद० वास सादिरेंयं ।

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण कहा । काययोगी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें यह ओघ प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि यदि नपुंसकवेदी जीव क्षपकश्रेणी पर न चढ़े तो अधिक से अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं चढ़ता है अतः इसके असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व प्रमाण कहा । तथा क्रोधादि कपायवाले जीव यदि क्षपकश्रेणी पर न चढ़ें तो अधिक से अधिक साधिक एक वर्ष तक नहीं चढ़ते हैं, अतः इनके असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा ।

§ ३२६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति वाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार सातो पृथिवियोंके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोसे लेकर सहस्वार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैकित्तिककाययोगी, विभंगज्ञानी, पीतलेख्यावाले और पद्मलेख्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३०. तिर्यचोंके अन्तरकाल ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं होती है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मल्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेख्यावाले, नील लेख्यावाले कापोतलेख्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३१. मनुष्योंमें अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदवाले और मनुष्यनीके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । तथा पुरुषवेदवाले जीवोंके साधिक एक वर्ष है ।

§ ३३२. मणुसअपञ्ज० सव्वपदा० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।

§ ३३३. आणदादि जाव अवराइद् ति असंखे० भागहाणीए णत्थि अंतरं । संखे० भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सत्त रादिदियाणि वासपुधचं । सव्वट्ठे असंखेज्जभागहाणीए णत्थि अंतरं । असंखे० भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।

**विशेषार्थ**—नरकगतिमे असंख्यातभागहानि और अवस्थित ये दो पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं बनता । तथा यहां सम्भव शेष पदोंका अन्तरकाल ओषमें जिस प्रकार घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां भी जानना । सातों नरकके नारकी आदि कुछ मार्गाणाएँ ऐसी हैं जिनमे नरकगतिके समान अन्तरकालकी प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा । तिर्यचोके असंख्यातभागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित ये तीन पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा ओषके समान कही । किन्तु तिर्यचोके असंख्यातगुणहानि नहीं होती, क्योंकि यह पद अनिष्टत्तिन्नपकके ही पाया जाता है । श्रौदारिकमिश्रकाययोग आदि कुछ और भी मार्गाणाएँ हैं जिनमे सम्भव पदोंका अन्तरकाल सामान्य तिर्यचोके समान बन जाता है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य तिर्यचोके समान कही । मनुष्योंमे असंख्यातभागहानि और अवस्थित ये दो पद ही निरन्तर पाये जाते हैं, अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान कही । किन्तु इनके असंख्यातगुणहानि भी पाई जाती है जो मनुष्य पर्यायमें ही सम्भव है, अतः मनुष्योंके असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओषके समान कहा । पंचेन्द्रिय आदि कुछ और ऐसी मार्गाणाएँ हैं जिनमें अन्तरकाल सामान्य मनुष्योंके समान है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य मनुष्योंके समान कही । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनीके क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्रमाण है, अतः स्त्रीवेद और मनुष्यनीके असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल चर्पपृथक्त्व प्रमाण कहा । तथा पुरुषवेदमें क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः पुरुषवेदमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा ।

§. ३३२ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सभी पदवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—लब्धपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनके सम्भव सव पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा ।

§ ३३३. आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंके असंख्यातभागहानिकी अपेक्ष अन्तरकाल नहीं है । संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन रात और वर्षपृथक्त्व है । सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यात भागहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । तथा संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

§ ३३४. एइंदिएसु सव्वपदाणं तिरिक्खोघं । एवं पुढवि-बादरपुढवि-  
वादरपुढविअपज्जं-सुहुमपुढवि- सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ-बादरआउ-  
वादरआउअपज्जं-सुहुमआउ- सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ-बादरतेउ-बादर-  
तेउअपज्जं-सुहुमतेउ-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ-बादरवाउ-बादरवाउअपज्जं-  
सुहुमवाउ-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय-तस्सेव अपज्जं-वण-  
प्फदि-बादरवणप्फदि-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि-सुहुमवणप्फदि-  
पज्जत्तापज्जत्त-णिगोद-बादरणिगोद-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद-सुहुम-  
णिगोदपज्जत्तापज्जत्ते ति ।

§ ३३५. सव्वविगल्लिंदियं सव्वपदाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवं  
बादरपुढविपज्जं-बादरआउपज्जं-बादरतेउपज्जं-बादरवाउपज्जं-बादरवणप्फदि-  
पत्तेयसरीरपज्जत्ता ति ।

§ ३३६. वेउव्वियमिस्सं सव्वपदाणमंतरं जहं एगसमओ, उक्कं वारस  
मुहुत्तं । आहार-आहारमिस्सं असंखे-भागहाणिं अंतरं के- ? जं एगसमओ,  
उक्कं वासपुत्तं । एवमकसाय-जहाक्खवादसंजदे ति ।

§ ३३४ एकेन्द्रियोमे सभी पदोकी अपेक्षा अन्तरकाल सामान्य तिर्यचोके समान है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथ्वीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादरनिगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोद, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३३५. सभी विकलेन्द्रियोमे सभी पदोकी अपेक्षा अन्तरकाल पंचेन्द्रिय तिर्यचोके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३३६. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमे सभी पदवाले जीवोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल वारह मुहूर्त है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमे असंख्यातभागहानिवाले जीवोका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उक्कष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार अकषयी और यथाख्यातसंयत्त जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३३७. अवगद० तिण्णि हाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । एवं सुहुमसांपरा० ।

§ ३३८. आभिण्णि०-सुद०-ओहि० अमंखे०भागहाणि० णत्थि अंतरं । संखे०भागहाणि०-संखेगुणहाणि० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि । असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठि ति । णवरि ओहिणाणि०-ओहिदंसणी० असंखे०गुणहाणि० उक्क० वासपुथत्तं । मणपज्ज० असंखे०भागहाणि०-संखे०भागहाणि० ओहि०भंगो । दोहाणि० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० वासपुथत्तं ।

§ ३३९. संजद०-सामाइय-छेद० असंखेज्जभागहाणी० णत्थि अंतरं । संखे०भागहाणि० मणपज्जवभंगो । दोहाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा । परिहार०-संजदासंजद० असंखे०भागहा०-संखे०भागहाणी० आभिण्णि०भंगो ।

§ ३४०. सुक्खले० असंखेज्जभागहाणि० णत्थि अंतरं । सेसपदा० ओघं । खइय० संजदभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणी० उक्क० छम्मासा । वेदय० सव्व-पदाणमाभिणि०भंगो । उवसम० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

§ ३३७. अपगतवेदियोमे तीन हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना हैं । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३८. आभिनियोगिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । संख्यातभागहानिवाले और संख्यातगुणहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है । तथा असंख्यात गुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके असंख्यात गुणहानिकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । मनःपर्ययज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल अवधिज्ञानियोंके समान है । तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है ।

§ ३३९. संयत, सामाधिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयतोमे असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । संख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतोमें असंख्यातभागहानि और संख्यात-भागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल आभिनियोगिकज्ञानियोंके समान है ।

§ ३४०. सुक्खलेख्यावालोमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है । चायिकस्यग्दृष्टियोंमें सयतोके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । वेदकस्यग्दृष्टियोंमें सभी पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल आभिनियोगिकज्ञानियोंके समान है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है ।

§ ३४१. जइवसहाइरियो उत्रसमसम्माइद्विकालम्मि अणंताणुवंधिविसंजोयण-  
मिच्छदि तस्साहिप्पाएण संखे० भागहाणी लभदि सा एत्थ कत्थं वि बुत्ता कत्थं वि ण बुत्ता  
तेण थर्पं काळण एत्थ संखेज्जभागहाणी वत्तव्वा । अथवा उत्रसमसेहीए दंसणतियस्स  
द्विदिघादसंभवपक्त्वमस्सियूण उत्रसमसम्माइद्विमि सव्वत्थ संखेज्जभागहाणी  
णिव्विसंक्रमणुगंतव्वा । सासण० असंखे० भागहा० ज० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो०  
असंखे० भागो । एवं सम्माभि० । एवरि पदभेदो अत्थि ।

एचमंतराणुगमो समत्तो ।

§ ३४२. भावाणुगमेण सव्वत्थ सव्वपदाणं को भावो ? ओदइओ भावो ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

§ ३४३. अण्पावहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण सव्वत्थोवा असंखे० गुणहाणि विहत्तिया जीवा । संखे० गुणहाणिविह०  
जीवा असंखे० गुणा । संखे० भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । संखे० गुणवड्ढिवि०  
जीवा असंखेज्जगुणा । संखेज्जभागवड्ढिवि० जीवा संखेज्जगुणा । असंखेज्जभागवड्ढि०  
जीवा अणंतगुणा । अवद्विद्वि० जीवा असंखे० गुणा । असंखे० भागहाणिविहत्तिया

§ ३४१ यतिवृषभ आचार्य उपशमसम्यग्दृष्टिके कालमे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना स्वीकार  
करते हैं, अतः इनके अभिप्रायसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातभागहानि प्राप्त होती हैं । वह वहाँ  
कहीं पर कहीं गई है और कहीं पर नहीं कहीं गई है, इसलिये इसे स्थगित करके वहाँ  
पर संख्यातभागहानि कहनी चाहिये । अथवा उपशमश्रेणिके तीन दर्शनमोहनीयका स्थितिघात  
संभव है, अतः इस पक्षका आश्रय करके उपशमसम्यग्दृष्टिके सर्वत्र संख्यातभागहानि निःशंक  
जाननी चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टिके असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जवन्म अन्तरकाल एक  
समय और उल्लूख अन्तरकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके पद विशेष पाये जाते हैं । अर्थात् सासादनमे  
असंख्यातभागहानि पद है और सम्यग्मिथ्यात्वमे असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि  
और संख्यातगुणहानि इस प्रकार ये तीन पद हैं ।

इस प्रकार अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

§ ३४२. भावाणुगमकी अपेक्षा सर्वत्र सभी पदोंकी अपेक्षा क्या भाव है । औदधिकभाव है ।

इस प्रकार भावाणुगम समाप्त हुआ ।

§ ३४३, अल्पवहुत्वाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है । ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
जन्मसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातगुणहानि-  
वाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यात-  
गुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे  
असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अवस्थितचिभक्तिके जीव असंख्यातगुणे



जीवा संखे०गुणा । एवं कायजोगि०-णवुंस०-चत्तारिफसाय०-अचक्खु—भवसि०-  
आहारि ति ।

§ ३४४. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०-  
गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया । संखे०भागवड्ढि-संखे०भागहाणिविहत्तिया जीवा  
दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि०  
जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । एवं पढयाए पुढवीए  
सव्वपंचि०तिरिक्ख-मणुसअपज्ज-देव०-भवण०-वाण०-पंचिदियअपज्जत्ते ति । विदियादि  
जाव सत्तमि ति सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि-हाणिवि० जीवा दो वि सरिसा । संखे०ज-  
भागवड्ढि-हाणिविह० जीवा दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखे०जभागवड्ढिवि०  
जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि०  
जीवा संखे०गुणा ।

§ ३४५. तिरिक्खा ओघं । एवरि सव्वत्थोवा संखे०जगुणहाणिविह० जीवा  
ति वत्तव्वं । एवसौरालियंभिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद०-असंजद०-किण्ह-णील-  
काउ०-अभव०-मिच्छा०-असरिण-अणाहारि ति ।

§ ३४६. मणुस्सु सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०गुण-

हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुण हैं । इसी प्रकार काययोगी, नपुंसकदेववाले  
क्रोधादि चारों कपायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे  
संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिवाले  
जीव समान होते हुए भी संख्यातगुण हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुण हैं ।  
इनसे अवस्थितविभक्तियाले जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात  
गुण हैं । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव,  
भवनवासी, व्यन्तरदेव और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं  
पृथिवी तक संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी  
सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव समान  
होते हुए भी संख्यातगुण हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे  
अवस्थितविभक्तियाले जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव  
संख्यातगुण हैं ।

§ ३४५. तिर्यचोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात-  
गुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ऐसा कहना चाहिये । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी,  
कार्मण्यकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, भृताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेख्यावाले, नीललेख्यावाले, कापोतलेख्या-  
वाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४६. मनुष्योंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातगुणहानि-

हाणिवि० जीवा असंखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया । संखे०-  
भागवड्ढि-हाणिवि० जीवा सरिसा संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा असंखे०-  
गुणा । अवट्टिदिवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि०जीवा संखे०गुणा । एवं  
पंचि०-पंचि०पज्ज०-इत्थि-पुरिस०-सण्णि ति । मणुसपज्जच-मणुसिणीसु एवं चेव ।  
णवरि जम्मि असंखे०गुणं तम्मि संखेज्जगुणं कायव्वं ।

§ ३४७. जोइसियादि जाव सहस्सारे ति विदियपुढविभंगो । आणदादि जाव  
अवराइदं ति सव्वत्थोवा संखे०भागहाणिवि० जीवा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा  
असंखे०गुणा । एवं संजदासंजदाणं । सव्वट्ठे सव्वत्थोवा संखे०भागहाणिवि० जीवा ।  
असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । एवं परिहार० ।

§ ३४८. एइदिपसु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०भागहाणिवि०  
जीवा संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा अणंतगुणा । अवट्टि० जीवा असंखे०-  
गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०खुणा । एवं सव्वएइदिय-वणप्फदि०-वादर्-  
वणप्फदि०-वादर्वणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-  
णिगोद० - वादर्णिगोद० - वादर्णिगोदपज्जत्तापज्जत्त - सुहुमणिगोद० - सुहुमणिगोद-  
पज्जत्तापज्जत्ता ति ।

वाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे  
संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी संख्यातगुणे  
हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असं-  
ख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय,  
पंचेन्द्रिय पर्याप्त, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले और संज्ञी जीवोके जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और  
मनुष्यनियोगे इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां असंख्यातगुणा है वहां इनके  
संख्यातगुणा करना चाहिये ।

§ ३४७. ज्योतिषियोंसे लेकर सहस्सारतक दूसरी पृथिवीके समान भंग है । आनत कल्पसे  
लेकर अपराजित तक संख्यातभागहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले  
जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार संयतासंयतोके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात-  
भागहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।  
इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयतोके जानना चाहिये ।

§ ३४८. एकेन्द्रियोंमें संख्यातगुणाहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातभागहानि-  
वाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अवस्थित-  
विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी  
प्रकार सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, वादरवनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर  
वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति-  
कायिक अपर्याप्त, निगोद; वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म  
निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३४९. सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिविहत्तिया जीवा । संखे०भागवट्टि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा । असंखे०भागवट्टिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्टिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । चहुण्हं कायाणमेइंदियभंगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे०गुणं कायव्वं । तस०-तसपज्जत्ताणधोवभंगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे०गुणं । एवं तस०अपज्ज० । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि ।

§ ३५०. पंचमण०-पंचवचि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिवि० जीवा । सेसं विदियपुढविभंगो । एवमोरालि० । णवरि जम्मि असंखे०गुणं तम्मि अणंतगुणं कायव्वं । वेउच्चिय० विदियपुढविभंगो । वेउच्चियमिस्स० पढमपुढविभंगो । आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-जहाक्खाद० उवसम०-सासण० णत्थि अप्पावहुअं ।

§ ३५१. अवगद० सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणि० जीवा । संखे०भागहाणि० जीवा संखे०गुणा । असंखेज्जभागहाणि० जीवा संखे०गुणा । एवं सुहुमसांपरा० ।

§ ३५२. आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणि० जीवा । संखेज्जगुणहाणि० जीवा असंखे०गुणा । संखे०भागहाणि० जीवा संखे०गुणा । असंखे०

§ ३५६. सभी विकलेन्द्रियोमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यात-भागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यात-गुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । चारो कायवाले जीवोंके एकेन्द्रियोके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोके जिस स्थानमें अनन्तगुणा कहा है वहां इनके असंख्यातगुणा करना चाहिये । त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके ओघके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि ओघमें जहां अनन्तगुणा है वहां इनके असंख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं हैं ।

§ ३५०. पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । शेष कथन दूसरी पृथिवीके समान है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनोयोगी और वचनयोगियोंमें जहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ औदारिककाययोगियोंके अनन्तगुणा करना चाहिये । वैकियिककाययोगियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । वैकियिकमिश्रकाययोगियोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है । आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकपायी, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पवहुत्व नहीं है ।

§ ३५१. अपगतवेदियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यात-भागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपराधिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३५२. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभाग-

भागहाणिविह० जीवा असंखे०गुणा । एवमोहिदंसण०-सुक्कले०-सम्मादिट्ठि त्ति । मणपज्जव० एवं चेव । णवरि जम्मि असंखे०गुणं तम्मि संखे०गुणं कायव्वं । एवं संजद०-सामाइय-छेदो० ।

§ ३५३. चक्खु० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिविहत्तिया जीवा । संखे० गुणहाणिवि० जीवा असंखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया । संखेज्ज-भागवड्ढि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा । असंखे०भागवड्ढि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठि० जीवा असंखेज्जगुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । विभंग०-तेउ०-पम्म० विदियपुढविभंगो ।

§ ३५४. स्वयं० मणपज्जवभगो । एवरि असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा त्ति वत्तव्वं । वेदय० सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा असंखे०गुणा । एवं सम्मामि० ।

एवं वड्ढीसमत्ता ।

§ ३५५. संपहि द्वाणपरूवणे कीरमाणे सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समयूण-दुसमयूणादिक्रमेण ओदारियेव्वाओ जाव णिच्चियप्पअंतोकोडाकोडि त्ति । तदो

हानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेख्यावाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्यय-ज्ञानियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । पर उनके इतनी विशेषता है कि आभिनवोधिकज्ञानी आदिके जहाँ असंख्यातगुणा हैं वहाँ इनके संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार संयत, सामाधिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३५३. चक्षुदर्शनवालोंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यात-गुणहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक है । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए भी संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । विभंगज्ञानी, पीतलेख्यावाले और पद्मलेख्यावाले जीवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है ।

§ ३५४. चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मनःपर्ययज्ञानियोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ऐसा कहना चाहिये । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सम्यग्मध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार वृद्धि अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३५५. स्थानकी प्ररूपणा करते समय एक समय कम, दो समय कम इस क्रमसे सत्त कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिके निर्विकल्प अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण प्राप्त होने तक ६५

ध्रुवद्विदीए हृदसमुत्पत्तियं कादूण गिरंतरमोदारेद्वं जान एइंदियध्रुवद्विदि ति । तदो एइंदियध्रुवद्विदिसरिसमणियद्विखवाणद्विदिसंतकम्मं घेत्तूण सांतरणिरंतरकमेण ओदारेद्वं जाव सुहुमसांपराइयचरिमसमयम्मि एगा द्विदि ति । एवमोदारिदे मूलपयडिद्विणाणि सव्वाणि समुत्पण्णाणि होति ।

एवं मूलपयडिद्विदिविहत्ती समत्ता ।

करना चाहिये । तदनन्तर ध्रुव स्थितिकी हृत्समुत्पत्ति करके एकेन्द्रियोकी ध्रुव स्थिति प्राप्त होने तक कम करते जाना चाहिये । तदनन्तर एकेन्द्रियोंकी ध्रुवस्थितिके समान अनिष्टित्तिकरणत्तपककी सत्तामे स्थित स्थितिको ग्रहण करके सान्तर-निरन्तर क्रमसे इसे सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होनेवाली एक स्थितिके प्राप्त होनेतक कम करते जाना चाहिये । इस प्रकार प्रारम्भसे स्थितिके उत्तरोत्तर कम करने पर सभी मूलप्रकृतिस्थितिस्थान प्राप्त हो जाते हैं ।

इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिभिक्ति समाप्त हुई ।

उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती

❀ उत्तरपयडिद्विदिविहत्तिमणुमगइस्सामो ।

§ ३५६. एदं जइवसहाइरियस्स पइज्जावयणं । ण चेसा पइज्जा णिप्फला, सिस्साणं परूविज्जमाणअहियारावगमणफलत्तादो । अहियारो किमिदि जाणाविज्जेदं ? सिस्समणोगयसंदेहविणासणदं ।

❀ तं जहा । तत्थ अइपदं—एया द्विदी द्विदिविहत्ती अणेयाओ द्विदीओ द्विदिविहत्ती ।

§ ३५७. परूविज्जमाणद्विदिविहत्तीए एदमइपदं जइवसहाइरिएण किमदं परूविदं ? द्विदिविहत्तिसरूवावगमणदं । एया कम्मस्स द्विदी एया द्विदी णामा कथमणेयाणं पदेसभैदेणे भिण्णाणं द्विदीणमेयत्तं ? ण, पयडिभावेण सव्वपदेसाणमेयत्तुवलंभादो । चरिमणिसेयद्विदिपरमाणुणं सव्वेसिं कालमस्सिदूण सरिसत्तदंसणादो वा एयत्तं । एसा एगा द्विदी द्विदिविहत्ती होदि । समयूण-दुसमयूणादि-

उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति

\* अब उत्तरप्रकृति स्थितिविभक्तिका विचार करते हैं ।

§ ३५६. यह यतिवृषभ आचार्यका प्रतिज्ञावचन है । यदि कोई कहे कि यह प्रतिज्ञा निष्फल है सो भी बात नहीं है, क्योंकि शिष्योको कहे जानेवाले अधिकारका ज्ञान कराना इसका फल है । शंका—अधिकारका ज्ञान क्यों कराया जाता है ?

समाधान—शिष्योंके मनमें उत्पन्न हुए सन्देहको नष्ट करानेके लिये अधिकारका ज्ञान कराया जाता है ।

\* जो इस प्रकार है । उसके विषयमें यह अर्थपद है—एक स्थिति भी स्थितिविभक्ति है और अनेक स्थितियाँ भी स्थितिविभक्ति हैं ।

§ ३५७. शंका—कही जानेवाली स्थितिविभक्तिका यह अर्थपद यतिवृषभ आचार्यने किसलिए कहा ?

समाधान—स्थितिविभक्तिके स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये यतिवृषभ आचार्यने यह अर्थपद कहा है ।

कर्मकी एक स्थितिको एक स्थिति कहते हैं ।

शंका—प्रदेशोंके भेदसे भेदको प्राप्तहुई अनेक स्थितियोंमें एकत्व कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा सभी प्रदेशोंमें एकत्व पाया जाता है । अथवा अन्तिम निपेककी स्थितिको प्राप्त हुए सब परमाणुओमें कालकी अपेक्षा समानता देखी जाती है, अतः उनमें एकत्व बन जाता है ।

यह एक स्थिति भी स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि एक समय कम और दो समय कम

द्विदीहितो भेदुवलंभादो । अथवा सुहुमसांपराइयचरिमसमयपरमाणुपोगलक्खंधकालो एया द्विदी णाम । तस्स एगसमयणिप्पणत्तादो । एसा वि द्विदी द्विदिविहत्ती होदि, दुसमयादिद्विदीहितो पुधभूदत्तादो । तत्थेव भिण्णपरमाणुद्विदिसमएहितो अण्पिद-कालसमयस्स पुधभावुवलंभादो वा सगाहारपरमाणुम्मि पोगलक्खंधे वावड्ढिद-तिकालगोयराणंतपज्जएहितो एदिस्से द्विदीए पुधभावदंसखादो वा विहत्तिचं जुज्जे । दन्वट्टियणयमस्सिदूण एसा परूवरणा कदा । उक्कस्स-समऊणुक्कस्स-दुसमऊणुक्कस्सादिभेदेण अणेयाओ द्विदीओ ताओ वि द्विदिविहत्ती होंति, समाणासमाणद्विदीहितो परमाणुपोगलभेदेण च भेदुवलंभादो । एदमट्टपदं पज्जवट्टियसिस्साणुग्गहट्टं कदं ।

§ ३५८. का द्विदी णाम ? कम्मसरूवेण परिणदाणं कम्मइयपोगलक्खंधाणं कम्म-भावमल्लंडिय अच्छणकालो द्विदी णाम । उत्तरपयडीणं द्विदी उत्तरपयडिद्विदी । का उत्तरपयडी ? मूलपयडीए अवांतरपयडीओ । कथं मदि-सुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणावरणीयाणं पुधभूदणुणुसु वावदाणं पयडीणमेयत्तं ? ण, णाणसामण्णेण सव्वेसिं णाणाणमेयत्तमुवगयाणमावरणाणं पि एयत्ताविरोहादो ।

आदि स्थितियोसे इसमे भेद पाया जाता है । अथवा सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमे पुद्गल परमाणुओंके स्कन्धका जो काल है वह एक स्थिति कहलाती है, क्योंकि वह काल एक समय निष्पन्न है । यह स्थिति भी एक स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि यह दो समय आदि स्थितियोसे भिन्न है । अथवा उसी सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें भिन्न परमाणुओं मे स्थित समयोसे विच्युत कालसमय पृथक् पाया जाता है । अथवा अपने आधारभूत परमाणुओ मे या पुद्गलस्कन्धमें अवस्थित त्रिकांकी विषयभूत अनन्त पर्यायोसे यह स्थिति पृथक् देखी जाती है, इसलिये इसमें विभक्तिपना बन जाता है । यह कथनी द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे की है । तथा जो उत्कृष्ट, एक समय कम उत्कृष्ट और दो समय कम उत्कृष्ट आदिके भेदसे अनेक स्थितियाँ हैं वे भी स्थितिविभक्ति कहलाती हैं, क्योंकि इनमे समान और असमान स्थितियोकी अपेक्षा तथा पुद्गलपरमाणुओंके भेदकी अपेक्षा भेद पाया जाता है । यह अर्थपद पर्यायार्थिक बुद्धिवाले शिष्योके उपकारके लिये किया है ।

§ ३५८. शंका—स्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्मरूपसे परिणत हुए पुद्गलकर्मस्कन्धोंके कर्मपनेको न छोड़कर रहनेके कालक स्थिति कहते हैं ।

उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितिको उत्तर प्रकृतिस्थिति कहते हैं ।

शंका—उत्तर प्रकृति किसे कहते हैं ?

समाधान—मूल प्रकृतिकी अवान्तर प्रकृतियोंको उत्तरप्रकृति कहते है ।

शंका—भिन्न भिन्न ज्ञानोंमें व्यापार करनेवाले मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि-ज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरणरूप प्रकृतियोंमें एकपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा सभी ज्ञान एक हैं, अतः उनकोआवरण

❀ एदेण अट्टपदेण ।

३५६. एदमट्टपदं कादूण उवरिमचउवीसअणियोगद्वारेहि द्विदिविहत्तीए अणुगमं कस्सामो । तेसिं चउवीसण्हयणिओगद्वारणं चुण्णिसुत्तम्मि पुच्चं परुविदाणं बालजणायुग्गहट्टं पुणारवि णामण्हिहेसो कीरदे । तं जहा—अट्टाच्छेदो-सव्वद्विदिविहत्ती णोसव्वद्विदिविहत्ती उक्कस्सद्विदिविहत्ती अणुक्कस्सद्विदिविहत्ती जहण्णद्विदिविहत्ती अजहण्णद्विदिविहत्ती सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुवद्विदिविहत्ती अद्भुवद्विदिविहत्ती एयजीवेण सामिच्चं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेचं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो भावो अप्पावहुअं चेदि २४ । भुजगार-पदणिकखेव-वड्ढि-ट्टाणाणि त्ति एदाणि चचारि अणियोगद्वाराणि, एदेहि वि द्विदिविहत्ती परुविज्जदि । अट्टावीस अणियोगद्वाराणि किण्ण होंति त्ति बुत्ते ण, चउवीसअणियोगद्वारेसु चेव एदेसिमंतम्भावादो । तं जहा—अजहण्णाणुक्कस्स-द्विदिविहत्तीसु भुजगारविहत्ती पविट्टा तत्थ उक्कस्सखोसकण्णविहाणपरुवणादो । भुजगारविसेसो पदणिकखेवो, जहण्णुक्कस्सवट्ठिहाणिपरुवणादो । पदणिकखेव-विसेसो वड्ढी, वट्ठिहाणीणं भेदपरुवणादो । वट्ठिविसेसो ट्टाणं, तत्थतणअवांतर-भेदपरुवणादो । तदो द्विदिविहत्तीए चउवीस चेव अणियोगद्वाराणि होंति त्ति सिद्धं ।

करनेवाले कर्मोंको भी एक माननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

\* इस अर्थपदके अनुसार स्थितिबिभक्तिका अनुगम करते हैं ।

§ ३५६. इस अर्थपदका आलम्बन लेकर आगे कहे जानेवाले चौबीस अनुयोगद्वारोंके द्वारा स्थितिबिभक्तिका अनुगम करते हैं । ये चौबीस अनुयोगद्वार चृणिसुत्रमें पहले कहे जा चुके हैं फिर भी वालजनोंके उपकारके लिये उनका फिरसे नामनिर्देश करते हैं । जो इस प्रकार है—अट्टाच्छेद, सर्वस्थितिबिभक्ति, नोसर्वस्थितिबिभक्ति, उल्लुष्टस्थितिबिभक्ति, अनुल्लुष्टस्थितिबिभक्ति, जघन्यस्थितिबिभक्ति, अजघन्यस्थितिबिभक्ति, सादिस्थितिबिभक्ति, अनादिस्थितिबिभक्ति, ध्रुवस्थितिबिभक्ति, अध्रुवस्थितिबिभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भाव और अल्पबहुत्व ।

शंका—भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान ये चार अनुयोगद्वार और हैं, क्योंकि इनके द्वारा भी स्थितिबिभक्तिका कथन किया जायगा, अतः अट्टाईस अनुयोगद्वार क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चौबीस अनुयोगद्वारोंमें ही इनका समावेश हो जाता है । यथा—अजघन्य और अनुल्लुष्ट स्थितिबिभक्तियोंमें भुजगार स्थितिबिभक्तिका अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि उसमें उत्कर्षण और अपकर्षण विधिका कथन किया गया है । तथा भुजगार विशेषको पद निक्षेप कहते हैं, क्योंकि उसमें जघन्य और उल्लुष्टरूप वृद्धि और हानिका कथन किया गया है । पदनिक्षेप का एक विशेष वृद्धि है, क्योंकि इसमें वृद्धि और हानिके भेदोंका कथन किया गया है । तथा वृद्धिका एक विशेष स्थान है, क्योंकि इसमें स्थानगत अवान्तर भेदोंका कथन किया गया है । इसलिये स्थितिबिभक्तिके चौबीस ही अनुयोगद्वार होते हैं यह सिद्ध हुआ ।



### ❀ पमाणाणुगमो ।

§ ३६०. कीरदे इदि एत्थ अज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तहाणुववतीदो । चववीसअणियोगद्वारेसु ताव उत्तरपयडीणमद्धाछेदं भणामि ति वुत्तं होदि । पढममद्धाछेदो चव किमट्ठं वुच्चदे ? ण, अणवगयअद्धाछेदस्स उवरिमअणियोगद्वाराणं परूवणाणुववतीदो ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिविहती सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ पड्डिबुण्णाओ ।

§ ३६१. एसो अद्धाछेदो एगसमयपवद्धमस्सिदूण परूविदो ए णाणासमयपवद्धे; तत्थ तिण्णिमंगप्पसंगादो । एगसमयपवद्धस्से ति कथं णव्वदे ? अकम्मसरूवेण ट्ठिदाणं कम्मइयवगणक्खंधायां मिच्छत्तादिपच्चएहि मिच्छत्तकम्मसरूवेण अकमेण परिणामिय सव्वजीवपदेसेसु संवंधाणं समयाहियसत्तवाससहस्समादिं कादूण णिरंतरों समयुत्तरादिकमेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिदंसणादो । जम्मि समयपवद्धे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिकम्मक्खंधा अत्थि तत्थ एगसमयमादिं कादूण जाव सत्तवाससहस्साणि ति एदेसु ट्ठिदिविसेसेसु एगो वि कम्मक्खंधो एत्थि ति कुदो णव्वदे ?

❀ अव प्रमाणका अनुगम करते हैं ।

§ ३६०. 'पमाणाणुगमो' इस सूत्रमें 'कीरदे' क्रियाका अध्याहार कर लेना चाहिये, अन्यथा सूत्रका अर्थ नहीं बन सकता है । चौबीस अनुयोगद्वारोंमेंसे पहले उत्तर प्रकृतियोंके अद्धाच्छेद अर्थात् कालका कथन करते हैं यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—सबसे पहले अद्धाच्छेदका ही कथन किसलिये किया जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अद्धाच्छेदका ज्ञान किये बिना आगेके अनुयोगद्वारोंका कथन नहीं बन सकता है, अतः सबसे पहले अद्धाच्छेदका कथन किया जा रहा है ।

❀ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति पूरी सत्तर कोडाकोडी सागर है ।

§ ३६१. यह अद्धाच्छेद एक समयप्रवद्धकी अपेक्षा कहा है नाना समयप्रवद्धोंकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि नाना समयप्रवद्धोंकी अपेक्षा अद्धाच्छेदके कथन करने पर तीन भंग प्राप्त होते हैं ।

शंका—यह स्थिति एक समयप्रवद्धकी है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि जो कर्मणवर्णणास्कन्ध अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्वादि कारणोंसे मिथ्यात्वकर्मरूपसे एक साथ परिणत होकर जब सम्पूर्ण जीव प्रदेशोंमें सम्बद्ध हो जाते हैं तब उनकी एक समय अधिक सात हजार वर्षसे लेकर समयोत्तरादि क्रमसे निरन्तर सत्तर कोडा कोड़ी सागर प्रमाण स्थिति देखी जाती है । इससे जाना जाता है, कि यह स्थिति एक समयप्रवद्धकी है ।

शंका—जिस समयप्रवद्धमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कर्मस्कन्ध हैं वहाँ प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष प्रमाण स्थिति विशेषोंमें एक भी कर्मस्कन्ध नहीं है यह किस प्रमाण



गृहणपदमसमए चेव पडिगहकालेरूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तमिच्छत्तद्विदीए सम्मत्तसम्माभिच्छत्तेसु रांकाभिदाए सम्मत्तसम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सअद्वाच्छेदो होदि,तेण बंधाभावे वि दोहं पयडीणं तदुक्कस्सद्विदीणं च अत्थिचं सिद्धं । पडिगहकालो एगदु-तिसमइओ किण्ण होदि ? ण, संकिलेसादो ओयरिय विसोहीए अंतोमुहुत्तावट्टाणेण विणा सम्मत्तस्स गहणाणुववत्तीदो ।

प्रतिभग्नकाल अन्तमुं हूर्तप्रमाणसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त कर देता है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद होता है, अतः बन्धके नहीं होने पर भी दोनों प्रकृतियोंका और उनकी उत्कृष्ट स्थितिका अस्तित्व सिद्ध होता है ।

**शंका**—प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें आकर और उत्कृष्ट स्थितिवन्धके कारणभूत संक्लेशसे च्युत होकर और विशुद्धिको प्राप्त करके जब तक उसके साथ जीव मिथ्यात्वमें अन्त-मुं हूर्तकाल तक नहीं ठहरता है तब तक उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, इसीलिये प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय नहीं होता ।

**विशेषार्थ**—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियां बन्धसे सत्त्वको नहीं प्राप्त होतीं किन्तु मिथ्यात्व का इन दोनों प्रकृतियों रूप से संक्रमण होता है और इसीलिये मोहनीय की बन्ध प्रकृतियां २६ तथा उदय और सत्त्व प्रकृतियां २८ मानी गई हैं । यद्यपि एक सजातीय प्रकृति का दूसरी सजातीय प्रकृतिरूप से संक्रमण दूसरी प्रकृतिके बन्धकाल में ही होता है ऐसा नियम है पर यह नियम बन्ध प्रकृतियोंमें ही लागू होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंमें नहीं, क्योंकि ये दोनों बन्ध प्रकृतियां नहीं हैं । इनके सम्बन्धमें तो यह नियम है कि जब कोई एक २६ प्रकृतियों की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तब वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पहले समयमें मिथ्यात्वके तीन भाग कर देता है जिन्हें क्रमसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व संज्ञा प्राप्त होती है । पर ऐसे जीवके आयु कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिस्त्वं अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होता है इसलिये ऐसे जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिस्त्वं सम्भव नहीं । अतः ऐसा जीव जब मिथ्यात्व में चला जाता है और वहां संक्लेशरूप परिणामों के द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर अन्तमुं हूर्त कालके पश्चात् पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसके मिथ्यात्वकी अन्तमुं हूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे संक्रमण हो जाता है और इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुं हूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण प्राप्त होती है । यहाँ इतना विशेष समझना चाहिये कि मिथ्यात्वमें जाकर जिस जीवने मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उसे सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धता प्राप्त करनेके लिये अन्तमुं हूर्त से कम काल नहीं लगता है इसलिये यहाँ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तमुं हूर्त काल कम किया है । तथा ऐसा जीव वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त कर सकता है प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नहीं, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर से अधिक स्थिति नहीं होनी चाहिये ऐसा नियम है ।



तेसिमावलयुणकसायुकृत्सद्विदिदंसणादो । णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुग्ध्वाण-  
मुकृत्ससंकिलेसेण वंधपाओग्गाणं सोलसकसायाणं व चत्तालीससागरोवमकोडाकोडी-  
भेत्तो द्विदिवंधो क्खिएण होदि ? ण, कसायणोकसायाणं पुधभूदजादीणं द्विदिभेदे संते  
विरोहाभावादो । इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणं पडिहग्गकालम्मि वज्झमाणाणं कथमावलि-  
यूणा कसायाणमुकृत्सद्विदी होदि ? ण, पडिहग्गपढमसमए चेव वज्झमाणेसु चदुसु  
कम्मेषु वंधावल्यादिवकंतकसायकम्मक्खंधाणमावलयुणउक्कस्सद्विदीणं संकंतिदंस-  
णादो । एदाणि चत्तारि वि कम्मणि उक्कस्ससंकिलेसेण क्खिण्णं वज्झंति ? ण,  
साहावियादो ।

मे संक्रान्त हो जाने पर नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर  
देखी जाती है, अतः नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति उक्त प्रमाण बन जाती है ।

शंका—उत्कृष्ट संक्लेशसे वंधनेके योग्य जो नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा  
प्रकृतियां हैं उनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सोलह कपायोंके समान पूरा चालीस कोड़ाकोड़ी सागर  
क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कपाय और नोकपाय ये पृथक् जातिकी प्रकृतियाँ हैं, इसलिये  
इनके स्थिति भेदके रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—प्रतिभग्न कालमें वंधनेवाली स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति इन प्रकृतियोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रतिभग्न कालके पहले समयमें ही वंधनेवाली इन चार  
प्रकृतियोंमें वन्धावलिके सिवा शेष कर्मस्करियोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण  
जाता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण हो जाती है ।

शंका—ये स्त्रीवेद आदि चारों कर्म उत्कृष्ट संक्लेशसे क्यों नहीं वंधते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेशसे नहीं वंधनेका इनका स्वभाव है ।

विशेषार्थ—वन्धसे स्त्रीवेदकी १५ कोड़ाकोड़ी सागर, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और  
नपुंसकवेदकी २० कोड़ाकोड़ी सागर तथा हास्य, रति और पुरुषवेदकी १० कोड़ाकोड़ी सागर  
उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती हैं किन्तु जब कपायों की उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकपायरूपसे संक्रमण  
होता है तब इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिकम ४० कोड़ाकोड़ी सागर हो जाती है । तत्काल  
बंधे हुए कर्मका एक आवलि काल तक संक्रमण नहीं होता अतः ४० कोड़ाकोड़ी सागरमें से एक  
आवलि कम कर दी गई है ! किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट संक्लेशसे होनेवाले कपायकी  
उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांच प्रकृतियोंका ही  
वन्ध होता है, अतः वन्धकालके भीतर ही इनमें एक आवलिके पश्चात् कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका  
संक्रमण प्रारम्भ हो जाता है । तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका वन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप  
परिणामोंसे नहीं होता अतः कपायकी उत्कृष्ट स्थिति वन्धके उपरत होने पर एक आवलिके पश्चात्  
इनमें कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण होता है क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके निवृत्त होने  
के पहले समयसे ही इन स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका वन्ध होने लगता है और इसलिये एक

\* एवं सन्वासु गदीसु णेयन्वो ।

§ ३६५. जहा ओघेण अद्धाच्छेदो परुविदो तथा सन्वासु गदीसु णेदन्वो चि । एवं जहवसहाइरिएण सन्वासु मगणासु सूचिदमुक्कस्सद्विद्विअद्धाच्छेदमुच्चारणाइरिएण मंदबुद्धिजणासुगहद्वमेसुइ से परुविदं वत्तइस्सामो ।

§ ३६६. तं जहा—सत्तहं पुढवीणं तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०-पज्ज०-पंचि०तिरिक्खजोगिणी-मखुसतिय०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउन्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्सा०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छाइ०-सण्णि-आहारीणमोघभंगो ।

§ ३६७. पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्स-

आवलिके पश्चात् इनमें कपायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमित होने से कोई वाधा नहीं आती है । यहां इतना और विशेष जानना चाहिए कि बन्धावलिके बाद यद्यपि कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोक-पायरूपसे संक्रमण तो होता है पर उदयावलिप्रमाण निषेकोंको छोड़कर ऊपरके निषेकोंमें स्थित कर्मपरमाणुका ही संक्रमण होता है । इस प्रकार बन्धावलि और उदयावलि इन दो अवलिप्रमाण निषेक असंक्रमित ही रहते हैं । इसलिये संक्रमणकी अपेक्षा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण और सत्त्वकी अपेक्षा एक आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण पाई जाती है, क्योंकि जिस समय कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण होता है उस समय उदयावलिप्रमाण निषेकोंको छोड़कर शेषका होता है । पर नौ नोकपायोंकी सत्ता संक्रमणके पहले भी थी अतः पूर्वसत्ताके उदयावलि प्रमाण निषेकोंको मिला देने पर एक आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति प्राप्त हो जाती है ।

\* इसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये ।

§ ३६५. जिस प्रकार ओघसे मोहनीयकी अद्धाईस प्रकृतियोंका अद्धाच्छेद कहा है उसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यने जो सम्पूर्ण मार्गणाओमें उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण सूचित किया है जिसका कि प्ररूपण उच्चारणाचार्यने मन्दबुद्धिजनोंके अनुग्रहके लिये इसी प्रकारणसे किया है उसे बताते हैं ।

§ ३६६. यह इस प्रकार है—सातों नरक, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोसे लेकर सहस्वार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पांचों घचनयोगी, काययोगी, श्रौदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कपायवाले, मत्याज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चतुदशोनी, अचतुदशोनी, कृष्णादि पांच लेख्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान भंग है । अर्थात् ओघसे जिस प्रकार मोहनीयकी अद्धाईस प्रकृतियोंकी स्थितिका कथन कर आये हैं उसी प्रकार इन पूर्वोक्त मार्गणाओमें भी जानना चाहिये ।

§ ३६७. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मकी

द्विदिअद्वाछेदो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ । सोलसकसाय-णव-  
णोकसायार्ण उक्कस्सअद्वाछेदो चत्तालीससागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ ।  
एवं मणुसअपज्ज-वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदिय-  
अपज्ज०-वादरपुढविअपज्ज० - सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त - वादरआउअपज्ज० - सुहुमआउ-  
पज्जत्तापज्जत्त-सव्वतेउ०-सव्ववाउ०-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-सुहुमवणप्फदि०-  
पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सुकलेस्सा-  
सम्मादि०-वेदय०-सम्मामिच्छादिद्वि त्ति ।

§ ३६८. आणदादि जाव सव्वट्ट० सव्वपयडीणमुक्क० अद्वाछेदो अंतोकोडा-  
कोडी० । एवयाहार०-आहारमिस्स०-अषगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-  
परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० - संजदासंजद-खइय-उवसम० - सासणसम्मा-  
दिद्वि त्ति ।

§ ३६९. एइंदिएसु मिच्छत्तुक्क० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समऊणाओ ।  
सम्मत्तसम्मामिच्छत्तणवणोकसायार्णमोधं । सोलसक० उक्क० चत्तालीस० कोडाकोडीओ  
समयूणाओ । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-  
आउ०-वादरआउ०-वादरआउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय०-वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-

उत्कृष्ट स्थिति अन्तमु हूर्त कम सत्तर कोडाकोडी सागर है । तथा सोलह कपाय और नौ नोक-  
कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमु हूर्त कम चालीस कोडाकोडी सागर है । इसी प्रकार मनुष्य  
अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय  
अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवी-  
कायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, वादर जलकायिक  
अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक, सब अग्नि-  
कायिक, सब वायुकायिक, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म वनस्पति  
पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्तक, सब निगोद, त्रस अपर्याप्तक, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६८. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सभी भ्रुकृतिर्योंकी उत्कृष्ट स्थिति  
अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी,  
अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-  
विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपराधिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-  
सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६९. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम सत्तर कोडाकोडी सागर  
है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति ओषके समान है । तथा  
सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम चालीस कोडाकोडी सागर है । इसी प्रकार  
वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर,

आरालि०-वेउक्त्रियमि०-कम्मइय०-असण्णि०-अण्णाहारि चि ।

एवमुक्त्सद्विद्विअद्वाच्छेदो समत्तो ।

बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, काम्येण-  
काययोगी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—यहाँ पहले ओषके अनुसार जिन मार्गणाओंमें २८ प्रकृतियोंका अद्वाच्छेद है उनका मूलमें उल्लेख करके जिन मार्गणाओंमें विशेषता है उनका अलगसे निर्देश किया है । खुलासा इस प्रकार है—जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध किया है वह एक अन्तमुहूर्तके बाद ही स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकेके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म अन्तमुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर कहा है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकेके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर जाननी चाहिये, क्योंकि जिस जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया है वह जीव जब अति लघुकालके द्वारा लौट कर मिथ्यात्वमें आता है और स्थितिघात किये बिना मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है तब उसके पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक अवस्थामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तमुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । यहाँ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिकन्धसे लेकर पुनः मिथ्यात्वमें आकर पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होने तकके कालका जोड़ अन्तमुहूर्त ही लेना चाहिये तभी पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकेके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति उक्त प्रमाण बन सकती है । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक जीवके जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्तकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर घटित कर लेनी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति वन्धकी अपेक्षा और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति संक्रमकी अपेक्षा घटित करने चाहिये । मूलमें मनुष्य अपर्याप्तक आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये । किन्तु सम्यग्दर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहते समय वेदकसम्यक्त्वसे पुनः मिथ्यात्वमें नहीं ले जाना चाहिये । किन्तु वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही उनके सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । हां सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके वेदकसम्यक्त्वसे अतिशीघ्र सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त करके पहले समयमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । आनतादि चार कल्पोंमें यदि अधिरती उत्पन्न होता है तो द्रव्यलिंगी मुनि ही उत्पन्न होता है । यही बात नौ प्रैवेयकोंकी भी है, अतः इनके सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती । मूलमें आहारककाय-योगी आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती यह स्पष्ट ही है । हां सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यातसंयतके जो उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर बतलाई है वह उपशामककी अपेक्षा जाननी चाहिये । जिसने मिथ्यात्व या सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध किया है वह दूसरे समय में मर कर मूलमें कही गई एकेन्द्रियादि मार्गणाओंमें उत्पन्न हो सकता है अतः उक्त मार्गणाओंमें मिथ्यात्वकी एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और सोलह कषायों की एक समय कम



## ❀ एत्तो जहण्णयं ।

§ ३७०. एदम्हादो उवरि जहण्णयमद्धाच्छेदं वत्तइस्सामो त्ति मंदमेहाविजण-

चालीस कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति बन जाती है । किन्तु एकेन्द्रियसे लेकर वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त तक मार्गणाओंमें और असंज्ञी मार्गणामें देव पर्यायसे च्युत हुए जीवको उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । औदारिक मिश्रकाययोगमें देव और नारक पर्यायसे च्युत हुए जीव को उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मनुष्य और तिर्यंच पर्यायसे च्युत हुए जीवको नरकमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । कार्मणकाययोग और अनाहारकमें उत्कृष्ट स्थिति कहते समय चारों गतिसे मरे हुए जीवको तिर्यंच और नारकियोंमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । तथा इतनी और विशेषता है कि इन सब मार्गणाओंमें भवके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होगा । तथा एकेन्द्रियसे लेकर वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक तक उपर्युक्त मार्गणाओंमें और असंज्ञी मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व इस प्रकार घटित कर लेना चाहिये कि भवनत्रिक व सौधर्म कल्पतक के किसी एक जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके अन्तमुहूर्त कालके पश्चात् वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया । पुनः अति लघु कालके द्वारा वह मिथ्यात्वमें गया और वहां अन्तमुहूर्त काल तक रह कर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति काण्डकघात किये विना एकेन्द्रियादिक उक्त मार्गणाओंमें से किसी एकमें उत्पन्न हो गया तो उसके उत्पन्न होनेके पहले समय में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होता है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि देव और नारक पर्यायसे वेदकसम्यक्त्वके साथ आकर जो औदारिक-मिश्रकाययोगी होता है उसके ही भवके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होता है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहते समय मनुष्य और तिर्यंच पर्यायसे नारकियोंमें उत्पन्न कराकर भवके पहले समयमें ही कहना चाहिये । किन्तु ऐसे जीवको तिर्यंच और मनुष्य पर्यायमें रहते हुए वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न कराकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये और तब नरकमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ उत्पन्न कराना चाहिये । तथा कार्मणकाययोग और अनाहारक मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व औदारिकमिश्रकाययोगके समान घटित कर कहना चाहिये । तथा नौ नोकषायों का उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके समान घटित करके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व उस मार्गणा में भवके पहले समयसे लेकर एक आवलिकाल तक प्राप्त हो सकता है; क्योंकि जिस जीवने सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आवलि कालके पश्चात् मरण किया उसके भवके पहले समयमें नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा और जो दूसरे समयमें मर गया उसके एक आवलिकालके पश्चात् उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा । इसीप्रकार एक समयसे लेकर आवलितकके मध्यम विकल्प जानने चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिअच्छाच्छेद समाप्त हुआ ।

\* इसके आगे जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदको वतलाते हैं ।

§ ३७०. इस उत्कृष्ट स्थितिअद्धाच्छेदके आगे जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदको वतलाते हैं ।



कंडयसहस्साणि घादिय समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेठीए कम्मक्खंथे गालिय अणियट्ठिअद्दाए संखेज्जेसु भागेषु गदेसु मिच्छत्तचरिमफालिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तमुदयावलियादो वाहिरिल्लयं घेत्तण सम्मत्तसम्भामिच्छत्तेसु संकामेंतेण उव्वराविदसमऊणुदयावलयियमेत्तट्ठिदीसु थिउकसंकमेण संकमंतीसु मिच्छत्तेयणिसेयणिसेयट्ठिदीए दुसमयकालट्ठिदीए उवलंभादो । कथमणंताणं परमाणुखं ठिदिववएसो ? ण, आहारं आहेओवयारादो । कथमेयत्तं ? ण, दुसमयकालवट्ठाणेण समाणाणमेयत्ताविरोहादो ।

§ ३७२. एवं सम्भामिच्छत्तवारसकसायाणं पि वत्तव्व । एवमि अत्तपप्पणो चरिमफालीओ परसरुवेण संखुहिय उदयावलयियपविट्ठणिसेयट्ठिदीओ थिउकसंकमेण संकामिय एयणिसेयट्ठिदीए दुसमयकालाए सेसाए जहण्णाट्ठिदिविहत्ती होदि चि वत्तव्वं । एदेसिं सव्वकम्भाणं सगसगअणियट्ठिअद्दासु संखेज्जेसु भागेषु गदेसु चरिमफालीओ पदंति । अणंताणुवंधिचउकस्स पुण अणियट्ठिअद्दाए चरिमसमए चरिमफाली पददि

कालमें भी यह जीव हजारों स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंका घात करके प्रतिसमय असंख्यातगुणी श्रेणी रूपसे कर्मस्कन्धोका नाश करता है और इस प्रकार जब यह जीव अनि-वृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागको व्यतीत कर देता है तब वह पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको उदयावलिके बाहरसे ग्रहण करके सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वमे संक्रान्त करता है और उदयावलिप्रमाण जो निषेक शेष रहे हैं उनमेंसे एक समय कम उदयावलिप्रमाण स्थितिको भी स्तितुकलंक्रमणके द्वारा ( सम्यक्त्वप्रकृतिमे ) संक्रान्त कर देता है । तब इस जीवके मिथ्यात्वके एक निषेककी दो समयप्रमाण निषेकस्थिति प्राप्त होती है ।

शंका—अनन्त परमाणुओंको स्थिति संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान—आधारमे आधेयके उपचारसे अनन्त परमाणुओंको स्थितिसंज्ञा प्राप्त हो जाती है ?

शंका—ये एक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—नहीं क्योंकि दो समय काल तक रहनेके कारण इनमें समानता है, इसलिये इनको एक माननेमे कोई विरोध नहीं है ।

§ ३७२. जिस प्रकार मिथ्यात्वकी एक जघन्य स्थिति दो समय प्रमाण कही उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और बाह्य कषायोंकी भी कहनी चाहिये । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी अन्तिम फालिको पररूपसे संक्रामित करके तथा उदयावलिके स्थित निषेकोंकी स्थितिको स्तितुक संक्रमणके द्वारा संक्रामित करके जो दो समय प्रमाण एक निषेककी स्थिति शेष रहती है वह उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिबिम्बिक होती है प्रकृतमें ऐसा कथन करना चाहिये । इन सभी कर्मोंकी अपने अपने अनिष्टिकरणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर अन्तिम फालियोंका पतन होता है । परन्तु अनन्ताहुदन्धी चतुष्ककी अन्तिम फालिका पतन अनिष्टिकरणके कालके

त्ति घेत्तच्च । कुदो ? साहावियादो । सम्मामिच्छत्तस्स उव्वेल्लणाए वि जहण्णाद्विद्वि-  
विहती होदि । चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए पदिदाए तत्थ वि दुसमयकालेग-  
णिसेगद्विदीए उवलंभादो ।

\* सम्मत्त-लोहसंजलण-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णाद्विद्विहती एगा  
द्विदी एगसमयकालद्विद्विया ।

§ ३७३. सम्मत्तस्स एगा द्विदी एगसमयकालपमाणा जहण्णाद्विद्विहती होदि  
त्ति जं सुत्ते भणिदं तस्स विवरणं कस्सामो । तं जहा—सम्मामिच्छत्तचरिमफालियाए  
सम्मत्तम्मि संकामिदाए सम्मत्तस्स अट्ठवस्सद्विद्विसंतकम्मं होदि । पुणो एवविहद्विद्वि-  
संतकम्ममंतोमुहुत्तमेत्तद्विद्विकंडयपमाणेण घादयमाणो सम्मत्तस्स अणुसमयओवट्ठणं च  
कुणमाणो ताव गच्छदि जाव संखे ज्जद्विद्विकंडयसहस्साणि गदाणि त्ति । तदो तेसु गदेसु  
सम्मत्तचरिमफालिमागाएंतो कदकरणिज्जकालमेत्ताओ द्विदीओ मोत्तूण आगाएदि ।  
पुणो तं घेत्तूण गुणसेद्विणिक्खेवेण णिक्खिन्ने अणियट्ठिकरणं समप्पदि । तदो अणुसमय-  
मोवट्ठणं करेमाणो उदयावलियपविट्ठद्विदीओ ताव गालेदि जाव एगा द्विदी एगसमय-  
कालपमाणा उदयम्मि द्विदा त्ति । ताधे सम्मत्तस्स जहण्णाद्विद्विहती होदि । सम्मा-

अन्तिम समयमें प्राप्त होता है ऐसा यद्वा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि इनका ऐसा स्वभाव है ।  
तथा सम्यग्निमध्यात्वकी उद्वेलनामे भी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि अन्तिम उद्वेलना-  
काण्डककी अन्तिम फालिके पतन होने पर वहां भी एक निषेककी दो समय प्रमाण स्थिति  
पाई जाती है ।

\* सम्यक्त्व, लोभसंज्वलन, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी एक स्थिति जघन्य  
स्थिति विभक्ति होती है, जिसका स्थितिकाल एक समय है ।

§ ३७३. सम्यक्त्वकी एक स्थिति एक समय प्रमाण काल तक रहनेवाली जघन्य स्थिति  
विभक्ति होती है, इस प्रकार जो सूत्रमे कहा है, अब उसका विवरण करेगे । जो इस प्रकार है—जब  
सम्यग्निमध्यात्वकी अन्तिम फालिका संक्रमण सम्यक्त्वमे होता है तब सम्यक्त्वका आठ वर्ष प्रमाण  
स्थिति सत्कर्म होता है । पुनः यह जीव सम्यक्त्वके इस प्रकार स्थित स्थितिसत्कर्मका  
अन्तसुं हूतं प्रमाण स्थितिकाण्डकके द्वारा घात करता हुआ और प्रत्येक समयमें अपवर्तना करता  
हुआ तब तक जाता है जब जाकर संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत हो जाते हैं । तदनन्तर  
उन संख्यात हजार स्थितिकाण्डकके व्यतीत होने पर यह जीव सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिको  
प्राप्त होता हुआ उसमेसे कृतकृत्यवेदके काल प्रमाण स्थितियोको छोड़कर शेषको ग्रहण करता है ।  
पुनः इसके कृतकृत्यवेदक कालप्रमाण स्थितियोको छोड़कर और शेषको ग्रहण करके उनका  
गुणश्रेणीरूपसे निक्षेप कर देने पर अनिष्टुत्तिकरण समाप्त होता है । तदनन्तर उनका प्रत्येक  
समयमें अपवर्तन करता हुआ उदयावलिमे स्थित स्थितियोकी तब तक निर्जरा करता है जब जाकर  
उदयमे स्थित एक स्थिति एक समय काल प्रमाण प्राप्त होती है । और इसी समय सम्यक्त्वकी  
जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

मिच्छत्तादीर्णं जहण्णट्टिदी एगसमयकालपमाणा त्ति किण्ण परूविदं ? ण, मिच्छत्त-सम्पामिच्छत्त-वारसकसायाणं सम्मत्तस्सेव सोदएण खववणाभावादे ।

§ ३७४. संपहि लोहसंजलणस्स जहण्णट्टिदी वुच्चदे । तं जहा—अप्पणो वादर-किट्ठीओ वेदिय तदो तदियकिट्ठी वेदयमाणो सुहुमसांपराइयअद्दाए संखेज्जे भागे गंतूण लोभचरिमफालिमागाएंतो सुहुमसांपराइयअद्दाए सेसं सगद्दाए संखेज्जदिभागं योत्तूण आगाएदि । पुणो तं चरिमफालिदन्वं घेत्तूण गुणसेठिकमेण उदयादि णिक्खिविय तदो जहाकमेण सेसगोवुच्चओ गालिय एगट्टिदीए उदयगदाए एगसमयकालपमाणाए सेसाए लोभसंजलणस्स जहण्णट्टिदिविह्वती होदि ।

§ ३७५. इत्थिवेदस्स एगा ट्टिदी एगसमयकालपमाणा जहण्णट्टिदिविह्वती होदि त्ति जं भणिदं तस्स विवरणं कस्सामो । तं जहा—इत्थिवेदोदएण खवगसेठिं चडिय तदो विदियट्टिदीए ट्टिमित्थिवेदचरिमफालिं दुचरिमसमयसवेदएण घेत्तूण पुरिसवेद-सरूवेण संकामिदे सवेदियचरिमसमयम्मि एगा ट्टिदी एगसमयकालपमाणा सुद्धा अबचिट्ठदि ताथे इत्थिवेदस्स जहण्णट्टिदिविह्वती होदि ।

§ ३७६. संपहि णवुंसयवेदस्स वुच्चदे । तं जहा—णवुंसयवेदोदएण जो खवग-

शंका—सम्यग्मिध्यात्व आदिककी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण क्यो नहीं कही ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिध्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व और बारह कषायोंका सम्यक्त्वके समान स्वोदयसे क्षण नहीं होता, इसलिये उनकी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण नहीं कही ।

§ ३७४. अब लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—लोभसंज्वलन-वाला जीव अपनी वादर कृष्टियोंका वेदन करके तदनन्तर तीसरी कृष्टिका वेदन करता हुआ सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थानके कालमें संख्यात बहुभागप्रमाण कालको व्यतीत करके लोभकी अन्तिम फालिको ग्रहण करता हुआ सूक्ष्मसंपरायके कालमें अपने कालके अर्थात् लोभकी अन्तिम फालिके कालके संख्यातर्वे भागप्रमाण निषेकोंको छोड़कर शेष निषेकोंको ग्रहण करता है । पुनः उस अन्तिम फालिके द्रव्यको ग्रहण करके और उसे गुणश्रेणीक्रमसे उदय कालसे लेकरके निश्चित करके तदनन्तर यथाक्रमसे शेष गोपुच्छको गलाता है तब जाकर उदय प्राप्त एक स्थितिकी एक समय कालप्रमाण स्थितिके शेष रहने पर लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ३७५. अब स्त्रीवेदकी एक स्थिति एक समय कालप्रमाण जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है यह जो पहले कह आये हैं उसका विवरण करेंगे । वह इस प्रकार है—

स्त्रीवेदके उदयसे क्षणक्षणी पर चढ़कर तदनन्तर सवेदक जीवके द्वारा द्विचरम समयमें द्वितीय स्थितिमें स्थित स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण कर देने पर जब सवेद भागके अन्तिम समयमें एक समय कालप्रमाण एक स्थिति सुद्ध शेष रहती है तब स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

। ३७६. अब नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—जो नपुंसकवेदके

सेद्विमारूढो तेण सवेदियदुचरिमसमए इत्थिणवुंसयवेदचरिमफालीसु सव्वसंकमेण पुरिसवेदे संकामिदासु तदो सवेदियचरिमसमए णवुंसयवेदस्स एगा द्विदी एगसमय-कालपमाणा पचोदया सुद्धा चिट्ठदि । ताथे णवुंसयवेदस्स जहण्णद्विदिविहत्ती होदि ।

\* कोहसंजलणस जहण्णाद्विदिविहत्ती वे मासा अंतोमुहुत्तूणा ।

§ ३७७. कुदो ? चरित्तमोहक्खएण कोधसंजलणवेकिट्ठीओ खविय कोध-तद्वियकिट्ठि खवेमाणेण तिस्से पढमद्विदीए समयाहियावळियाए सेसाए कोधसंजलणस्स जहण्णवंधे संपुण्णवेमासमेचो पवद्धे ताथे समयूणदोआवळियमेत्ता समयपवद्धा सुद्धा कोहस्स चिट्ठत्ति । तम्मि समए उप्पादाणुच्छेदेण कोहचिराणसंतकम्मचरिमफालीए णिस्सेसविणासुवलंभादो । तदो बंधावळियाए वदिक्कंताए समजणावळियमेत्तफालीसु परसरूवेण संकामिदासु दुसमयूणदोआवळियमेत्तसमयपवद्धेसु णिस्सेसं परसरूवेण गदेसु ताथे समयूणदोआवळियाहि ऊणवेमासमेत्ता कोधचरिमसमयपवद्धस्स द्विदी थक्कदि; ताथे कोधसंजलणस्स जहण्णद्विदिदंसणादो । समयूणदोआवळियाहि ऊण-वेमासमेत्ता कोधजहण्णाद्विदिविहत्ती होदि त्ति अभणिय वेमासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति भणिदं कथमेदं घड्ढे ? ण, वेमासअब्भंतरआवाहाए अंतोमुहुत्तपमाणाए कम्मणिसेगा-

उदयसे त्पकश्रेणी पर चढ़ा है वह जब सवेद भागके द्विचरम समयमे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अन्तिम फालियोंका सर्वसंक्रमणके द्वारा पुरुषवेदमें संक्रमण कर देता है तब सवेद भागके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी उदयगत एक स्थिति एक समय कालप्रमाण शुद्ध शेष रहती है और तभी नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

\* क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्ति अन्तमुहूर्त कम दो महीना है ।

§ ३७७. शंका—क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्ति अन्तमुहूर्त कम दो महीना क्यों है ?

समाधान—चारित्रमोहनीयके क्षयके साथ क्रोधसंज्वलनकी दो कृष्टियोंका क्षय करके क्रोधकी तीसरी कृष्टिका क्षय करते हुए उसकी प्रथम स्थितिके एक समय अधिक आवली प्रमाण शेष रहने पर क्रोधसंज्वलनका जघन्य बन्ध पूरा दो महीना होता है और उस समय क्रोधके केवल एक समय कम दो आवली काल प्रमाण समयप्रवद्ध शेष रहते हैं । तथा उसी समय उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा क्रोधकी प्राचीन सत्तामें स्थित अन्तिम फालिका पूरा विनाश प्राप्त होता है । तदनन्तर वन्धावलिके व्यतीत होने पर एक समय कम आवलि प्रमाण फालियोंके पररूपसे संकमित होने पर तथा दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रवद्धोंके पूरी तरह पररूपसे प्राप्त होने पर उस समय एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून दो महीना प्रमाण क्रोधके अन्तिम समयप्रवद्धकी स्थिति शेष रहती है; क्योंकि उसी समय क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति देखी जाती है ।

शंका—क्रोधसंज्वलनकी एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून दो महीना प्रमाण जघन्य स्थिति होती है ऐसा न कहकर जो अन्तमुहूर्त कम दो महीना जघन्य स्थिति कही है सो यह कैसे बन सकती है ?

भावेण अंतोमुहुत्तूणं वेमासत्तु ववत्तीदो । कथं णिसेयाणं द्विदिववएसो ? ण, णिसेयादो पुधभूदकालाभावेण णिसेयाणं द्विदिचाविरोहादो । एत्थ कालो पहाणो किण्ण कदो ? ण, कम्मपरूवणाए कालस्स पहाणत्ताभावादो । जहा सम्माभिच्छत्तस्स एगा द्विदी दुसमयकालपमाणा जहण्णद्विदिविहत्ती होदि त्ति भणिदं तथा एत्थ वि अंतोमुहुत्तूण-वेमासमेत्ताद्विदीओ समयूणवेआवलिरूणवेमासकालपमाणाओ त्ति किण्ण परूविदं ? ण, चरिमणिसेयं मोत्तूण सेसणिसेयाणमेम्महंतकालाभावादो । उवदेसेण विणा वि णिसेयाणं कालो अवगम्मदि त्ति वा सुत्ते ण भणिदो ।

\* माणसंजलणस्स जहण्णद्विदिविहत्ती मासो अंतोमुहुत्तूणो ।

§ ३७८. कुदो ? माणवेकिट्टीओ खविय तदियकिट्ठि वेदयमाणस्स तिस्से तदियकिट्टीपढमद्विदीए समयाहियावलियसेसाए माणचरिमद्विदिवंधो मासमेत्तो । तत्तो उवरि समरूणदोआवलियमेत्तद्धणे चडिदे चरिमसमयपवद्धद्विदीए अंतोमुहुत्तूणमास-मेत्तणिसेगाणमुवलंभादो । जदि णिसेगाद्विदीओ चेव घेत्तूण जहण्णद्विदिविहत्ती बुच्चदि

**समाधान**—नहीं, क्योंकि दो मास प्रमाण स्थितिके भीतर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवाधा-कालमे कर्मनिषेक नहीं होनेसे जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम दो महीना बन जाती है ।

**शंका**—निषेकोंकी स्थिति संज्ञा कैसे हो सकती है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि निषेकोसे काल पृथग्भूत नहीं पाया जाता है अतः निषेकोंकी स्थिति संज्ञा होनेमे कोई विरोध नहीं आता है ।

**शंका**—यहाँ पर कालको प्रधान क्यों नहीं किया है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि कर्मोंकी प्ररूपणामें कालको प्रधानता नहीं प्राप्त होती है ।

**शंका**—जिस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थिति जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ऐसा कहा है उसी प्रकार यहाँ भी अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना प्रमाण स्थितियों एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून दो महीना काल प्रमाण होती हैं ऐसा क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि अन्तिम निषेकको छोड़कर शेष निषेकोंका इतना बड़ा काल नहीं पाया जाता है । अथवा उपदेशके विना भी निषेकोंका काल जाना जाता है इसलिये सूत्रमें नहीं कहा है ।

\* मान संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना है ।

§ ३७८. **शंका**—मानसंज्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना क्यों है ?

**समाधान**—मानकी दो कृष्टियोंका क्षय करके तीसरी कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके उस तीसरी कृष्टिकी प्रथम स्थिति एक समय अधिक आवलीप्रमाण शेष रहने पर मानका अन्तिम स्थितिवन्ध एक महीना प्रमाण होता है । तदनन्तर एक समय कम दो आवली-प्रमाण स्थान जाने पर अन्तिम समयप्रवृद्धकी स्थितिके निषेक अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना प्रमाण पाये जाते हैं ।

तो चरिमसमयमाएवेदयम्मि जहण्णसामिच्चं किण्ण परुविज्जदि; अंतोमुहुत्तूणां प्रडि विसेसाभावादो ? ए, तत्थ समययाहियआवलियमेत्तण्णसेगट्टिदीणं पढमट्टिदीए उवलं-भादो । पढमट्टिदिण्णसेगेषु गालिदेसु कियण्ण दिज्जदे ? ए, तत्थ हेद्दा बद्धकम्माएणं चरिमसमयट्टिदिवंधादो हेद्दा वि तण्णसेगाएण्णुवलंभादो । तम्हा समयूणदोआव-लियमेत्तद्धाणं गंतूण चैव जहण्णट्टिदिविहत्ती होदि ।

\* मायासंजलणस्स जहण्णट्टिदिविहत्ती अद्धमासो अंतोमुहुत्तूणो ।

§ ३७९. जेए मायासंजलणचरिमट्टिदिवंधस्स ण्णसेया अंतोमुहुत्तूणा अद्ध-मासमेत्ता तेण समऊणदोआवलियमेत्तपच्चग्गसमयपवद्धेस गालिदेसु अंतोमुहुत्तूणद्ध-मासमेत्तण्णसेयट्टिदीओ लब्धंति तम्हा तत्थ जहण्णट्टिदिविहत्ती होदि । सेसं सुगमं, कोधमाएणसंजलणेसु परुविदत्तादो ।

⊗ पुरिसवेदस्स जहण्णट्टिदिविहत्ती अट्टवस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि ।

§ ३८०. कूदो ? चरिमसमयसवेदएण वंधजहण्णट्टिदिवंधो अट्टवस्समेत्तो ।

शंका—यदि निषेकोकी स्थितिको ग्रहण करके जघन्य स्थितिबिभक्ति कही जाती है तो मान वेदनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिका स्वामित्व क्यों नहीं कहा, क्योंकि दोनों जगह दो महीनामे अन्तमुहूर्त काल कम है इसकी अपेक्षा दोनो जगह कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मानवेदनके अन्तिम समयमे प्रथम स्थितिके निषेकोकी भी एक समय अधिक आवलीप्रमाण स्थिति पाई जाती है, अतः वहाँ मानकी जघन्य स्थिति नहीं हो सकती है ।

शंका—तो फिर जिसने प्रथम स्थितिके निषेकोको गला दिया है वह जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं माना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पहले वंधे हुए कर्मोंकी अपेक्षा अन्तिम समयमें जो स्थिति बन्ध होता है उसके नीचे भी उनके निषेक पाये जाते हैं । अतः एक समय कम दो आवली प्रमाण स्थान जाकर ही मानकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

\* मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति अन्तमहूर्त कम आधा महीना है ।

§ ३७६. चूँकि मायासंज्वलनके अन्तिम स्थितिबन्धके निषेक अन्तमुहूर्त कम आधा महीना प्रमाण होते हैं, इसलिये एक समय कम दो आवलीप्रमाण नूतन समयप्रवद्धोंके गला देने पर अन्तमें निषेकोकी स्थितियों अन्तमुहूर्त कम अर्धमास प्रमाण प्राप्त होती हैं, इसलिये वहाँ जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । शेष कथन सुगम है; क्योंकि उसका कथन क्रोध और मान संज्वलनकी जघन्य स्थितिका कथन करते समय कर आये हैं ।

\* पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति अन्तमुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण होती है ।

§ ३८०. शंका—पुरुष वेदकी जघन्यस्थिति अन्तमुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि सवेदभागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्षप्रमाण



णियसेयद्विदीओ पुण अंतोमुहुत्तूणअद्ववस्समेत्ताओ; अंतोमुहुत्तावाहाए णियसेयरयणा-  
भावादो । पुणो समयूणदोआवलियमेत्तमद्धाणमुवरि गंतूण अंतोमुहुत्तूणअद्ववस्समेत्त-  
णियसेयद्विदीणमुवलंभादो । सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीणं जदि सत्तवाससहस्समेत्ता-  
वाहा लब्भदि तो अट्टण्हं वस्साणं किं लभामो त्ति पमाणेणिच्छाणुणिदफले ओवद्विदे  
जेण एगसमयस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि तेण अट्टण्णं वस्साणमावाहा अंतो-  
मुहुत्तमेत्ता त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, संसारावत्थं मोत्तूण खवगसेदीए एवंविह-  
णियमाभावादो । तं पि कुदो एण्वदे ? अद्ववस्साणि अतोमुहुत्तूणाणि पुरिसवेदस्स  
जहण्णद्विदिविहत्ती होदि त्ति सुत्तादो । एदमत्थपदमण्णत्थ वि वत्तव्वं ।

❖ छण्णोकसायाणं जहण्णद्विदिविहत्ती संखेज्जाणि वस्साणि ।

§ ३८१. एदस्स अत्थो वुच्चदे, अण्णदरवेदकसायाणमुदएण खवगसेदिं चडिय  
तदो जहाकमेण णवुंसयवेदमित्थिवेदं च खविय तदो छण्णोकसायखवणकालचरिम-  
समए चरिमद्विदिकंडयचरिमफालीए संखेज्जवस्सपमाणाए सेसाए छण्णोकसायाणं  
जहण्णद्विदिविहत्ती होदि ।

होता है । परन्तु निषेकोंकी स्थितियाँ अन्तमुं हूर्त कम आठ वर्षप्रमाण ही होती हैं, कारण कि अन्त-  
मुं हूर्त प्रमाण आवाधामें निषेकोंकी रचना नहीं पाई जाती है । पुनः एक समय कम दो आवली  
प्रमाण काल ऊपर जाकर निषेकोंकी स्थितियाँ अन्तमुं हूर्तकम आठ वर्ष प्रमाण पाई जाती हैं ।

शंका—सत्तर कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिकी यदि सात हजार वर्ष प्रमाण आवाधा पाई  
जाती है तो आठ वर्षप्रमाण स्थितिकी कितनी आवाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार त्रैराशिक विधिके  
अनुसार इच्छाराशिके फलराशिको गुणित करके उसमें प्रमाणाशिका भाग देने पर चूँकि एक  
समयका असंख्यातवां भाग आता है, इसलिये आठ वर्षकी आवाधा अन्तमुं हूर्त प्रमाण होती  
है यह कथन नहीं बनता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संसार अवस्थाको छोड़कर क्षपकश्रेणीमें इस  
प्रकारका नियम नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह भी किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—‘पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति अन्तमुं हूर्त कम आठ वर्ष प्रमाण है’ इस  
सूत्रसे जाना जाता है ।

यह अर्थपद अन्यत्र भी कहना चाहिये ।

❖ छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यात वर्षप्रमाण होती है ।

। ३८१. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—किसी एक वेद और किसी एक कषायके उदयसे  
क्षपकश्रेणी पर चढ़कर तदनन्तर यथाक्रमसे नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्षय करके तदनन्तर छह  
नोकषायोंके क्षय करनेके अन्तिम समयमें उनके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिकी  
संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिके शेष रहने पर छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

❖ गदीसु अणुमग्गिदव्वं ।

§ ३८२. गदीसु चि देसामासियवयणं । तेण गदियादिसु चोदसमग्गण्णाणेसु अणुमग्गिदव्वमिदि भण्णिदं होदि । एवं जइवसहाइरिएण सूचिदस्स अत्यस्स उच्चारणा-  
इरिएण परुविदवक्खाणं भणिस्सामो । उच्चारणोघो जइवसहोघेण समाणो चि ए  
तत्थ वचचवमत्थि ।

§ ३८३. मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज-तस-तसपज्ज०-पंचमण-पंच-  
वचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-लोभकसाय-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजद०-चक्खु०-  
अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक०-भवसिद्धि०-सम्मादिट्ठि-सण्णि-आहारीणामोघभंगो । णवरि  
मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जह० अद्वाच्छेदो पलिदो० असंखे०भागो । लोभकसाय० दोहं  
संजलणणं जह० द्विदिअद्वा०जहाकमेण अट्ट वस्साणि चचारि मासा च अंतोमुहुत्तूणा ।

§ ३८४. आदेसेण णेरइएसु मिच्छच्च-वारसकसाय-भय-दुग्गुञ्जाणं जहण्णद्विदि-  
विहृती सागरोवमसहस्सस्स सच्च सच्चभागा चचारि सच्चभागा पलिदो० 'संखे०भागो  
ऊणा । तं जहा—मिच्छच्चस्स ताव उच्चदे । असण्णिपंचिदिओ हदसमुप्पत्तियकमेण  
द्विदिघादं कादूण कयजहण्णमिच्छच्चद्विदिसंतकम्मो विग्गहगदीए णेरइएसु उववण्णो

❖ इसी प्रकार गतियोंमें अनुसंधान करके समझना चाहिये ।

§ ३८२. सूत्रमें आया हुआ 'गदीसु' यह वचन देशामर्षक है, इसलिये गति आदिक चौदह  
मार्गैणास्थानोंमें अनुसन्धान करके समझना चाहिये यह उक्त सूत्रका अभिप्राय होता है । इस  
प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित अर्थका उच्चारणाचार्यके द्वारा जो व्याख्यान किया गया  
है उसे कहेंगे । उसमें भी उच्चारणाका ओघ यतिवृषभके ओघके समान है अतः उच्चारणाके  
ओघका कथन नहीं करेंगे ।

§ ३८३. उसमें भी सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस  
पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकवायी, आभिनि-  
वाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ल-  
लेख्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान भंग है । इतनी  
विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तके स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिकाल पल्लोपमके असंख्यातवें  
भागप्रमाण है और लोभकपायवाले जीवके दो संवत्स्रानोका जघन्य स्थितिकाल क्रमसे  
अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तकम चार मास है ।

§ ३८४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति हजार सागरके  
सात भागोंमेंसे पल्लोपमके संख्यातवें भागसे न्यून सातों भागप्रमाण है और वारह कत्राय, भय तथा  
जुगुप्साकी जघन्यस्थितिबिभक्ति हजार सागरके सात भागोंमें से पल्लोपमके संख्यातवें भाग कम  
चार भागप्रमाण है । खुलासा इस प्रकार है । उसमें पहले मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति कहते  
हैं—जिसने हतसमुत्पत्तिक्रमसे स्थितिघात करके मिथ्यात्वका जघन्यस्थिति सत्कर्म कर लिया

१. १अ०प्रती अरंवे, इति पाठः ।

तस्स विदियसमये णेरइयस्स सागरोवमसहस्सस्स सच्च सत्ताभागा पल्लिदो० संखे०-  
भागेण उणा जहण्णट्टिदिअद्धान्हेदो होदि । णेरइओ सण्णिपंचिदिओ संतो अंतोकोडा-  
कोडिट्टिदि मिच्छत्तस्स किण्ण वंधदि ? सरीरे गहिदे पढमसमयप्पहुडि अंतोकोडा-  
कोडिट्टिदि चेव वंधदि, किं तु विग्गहगदीए असण्णिट्टिदि चेव वंधदि, पंचिंदियपाओग्ग-  
जहण्णट्टिदीए तत्थ संभवादो असण्णिपंचिंदियपञ्चायदत्तादो वा ।

§ ३८५. एवं वारसकसाय-भय-दुगुंछाणं पि वचच्चं । णवरि सागरोवम-  
सहस्सस्स चत्तारि सत्ताभागा पल्लिदोवमस्स संखे० भागूणा । एवं सत्तणोकसायाणं ।  
इत्थिवेदस्स जहण्णद्धान्हेदो ताव वुच्चदे । तं जहा—जो असण्णिपंचिदिओ  
हदसमुपत्तियक्रमेण कयतत्थतणजहण्णट्टिसंतकम्मो तेण वंधावलिखादिवकंत-  
कसायट्टिसंतकम्मे सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्ताभागमेचे पल्लिदो० संखे० भागेणूणे  
इत्थिवेदम्मि संकामिय णेरइयेसुप्पण्णपढसमए इत्थिवेदवंधवोच्छेदे कदे कसायट्टिदी  
इत्थिवेदम्मि ण संकमदि; वंधाभावेण पडिग्गहत्ताभावादो । तदो अंतोमुहुत्तकालं पुरिस-

है ऐसा कोई एक असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव जब विग्रहगतिसे नारकियोंमें उत्पन्न होता है तब उस  
नारकीके दूसरे समयमें हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्यके संख्यातवें भागसे न्यून सातों भाग  
प्रमाण जघन्यस्थिति होती है ।

**शंका-नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय है, अतः वह मिथ्यात्वकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको  
क्यों नहीं बाँधता है ?**

**समाधान-नारकी जीव शरीर ग्रहण करने पर प्रथम समयसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी  
प्रमाण स्थितिको ही बाँधता है किन्तु वह विग्रहगतिसे असंज्ञीकी स्थितिको बाँधता है, क्योंकि  
पंचेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिका पाया जाना नारकी विग्रहगतिमें संभव है । अथवा वह असंज्ञी  
पंचेन्द्रिय पर्यायसे लौटकर आया है, इसलिये भी वहाँ असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थिति पाई  
जाती है ।**

§ ३८५. इसी प्रकार वारह कषाय, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये । इतनी  
विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से पल्यका संख्यातवों भाग कम  
चार भाग प्रमाण होती है । इसी प्रकार शेष सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है ।  
उनमेंसे पहले स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—जिस असंज्ञी  
पंचेन्द्रियने हतसमुत्पत्तिकक्रमसे असंज्ञीके योग्य जघन्यस्थिति सत्कर्मको प्राप्त कर लिया है वह  
बन्धावलिके व्यतीत होने पर हजार सागरके सात भागोंमें से पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून  
चार भागप्रमाण कषायके स्थितिसत्कर्मका स्त्रीवेदमें संक्रमण करके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और  
वहाँ उत्पन्न होने पर पहले समयमें स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे उसके कषायकी  
स्थितिका स्त्रीवेदमें संक्रमण नहीं होता, क्योंकि स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होनेसे उसमें प्रतिग्रह शक्ति  
नहीं रहती । ऐसा जीव तदनन्तर अन्तमुहूर्त काल तक पुरुषवेदका बन्ध करके पुनः अन्तमुहूर्त

वेदं बंधिय पुणो अंतोसुहुत्तकालं णवुंसयवेदं बंधदि । णवुंसयवेदबंधगद्धाचरिमसमए इत्थिवेदस्स जहण्णद्धाच्छेदो होदि । एवं पुरिसवेदं-एणुंसयवेदं-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं । णवरि असण्णिचरिमसमए इच्छिदणोकसायं बंधाविय तत्थेव बंधवोच्छेदं काट्ठण णेरइ-एमुप्पण्णपहयसमयप्पहुट्ठि अंतोसुहुत्तकालपडिवक्खपयडीओ बंधाविय पडिवक्खपयडि-बंधगद्धाचरिमसमए इच्छिदणोकसायस्स जहण्णद्धाच्छेदो होदि ।

§ ३८६. एत्थ पडिवक्खपयडिबंधयद्धाणं माहप्पजाणावणहं णोकसायद्धाण-मप्पाबहुगं उच्चदे । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगद्धा २ । इत्थिवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा ४ । हस्स-रदिबंधगद्धा संखे०गुणा १६ । अरदि-सोगबंधगद्धा संखे०गुणा ३२ । एणुंसयवेदबंधगद्धा विसेसाहिया ४२ । तिरिक्खगइ-मणुस्सगईसु देव-णिरय-गईसु च एसो अद्धप्पाबहुआलावो वत्तव्वो । एसो उच्चारणाइरियाणमहिप्पाओ ।

§ ३८७. अण्णे पुण्ण वक्खवाणाइरिया एवं भणंति—ओघप्पाबहुआलावो तिरिक्ख-मणुस्सगईसु चेव होदि । णिरयगईए पुण्ण अएणहा । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिस-बंधगद्धा ० ३ । इत्थि०बंधगद्धा संखे०गुणा ६ । हस्स-रदिबंधगद्धा विसे० ११ । एणुंसयबंधगद्धा संखे०गुणा २२ । अरदि-सोगबंधगद्धा विसेसाहिया २३ । देवगईए णिरयगईभंगो । हेट्ठिमबंधगद्धमुवरिमबंधगद्धमि सोहिदे सुद्धसेसं विसेसपमाणं होदि ।

काल तक नपु सकवेदका बन्ध करता है, अतः उसके नपु सकवेदके बन्ध होनेके अन्तिम समयमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार पुरुषवेद, नपु सकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये । परन्तु इतनी विशेषता है कि अस्त्रीके अन्तिम समयमें इच्छित नोकपायका बन्ध कराकर और वहीं उसकी बन्धव्युच्छिति कराके नारकियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रतिपत्त प्रकृतियोंका बन्ध कराकर प्रतिपत्त प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तिम समयमें इच्छित नोकपायकी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये ।

§ ३८६. अब यहाँ प्रतिपत्त प्रकृतियोंके बन्ध कालके दीर्घत्वका ज्ञान करानेके लिये अर्थात् उत्कृष्ट बन्धकाल बतलानेके लिये नोकषायोंके कालके अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा २ है । इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा ४ है । इससे हास्य और रतिका बन्ध काल संख्यातगुणा १६ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल संख्यातगुणा ३२ है । इससे नपुसक वेदका बन्धकाल विशेष अधिक ४२ है । जिनकी अंकसंदृष्टि क्रमशः २, ४, १६, ३२ और ४२ है । यह अल्पबहुत्व तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति और नरकगतिमें कहना चाहिये । यह उच्चारणचर्यका अभिप्राय है ।

§ ३८७. परन्तु अन्य व्याख्यानाचार्य इस प्रकार कथन करते हैं—ओघ अल्पबहुत्वालाप तिर्यचगति और मनुष्यगतिमें ही होता है । परन्तु नरकगतिमें अन्य प्रकारसे होता है । वह इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा ३ है । इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा ६ है । इससे हास्य और रतिका बन्धकाल विशेष अधिक ११ है । इससे नपुसकवेदका बन्धकाल संख्यात-गुणा २२ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल विशेष अधिक २३ है । जिनकी अंकसंदृष्टि क्रमशः ३, ६, ११, २२ और २३ है । तथा देवगतिमें नरकगतिके समान भंग है । यहाँ नीचेके बन्धकालको ऊपरके बन्धकालमेंसे घटा देने पर जो शेष रहता है वह विशेषका प्रमाण है । ये

एदाओ वंधगद्धाओ चहुगदिजहण्णअद्धाच्छेदस्स साहणीओ होंति ।

§ ३२२. सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-अणंताणुवंधिचउक्काणं ओधभंगो । एवरि सम्मत्तं गिरएसुप्पण्णकदकरणिज्जस्स चरिमसमए जहएणं होदि । सम्माभिच्छत्तमुव्वेल्लणाए वत्तव्वं । एवं पढमाए भवण०-वाण० । एवरि भवणवासिय-वाणवेंतरेसु सम्मत्तस्स सम्माभिच्छत्तभंगो । विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिअद्धाच्छेदे भण्ण-माणे मिच्छाइट्ठी अण्णप्पणो गिरएसु उप्पज्जिय पज्जत्तयदो होदूए उव्वसमसम्मत्तं गेण्हमाणे जेण सव्वुकस्सओ द्विदिघादो कदो, पुणो अंतोमुहुत्तं गंतूए अणंताणुवंधि-चउक्कं विसंजोएमाणे जेण उक्कस्सओ द्विदिघादो कदो तस्स सगसगुक्कस्साउअमेत्त-ट्ठिदीओ अंधाट्ठिदिगलणाए गालिय सगाउअचरिमसमए वट्टमाएस्स अंतोकोडाकोडी-सागरोवममेत्तट्ठिदीओ मिच्छत्तस्स जहण्णओ अद्धाच्छेदो । एवं इत्थि-एणुं सयवेदाणं । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-अणंताणुवंधिचउक्काणमोधभंगो । एवरि सम्मत्तस्स भवण०भंगो; उव्वेल्लणाए जहण्णअद्धाच्छेदंगहणादो । वारसकसाय-सत्तणोकसायाणं उव्वसमसम्मत्त-गहणकाले सव्वुकस्सयं द्विदिघादं कादूण पुणो अणंताणुवंधिचउक्कस्स विसंजोययं

बन्धकाल चारों गतियोंके जघन्य कालके साधक होते हैं । अर्थात् इनसे चारों गतियोंका जघन्य स्थितिअद्धाच्छेद निकाला जाता है ।

§ ३२३. नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति होती है । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी उद्भेलनाके समय जघन्यस्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, भवनवासी और व्यन्तरोके कथन करना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तरोके सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति सम्यग्मिध्यात्वके समान होती है । दूखरे नरकसे लेकर छठे नरक तक मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके अद्धा-च्छेदका कथन करनेपर जो मिध्याट्ठिजीव अपने अपने नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ पर्याप्त होकर जिसने उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सबसे उत्कृष्ट स्थितिघात किया पुनः अन्तमुहूर्त्तकाल व्यतीत करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके हेतु जिसने उत्कृष्ट स्थितिघात किया वह अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण स्थितियोंको अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलाता हुआ जब अपनी आयुके अन्तिम समयमें विद्यमान रहता है तब उसके अन्तःकोडाकोड़ी सागरप्रमाण मिध्यात्वका जघन्यस्थितिअद्धाच्छेद होता है । इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्यस्थिति काल कहना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति भवनवासियोंके समान है, क्योंकि यहाँ उद्भेलनाके द्वारा प्रप्त होनेवाले जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदका ग्रहण किया है । उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके समय सर्वोत्कृष्ट स्थितिघात करके पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना



ही है। सात नोकपायोंकी यद्यपि जघन्य स्थिति एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्यके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण ही प्राप्त होती है पर यह स्थिति विग्रहके दूसरे समयमें न प्राप्त होकर अन्तमुर्त कालके पश्चात् प्राप्त होती है। यथा—वेद तीन हैं और ये प्रतिपन्न प्रकृतियों हैं। इनमेंसे किसी एकका बन्ध होते समय शेष दोका बन्ध नहीं होता। अब यदि कोई असंज्ञी जीव स्त्रीवेदके जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर पुरुषवेदका बन्ध करने लगा। पुनः पुरुषवेदके स्थानमें अन्तमुर्तकाल तक नपुंसकवेदका बन्ध करने लगा तो उस नारकीके नपुंसकवेदके बन्ध होनेके अन्तिम समय तक स्त्रीवेदकी उक्त प्रमाण जघन्य स्थितिके अन्तमुर्तकाल प्रमाण अधस्तन निषेकोंका और गलन हो जायगा किन्तु स्थितिमें वृद्धि नहीं होगी, अतः नरकमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्व नपुंसकवेदके बन्धके अन्तिम समयमें प्राप्त हुआ। तथा पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके विषयमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु हास्यादिकी जघन्य स्थिति एक अन्तमुर्तकालके पश्चात् कहनी चाहिये, क्योंकि इनकी प्रतिपन्नभूत एक एक प्रकृतियों होनेसे एक अन्तमुर्तकालके बाद पुनः इनका बन्ध होने लगता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमेंसे जिनका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना हो उनका असंज्ञीके अन्तिम समयमें बन्ध कराकर नरकमें उत्पन्न होने, पर उनकी प्रतिपन्नभूत प्रकृतियोंका अन्तमुर्तकाल तक बन्ध कहना चाहिये और इस अन्तमुर्तकालके अन्तिम समयमें उस उस प्रकृतिका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये। तथा सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति दो समय ओषके समान नरकमें भी बन जाती है, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके कृतकृत्यवेदके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकीके अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें बन जाती है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें ही बनेगी, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षणमातुःप्रगतिको छोड़कर अन्यत्र नहीं होती। सामान्य नारकियोंके जो मिथ्यात्वादि कर्मोंकी जघन्य स्थिति कही है इसी प्रकार पहले नरकके नारकी, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनवासी और व्यन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय न कहकर सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान दो समय कहनी चाहिये, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है। द्वितीयादिक पाँच नरकोंमें न तो असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है और न सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी जघन्य स्थिति ऊपर कहे अनुसार नहीं बन सकती। फिर वह किस प्रकार बनती है आगे इसीका खुलासा करते हैं—कोई एक जीव द्वितीयादिक नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् वह उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहता है। ऐसी हालतमें उसने मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिघात किया और उसे इतनी रखी जो उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके कमसे कम हो सकती है। पुनः उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके साथ उत्कृष्ट स्थितिघात किया। यहाँ वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण कराकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इसलिये नहीं कही, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके स्थितिघात करनेका कोई नियम नहीं है। पुनः वह जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा और इस प्रकार मिथ्यात्वकी अयःस्थितिके एक एक निषेकको गलाता





§ ३६१, मणुसिणि० एवुंसयवेद० जहण्ण० पळिदो० असंखे० भागो । पुरिस० जह० संखेज्जाणि वससाणि । ससपयडीणमोधभंगो । मणु सअपज्ज० पंचि० तिरि०-अपज्जचभंगो ।

समान जानना । भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्यके संख्यातवें भाग कम दो भागप्रमाण होती है । इसका कारण यह है कि ये दोनों भ्रुव्वन्धनी प्रकृतियाँ हैं । अब यदि कोई एकेन्द्रिय जीव उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने पहले समयमें असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थितिका बन्ध किया तो उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण ही प्राप्त होगी । यदि कहा जाय कि इस जीवके उस समय सोलह कषायोंकी जघन्य स्थिति भय और जुगुप्सारूपसे संक्रमित हो जायगी, अतः भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति भी सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिके समान प्राप्त हो जायगी सो भी बात नहीं है, क्योंकि नवीन बन्धका एक आवलिके वाद ही अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता है और यह जीव एकेन्द्रिय पर्यायसे आया है, अतः इसके सोलह कषायोंकी असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थिति उसी समय प्राप्त हुई है, अतः उसका संक्रमण नहीं हो सकता । तथा सात नोकषाय प्रतिपन्न प्रकृतियाँ हैं अतः जो एकेन्द्रिय उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ है उसके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति कहते समय अपनी अपनी प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धकालको और घटा देना चाहिये, क्योंकि प्रतिपन्न प्रकृतियोंका बन्ध होते समय शेष सजातीय प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता और उसके अधःस्थितिगलनारूपसे प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धकाल प्रमाण निषेक गल जाते हैं । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सामान्य तिर्यचोंके समान क्रमसे दो समय, एक समय और दो समय प्रमाण बन जाती है । खुलासा सामान्य नारकियोंके समान जानना । किन्तु योनिमती तिर्यचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता अतः वहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं बनती । अतः जिस प्रकार उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी दो समय जघन्य स्थिति कही उसी प्रकार योनिमतियोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये । पंचेन्द्रियतिर्यच लक्ष्यपर्याप्तकोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति योनिमती तिर्यचोंके समान बन जाती है । किन्तु अनन्तावन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति शेष बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है, क्योंकि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती ।

§ ३६१. मनुष्यनियोंमें नपुंसकवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल संख्यात वर्ष है । तथा शेष प्रकृतियोंका ओषधके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान भंग है ।

विशेषार्थ—मनुष्यनियोंके नपुंसकवेद और पुरुषवेदको छोड़कर सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति ओषधके समान बन जाती है, क्योंकि इनके ज्ञायिक सम्यग्दर्शन और क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है । किन्तु इनके क्षपकश्रेणीमें जिस समय नपुंसकवेदकी द्वितीय स्थितिके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदमें संक्रमण होता है उस समय उसकी पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति पाई जाती है, अतः इनके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ज्ञाननी चाहिये । तथा इनके पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति संख्यात वर्ष प्रमाण होती है, क्योंकि मनुष्यनियोंके पुरुषवेदका क्षय छह नोकषायोंके साथ होता है, इसलिये जब यह जीव पुरुषवेदके साथ छह नोकषायोंके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका संक्रमण क्रोधसंवलनमें

१ ३६२. देवाणां गिरओषं । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति विदियपुढविभंगो । णवरि दोवारसुवसमसेठिं चढाविय उक्कस्स-द्विदिघादं कराविय पुणो ओदरिय दंसणमोहणीयं खइय अप्पिददेवेसु उक्कस्साउड्ढिदी-एसुप्पाइय णिप्पिदमाणदेवचरिमसमए जहण्णअद्धाब्देदो वत्तव्वो । सम्भत्तस्स देवोषं । अणुद्दिसादि जाव सन्वट्टसिद्धि त्ति एवं चेव । णवरि सम्भामिच्छत्तस्स मिच्छत्तभंगो ।

करता है उस समय पुरुषवेदकी द्वितीय स्थितिमे स्थित अन्तिम फालिकी स्थिति सख्यात वर्ष प्रभाण पाई जाती है । लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोके समान वतानेका कारण यह है कि जो एकेन्द्रिय जीव अपने स्थिति बन्धके योग्य स्थितिके साथ लब्धपर्याप्तक मनुष्योमे उत्पन्न होता है उसके यथायोग्य समयमें सब कर्मोंकी लब्धपर्याप्तक तिर्यंचोके समान जघन्य स्थिति बन जाती है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय उद्वेलनाकी अपेक्षा कहनी चाहिये ।

१ ३६२. देवोमे सामान्य नारकियोंके समान जघन्य स्थिति है । ज्योतिषियोंमे दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवयक तक दूसरी पृथिवीके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि जो दो वार उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उच्छ्रुष्ट स्थितिघात करके पुनः उत्तर कर और दर्शनमोहनीयका न्य करके उच्छ्रुष्ट आयुवाले विवक्षित देवोमे उत्पन्न हुआ है उसके वहाँसे निकलनेके अन्तिम समयमे बारह कषाय और नौ नोकषायका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल कहना चाहिये । सम्यक्त्वका सामान्य देवोंके समान जघन्य स्थिति सत्त्वकाल है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक भी इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिध्यात्वका स्थितिसत्त्वकाल मिध्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ—**सामान्य देवोंमे सामान्य नारकियोंके समान जघन्य स्थिति. कहनेका कारण यह है कि अस्सही जीव भी देवोंमे उत्पन्न होते हैं, अतः इस अपेक्षासे देवोंमें नारकियोंके समान मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति घटित हो जायगी । तथा विसयो-जनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी, उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिध्यात्वकी और कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति भी नारकियोंके समान देवोंके बन जाती है । तथा ज्योतिषियोंमे अस्सही जीव मर कर उत्पन्न नहीं होता अतः इनके दूसरी पृथिवीके समान मिध्या-त्वादिककी जघन्य स्थिति घटित करके कहनी चाहिये । विशेषता इतनी है कि इनके अपनी उच्छ्रुष्ट आयुका विचार करके ही कथन करना चाहिये । यद्यपि सौधर्मस्वर्गसे लेकर नौ ग्रैवयक तक मिध्या-त्वादिककी जघन्य स्थिति दूसरी पृथिवीके समान बन जाती है पर सौधर्मादिक स्वर्गोंमें सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है, अतः यहाँ द्वितीय पृथिवीके नारकियोंक जघन्य स्थितिके कथनसे कुछ विशेषता है जो मूलमे बतलाई है, अतः उसके अनुसार इनके जघन्य स्थिति घटित करके जानना चाहिये । किन्तु यहाँ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है अतः यहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति द्वितीय नरकके समान न जानकर सामान्य नारकियोंके समान जाननी चाहिये । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय नहीं बन सकती है और इसलिये इनके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान जाननी चाहिये । तथा शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति सौधर्मादिक स्वर्गके समान जानना ।

§ ३६३. एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोको० जह० सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा पल्लिदो० असंखे० भागेण ऊणा । सम्भत्त-सम्भामिच्छत्त० जह० एया द्विदी दुसमयकाल । एवं सन्वएइदिय-पंचकाय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-तिणिएणलेस्सा०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । णवरि ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-काउलेस्सा-अणाहारि० सम्भत्तमोघं । तिसु लेस्सासु अणंताणुवंधिचउक्कमोघं ।

§ ३६४. विगल्लिदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंढा० ज० पणुवीससागराणं पण्णारससागराणं सदसागराणं सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पल्लिदोवमस्स संखेज्जिदिभागेण ऊणा । सत्तणोकसायाणं ज० सागरोवमस्स चत्तारि

§ ३६३. एकेन्द्रियोमे मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोमेसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोमेसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी एक स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल दो समय है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिध्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कपोतलेश्यावाले और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओषधके समान है । तीन लेश्याओंमें अनन्तानुन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओषधके समान है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियादिक मार्गणाओमे जो मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति वतलाई है वह वहाँ सम्भव जघन्य स्थितिसत्त्वकी अपेक्षासे जानना । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय उद्वेलनाकी अपेक्षा जानना । किन्तु औदारिक मिश्रकायोगी, कार्मणकाययोगी, कपोत लेश्यावाले और अनाहारक इन मार्गणाओमें कृतकृत्य-वेदक सम्यग्दृष्टि भी उत्पन्न हो सकता है और इनके रहते हुए उसका काल भी पूरा हो सकता है, अतः इन मार्गणाओमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति ओषधके समान एक समय भी बन जाती है । तथा कृष्णादि तीन लेश्याओके रहते हुए अनन्तानुन्धी चतुष्ककी विसंयोजना भी होती है अतः इन तीन लेश्याओमे अनन्तानुन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओषधके समान दो समय बन जाती है ।

§ ३६४. विकलेन्द्रियोमे मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोमें पच्चीस सागरके सात भागोमेस पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण, तीन इन्द्रियोमें पचास सागरके सात भागोमेसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण और चौइन्द्रियोमें सौ सागरके सात भागोमेसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । सोलह कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोमे पच्चीस सागरके तेइन्द्रियोमे पचास सागरके और चौइन्द्रियोमे सौ सागरके सात भागोमेसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । तथा भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दो इन्द्रियोमे पच्चीस सागरके, तेइन्द्रियोमें पचास सागरके और चौइन्द्रियोमें सौ सागरके सात भागोमेसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून

सत्तभाग पलिदो० असंखे० भागेण ऊणा । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त० एइंदियभंगो ।  
पंचिदियअपज्ज० पंचि०तिरि०अपज्जत्तभंगो । तसअपज्ज० वेइंदियअपज्जत्तभंगो ।

‡ ३६५. वेउण्विय० सब्बद्वभंगो । एवरि सम्म०-सम्माभि० जोदिसिय०भंगो ।  
वेउण्वियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि ।  
सम्मत्त-सम्माभि० सोहम्मभंगो । सत्तणो० जह० सागरोवमसहस्स चत्तारि  
सत्तभाग पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणा । आहार०-आहारमिस्स० सब्बपयडीयां  
जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि ।

दो भागप्रमाण है । सात नोकषायोका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एकेन्द्रियोंके समान भंग है । पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान भंग है । त्रस अपर्याप्तकोंमें दो इन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव विकलत्रयोंमें उत्पन्न होता है तो वह वहां उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही कमसे कम विकलत्रयोंके योग्य जघन्य स्थितिका वन्ध करने लगता है, अतः विकलत्रयके मिथ्यात्व, सोलह कषाय तथा भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति मूलमें बतलायें अनुसार ही प्राप्त होगी । किन्तु सात नोकषाय प्रतिपन्नभूत प्रकृतियां हैं, अतः विकलत्रयोंके इनकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके समान भी बन जाती है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान दो समय जाननी चाहिये । पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान तथा त्रस अपर्याप्तकोंके द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान जघन्य स्थिति जाननेकी जो मूलमें सूचना की सो उसका कारण स्पष्ट ही है ।

‡ ३६५. वैक्रियिककाययोगियोंमें सर्वाथिसिद्धिके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ज्योतिषियोंके समान है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सौधर्मके समान है । तथा सात नोकषायोका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है ।

**विशेषार्थ**—देव वैक्रियिककाययोगी भी होते है अतः वैक्रियिककाययोगमें सर्वाथिसिद्धिके समान सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति बन जाती है । किन्तु वैक्रियिककाययोगमें कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता, अतः इसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति ज्योतिषियोंके समान दो समय जानना । ऐसा नियम है कि शरीर ग्रहण करनेके पश्चात् संज्ञी जीव पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिका ही वन्ध करता है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर कही है । किन्तु सात नोकषाय सप्रतिपन्नभूत प्रकृतियां हैं । इनका वन्ध एक साथ नहीं होता, अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगके रहते हुए भी इनकी जघन्य स्थिति असंज्ञीके योग्य प्राप्त हो जाती है जो मूलमें बतलाई ही है । तथा वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व भी पाया जाता है, अतः इसमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति

§ ३६६. इत्थिवेदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-इत्थिवेदाणमोघं ।  
णवुंस० ज० पलिदो० असंखे०भागो । सत्तणोक०-चत्तारिसंजल० संखेज्जाणि वास-  
सहस्साणि । एवं णवुंस० । णवरि इत्थि० जह० पलिदो० असंखे०भागो । पुरिस०  
इत्थि-णवुंसयवेद० ज० पलिदो० असंखे०भागो । पुरिस-चत्तारिक० जह० संखेज्जाणि  
वस्साणि ।सेसं मूलोघं । अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्टक०-इत्थि-णवुंस०  
जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि । सत्तणोक०-चत्तारिसंज० ओघं ।

एक समय और उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है जो सौधर्म स्वर्गमें भी सम्भव है । छठे गुणस्थानमें सोलह कपाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होती है, अतः आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें इनकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । तथा आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षणिका प्रारम्भ नहीं होता है और जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षणिका प्रारम्भ किया है उसके उक्त दोनों योग नहीं होते, अतः उक्त दोनों योगोंमें तीन दर्शनमोहनीयकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण ही होती है ।

§ ३६६. स्त्रीवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है । नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल संख्यात हजार वर्ष है । इसी प्रकार नपुंसकवेदमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेदमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेद और चार कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल संख्यात वर्ष है । तथा शेष मूलोघके समान है । अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कपाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है । तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और स्त्रीवेदकी क्षणिका सम्भव है, अतः स्त्रीवेदीके इनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । तथा स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए नपुंसकवेदकी क्षणिका भी हो जाती है पर जिस समय ऐसे जीवके नपुंसकवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेद रूपसे संक्रमण होता है उस समय उसकी जघन्य निषेक स्थिति पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः स्त्रीवेदीके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है । तथा जिस समय स्त्रीवेदका प्रथम स्थितिमें विद्यमान अन्तिम निषेक स्वोदयसे क्षयको प्राप्त होता है उस समय सात नोकषाय और चार संज्वलनका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः स्त्रीवेदीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है । नपुंसकवेदके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति जानना । किन्तु क्षक नपुंसकवेदी जीव अपने उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण करता है और उस समय अन्तिम फालिका जघन्य स्थिति पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः नपुंसकवेदीके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । तथा पुरुषवेदीके जब स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके

§ ३९.७. क्रोध० चत्वारिक० जह० चत्वारि वस्साणि । सेसं मूलोर्धं । एवं माण० । णवरि तिण्ण० संज० जह० वे वस्साणि । सेसमोर्धं । एवं माया० । एवरि दो संज० जह० वस्सं । सेसमोर्धं । अकसा० सन्वपयडीणं ज० अंतोकोडाकोडी । एवं जहाक्खाद० ।

अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका सर्वसंक्रमण द्वारा पुरुषवेदरूपसे संक्रमण होता है उस समय उन अन्तिम फालियोंकी जघन्य निपेकस्थिति परत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः पुरुषवेदीके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है । पुरुषवेदके अन्तिम समयमें चार संज्वलनोंकी स्थिति संख्यात वर्षप्रमाण पाई जाती है, अतः पुरुषवेदीके चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । तथा पुरुषवेदीके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान प्राप्त होती है, अतः उनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । तथा जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्वसे उपशमश्रेणी पर चढ़ा है उसीके अपगतवेदके रहते हुए मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, मध्यकी आठ कषाय स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका सत्त्व पाया जाता है । किन्तु उपशमश्रेणीमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होती है, अतः अपगतवेदीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण कही है । तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनका सत्त्व क्षपक अपगतवेदीके भी होता है, अतः अपगतवेदीके इनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । अपगतवेदीके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व तो हाता ही नहीं, अतः इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति नहीं कही । हां जिन आत्मार्योंके मतसे अनन्तानुबन्धीकी विना विसंयोजना किये भी जीव उपशमश्रेणी पर चढ़ सकता है उनके मतानुसार अपगतवेदीके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होगा जिसका यहाँ उल्लेख न करनेका कारण यह है कि कषायप्राभृतके मतानुसार ऐसी जीव उपशमश्रेणीपर आरोहण नहीं करता ।

§ ३९.७. क्रोधमें चार कषायोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल चार वर्ष है । शेष मूलोघके समान है । इसी प्रकार मानमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसके तीन संज्वलनका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल दो वर्ष है । तथा शेष ओघके समान है । इसी प्रकार मायामें जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इसके दो संज्वलनोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल एक वर्ष है । तथा शेष ओघके समान है । अकषायी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—क्रोधकषायीके क्रोध कषायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति चार वर्ष प्रमाण होती है । मानकषायीके मान कषायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें मानादि तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति दो वर्षप्रमाण होती है । तथा मायाकषायीके माया कषायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें माया आदि दो संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति एक वर्ष प्रमाण होती है, अतः इन क्रोधादि कषायवाले जीवोंके उक्त कषायोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । इनके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान जानना, क्योंकि इनमेंसे किसी भी कषायके उदयके रहते हुए दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा सम्भव है, अतः इन कषायवालोंके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान बन जाती है । उपशान्त-कषाय गुणस्थानमें अकषायी जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़ कर शेष सब प्रकृतियोंका सत्त्व सम्भव है और उपशमश्रेणीमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे

§ ३६८. विहंग० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० ज० अंतोकोडाकोडीसागरो-  
वमाणि । सम्मत्त-सम्मामि० एडुंदियभंगो । मणपज्ज० ओघं । एवरि इत्थि०-  
एणु'स० ज० पल्लिदो० असंखे० भागो ।

§ ३६९. सामाइय-छेदो० ओघं । एवरि लोभसंज० ज० अंतोमुहुचं । परिहार०  
सम्मत्त०-मिच्छत्त०-सम्मामि०-अणंताणु० ओघं । सेसाणं सोहम्मभगो । एवं तेज-पम्म-  
संजदासंजदाणं । सुहुमसंप० लोभ० ज० एया द्विदी एयसमइया । सेसाणमकसाइभंगो ।  
असंजद० तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्तस्सोघभंगो ।

कम नहीं होती, अतः अकापायी जीवोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण कही है । तथा अकपायी जीवोंके समान यथाख्यातसंयत जीवोंके भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति घटित कर लेनी चाहिये ।

§ ३६८. विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है । मनःपर्ययज्ञानमें ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—विभंगज्ञान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके पर्याप्त अवस्थामें ही होता है और पर्याप्त अव-  
स्थामें संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तःकोडाकोडी सागरसे कम जघन्य स्थिति सत्त्व नहीं होता, अतः विभंगज्ञानियोंके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण कही है । तथा विभंगज्ञानी भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना करते हैं, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके समान दो समय कही है । यद्यपि मनः-  
पर्ययज्ञानके रहते हुए द्वायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति और नृपकक्षेत्री पर आरोहण बन सकता है, अतः इसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको छोड़ कर शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान बन जाती है । किन्तु स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवके मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः जिस प्रकार पुरुषवेदी जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति पल्ल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार मनःपर्यायज्ञानीके भी जानना ।

§ ३६९. सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंखलनका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तमु'हूर्त है । परिहारविशुद्धिसंयतके सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा शेषका सौधर्मके समान है । इसी प्रकार पीत, पद्म लेश्यावाले और संयतासंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंके लोभकी एक स्थितिका जघन्य काल एक समय है । तथा शेषका अकपायी जीवोंके समान भंग है । असंयतोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । पर इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका ओघके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयमके रहते हुए भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षणता होती है, अतः इनके संखलन लोभको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । किन्तु ये दोनों संयम नौवें गुणस्थान तक ही पाये जाते हैं और क्षणिक नौवें गुणस्थानके अन्तमें लोभकी जघन्य स्थिति अन्तमु'हूर्तप्रमाण होती है, अतः इन दोनों संयमोंमें लोभकी जघन्य स्थिति अन्तमु'हूर्त कही है ।

§ ४००. खड्य० एकावीसपयडीणमोघभंगो । वेदयसम्मा० परिहार०भंगो ।  
उवसम० अंकसाइभंगो । सम्मामिच्छत्त० सोलसक० णवणोक० ज० अंतोकोडाकोडि-  
सागरोवयाण । सम्मत्त०-सम्भामि० जह० सागरोवमपुधरां । सासण० अकसाइभंगो ।

परिहारविशुद्धि संयमके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षपणा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना सम्भव है, अतः इसके इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओषके समान कही। तथा यह संयम सातवें गुणस्थान तक ही होता है. और सातवें गुणस्थानमें शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोड़ी सागर प्रमाण पाई जाती है, अतः इसके शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति सौधर्म कल्पके समान कही। यहां सौधर्म कल्पके समान जघन्य स्थिति कहनेसे यह प्रयोजन है कि जिस प्रकार सौधर्म स्वर्गमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त करनेके लिये विशेषताका कथन किया है उसी प्रकार यहां भी जानना। तथा पीत और पद्म लेख्यावाले तथा संयतासंयतोके परिहारविशुद्धि संयतोंके समान जघन्य स्थितिका कथन करना चाहिये। क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्म लोभकी जघन्य स्थिति एक समय रह जाती है जो उस समय उदयरूप होती है, अतः इस संयमवालेके लोभकी जघन्य स्थिति एक समय कही। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़ कर शेष प्रकृतियोंका सत्त्व सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे पाया जाता है, अतः जिस प्रकार अकषायी जीवोंके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति वतला आये उसी प्रकार सूक्ष्मसंपराय संयमवाले जीवोंके जानना। असंयतोंमें एकेन्द्रिय तिर्यच मुख्य है और उन्हींके मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी असंयतोंकी अपेक्षा जघन्य स्थिति सम्भव है, अतः असंयतोंके मिथ्यात्वके बिना शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति सामान्य तिर्यचोंके समान कही। किन्तु असंयत मनुष्य भी होते हैं और मनुष्य असंयत दर्शनमोहनीयकी क्षपणा भी करते हैं अतः असंयतोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति ओषके समान एक समय कही।

§ ४००. चाधिकसम्यग्दृष्टियोंके इक्कीस प्रकृतियोंका ओषके समान भंग है। वेदक सम्यग्दृष्टियोंके परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान भंग है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंके अकषायी जीवोंके समान भंग है। सम्यग्मिथ्यात्वमें सोलह कषाय, नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तः कोडाकोड़ी सागर है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सागर पृथक्त्व है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अकषायी जीवोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—चाधिकसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतियां ही पाई जाती हैं और क्षपक श्रेणीका अधिकारी यही है अतः इसके २१ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओषके समान बन जाती है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें विशुद्धिकी अपेक्षा परिहारविशुद्धिसंयत मुख्य है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान कही। इसी प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अकषायी जीव मुख्य हैं, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अकषायी जीवोंके समान कही। किन्तु इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति ओषके समान जानना; क्योंकि यहां पर विसंयोजना संभव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तः कोडाकोड़ी सागर प्रमाण ही होती है। किन्तु जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व सागरपृथक्त्व है वह मिथ्यादृष्टि जीव भी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है, अतः सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इन दोनोकी जघन्य स्थिति पृथक्त्व सागर कही। तथा जो अकषायी जीव आकर सासादनसम्यग्दृष्टि होता है उसके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोड़ी



एचमद्वाब्देदो समत्तो ।

§ ४०१, सव्वट्ठिदिविहत्ति० णोसव्वट्ठिदिविहत्ति० । सव्वाओ ट्ठिदीओ सव्वट्ठिदिविहत्ती । तदूणं णोसव्वट्ठिदिविहत्ती । एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ४०२, उक्कस्स०विहत्ति-अणुक्कस्स०विहत्तिअणुगमेण दुविहो० । ओघे० सव्वुक्कस्सट्ठिदी उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । तदूणमणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । उक्कस्सट्ठिदिविहत्ति-सव्वट्ठिदिविहत्तीणं को भेदो ? ण, सव्वणिसेगट्ठिदीणं समुदाओ सव्वट्ठिदिविहत्ती णाम । उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती पुण उक्कस्सकालुवलक्खिओ चरिमणिसेओ एको चव । तेण दोण्हमत्थि भेओ । उक्कस्सट्ठिदिणिसेयवदिरित्तसव्वणिसेया अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती णाम । सव्वणिसेयट्ठिदीसु अण्णदरणिसेगे अवणिदे सेसट्ठिदीओ णोसव्वट्ठिदिविहत्ती णाम । तेण ए पुणरुत्तदोसो त्ति सिद्धं । एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ४०३, जहण्ण-अजहण्णट्ठिदी० दुवि० । ओघे० सव्वजहण्णट्ठिदी जहण्णट्ठिदिविहत्ती तदुवरि अजहण्णट्ठिदिविहत्ती । उक्कस्सअद्वाब्दे उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती किण्ण

सागर प्रमाण होते हुए भी कमसे कम पाई जाती है, अतः सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अकपायी जीवोंके सामान कही ।

इस प्रकार अद्वाब्देद समाप्त हुआ ।

§ ४०१ सर्वस्थितिविभक्ति और नोसर्वस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब स्थितियां सर्वस्थितिविभक्ति हैं और सब स्थितियोंसे न्यून स्थितियां नोसर्वस्थितिविभक्ति हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिये ।

§ ४०२ उत्कृष्टस्थितिविभक्ति और अनुत्कृष्टस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सबसे उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है और इससे न्यून अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति, और सर्वस्थितिविभक्तिमें क्या भेद है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सब निपेकोंकी स्थितियोंके समुदायका नाम सर्वस्थितिविभक्ति है परन्तु उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिउत्कृष्ट कालसे उपलक्षित एक अन्तिम निपेक कहलाता है, अतः इन दोनोंमें भेद है ।

उत्कृष्ट स्थितिवाले निपेकोंके सिवा शेष सब निपेक अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहलाते हैं । तथा सब स्थितिवाले निपेकोंमें से किसी एक निपेकके निकाल देने पर शेष स्थितियां नोसर्वस्थितिविभक्ति कहलाती हैं । इस लिये इनके कथनमें पुनरुक्त दोष नहीं है यह सिद्ध होता है । इसी प्रकार अनाहार मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४०३ जघन्य स्थितिविभक्ति और अजघन्य स्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सबसे जघन्य स्थितिको जघन्य स्थितिविभक्ति कहते हैं और इसके ऊपर अजघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

अद्वाच्छेदो पुण उक्कस्सकालुवलक्खियएगणिसेगाविणाभाविसव्वणिसेयकलाओ तेण  
[ ण ] पविसदि त्ति वेत्तव्वं । एवं जहण्णद्विदि-जहण्णद्विदिअद्वाच्छेदाणं पि भेदो परू-  
वेदव्वो । एवं गेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ४०४. सादि-अणादि-धुव-अद्बु वाणुगमेण दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण  
य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४ ।  
सादि अद्बुवं । अजह० किं सादि० ४ ? अणादिओ धुवो अद्बु वो वा । सम्मत्त-  
पविस्सदि ? ए, उक्कस्सद्विदिविहृती एणाम उक्कस्सकालुवलक्खियएगणिसेगो उक्कस्स-

शंका—उत्कृष्ट अद्वाच्छेदमे उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका अन्तर्भाव क्यो नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट कालसे उपलक्षित एक निषेकको उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति कहते हैं परन्तु उत्कृष्ट अद्वाच्छेद तो उत्कृष्ट कालसे उपलक्षित एक निषेकके अविनाभावी समस्त निषेकोंके समुदायका नाम है, इसलिये उत्कृष्ट अद्वाच्छेदमे उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका अन्तर्भाव नहीं होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार जघन्य स्थिति और जघन्य स्थिति अद्वाच्छेदके भेदका भी कथन करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गात्प्राप्तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—किसी एक मनुष्यके चार बेटे हैं । उनमेंसे सबसे बड़ा बेटा ज्येष्ठ या उत्कृष्ट, शेष अनुत्कृष्ट, सबसे छोटा बेटा लघु या जघन्य और शेष अजघन्य बेटे कहे जायेंगे । यही बात स्थितिके विषयमें भी जाननी चाहिये । अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिसे सबसे अन्तिम निषेककी स्थिति ली जायगी । अनुत्कृष्ट स्थितिसे अन्तिम निषेककी स्थितिको छोड़कर शेष सब निषेकोंकी स्थितियां ली जायगी । जघन्य स्थितिसे सबसे कम स्थिति ली जाती है तथा अजघन्य स्थितिसे सबसे कम स्थितिको छोड़ कर शेष सब स्थितियां ली जाती हैं । इस प्रकार इस कथनसे यह भी जाना जाता है कि इन चारों प्रकारके स्थिति भेदोमे अवयवकी मुख्यता है समुदायकी नहीं । अतः सर्व स्थितिमें समुदायरूपसे सब स्थितियोंका ग्रहण हो जाता है और नोसर्वस्थितिमे अविचक्षित किसी एक या एकसे अधिक निषेकोंकी स्थितियोंको छोड़ कर शेष स्थितियोंका ग्रहण हो जाता है । यहां यह शंका की जा सकती है कि यद्यपि उत्कृष्ट स्थिति अवयव प्रधान है अतः उससे सर्वस्थिति भिन्न सिद्ध हो जाती है पर अनुत्कृष्ट और अजघन्य स्थितिसे नोसर्व स्थिति कैसे भिन्न सिद्ध हो सकती है, क्योंकि इन तीनोंमें उन स्थितियों को ही ग्रहण किया गया है । पर ठीक तरहसे विचार कृते पर यह शंका निर्मूल हो जाती है, क्योंकि जिस प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिमे केवल उत्कृष्ट स्थितिका और अजघन्य स्थितिमे केवल जघन्य स्थितिका अभाव इष्ट है वह बात नोसर्वस्थितिकी नहीं है किन्तु इसमे अविचक्षित किसी भी निषेककी स्थितिका अभाव इष्ट है । उदाहरणके लिये ऊपरके मनुष्यसे कहा जाय कि तुम अपने कुछ बेटोंको बुलाओ तो वह किसी भी बेटेको बुलानेसे छोड़ सकता है । यही बात नोसर्व स्थितिके विषयमे जानना चाहिये । इस प्रकार ओघ और आदेशकी अपेक्षा जहां जो स्थिति सम्भव हो, जानकर उसका कथन करना चाहिये ।

§ ४०४ सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोक-  
षायोंकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थिति विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव  
है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य स्थिति विभक्ति क्या सादि है, क्या

सम्मामि० उक्त० अणुक० जह० अजह० किं सादि०४ ? सादिओ अद्दुवो । [ अणु-  
ताणुबंधिकउक्त० उक्त० अणुक० जह० किं सादि०४ ? सादि अद्दुवं ] अज०  
किं सादि०४ ? सादिओ अणादिओ वा धुवो अद्दुवो वा । एवमचक्खु० भवसि० ।  
णवरि भवसिद्धिएसु धुवं यत्थि । सेसाणं भग्गणाणं उक्त० अणुक० जह० अजह०  
किं सादि०४ ? सादिया अद्दुवो वा ।

अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या  
अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या  
अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या  
ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले  
और भव्योंके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि भव्योंके ध्रुवभंग नहीं होता  
है । शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है,  
क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति कादाचित्क है

तथा जघन्य स्थिति अपने अपने क्षय कालके अन्तिम समयमें ही प्राप्त होती है, अतः ये तीनों  
स्थितियों सादि और अध्रुव हैं । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके विषयमें विशेषता है  
जिसका खुलासा निम्न प्रकार है—यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि जघन्य स्थितिको  
छोड़कर शेष सब स्थितिकल्प अजघन्य कहे जाते हैं, क्योंकि जघन्यके प्रतिषेध मुखसे  
अजघन्यमें जघन्यको छोड़कर शेष सबका ग्रहण हो जाता है । प्रकृतियोंके विषयमें दूसरी यह  
बात ज्ञातव्य है कि मोहनीयकी अद्दुईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंका  
क्षय होनेके पहले तक निरन्तर सत्त्व पाया जाता है और क्षय होनेके बाद पुनः इनका बन्ध नहीं  
होता । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अनादि मिथ्यादृष्टिके तो निरन्तर सत्त्व है किन्तु जिसने सम्य-  
ग्दर्शनको प्राप्त कर लिया है उसके इसकी विसंयोजना भी हो जाती है और ऐसा जीव जब  
मिथ्यात्वमें आता है तो पुनः उनका बन्ध होने लगता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व  
सादि ही हैं यह स्पष्ट ही है । इन सब विशेषताओंको ध्यानमें रखकर जब इन प्रकृतियोंकी  
अजघन्य स्थितिके सादित्व आदिका विचार करते हैं तो मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ  
नोकपायोंकी अजघन्य स्थिति अनादि ध्रुव और अध्रुव प्राप्त होती है, क्योंकि अनादि कालसे  
इनकी अजघन्य स्थिति चली आरही है इसलिये अनादि है । तथा भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव और  
अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थिति सादि, अनादि, ध्रुव  
और अध्रुव चारो प्रकारकी प्राप्त होती है, क्योंकि विसंयोजनासे जघन्य स्थितिके प्राप्त होनेके  
पहले तक वह अनादि है । विसंयोजना के पश्चात् पुनः बन्ध होनेपर सादि है तथा अभव्योंकी  
अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियों  
मूलतः ही सादि हैं अतः इनकी अजघन्य स्थिति भी और स्थितियोंके समान सादि और अध्रुव  
है । अचक्षुदर्शनमार्गणा छद्मस्थ अवस्थाके रहने तक और भव्य मार्गणा संसार अवस्थाके रहने  
तक निरन्तर पाई जाती है, अतः इसमें उक्त ओषधरूपणा बन् जाती है । किन्तु भव्योंके ध्रुव

एवं अद्द वाणुगमो समत्तो ।

❀ एयजीवेण सामित्तं ।

§ ४०५. सामित्ताणुगमेण सामित्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयंदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण अदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्ससामित्तं भणामि त्ति पइज्जासुत्तमेदं सुगमं ।

\* मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहत्ती कस्स ? उक्कस्सद्विदिं वंधमाणस्स ।

४०६. एदस्स जइवसहाइरियमुहकमलविण्णियगयस्स सामित्तसुत्तस्स अत्थपरु-  
वणं कस्सामो । तं जहा, मिच्छत्तस्से त्ति णिहेसो सेसपयडिपडिसेहफलो । उक्कस्स-  
द्विदिविहत्तिण्णिहेसो सेसद्विदिविहत्तिपडिसेहफलो । कस्से त्ति पुब्बा सयस्स क्कचारत्त-  
पडिसेहफला । उक्कस्सद्विदिं वंधमाणस्से त्ति वयणं अणुक्कस्सद्विदिवंधेण सह उक्कस्स-  
द्विदिसंतपडिसेहफलं । अणुक्कस्सद्विदीए बज्जभाणाए वि उक्कस्सद्विदिण्णियेयाण-  
मथद्विदिगलणा एत्थि त्ति उक्कस्सद्विदिविहत्ती किण्ण होदि ? ण, चरिमण्णियेयस्स  
उक्कस्सकालुवल्लिवियस्स उक्कस्सद्विदिसण्णिदस्स अथद्विदिगलणाए एगद्विदीए

विकल्प नहीं बनता । इन दो मार्गणाओके अतिरिक्त शेष जितनी मार्गणाए हैं उनमें चारों प्रकारकी स्थितियां सादि और अध्रुव हैं, क्योंकि एक तो मार्गणाए परिवर्तनशील हैं और दूसरे सब मार्गणाओमें यथायोग्य ओघ उत्कृष्ट स्थिति आदि न प्राप्त होकर आदेश उत्कृष्ट स्थिति आदि प्राप्त होती हैं ।

इस प्रकार अध्रुवाणुगम समाप्त हुआ ।

❀ अब एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वाणुगमको कहते हैं ।

§ ४०५. स्वामित्वाणुगमकी अपेक्षा स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्वको कहते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र सरल है ।

\* मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्टस्थितिकी बाँधनेवाले जीवके होती है ।

§ ४०६. अब यतिवृत्तपम आचार्यके मुखसे निकले हुए इस स्वामित्वसूत्रके अर्थका कथन करते हैं जो इस प्रकार है—सूत्रमें मिथ्यात्व पदके देनेका फल शेष प्रकृतियोंका निषेध करना है । उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति पद देनेका फल शेष स्थिति विभक्तियोंका निषेध करना है । किसके होती है ? इस प्रकार पृच्छाका आशय स्वकर्तृत्वका प्रतिषेध करना है । उत्कृष्ट स्थितिकी बाँधनेवाले जीवके इस वचनके देनेका फल अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके साथ उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका प्रतिषेध करना है ।

शका-अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते हुए भी उत्कृष्ट स्थितिके निषेधोंका अधःस्थितिगलन नहीं होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति क्यों नहीं होती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि जिसकी उत्कृष्ट स्थिति यह संज्ञा है ऐसे उत्कृष्ट कालसे उपलक्षित

गलिदाए वि उक्कस्सट्टिदिविहत्तिविणासादो । अहवा उक्कस्सट्टिद्विअद्दाब्बेदस्स एदं सामिचं, सो च कालणिसेगपहाणो, तेण अणुक्कस्सट्टिदिं बंधमाणस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती ण होदि किं तु उक्कस्ससंकिलेसेण उक्कस्सट्टिदिं बंधमाणस्स चेव त्ति ।

\* एवं सोलसकसायाणं ।

§ ४०७. जहा मिच्छत्तस्स उक्कस्ससामिचं परुविदं तथा सोलसकसायाणं पि परुवेदव्वं; मिच्छादिट्टिमि तिव्वसंकिलेसम्मि उक्कस्सट्टिदिं बंधमाणम्मि चेव एदे-सिमुक्कस्सट्टिदिविहत्तीए संभवादो ।

अन्तिम निपेक्षकी अधःस्थिति गलनाके द्वारा एक स्थितिके गलित होजानेपर भी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिका विनाश हो जाता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति नहीं होती है ऐसा समझना चाहिये । अथवा यह उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिका स्वामित्व न होकर उत्कृष्ट स्थितिअद्दाच्छेदका स्वामित्व है और वह कालनिपेक्ष प्रधान होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति नहीं होती है किन्तु उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके ही उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है ।

\* इसी प्रकार सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये ।

§ ४०७. जिस प्रकार मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है उसी प्रकार सोलह कपायोंका भी कहना चाहिये, क्योंकि तीव्र संक्लेशवाले और उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके ही इन सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति संभव है ।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें यह बतलाया है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसपर शंकाकारका कहना है कि जो प्रथमादि समयोंमें उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर द्वितीयादि समयोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके उत्कृष्ट स्थितिके निपेक्षका अधःस्थिति गलन नहीं होता अतः अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय भी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने दो प्रकारसे समाधान किया है । पहले समाधानका तात्पर्य यह है कि जिस अन्तिम निपेक्षकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति पड़ी है उस निपेक्षकी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञा है किन्तु द्वितीयादि समयोंमें उस निपेक्षकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति न रहकर एक समय, दो समय आदि रूपसे कम हो जाती है, अतः अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती किन्तु जिस समय उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होता है उसी समय उत्कृष्ट स्थिति होती है । इस समाधानपर यह शंका होती है कि जब स्थिति निपेक्षप्रधान होती है और द्वितीयादि समयोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंज्ञावाले निपेक्षका गलन ही नहीं हुआ तब अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति क्यों न मानी जाय ? इस शंकाका विचार करके वीरसेन स्वामी ने दूसरा समाधान किया है । उसका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थिति कालकी प्रधानतासे कही गई है निपेक्षोंकी प्रधानतासे नहीं, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय उत्कृष्ट काल सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरमेसे एक, दो आदि समय कम हो जाते हैं । इसी प्रकार सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये ।

\* सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणसुक्कस्सद्विदिविहती कस्स ?

§ ४०८. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

\* मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदि वंधिदूण अंतोसुहुत्तद्धं पडिभग्गो जो द्विदिघादमकादूण सव्वलहुसम्मत्तं पडिवण्णो तस्स पढमसमयवेदयसम्मादिद्विस्स ।

§ ४०९. जदि वि एत्थ अट्ठावीससंतकम्मियग्गहणं ए कदं तो वि अट्ठावीससंतकम्मिओ त्ति णव्वदे; वेदगसम्मत्तग्गहणणहाणुव्वत्तीदो । सो वि मिच्छादिद्वि त्ति एव्वदे; अण्णगुणट्ठाणम्मि मिच्छत्तस्स वंधाभावादो । सो तिक्कसंक्किलेसो त्ति उक्कस्सद्विद्विद्वंधण्णहाणुव्वत्तीदो एव्वदे । एदमहादो चव ए सुत्तो जग्गतो त्ति णव्वदे, सुत्तम्मि तव्वंधासंभवादो । उक्कस्सद्विदि वंधतो पडिहग्गपढमादिसमएसु सम्मत्तं ण गेण्हदि त्ति जाणावण्हमंतोमुहुत्तद्धं पडिभग्गो त्ति भण्णिदं । पडिभग्गो उक्कस्सद्विद्विद्वंधुक्कस्ससंक्किलेसेहि पडिणियत्तो होदूण विसोहीए पडिदो त्ति भण्णिदं होदि । द्विदिघादं कादूण वि वेदगसम्मत्तं के वि जीवा पडिवज्जंति तप्पडिसेहट्ठं द्विदिघादमकाउणे त्ति

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४०८. यह पृच्छासुत्र सुगम है ।

⊗ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर जिसे उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे निवृत्त हुए अन्तर्मुहूर्त हो गया है और जो स्थितिका घात न करके अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उस वेदक सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४०९. यद्यपि सूत्रमें 'अट्ठावीससंतकम्मिय' पदका ग्रहण नहीं किया है तो भी ऐसा जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है यह जाना जाता है, क्योंकि अन्यथा वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण नहीं वन सकता है । और वह भी मिथ्यादृष्टि ही होता है यह जाना जाता है, क्योंकि अन्य गुणस्थानमें मिथ्यात्वका बन्ध नहीं हो सकता है । तथा वह मिथ्यादृष्टि भी तीव्रसंक्लेशवाला होता है यह जाना जाता है, अन्यथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता है । इसीसे वह जीव सोता हुआ नहीं है किन्तु जागता हुआ है यह बात भी जानी जाती है, क्योंकि सोते हुएके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट बन्ध नहीं हो सकता । उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे च्युत होकर प्रथमादि समयोंमें सम्यक्त्वको ग्रहण नहीं करता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये 'जिसे उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे निवृत्त हुए अन्तर्मुहूर्त हो गया है' ऐसा कहा है । प्रतिभग्न शब्दका अर्थ उत्कृष्ट स्थिति बन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे प्रतिनिवृत्त होकर विशुद्धिको प्राप्त हुआ होता है । कितने ही जीव स्थितिका घात करके भी वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं अतः इसके प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें स्थितिका घात न करके यह कहा है । बहुतसे जीव ऐसे हैं जो स्थितिघात

भण्डं । द्विदिघादमकुणभाया वि दीहकालेण सम्मत्तं पडिवज्जंतो अस्थि तप्पडिसेहट्टं सच्चलहुग्गहणं कदं । विदियादिसमएसु अधद्विदिगलणाए गलिदेसु उक्कस्सद्विदिसंतं ण होदि त्ति पढमसमए वेदगसम्मादिद्विस्से त्ति परूविदं । मिच्छाइद्विणा अट्टावीससंत-कम्मिएण तिच्चसक्किलेसेण सागार-जागारउवज्जुत्तेण वद्धमिच्छत्तुक्कस्सद्विदिसंतकम्मणे तत्तो परिवदिय अंतोमुहुत्तद्धं तप्पाओग्गविसोहीए अवद्विदेण अकदद्विदिघादेण सच्च-लहुएण कालेण वेदगसम्मत्तग्गहणपढमसमए मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए सम्मत्तसम्माभिच्छ-त्तेसु संकामिदाए सम्मत्तसम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सद्विदिविहती जायदि त्ति भण्डं होदि । अवंधपयडीसु वंधपयटी कथं संकमइ ? ए एस दोसो; वंधपयटीणं चेव वंधे थक्के पडिग्गहत्तं फिट्ठिदि णाबंधपयटीणं, अण्णहा अवंधपयटीए सम्मत्तादीणमभावो हज्ज । ए च एवं मोहणीयस्स अट्टावीसपयडिसंतुवएसेण सह विरोहादो ।

नहीं करके दीर्घकालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होते हैं, अतः इसका प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें सर्वैलधु पदका ग्रहण किया है । सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर दूसरे आदि समयोंमें अधःस्थिति गलनाके द्वारा स्थितिके गलित हो जाने पर उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व नहीं रहता है, अतः सूत्रमें वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें ऐसा कहा है । जो मिथ्यादृष्टि जीव अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला है, जो जाग्रत रहते हुए साकार उपयोगसे उपयुक्त है, जिसने तीव्र संक्लेशसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर उसकी सत्ता प्राप्त करली है वह जब तीव्र संक्लेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर अन्तर्मुख हूत काल तक सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिके साथ अवस्थित रहता हुआ स्थितिघात न करके सबसे लघु कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण कर देता है तब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिन्नि होती है यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

**शुंका-वन्धप्रकृति अंघ्नध प्रकृतियोंमें संक्रमणको कैसे प्राप्त होती है ?**

**समाधान-**यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वन्ध प्रकृतियोंके ही वन्धके रुक जाने पर उनमें प्रतिग्रहशक्ति नष्ट हो जाती है अवन्ध प्रकृतियोंकी नहीं, अन्यथा सम्यक्त्वादिक अवन्ध प्रकृतियों का अभाव हो जायगा । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर उक्त कथनका मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंके सत्त्वके प्रतिपादक उपदेशके साथ विरोध आता है । अतः जिन प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता किन्तु जो संक्रमण द्वारा ही अपने सत्त्वको प्राप्त होती हैं उनमें वन्ध प्रकृतिका संक्रमण हो सकता है इसमें कोई दोष नहीं है ।

**विशेषार्थ-**ऐसा नियम है कि जिस समय किसी प्रकृतिका वन्ध होता है उसी समय अन्य सजातीय प्रकृतिका उस वंधनेवाली प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता है, क्योंकि तभी वह वंधने वाली प्रकृति प्रतिग्रह या पतद्ग्रहरूप होती है । और इसीका नाम परप्रकृति संक्रमण है । यह संक्रमण मूल प्रकृतियोंमें और चारों आयुओंमें परस्पर नहीं होता । तथा इस प्रकारका संक्रमण दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें भी नहीं होता । तथा इस प्रकारका संक्रमण होते समय संक्रमित होनेवाली प्रकृतिका स्थितिघात या अनुभागघात नहीं होता और न स्थिति तथा अनुभागमें वृद्धि ही होती है, क्योंकि स्थितिघात और अनुभागघात-

\* एवणोकसायाणमुक्कस्सट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४१०. सुगममेदं ।

\* कसायाणमुक्कस्सट्टिदि' वंधिदूण आवलियादीदस्स ।

§ ४११. किमट्ठमावलियादीदस्सुक्कस्ससामितं दिज्जदि ? एण; अचलावलियमेत्त-  
कालं वद्धसोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदीए षोकसाएसु संकमाभावादो । कुदो एसो

का सम्बन्ध अपकर्षणसे तथा स्थितिवृद्धि और अनुभागवृद्धिका सम्बन्ध उत्कर्षणसे है और अपकर्षण तथा उत्कर्षण एक ही प्रकृतिके कर्म परमाणुओंमें परस्पर होते हैं। इस नियमके अनुसार यहाँ शंकाकारका यह कहना है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व बन्धरूप प्रकृतियां नहीं होनेसे उनमें प्रतिग्रहपना नहीं पाया जाता, अतः मिध्यात्वका सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वरूपसे संक्रमण नहीं होना चाहिये। इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि जो वधनेवाली प्रकृतियां हैं उनका यदि बन्ध नहीं हो रहा है तो अबन्धकालमें उनमें ही प्रतिग्रहपना नहीं रहता है। उदाहरणके लिये जब साताका बन्ध होता है तभी वह प्रतिग्रहरूप है और तभी उसमें असातारूप कर्मपुंज संक्रमणको प्राप्त होता है। किन्तु जब साताका बन्ध नहीं होता तब उसका प्रतिग्रहपना नष्ट हो जाता है और ऐसी हालतमें असातारूप कर्मपुंज सातारूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त होता। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व ये दोनों अबन्ध प्रकृतियां हैं, अतः इनके विषयमें संक्रमणका उक्त नियम लागू नहीं है। इनमें तो प्रतिग्रहपना बन्धके विना भी पाया जाता है और इसलिये इनमें मिध्यात्वके कर्मपुंजके संक्रमण होनेमें कोई आपत्ति नहीं है। पर इतनी विशेषता है कि सम्यग्दृष्टि जीवके ही मिध्यात्वका कर्मपुंज इन दो प्रकृतियोंमें संक्रमित होता है। अब यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाना है, अतः अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस मिध्यादृष्टि जीवने मिध्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके और संक्लेशपरिणामोंसे निवृत्त होकर तथा मिध्यात्वका स्थितिकाण्डकघात किये विना अन्तर्मुहूर्त कालमें वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया है उसके वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त करनेके पहले समयमें अन्तर्मुहूर्त कम मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वमें संक्रमण हो जाता है, अतः उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। शेष बातोंका खुलासा मूलमें किया ही है।

\* नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ।

§ ४१०. यह सूत्र सुगम है ।

\* जिसने कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आवलीप्रमाण काल व्यतीत कर दिया है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है ।

शंका—जिसने कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आवली प्रमाण काल व्यतीत कर दिया है वही नौ नोकषायोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका अधिकारी क्यों है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वंधी हुई सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अचलावली कालतक नौ नोकषायोंमें संक्रमण नहीं होता है, अतः सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबंधके बाद एक आवली काल व्यतीत होने पर ही नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है ।



खियमो ? साहावियादो । जदि एोकसायाणमण्णेसिं कम्माणमावल्लिज्जुक्कस्स-  
द्विदिसंक्रमेण उक्कस्सद्विदिविहत्ती होदि तो भिच्छत्तक्कस्सद्विदिं सत्तरिसागरोवम-  
कोडाकोडिपमाणं एोकसाएसु संकामिय उक्कस्सद्विदिविहत्ती किण्ण परुविज्जदे ? ए,  
दंसणमोहणीयस्स चरित्तमोहणीयसंकमाभावादो । कसायाणं णोकसाएसु णोकसा-  
याणं च कसाएसु कुदो संकमो ? ण एस दोसो, चरित्तमोहणीयभावेण तेसिं पच्चा-  
सत्तिसंभवादो । मोहणीयभावेण दंसणचरित्तमोहणीयाणं पच्चासत्ती अत्थि त्ति अण्णोण्णेसु  
संकमो किण्ण इच्छदि ? ए, पडिसेज्जभाणदंसणचरित्तानं भिएणजादिचायेण तेसिं  
पच्चासत्तीए अभावादो । एवं जइवसहाइरियपरुविदउक्कस्ससाभित्तं देसामासियभावेण  
सूचिदादेसं भणिय संपहि उच्चारणाइरियवक्खाणं पुणरुत्ताभएण ओघं मोत्तू ण आदे  
विसयं वत्तइस्सामो ।

§ ४१२. सत्तसु पुढवीसु तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०-

शंका-विवक्षित समयमे बंधे हुए कर्मपुंजका अचलाचली कालके अनन्तर ही पर प्रकृतिरूप  
से सक्रमण होता है ऐसा नियम क्यों है ?

समाधान-स्वाभावसे ही यह नियम है ।

शंका-यदि अन्य कर्मोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमणसे नोकषायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति होती है तो सत्तरकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकषायोंमें  
संकमित्त करके उनकी उत्कृष्ट स्थिति आवलिकम सत्तरकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण क्यों नहीं कही  
जाती है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें संक्रमण नहीं होता है ।

शंका-कषायोंका नोकषायोंमें और नोकषायोंका कषायोंमें संक्रमण किस कारणसे होता है ?

समाधान-यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे दोनों चारित्रमोहनीय हैं, अतः उनकी परस्पर-  
में प्रत्यासत्ति पाई जाती है इसलिये उनका परस्परमें संक्रमण हो सकता है ।

शंका-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दोनों मोहनीय हैं । इस रूपसे इनकी  
भी प्रत्यासत्ति पाई जाती है, अतः इनका परस्परमें संक्रमण क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि परस्परमें प्रतिषेध्यमान दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के  
भिन्न जाति होनेसे उनकी परस्परमें प्रत्यासत्ति नहीं पाई जाती है, इसलिये उनका परस्परमें  
संक्रमण नहीं होता है ।

इस प्रकार जिसके द्वारा देशामर्षक भावसे आदेशकी सूचना मिलती है ऐसे यतिवृषभ-  
भाचार्यके द्वारा कहे गये उत्कृष्ट स्वामित्वको कहकर अब पुनश्च दोषके भयसे उच्चारणाचार्यके  
द्वारा व्याख्यात ओघ स्वामित्वको छोड़कर आदेशविषयक स्वामित्वको कहते हैं—

§ ४१२. सातो धुविधियोके नारकी, सामान तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच,

तिरि०जोगिणी-मणुस्सतिय०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-  
तस०-तसपज्ज०-पंचमए०--पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-वेउच्चि०-तिण्णिवेद-चचा-  
रिक्क०-असजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्स-भवसिद्धि०-सखिण-आहारीणमोघभंगो ।

§ ४१३. पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छन्ना-सोलसक०-एवणोक्क० उक्क० कस्स ?  
अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सद्विदिं वंधिदूण द्विदिघादमकादूण पंचि०-  
तिरिक्खअपज्जचाएसु पढमसमयउववण्णो तस्स उक्कस्सद्विदिविहती । सम्मचा-सम्माभि०  
उक्क० कस्स ? अण्ण० तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सद्विदिं वंधिदूण अंतोसुहुचोए  
सम्मत्तं पडिअण्णो सम्मचोए सह सव्वलहुं कालमच्छिय मिच्छत्तं गदो मिच्छत्तेए  
द्विदिघादमकाऊण पंचि०तिरि०अपज्जत्तएसु उववण्णो तस्स पढमसमयउववण्णस्स  
उक्कस्सद्विदिविहती । एवं मणुसअपज्ज०-वादरेईदियअपज्ज०-सुहुमईदियपज्जत्ता-  
पज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचि०अपज्ज०-वादरपुढवि०अपज्ज०--सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-  
वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-वादरतेउ०पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमतेउपज्जत्ता-

पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्येच योनिमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिनी, सामान्य देव, भवन-  
वासियोसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पंचो  
मनोयोगी, पंचो वचनयोगी, काययोगी, आद्वारिक काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, तीनों वेदवाले,  
चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाँच लेख्यावाले, भव्य, संज्ञी  
और आहारक जीवोंके ओषके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई है उनमें मिथ्यात्व आदि सब कर्मोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति आषके समान वन जाती है, अतः इनकी प्ररूपणाको ओषके समान कहा है ।

§ ४१३. पंचेन्द्रिय तिर्येच लब्धपर्याप्तकोमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्येच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर  
और स्थितिघात न करके पंचेन्द्रिय तिर्येच लब्धपर्याप्तकोमें उत्पन्न हुआ है उसके उत्पन्न होनेके  
पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । सन्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके हांती है ? जो कोई एक तिर्येच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर  
अन्तमुं हूतकालके द्वारा सन्यक्त्वको प्राप्त हुआ तथा सन्यक्त्वके साथ अतिलघु कालतक रहकर  
मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वके साथ रहते हुए स्थितिघात न करके पंचेन्द्रिय तिर्येच लब्ध-  
पर्याप्तकोमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सन्यक्त्व और सन्याग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थिति होती है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्य, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म  
एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, वादर  
पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक  
अपर्याप्तक, वादर जलकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म  
जलकायिक अपर्याप्तक, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्तक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म  
अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्तक, वायुकायिक, वादर  
वायुकायिक पर्याप्तक, वादर वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक,

पज्जत्त-वादरवाउपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-वादरवाउपफदिपत्तेय०अपज्ज०-  
सुहुमवणपफदि०पज्जत्तापज्जत्त-सव्वण्णिओद-तसअपज्जत्ता चि ।

§ ४१४. आणदादि जाणुवरिमगेवज्जो चि मिच्छत्ता-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०  
णवणो० उक्क० ? अण्ण० जो देव्वलिंगी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढम-  
समयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि चि सव्व-  
पयडीणमुक्क० कस्स ? अएण० जो वेदय०दिट्ठी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ  
पढमसमयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती ।

§ ४१५. एइंदिएसु मिच्छत्ता-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो देवो उक्कस्स-  
ट्ठिदि वंधमाणो एइंदिएसु पढमसमयउववण्णो तस्स० उक्क० विहत्ती । सम्मत्त०

सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म घनस्पति-  
कायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सब निगोद और  
त्रस अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस मनुष्य या तिर्यंचने मिथ्यात्व या सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिवंध  
किया है ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उस उत्कृष्ट स्थितिके साथ मर कर पंचेन्द्रिय तिर्यंच  
लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंके भवके पहले समयमें  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और सोलह कषायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर कहीं है तथा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
उस लब्धपर्याप्तक तिर्यंचके होती हैं जिसने पूर्वं भवमें सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
करके और एक आबलिके पश्चात् उसका नौ नोकषायरूपसे संक्रमण करके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त  
कालके वाद पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें जन्म लिया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका खुलासा मूलमें ही किया है । मूलमें और जितनी भागणार्ण गिनाई  
है उनमें भी इसी प्रकार जानना ।

§ ४१४. आनत कल्पसे लेकर उपरिम श्रवैयकतक मिथ्यात्व; सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? आनतादिके योग्य  
उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक द्रव्यलिंगी मुनि मरकर आनतादिकमें उत्पन्न हुआ  
उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । अनुदिशसे  
लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ?  
अनुदिशादिकके योग्य उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश  
आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्ति होती है ।

§ ४१५. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके  
होती है ? उत्कृष्ट स्थिति बाँधनेवाला जो कोई एक देव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न  
होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-

सम्पामि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० जो तिगदिओ उक्कस्सद्विदिं वंधिदूण अंतोमुहुत्त-  
पडिहग्गो संतो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो तेण सम्मत्तेण सह सव्वलहुअमंतोमुहुत्ताद्धमच्चिय  
मिच्छत्तं गदो । तदो मिच्छत्तेण द्विदिधादमकादूण पढमसमयएइंदिओ जादो तस्स  
उक्क० विहची । एवणो० उक्क० कस्स ? अण्णदरस्स जो देवो उक्कस्सद्विदिं  
बंधमाणो कालं कादूण एइंदिओ जादो पढमसमयमादिं कादूण जीव आवलियउव-  
वण्णस्स तस्स उक्क० द्विदिविहची । एवमेइंदियपज्ज०-वादरएइंदिय-वादरेइंदिय-  
पज्ज०-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-आउ०-वादरआउ०-वादरआउपज्ज०-  
वणप्फदि०-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयो०-वादरवणप्फदि-  
पत्तेयपज्ज०-असणि चि । ओरोलियमिस्स० एवं चेव । णवरि देव णेरइयपच्छा-  
यदाणं कादव्वं ।

की उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? तीन गतियोंका जो कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर अन्तर्मुहूर्त कालमें प्रतिभग्न होकर तथा सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिको प्राप्त होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः अतिलघु कालतक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर मिथ्यात्वके साथ स्थितिघात न करके एकेन्द्रिय हुआ । उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक देव कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर मरा और एकेन्द्रिय हुआ । उसके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर एक आवली प्रभाए कालके भीतर नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर, पृथिवीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तक और असंखी जीवोके जानना चाहिये । औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जो देव और नारक पर्यायसे वापिस आकर औदारिक मिश्रकाययोगी हुए हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहनी चाहिये ।

**विशेषार्थ—**मूलमें एकेन्द्रिय आदि ऐसी मार्गणाएँ गिनाई हैं जिनमें देव पर्यायसे आकर जीव उत्पन्न हो सकते हैं, अतः इन सबमें एकेन्द्रियोके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन जाती है । किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट स्थिति कहते समय देव और नारक पर्यायसे आकर जो औदारिकमिश्रकाययोगी हुए हैं उनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । यहाँ यह शंका की जा सकती है कि जो उक्त मार्गणाओमें देव पर्यायसे आकर उत्पन्न हुए हैं और औदारिकमिश्रकाययोगमें देव या नारक पर्यायसे आकर उत्पन्न हुए हैं उन्हींके उत्कृष्ट स्थिति क्यों प्राप्त होती है जो तिर्यँच या मनुष्य पर्यायसे आकर उक्त मार्गणाओमें उत्पन्न हुए हैं उनके उत्कृष्ट स्थिति क्यों नहीं प्राप्त होती है । सो इसका समाधान यह है कि अतिसंकलेशसे मरा हुआ तिर्यँच और मनुष्य नारक पर्यायमें उत्पन्न होगा अतः यहाँ देव और नारक पर्यायसे यथायोग्य उत्पन्न कराकर ही उक्त मार्गणाओमें उत्कृष्ट स्थिति कही है ।

§ ४१६. वेडविव्यमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिं वंधमाणो मदो णेरइएसु पढमसमयउव-  
वण्णो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एव-  
णोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिं वंधिदूण कालं  
गदो णेरइएसु उववण्णो पढमसमयमादिं कादूण जाव आवलियउववण्णस्स तस्स  
उक्क०विहत्ती ।

§ ४१७ आहार० सव्वपयवीणमुक्क० कस्स ? अएण० जो वेदय०दिट्ठी उक्कस्स-  
ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयपज्जत्तयदो तस्स उक्क०विहत्ती । एवमाहारमिस्स० । णवरि  
पढमसमयआहारमिस्सयस्स ।

§ ४१८. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चटुगदिओ  
उक्कस्सट्ठिदिं वंधमाणो कालं गदो समयविरोहेण तिरिक्ख-णेरइएसु पढमसमयकम्मइय-  
कायजोगी जादो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि० ओरालियमिस्सभंगो ।  
णवरि चटुसु गदीसु सम्मत्तं दादव्वं । णवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चटुगदिओ  
उक्क०ट्ठिदिं० वंधमाणो कालं गदो जहासंभवं तिरिक्ख-णेरइएसु पढमविदयसमयउव-

§ ४१६. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों मिध्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर मरा और  
नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति  
होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अर्थात्तकोंके समान है। नौ  
नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट  
स्थितिको बांधकर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें लेकर  
एक आवलीप्रमाण कालके भीतर नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४१७. आहारककाययोगियों सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ?  
उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मजाला जो कोई वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारककाययोगी हुआ उसके पर्याप्त  
होनेके पहले समयमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाय-  
योगी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगके पहले  
समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४१८. कर्मणकाययोगियों मिध्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति  
किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जो कोई चार गतिका जीव मरा और यथानियम  
तिर्यंच और नारकियोंमें उत्पन्न होकर कर्मणकाययोगी हां गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके  
समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वको चारों गतियोंमें देना चाहिये। अर्थात्  
उसकी उत्कृष्टस्थिति विभक्ति चारों गतियोंमें कर्मणकाययोगियोंके होती है। नौ नोकपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जो कोई एक चारों  
गतियोंका जीव मरा और यथायोग्य तिर्यंच तथा नारकियोंमें पहले और दूसरे समयमें उत्पन्न

वण्णो तस्स उक्क० विहत्ती ।

§ ४१६. अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-णवणोको उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ पढमसमयअवगदवेदो जादो तस्स उक्क० विहत्ती । एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

§ ४२०. मदि-सुदअण्णा० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोको ओघमंगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सद्विदि बंधिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो सम्मत्तेण सञ्जलहुअमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय मिच्छत्तं गदो तस्स पढम-समए उक्क० विहत्ती । एवं विहंग० ।

§ ४२१. आभिण्णि०-सुद०-ओहि० सव्वपयडीएमुक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइदो देवो णेरइओ वा उक्क०द्विदि बंधिदूए द्विदिवादमकादूए अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स पढमसमयसम्माइद्विस्स उक्क० विहत्ती । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय०दिद्वि त्ति । मएपज्जव० सव्वपयङ्गि० उक्क० कस्स ? अण्ण० वेदय०-दिद्वी उक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ तस्स पढमसमयमएपज्जवणाणिसस्स उक्कस्सद्विदि-विहत्ती । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजदे त्ति ।

हुआ उसके उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है ।

४१६ अपगतवेदमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई जीव अपगतवेदवाला हो गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बिभक्ति होती है । इसी प्रकार अकपायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयतके जानना चाहिये ।

४२० § मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकापायोकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति ओषके समान है । सम्वत्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो कोई जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर अन्तमुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः सम्यक्त्वके साथ सबसे लघु अन्तमुहूर्त काल तक रह कर मिथ्यात्वमें गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । इसी प्रकार विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये ।

§ ४२१ आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति बिभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि देव या नारकी जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और स्थितिघात न करके अन्तमुहूर्त कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस सम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । इसी प्रकार अर्वाधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई वेदक सम्यग्दृष्टि जीव है उसके मनःपर्ययज्ञानको प्राप्त होनेके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । इसी प्रकार संयत, समाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविञ्चुद्विसंयत और संयतासंयतके जानना चाहिये ।

§ ४२२, सुकले० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोको० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइटी उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय ट्ठिदिघादमकाऊण लेस्सापरावचिं गदो तस्स उक्क० विहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० जो मिच्छाइटी उक्क०ट्ठिदिं वंधिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तेण लेस्सापरावचिं गदो तस्स पढमसमए उक्क०विहत्ती ।

§ ४२३, अभविय० देवोधं । णवरि सम्म०-सम्मामि० णत्थि । खइय० चार-सक०-णवणोको० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमय-खीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती । उवसम० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती । सासण० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० तस्सेव पढम-समयसासणं गदस्स तस्स उक्कस्स०विहत्ती । सम्मामि० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोको० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइटी उक्क०ट्ठिदिं वंधिदूए ट्ठिदिघाद-मकाऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिं वंधिदूए ट्ठिदिघादमकाऊण

§ ४२२ शुक्ललेश्यामे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और स्थितिघात न करके लेश्या-परावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्व और सन्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है। पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा लेश्यापरावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है ।

§ ४२३ अभव्योंके सामान्य देवोंके समान कथन जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्व कर्म नहीं होते हैं । ज्ञानिक सम्यग्दृष्टियोंमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसारकर्मवाला जो जीव क्षीणदर्शनमोह हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। उपशान्तसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव उपशान्तदर्शनमोहनीय हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई वही पूर्वोक्त जीव सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति हाती है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और स्थितिघात न करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर और स्थितिघात

सम्मत्तं पडिवण्णो सम्मत्तेण सव्वलहुअमद्धमच्छियं द्विदिद्यादमकाऊए सम्मामिच्छत्तं गदो तस्स पढमसमयसम्मामिच्छादिद्विस्स उक्कं विहत्ती । अणाहारीणं कम्मइयभंगो !

एवमुक्कस्ससामित्तं समत्तं ।

❀ एत्तो जहणणयं ।

§ ४२४. जहण्णसामित्तं भणामि त्ति सिस्ससंभालणं कदमेदेण सुत्तेण । तस्स दुविहो सिहेसो—ओघेण आदेसेण य चेदि । तत्थ ओघेण परूवणहं जइवसहाइरिओ । उत्तरसुत्तं भणदि—

मिच्छत्तस्म जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२५. सुगममेदं

\* मणुस्स वा मणुसिणीए वा खविज्जमाणयमावलिथं पविट्ठं जाधे दुसमयकालद्विदिगं सेसं ताधे ।

§ ४२६. मणुस्सो त्ति वुत्ते पुरिसणवुंसयवेदोदइल्लाणं गहणं । मणुस्सिणि त्ति वुत्ते इत्थिवेदोदयजीवाणं गहणं । जहा अप्पसत्थवेदोदएण मणुपज्जवणाणादीणं ण

न करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है । पुनः सम्यक्त्वके साथ अतिलघु काल तक रहकर और स्थिति-घात न करके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । अनाहारकोका कर्मणकाययोगियोंके समान स्वामित्व जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

\* इसके आगे जघन्य स्वामित्वको कहते हैं ।

§ ४२४. अब जघन्य स्वामित्वको कहते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा शिष्योंकी सम्हाल की है । इस जघन्य स्वामित्वकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषके कथन करनेके लिये यतिवृषभ आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

\* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२५. यह सूत्र सुगम है ।

\* मनुष्य या मनुष्यिनीके उदयावलिमें प्रविष्ट होकर ज्ञयको प्राप्त होता हुआ जो मिथ्यात्व कर्म है उसकी जब दो समय प्रमाणा स्थिति शेष रहती है तब जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४२६. सूत्रमें मनुष्य ऐसा कहने पर उससे पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयवाले मनुष्यों का ग्रहण होता है । मनुष्यिनी ऐसा कहने पर उससे स्त्रीवेदके उदयवाले मनुष्य जीवोंका ग्रहण होता है । जिस प्रकार अप्रयस्त वेदके उदयके साथ मनःपर्ययज्ञानादिकका होना संभव नहीं है



संभवो तद्वा दंसणमोहणीयकखवणाए तत्थ किं संभवो अत्थि णत्थि त्ति संदेहेण घुलंत-  
हियस्स सिस्ससंदेहविणासणट्ठं मणुस्सस्स मणुस्सणीए वा त्ति भणिदं । खविज्ज-  
माणयं ति वुत्ते मिच्छत्तस्स गहणं, अण्णस्सासंभवादो । आवत्थियं ति वुत्ते उदयावलि-  
याए गहणं; मिच्छत्तचरिमफालियाए परसरूवेण गदाए उदयावलयपविट्ठणिसेगे मोत्तूण  
अण्णेसिमवट्ठणाभावादो । एत्थ जमावलयं पविट्ठं खविज्जमाणयं मिच्छत्तं अधट्ठिदि-  
गलणाए गलिय जाथे तं दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताथे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि  
त्ति संबंधो कायन्वो । कथं सुत्तम्मि असंताणं पदाणमज्झाहारो कीरदे ? ण, सुत्त-  
स्सेव अवयवभूदाणं सुगमत्तणेण तत्थ अणुच्चारिज्जमाणणं तत्थ अभावविरोहादो ।

इसी प्रकार अप्रशस्त वेदके उदयमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा क्या संभव है या नहीं है इस प्रकार  
सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है उस शिष्यके सन्देहको दूर करनेके लिये सूत्रमें 'मणुस्सस्स  
मणुस्सणीए वा' यह पद कहा है । सूत्रमें 'खविज्जमाणयं' ऐसा कहने पर उससे मिथात्वका ग्रहण  
करना चाहिये, यहां अन्यका ग्रहण नहीं हो सकता है । सूत्रमें 'आवलयं' ऐसा कहने पर उससे  
उदयावलिका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पररूपसे संक्रमित हो  
जाने पर उदयावलिमें प्रविष्ट हुए निषेकोंको छोड़कर अन्य निषेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता है ।  
यहां पर जो उदयावलिमें प्रविष्ट होकर क्षयको प्राप्त होनेवाला मिथ्यात्व कर्म है वह अधःस्थिति-  
गलना रूपसे गलित होकर जब दो समय काल स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य  
स्थितिभिक्ति होती है ऐसा सम्वन्ध कर लेना चाहिये ।

**शंका**—जो पद सूत्रमें नहीं है उनका अध्याहार कैसे किया जा सकता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि जो सूत्रके ही अवयवभूत हैं पर सुगम होनेसे जिनका वहां  
उच्चारण नहीं किया है उनका अस्तित्व यदि वहाँ नहीं स्वीकार किया जाता है तो विरोध आता है ।

**विशेषार्थ**—यद्यपि ऐसा नियम है कि स्त्रीवेदवाले और नपुंसकवेदवाले मनुष्यके मनः-  
पर्यवधान, परिहारविशुद्धिसंयम, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगकी प्राप्ति नहीं  
होती फिर भी क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्रकी प्राप्ति तीनों वेदोंके रहते हुए हो सकती  
है, इसी बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें मनुष्य और मनुष्यिनी इन दोनों पदोंका ग्रहण किया  
है । यहां मनुष्य पदसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये और मनुष्यिनी  
पदसे स्त्रीवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार जब इन तीन वेदवालोंमेंसे कोई एक  
वेदवाला मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता हुआ मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें स्थित उदयावलि-  
प्रमाण निषेकोंको गलाता हुआ अन्तमें दो समय स्थितिवाला एक निषेक शेष रखता है तब उसके  
मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है । मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके प्रतिपादक उक्त चूर्णिसूत्रका  
समुदायार्थ कहते समय वीरसेन स्वामीने 'अधट्ठिदिगलणाए गलिय' इतना पद और जोड़ा है । इस  
पर शंकाकारका कहना है कि ये पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें तो पाये नहीं जाते, अतः यहां इनका अध्याहार  
कैसे किया जा सकता है, क्योंकि अध्याहार तो ऊर्ध्व पदोंका होता है जो पूर्ववर्ती सूत्रोंमें  
आ चुके हैं । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि कोई  
पद यदि पूर्ववर्ती सूत्रोंमें न आया हो तो भी उसका अध्याहार करनेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि

❀ सम्मत्तस्स जहणणाद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२७. सुगममेदं ।

\* चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ४२८. चरिमसमयअक्खीणसम्मत्तस्से त्ति वत्तव्वं तेणेत्थ अहियारादो ण चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्से त्ति ? ण एस दोसो, मिच्छत्त-सम्मामिच्छरो खइय पच्छा सम्मत्तं खविज्जदि त्ति कम्माण क्खवणक्कमजाणावणट्ठं चरिमसमय-अक्खीणदंसणमोहणीयस्से त्ति णिहेसादो । मिच्छत्त-सम्मामिच्छरोसु कं पुव्वं खविज्जदि ? मिच्छत्तं । कुदो, अक्खसुहत्तादो । असुहस्स कम्मस्स पुव्वं चैव खवणं होदि त्ति कुदो णव्वदे ? सम्मत्तस्स लोहसंजलणस्स य पच्छा खयण्णाहाणुवत्तीदो ।

ऐसा कोई नियम नहीं है कि जो पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें आये हो उन्हींका केवल अध्याहार किया जा सकता है । किन्तु सरल होनेसे जो पद सूत्रमें नहीं कहे गये हो पर जिनके कथन करनेसे अर्थ बोधमें सुगमता जाती हो ऐसे पदोंको ऊपरसे भी जोड़ा जा सकता है, क्योंकि अध्याहारका अर्थ भी यही है कि जिस वाक्यका अर्थ अस्पष्ट हो उसे शब्दान्तरकी कल्पना द्वारा स्पष्ट कर देना चाहिये । अब यदि ऐसे पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें मिल जाते हैं तो अच्छा ही है और यदि नहीं मिलते हैं तो कल्पनाद्वारा उन्हें ऊपरसे भी जोड़ा जा सकता है ।

❀ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२७. यह सूत्र सुगम है ।

\* जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयके क्षय होनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४२८ शंका—सूत्रमें 'जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह न कहकर 'जिसने सम्यक्त्वका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सम्यक्त्वका यहाँ अधिकार है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वको क्षय करके अनन्तर सम्यक्त्व का क्षय करता है इस प्रकार कर्मोंके क्षयके क्रमका ज्ञान करनेके लिये 'जिसने दर्शन मोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह कहा है ।

शंका—मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें पहले किसका क्षय होता है ?

समाधान—पहले मिथ्यात्वका क्षय होता है ।

शंका—पहले मिथ्यात्वका क्षय किस कारणसे होता है ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्व अत्यन्त अशुभ प्रकृति है ।

शंका—अशुभ कर्मका पहले ही क्षय होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्यथा सम्यक्त्व और लोभ संव्वलनका पश्चात् क्षय वन नहीं सकता है, इस प्रमाणसे जाना जाता है कि अशुभ कर्मका क्षय पहले होता है ।

\* सम्मामिच्छत्तस्स जहणणट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२६. सुगममेदं ।

\* सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणं वा उव्वेल्लिज्जमाणं वा जस्स दुसमय-  
कालट्टिदियं सेसं तस्स ।

§ ४३०. खवेत्तस्स वा उव्वेल्लंतस्स वा जस्स दुसमयकालट्टिदियं सम्मामिच्छत्तं  
सेसं तस्सेव जीवस्स जहण्णसामित्तं होदि त्ति वयणेण सेससम्मामिच्छत्तसंतकम्मियाणं  
पडिसेहो कदो । एवकारेण त्रिणा कथमेसो णियमो अवगम्मदे ? ण एस दोसो,  
एवकाराभावे वि तदट्ठो तत्थ अत्थि त्ति सावहारणव्रवगमुप्पत्तीए विरोहाभावाद्दो ।  
एगसमयकालट्टिदियमिदि किण्ण वुच्चदे ? ए, उदयाभावेण उदयणिसेयट्टिदी  
परसरूवेण गदाए विदियणिसेयस्स दुसमयकालट्टिदियस्स एगसमयावट्ठाणविरोहाद्दो ।  
विदियणिसेओ सम्मामिच्छत्तसरूवेण एगसमयं चैव अच्छदि उवरिमसमए मिच्छत्तस्स  
सम्भत्तस्स वा उदयणिसेयसरूवेण परिणामुवलंभाद्दो । तदो एयसमयकालट्टिदिसेसं

\* सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ?

§ ४२६ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जिसके ज्ञयको प्राप्त होते हुए व उद्वेलनाको प्राप्त होते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी  
दो समय काल प्रमाण स्थिति शेष रहती है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्ति होती है ।

§ ४३० ज्ञय करनेवाले या उद्वेलना करनेवाले जिस जीवके दो समय काल स्थिति प्रमाण  
सम्यग्मिथ्यात्व शेष रहता है उसी जीवके जघन्य स्वामित्व होता है । इस वचनके द्वारा शेष  
सम्यग्मिथ्यात्व सत्कर्मवाले जीवोंका प्रतिषेध कर दिया है ।

शंका—एवकारके बिना यह नियम कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि एवकारके नहीं रहने पर भी एवकार शब्दका अर्थ  
सूत्रमें अन्तर्निहित है इसलिये अवधारण सहित अर्थके ज्ञानके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति एक समय काल प्रमाण क्यों नहीं कही जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकृतिका उदय नहीं होता उसकी उदय निषेकस्थिति  
उपान्त्य समयमें पररूपसे संक्रमित हो जाती है अतः दो समय कालप्रमाण स्थितिवाले  
दूसरे निषेककी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण माननेमें विरोध आता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वका दूसरा निषेक सम्यग्मिथ्यात्व रूपसे एक समय काल तक ही  
रहता है, क्योंकि अगले समयमें उसका मिथ्यात्व या सम्यक्त्वके उदय निषेकरूपसे परिणमन  
पाया जाता है अतः सूत्रमें 'दुसमयकालट्टिदिसेसं' के स्थान पर 'एक समयकालट्टिदिसेसं' ऐसा  
कहना चाहिये ?

ति वत्तव्वं ? ए, एगसमयकालद्विदिए णिसेगे संते विदियसमए चेव तस्स णिसेगस्स अदिण्णफलस्स अकम्मसरूवेण परिणामप्पसंगादो । ण च कम्मं सगसरूवेण परसरूवेण वा अदत्तफलमक्रम्मभावं गच्छदि, विरोहादो । एगसमयं सगसरूवेणच्छिय विदियसमए परपयडिसरूवेणच्छिय तदियसमए अकम्मभावं गच्छदि त्ति दुसमयकालद्विदिण्हिसो कदो ।

\* अणंताणुबंधीणं जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३१. सुगममेदं ।

❀ अंताणुबंधी जेण विसंजोइदं आवलियं पविट्ठं दुसमयकालद्विदिणं सेसं तस्स ।

समाधान—नहीं, क्योंकि इस निपेकको यदि एक समय काल प्रमाण स्थितिवाला मान लेते हैं तो दूसरे ही समयमें उसे फल न देकर अकर्मरूपसे परिणमन करनेका प्रसंग प्राप्त होता है। और कर्म स्वरूपसे या पररूपसे फल विना दिये अकर्मभावको प्राप्त होते नहीं, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है। किन्तु अनुदय रूप प्रकृतियोंके प्रत्येक निपेक एक समय तक स्वरूपसे रहकर और दूसरे समयमें पर प्रकृतिरूपसे रहकर तीसरे समयमें अकर्मभावको प्राप्त होते हैं ऐसा नियम है अतः सूत्रमें दो समय कालप्रमाण स्थितिका निर्देश किया है।

विशेषार्थ—यहां यह शंका उठाई गई है कि जिस कर्मका स्वोदयसे क्षय नहीं होता उसका अन्तिम निपेक उपान्त्य समयमें ही पर प्रकृतिरूप हो जाता है, अतः अनुदयरूप प्रकृतिकी जघन्य स्थिति एक समय ही कहनी चाहिये। इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यद्यपि ऐसा निपेक उपान्त्य समयमें ही परप्रकृतिरूप हो जाता है पर वह कर्मरूपसे दो समय तक रहता है और तीसरे समयमें ही अकर्मभावको प्राप्त होता है, अतः उस निपेककी जघन्य स्थिति दो समय कहना ही युक्त है। यदि उसकी स्थिति एक समय मानी जाती है तो दूसरे समयमें विना फल दिये उसे अकर्मरूप हो जाना चाहिये। पर ऐसा होता नहीं, क्योंकि कोई भी कर्म फल दिये विना अकर्मरूप होता नहीं और उपान्त्य समय उसका उदयकाल नहीं है, अतः उपान्त्य समयमें वह फल दे नहीं सकता। इसलिये यही निश्चित होता है कि जो निपेक जितने काल तक कर्मरूपसे रहता है उसकी उतनी स्थिति होती है। स्थितिका विचार करते समय यह नहीं देखा जाता कि वह अमुक समयमें अन्य प्रकृतिरूप होनेवाला है इसलिये इसकी स्थिति अन्य प्रकृतिरूप होनेसे पहले तक हो। किन्तु जिस समय जिस कर्मकी जितनी स्थिति कही जाती है उस समय उस कर्मरूप परणमें निपेकके सद्भावकालको देख कर ही वह स्थिति कही जाती है। अब यदि वे निपेक उसी समय या अन्य समयमें अन्य प्रकृतिरूप होते हों तो हो जायें, इससे उस कर्मकी स्थितिका कथन करनेमें कोई बाधा नहीं आती।

❀ अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ?

§ ४३१ यह सूत्र सुगम है ।

\* जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है और तदनन्तर उदयावलीमें प्रविष्ट होकर जब उसकी दो समय काल प्रमाण स्थिति शेष रहती है तब उसकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ४३२, अणंताणुवंधी जेण खविदं ति अभणिय जेण विसंजोइदं ति किमद्वं वुचुदे ? ण, जस्स कम्मस्स परसरुवेण गयस्स पुणरुपपत्ती णत्थि तस्स कम्मस्स विणासो खवणा णाम । ए च अणंताणुवंधीणमद्वकसायाणं व पुणरुपपत्ती णत्थि; पुणो वि परिणामवसेण सासणादिमु वंधुवलंभादो । तम्हा अणंताणुवंधी जेण विसंजोइदं ति सुहासियमेदं; तस्स पुणरुपपत्तिजाणावणद्वं परुविदत्तादो । जदि अणंताणुवंधिचउक्कं विसंजोइदं तो तेण जीवेण अणंताणुवंधिचउक्कं पडि णिस्संतकम्मेष णोद्वं ण तत्थ जहण्णसामित्तस्स संबधो; अभावे भावविरोहादो ति ? ण एस दोसो, चरिमद्विदिसंडय-चरिमफालियाए परसरुवेण गदाए समाणिदअणियद्विकरणस्स विसंजोइदत्ताविरोहादो । अणंताणुवंधिकम्मक्खंथे सेसकसायसरुवेण परिणामंतओ विसंजोएंतओ णाम । ए च एवंविहा विसंजोयणा आवलियपविट्ठणसेयाणमत्थि; तेसि संकमाभावादो । तम्हा अणंताणुवंधी जेण विसंजोइदं ति सुहासियमेदं । जमुदयावलियपविट्ठमणंताणुवंधिचउक्कं मंतकम्मं तं जाथे दुसमयकालद्विदिगं सेसं नाथे तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।

§ ४३२ शंका—सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुबन्धीका ज्य कर दिया है' ऐसा न कह कर 'जिसने उसकी विसंयोजना कर दी है' ऐसा किसलिये कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पररूपसे प्राप्त हुए जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है उस कर्मके विनाशको क्षपणा कहते हैं । पर जिस प्रकार आठ कपायोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती उस प्रकार चार अनन्तानुबन्धीकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती यह बात तो है नहीं किन्तु परिणामोंके वशसे सासनादिकमें इसका पुनः बन्ध पाया जाता है अतः जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है यह सूत्रमें उचित कहा है क्योंकि उसकी पुनः उत्पत्तिका ज्ञान करानेके लिये ऐसा कथन किया है ।

शंका—यदि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो गई तो उस जीव को अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा कर्मरहित हो जाना चाहिये, अतः ऐसे जीवके जघन्य स्वामित्व संभव नहीं है, क्यों कि अभावमें भावके माननेमें विरोध आता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पररूपसे प्राप्त हो जानेपर अनिष्टवृत्तिकरणको प्राप्त हुए जीवके अनन्तानुबन्धीको विसंयोजित माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । अनन्तानुबन्धीके कर्मस्कन्धोंको शेष कपायरूपसे परिमाणवाला जीव विसंयोजक कहलाता है । पर इस प्रकारकी विसंयोजना आयली प्रविष्ट कर्मोंकी तो होती नहीं, क्योंकि उनका संक्रमण नहीं होता है, अतः सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है' यह योग्य कहा है । जो उदयावलिमें प्रविष्ट अनन्तानुबन्धी चतुष्क सत्कर्म है वह जिससमय दो समय स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

विशेषार्थ—यहां विसंयोजना और क्षपणामें अन्तर बतलाते हुए यह लिखा है कि पर प्रकृतिरूपसे संक्रमणको प्राप्त हुए जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती उस कर्मके विनाशका नाम क्षपणा है और जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति हो सकती है उस कर्मके विनाशका नाम विसंयोजना है

सो इसका यह तात्पर्य है कि जो कर्म स्वोदयसे क्षयको नहीं प्राप्त होते हैं उनके द्वितीय स्थितिमें स्थित कर्मपुंजका उस समय वंशनेवाली अपनी सजातीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और जो कर्मपुंज उदयावलिमें स्थित है उसके प्रत्येक अन्तिम निषेकका स्तित्वक संक्रमणके द्वारा उपान्त्य समयमें उदयगत सजातीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और इस प्रकार उस कर्मकी क्षपणा होती है। क्षपणाका यह लक्षण परोदयसे जिन प्रकृतियोंका क्षय होता है उनके क्षयमें ही घटित होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी क्षपणा भी इस लक्षणमें आ जाती है फिर भी उसके क्षयको क्षपणा न कहकर विसंयोजना इसलिये कहा है, क्योंकि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी यद्यपि इस प्रकारसे क्षपणा हो जाती है फिर भी परिणामोंके वशसे सासादन और मिथ्यात्व गुणस्थानमें उसकी पुनः उत्पत्ति देखी जाती है। अथ यहाँ थोड़ा इस बातका विचार कर लेना भी आवश्यक है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर ली है ऐसा जीव क्या सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त हो सकता है ? जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है किन्तु केवल दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपशमना की है ऐसा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है इसमें किसीको विवाद नहीं। हाँ, जिस वेदकसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपशमना की है ऐसा द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है इसमें अवश्य विवाद है। ध्वला बन्धसामित विचयखण्डमें बतलाया है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि मिथ्यात्व में आता है तो उसके एक आवलिकाल तक अनन्तानुबन्धी चतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय नहीं होता है। इसका यह अभिप्राय है कि ऐसा जीव यदि मिथ्यात्वमें आता है तो उसके पहले समयसे ही यद्यपि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका बन्ध होने लगता है और अन्य प्रकृतियोंका अनन्तानुबन्धी रूपसे संक्रमण होने लगता है किन्तु बन्धावलि और संक्रमावलि कारणोंके अयोग्य होती है इस नियमके अनुसार एक आवलि कालतक न तो बंधे हुए कर्मोंका ही उदय हो सकता है और न बन्धके साथ संक्रमको प्राप्त हुए कर्मोंका ही एक आवलि काल तक उदय हो सकता है। जब मिथ्यात्व गुणस्थानकी यह स्थिति है तब ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको कैसे प्राप्त कर सकता है, क्योंकि सासादन गुणस्थान अनन्तानुबन्धी चतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिकी उद्दीरणा हुए विना होता नहीं। पर जब अनन्तानुबन्धीका सत्त्व ही नहीं और बन्धके विना अन्य प्रकृतियों अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त हो सकती तथा अनन्तानुबन्धी का बन्ध मिथ्यात्व और सासादन प्राप्त किये विना हो नहीं सकता। कदाचित् यह मान लिया जाय कि जिस समय ऐसा जीव सासादनको प्राप्त हो उसी समय अनन्तानुबन्धीका बन्ध होने लगे और शेष कषाय और नोकषाय अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमित होकर उद्दीरणाको प्राप्त हो जायें तो ऐसे जीवके भी सासादन गुणस्थान वन जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि जैसा कि हम पहले बतला आये हैं कि इस नियमके अनुसार संक्रमित कर्मपुंज भी एक आवलिके पश्चात् ही उद्दीरित हो सकता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि षडखण्डागमके अभिप्रायानुसार ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है। श्वेताम्बरोके यहाँ प्रसिद्ध कर्म प्रवृत्तिमें बतलाया है कि ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त होता है। पर इसकी टीकामें इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि जिन आचार्योंके मतसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उपशमना होती है उनके मतानुसार उपशमश्रेणीसे च्युत हुआ जीव सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त होता है। टीकाकारने मूलका इस प्रकार अर्थ बिठलाया है। किन्तु मूलकारका यही अभिप्राय रहा होगा यह कहना जरा कठिन है क्योंकि सो कर्मप्रकृतिके प्रकृतिस्थान संक्रम नामक प्रकरणको देखनेसे मालूम

❀ अट्टण्हं कसायाणं जहणणट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३३. सुगममेदं ।

\* अट्टकसायक्खवयस्स दुसमयकालट्टिदियस्स तस्स ।

§ ४३४. द्विदी णिसेओ त्ति एयट्टो, दुसमओ कालो जिस्से सा दुसमयकाला, दुसमयकालट्टिदी जस्स अट्टकसायक्खवयस्स सा दुसमयकालट्टिदियस्स अट्टकसायाणं जहणणट्टिदिविहत्ती । चारित्तमोहक्खवणाए अब्भुट्टिय अथापवत्तकरण-अप्पुव्वकरण-द्धाओ जहाविहिविसिद्धाओ परिवाडीए गमिय अणियट्टिकरणं पविसिय द्विदिअणुभाग-पदेसाणं बहुवाणं घादं काट्ठूए अणियट्टिअट्टाए संखे०भागे गदे अट्टकसायाणं खवण-माढविय आढत्तपढमसमयादो असंखेज्जगुणाए सेठीए कम्मप्पदेसक्खंधे गाल्लयंतेण

होता है कि जिस जीवने अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है । वहां बतलाया है कि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमणस्थानका इक्कीस प्रकृतिक पतद्ग्रहमें भी संक्रमण होता है । विचार करके देखनेसे यह स्थिति सासादन गुणस्थानमें ही प्राप्त होती है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि मोहनीयका इक्कीस प्रकृतिक वन्ध सासादनमें ही होता है, अतः यह निश्चित हुआ कि जिस जीवने अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर ली है ऐसा जीव जब सासादनको प्राप्त होता है तब उसके एक आवलिकाल तक अनन्तानुवन्धी चतुष्कका संक्रमण नहीं होता है । परन्तु जो बारह कषाय और नौ नोकषाय अनन्तानुवन्धीरूपसे संक्रमित होती हैं, उनकी पहले समयसे ही उदीरणा होने लगती है । इस व्यवस्थाको मानलेनेपर संक्रमावलि सकल करणोंके अयोग्य है यह बात नहीं रहती है ? कर्मप्रकृतिका यह विवेचन कषायप्राभृतके विवेचनसे मिलता हुआ है । अतः चूर्णिसूत्रकारने भी अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना किये हुए जीवके दूसरे गुणस्थानमें जाने का विधान किया है ।

\* आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३३ यह सूत्र सुगम है ।

❀ आठ कषायोंका क्षय करनेवाले जिस क्षपक जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति शेष रह गई है उसके उनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४३४ स्थिति और निषेक ये दोनों एकार्थवाची शब्द हैं । जिस स्थितिको दो समय काल है उसको दो समय कालवाली स्थिति कहते हैं । आठ कषायोंकी क्षपणा करनेवाले जिस जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति होती है वह दो समय काल प्रमाण स्थितिवाला कहलाता है । उसके आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

कोई जीव जिसने चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया अनन्तर जिसने जिसकी जैसी विशेषता बतलाई है उसके अनुसार अधेःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणके कालको क्रमसे व्यतीत करके अनिष्टवृत्तिकरणमें प्रवेश किया और वहां बहुतसी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका धात करके अनिष्टवृत्तिकरणके संख्यातवें भाग कालके व्यतीत होने पर आठ कषायोंके क्षयका प्रारम्भ किया और इस प्रकार आठ कषायोंके क्षयका प्रारम्भ करनेके प्रथम समयसे लेकर

संख्येज्जद्विदि-अणुभागवड्यसहस्साणि पादिदाणि । एवं पादिय अट्टकसायाणं चरिम-  
द्विदिअणुभागवड्याणि वेत्तुमाहत्ताणि । तेसिं चरमफालीसु णिवदिदासु उदया-  
वलयवर्धतेर समयूणावलयमेत्ता णिसेया लब्धंति; उदयाभावेण पदमणिसेयस्सं परसरुवेण  
गदस्स अट्टकसायसरुवेण अभावादो । तेसु णिसेगेसु जहाकमेण अधद्विदिए  
गलमाणेसु जाथे जस्स एया द्विदी दुसमयकाला सेसा ताथे तस्स जहण्णाद्विदिविहृत्ती  
होदि ति वेत्तव्वं । एसो पढत्थो ।

\* क्रोधसंजलणस्स जहण्णाद्विदिविहृत्ती कस्स ?

§ ४३५. सुगममेदं ।

\* खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंजलणे ।

§ ४३६. खवयस्से ति ण वत्तव्वं, पडिसेज्जभाभावादो । णोवसामय-  
पडिसेहट्टं; तस्स कोहसंजलणस्स णिल्लेवत्ताभावादो । तम्हा चरिमसमयअणिल्लेविदे  
कोहसंजलणे ति एत्थिं चैव वत्तव्वं ? ण एस दोसो, कोहसंजलणस्स णिल्लेवत्तो  
खवओ चैव ए उवसामओ ति जाणावणट्टं खवयस्से ति णिहेसादो । ए च सुत्तमंतरेण

असंख्यातगुणी श्रेणीके द्वारा कर्मप्रदेशस्कन्धोंका गलन करता हुआ हजारों स्थितिकाण्डक और  
अनुभागकाण्डकों का पतन किया । इस प्रकार हजारों काण्डकोंका पतन करके आठ कषायोंके  
अन्तिम स्थिति और अनुभाग काण्डकोंके घात करने का प्रारम्भ किया और इस प्रकार उनकी  
अन्तिम फालियोंका पतन हो जाने पर उदयावलिके भीतर एक समय कम आवली प्रमाण निषेक  
प्राप्त होते हैं, क्योंकि उदय न होनेके कारण प्रथम निषेक परप्रकृतिरूप हो जाता है अतः उसका  
आठ कषायरूपसे अभाव हो जाता है । अनन्तर उन उदयावलीमें त्रिष्ट निषेकोंका यथा क्रमसे  
अधःस्थितिके द्वारा गलन होते हुए जिस समय एक स्थिति दो समय कालप्रमाण शेष रहती है  
उस समय उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । यह उक्त सूत्रका  
समुदायार्थ है ।

\* क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३५. यह सूत्र सुगम है ।

\* क्रोधसंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान क्षपक जीवके  
क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४३६. शंका-सूत्रमें 'क्षपकके' यह नहीं कहना चाहिये, क्योंकि प्रतिषेध करने योग्य  
कोई और दूसरा नहीं है । यदि कहा जाय कि, उपशामकका प्रतिषेध करनेके लिये उक्त पद दिया  
है सो भी वात नहीं है, क्योंकि उपशामकके क्रोधसंज्वलनका अभाव नहीं होता है । अतः  
'चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंजलणे' इतना ही कहना चाहिये ?

समाधान-यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्रोधसंज्वलनका अभाव करनेवाला क्षपक ही  
होता है उपशामक नहीं । इस वातका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'खवयस्स; पदका निर्देश किया



एसो अत्थो णव्वदे; तहाणुवलंभादो । चरिमसमयअणिल्लेविदस्सेवे त्ति किमट्ठं बुच्चदे ? ण, दुचरिमादिसमएसु वंधट्ठिदीणं गालणट्ठं तदुत्तीदो । कोहसंजलणं चरिमसमयअणिल्लेविदे संते जो खवओ ताए अवत्थोए वट्टमाणो तस्स जहण्णट्ठिदिविहती होदि त्ति संबंधो कायव्वो । वे मासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति जहण्णट्ठिदिपमाणमेत्थ किण्ण परूविदं ? ण; जहण्णट्ठिअद्धाच्छेदे परूविदस्स परूवणाए फलाभावादो ।

\* एवं माण-मायासंजलणाणं ।

§ ४३७. जहा कोहसंजलणस्स जहण्णसामित्तं बुच्चं तथा माणमायासंजलणाणं वत्तव्वं । चरिमसमयअणिल्लेविदे माणसंजलणे जो खवओ तस्स माणसंजलणजहण्णट्ठिदिविहती । चरिमसमयअणिल्लेविदे मायासंजलणे जो खवओ तस्स मायासंजलणजहण्णट्ठिदिविहत्ति त्ति भण्णित्तं होदि । अंतोमुहुत्तूणासासद्धमासट्ठिदिपमाणपरूवणा एत्थ ण कायव्वा । कुदो ? अद्धाच्छेदपरूवणाए तत्थ वावारादो ।

है । परन्तु सूत्रके विना यह अर्थ जाना नहीं जाता है, क्योंकि सूत्रके विना इस प्रकारके अर्थका ज्ञान होना शक्य नहीं ।

शंका—सूत्रमें 'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह किसलिये कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्विचरम आदि समयोंमें बन्धस्थितियोंके गालन करनेके लिये 'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह पद कहा है ।

क्रोधसंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयके प्राप्त होनेपर जो क्षपक उस अवस्थामे विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिभिन्नि होती है इस प्रकार उक्त सूत्रका सम्बन्ध करना चाहिये ।

शंका—यहाँ पर जघन्य स्थितिका प्रमाण अन्तमुहूर्तमें कम दो महीना है ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जघन्य स्थितिके प्रमाणका जघन्य स्थिति अद्धाच्छेद प्रकरणमे कथन कर आये हैं, अतः यहाँ उसका पुनः कथन करनेसे कोई लाभ नहीं है ।

\* इसी प्रकार उस क्षपकके संज्वलन मान और संज्वलन मायाकी जघन्य स्थितिभिन्नि होती है ?

§ ४३७. जिस प्रकार क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहा है उसी प्रकार मान और माया संज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । जो क्षपक मान संज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमे विद्यमान है उसके मान संज्वलनकी जघन्य स्थिति विभिन्नि होती है । तथा जो क्षपक मायासंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके माया संज्वलनकी जघन्य स्थितिभिन्नि होती है, यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

यहाँ पर मानसंज्वलनकी अन्तमुहूर्तमें कम एक महीना और मायासंज्वलनकी अन्तमुहूर्तमें कम आधा महीना प्रमाण स्थितिका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसे अद्धाच्छेदकी प्ररूपणा-में बतला आये हैं ।

\* लोहसंजलणस्स जहण्णाट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३८. सुगममेदं ।

\* खवयस्स चरिमसमयसकसायस्स ।

§ ४३९. दुचरिमादिसमयपडिसेहट्टो चरिमसमयसकसायणिद्दोसो ॥ किमिदं तप्पडिसेहो कीरदे ? दोतियिण्णआदिणिसेगेसु ट्टिदेसु जहण्णाट्टिदिविहत्ती ण होदि त्ति जाणावणट्टं । चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स अघट्टिदिगल्लणाए गालिददुचरिमादि-णिसेयस्स ट्टिदिक्कडयघादेण घादिदासेसउवरिमट्टिदिणिसेयस्स एगोदयणिसेगे चट्टमाणस्स जहण्णाट्टिदिविहत्ति त्ति भणिदं होदि ।

\* इत्थिवेदस्स जहण्णाट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४०. सुगमं ।

\* चरिमसमयइत्थिवेदोदयखवयस्स ।

§ ४४१. दुचरिमसमयसवेदो किण्ण जहण्णाट्टिदिसामिओ ? ण, पढमट्टिदीए

\* लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३८. यह सूत्र सुगम है ।

\* कषायसहित क्षपक जीवके अन्तिम समयमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति-विभक्ति होती है ।

§ ४३६. द्विचरमसमय आदिका निषेध करनेके लिये सूत्रमें 'चरिमसमयसकसायस्स' पदका निर्देश किया है ।

शंका—द्विचरमसमय आदिका निषेध किसलिये किया है ?

समाधान—दो, तीन आदि निषेधकोके स्थित रहनेपर जघन्य स्थितिविभक्ति नहीं होती है इस बातका ज्ञान करानेके लिये द्विचरमसमय आदिका निषेध किया है ।

जिसने द्विचरम आदि निषेधकोको अघःस्थिति गलनाके द्वारा गालित कर दिया है, जिसने स्थितिकाण्डकषालके द्वारा ऊपरके समस्त स्थितनिषेधकोका घात कर दिया है और जो एक उदयरूप निषेधमें विद्यमान है उस सूक्ष्मसांपराधिकसंयत जीवके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति-विभक्ति होती है यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

\* स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४४०. यह सूत्र सुगम है ।

\* क्षपक जीवके स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्ति होती है ।

§ ४४१. शंका—द्विचरम समयवाला सवेद जीव जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं होता है ?

दोण्हमिस्थिवेदणिसेयाणं विदियद्विदीए वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-  
णिसेयाणं चरिमफालिसरूवेण अवद्विदायां तत्थुवलंभादो । अण्णवेदोदयक्खवयस्स  
जहण्णसामिचं किण्ण दिज्जदे ? ण, उदयाभावेण पढमद्विदिविरहियस्स विदियद्विदीए  
चेव अवद्विदस्स पलिदो० असंखेज्जदिभागमेत्तणिसेगेसु इत्थिवेदस्स चरिमफालीए  
अवद्विदुवलंभादो । एगाए णिसेगद्विदीए उदयगदाए सुद्धपुव्वुत्तरासेसण्णिसेगाए वट्ट-  
मायो जहण्णद्विदिसामि च्चि भणिदं होदि ।

\* पुरिसवेदस्स जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४२. सुगमं० ।

\* पुरिसवेदखवयस्स चरिमसमयभणिल्लेविदपुरिसवेदस्स ।

§ ४४३. जस्स पुव्वमेत्थेव भवे पुरिसवेदो उदयमागदो सो जीवो पुरिसवेदो;  
साहचज्जादो । तस्स पुरिसवेदक्खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स जहण्ण-  
सामिचं होदि; तत्थ अंतोपुहुत्तूणअट्टवस्समेत्तद्विदीए उवलंभादो । इत्थिवेदस्स भण्ण-

**समाधान**—नहीं, क्योंकि द्विचरम समयमें स्त्रीवेद सम्बन्धी प्रथम स्थितिके दो निषेक पाये जाते हैं और द्वितीय स्थितिके भी अन्तिम फालिरूपसे पल्थोपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण निषेक पाये जाते हैं अतः द्विचरम समयवाला सवेद जीव जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं होता है ।

**श्रीका**—अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीवको स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि ऐसे जीवके स्त्रीवेदका उदय नहीं होता अतः उसकी प्रथम स्थिति नहीं पाई जाती किन्तु केवल द्वितीय स्थिति ही पाई जाती है पर उसकी अन्तिम फालिके निषेकों का प्रमाण पल्थके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है, अतः अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीव स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं हो सकता ।

जो स्त्रीवेदी क्षपक जीव स्त्रीवेदके पूर्वोत्तर सब निषेकोंसे रहित है और उदय प्राप्त एक निषेक स्थितिमें विद्यमान है वह स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

\* पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४४२. यह सुगम है ।

\* जिसके पुरुषवेदका अभाव नहीं हुआ है ऐसे पुरुषवेदी क्षपक जीवके अन्तिम समयमें पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४४३ जिसके पहले इसी भवमें पुरुषवेद उदयको प्राप्त हुआ है वह जीव पुरुषवेदके साहचर्यसे पुरुषवेदी कहलाता है । उस पुरुषवेदी क्षपक जीवके पुरुषवेदके सत्त्वके अन्तिम समयमें जघन्य स्वामित्व होता है, क्योंकि वहाँ पर अन्तमुहूर्त कम आठवर्ष प्रमाण स्थिति पाई जाती है ।

माणे जहा इत्थिवेदोदयखवगस्से त्ति परुविदं तथा पुरिसवेदोदयक्खवगस्से त्ति किण्ण परुविदं ? ए, अवगदवेदकालभतरे दुसमऊणदोआवलयमेत्तकालं गंतूए द्विदजहण्ण-द्विदिसामियस्स सवेदत्तविरोहादो ।

\* णवुंसयवेदस्स जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४४. सुगमं ।

\* चरिमसमयणवुंसयवेदोदयक्खवयस्स

§ ४४५. कुदो ? चरिमसमयणवुंसयवेदस्स गालिददुचरिमादिसयलगुणसेट्ठि-णियसेयस्स सवेदियदचरिमसमए इत्थिवेदचरिमफालीए सह परसरुवेण संकामिदएणवुंसय-वेदविदियद्विदिसयलणियसेयस्स एगुदयगोवुञ्छुवलंभादो ।

\* झण्णोकसायाणं जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४६. सुगमं० ।

\* खवयस्स चरिमे द्विदिखंडए वट्टमाणस्स

**शंका**—स्त्रीवेदका जघन्य स्वामित्व कहते समय जिस प्रकार स्त्रीवेदक उदयको प्राप्त क्षपकको उसका स्वामी बतलाया है उसी प्रकार पुरुषवेदके उदयको प्राप्त क्षपकको पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि अपगतवेद कालके भीतर दो समय क्रम दं आचली प्रमाण काल जाकर जो पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी विद्यमान है उसे सवेद कहनेमें विरोध आता है ।

\* नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ?

§ ४४४. यह सूत्र सुगम है ।

क्षपक जीवके नपुंसकवेदके उदयके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

§ ४८५. शंका—क्षपक जीवके नपुंसकवेदके उदयके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति क्यों होती है ?

**समाधान**—जिसने नपुंसकवेद सम्बन्धी द्विचरम आदि सम्पूर्ण गुणश्रेणीके निषेकोंको गला दिया है और जिसने सवेद भागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिके साथ द्वितीय स्थितिमें स्थित नपुंसकवेदके समस्त निषेकोका पररूपसे संक्रमण कर दिया है उसके अन्तिम समयमें एक उदयरूप गोपुञ्छ पाया जाता है, अतः नपुंसकवेदके उदयके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

\* छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ।

§ ४४६. यह सूत्र सुगम है ।

\* छह नोकपायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके उनकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

§ ४४७. कुदो ? तत्थ संखेज्जवाससहस्समेत्तचरिमफालिद्विदीए उवलंभादो ।

§ ४४८. एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिंदिय०-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि० ओरालिय०-लोभकसाय०-चक्खु०-अचक्खु०-सुकुले०-भवसि०-आहारए त्ति । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जण्णद्विदिविहत्ती खवगस्स चरिमद्विदिसंखं गे वट्टमाणस्स ।

\* गिरयगईए षोरइएसु सम्मत्तस्स जहण्णाद्विदिविहत्ती करस्स ।

§ ४४९. सुगमं० ।

\* चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ४५०. कुदो ! मणुस्समिच्छाइद्विस्स तिव्वारंभपरिणामेहि गिरयगईए सह

§ ४४५. शंका—अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके छद् नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि वहाँ पर अन्तिम फालिकी संख्यात हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति पाई जाती है ।

§ ४४८. इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकपायी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, श्रुतलेश्यावाले, भव्य और आहारकके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तमे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके होती है ।

विशेषार्थ—मूलमे जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमे ओषके समान प्ररूपणा वन जाती है, अतः उनके कथनको ओषके समान कहा है । किन्तु मनुष्यपर्याप्तके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं होती, क्योंकि जो जीव स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है वही जीव स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमे एक सययवाली जघन्य स्थितिका स्वामी होता है । किन्तु जो पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है वह जीव जब स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी पुरुषवेदरूपसे संक्रमित करता है तब उसके स्त्रीवेदकी पत्यके अस्खंयातवें भागप्रमाण जघन्य स्थितिविभक्ति होती है इससे कम नहीं और इसलिये मनुष्य पर्याप्तको स्त्रीवेदकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिरूप जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामी कहा है ।

\* नरकगतियें नारकियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ।

§ ४४९. यह सूत्र सुगम है ।

\* जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है उसके दर्शनमोहनीयके क्षय करनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४५०. शंका—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

बद्धशिरयाउअस्स पच्छा तित्थयरपादमूलमुवणमिय सम्मचं घेत्तूण अंतोमुहुत्तावसेसे  
आएए अथापवत्तापुच्चाखियट्टिकरणणि कादूण मिच्छत्तसम्भामिच्छत्ताणि अणियट्टि-  
कालभंतरे खविय अणियट्टिकरणद्वाए चरिमसमयम्मि सम्मत्तचरिमट्टिदिखंडयचरिम-  
फालिं घेत्तूए उदयादिगुणसेडिसरूवेण घेत्तिय ट्टिदस्स कदकरणिज्जे त्ति सण्णा कया;  
सेसदंसणमोहक्खववणाविसयकज्जादो । तस्स काउलेस्सं परिणमिय पढमपुढवीए  
उपपज्जिय अथट्टिदिगलणाए चरिमगोवुच्छं मोत्तूण गलिदासेसगोवुच्छस्स एगसमय-  
कालेगट्टिदिदंसखादो ।

\* सम्भामिच्छत्तस्स जहण्णाट्टिदिविहृत्ती कस्स ?

§ ४५१, सुगमं ।

\* चरिमसमयउव्वेत्तमाणस्स ।

§ ४५२, कुदो ? सम्मादिट्टिणा मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मत्त-  
सम्भामिच्छत्ताणमुव्वेत्तणमाहविय पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्टिदिखंडयाणि  
जहाकमेण पाडिय उव्वेत्तिल्लिदसम्मयेण पुणो सम्भामिच्छत्तस्स पल्लिदो० असंखे०भाग-  
मेत्तट्टिदिखंडए पादिय चरिममुव्वेत्तणकंडयस्स चरिमफालीए पादिदाए समज्जणा-

समाधान—जो मिथ्यादृष्टि मनुष्य जीव तीव्र आरम्भरूप परिणामोंके द्वारा नरकगतिके  
साथ नरकायुका बन्ध करनेके अनन्तर तीर्थंकरके पादमूलको प्राप्त होकर और सम्यक्त्वको ग्रहण  
करके आयुके अन्तस्य हूतं शेष रहने पर अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिष्टतिकरणरूप  
परिणामोंको करके तथा अनिष्टतिकरणके कालके भीतर मिथ्यात्व और सम्भग्मिथ्यात्वका ज्ञय  
करके अनिष्टतिकरणके कालके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी अन्तिम स्थिति काण्डककी अन्तिम  
फालिको ग्रहण करके और उदयसे लेकर गुणश्रेणीरूपसे उसका निक्षेप करके स्थित है उसे  
कृतकृत्य यह संज्ञा प्राप्त होती, है क्योंकि इसका कार्य शेष दर्शनमोहनीयकी क्षपणा है। अनन्तर  
जिसने कापोतलेश्यासे परिखात होकर और पहली पृथिवीमें उत्पन्न होकर अधःस्थिति गलनाके  
द्वारा अन्तिम गोपुच्छको छोड़कर बाकीके समस्त गोपुच्छको गला दिया है उसके एक समय  
कालप्रमाण एक स्थिति देखी जाती है। अतः प्रतीत होता है कि नारकीके दर्शनमोहनीयकी  
क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

\* नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४५१ यह सूत्र सुगम है ।

\* सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४५२. शंका—उद्वेलनाके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

समाधान—कोई एक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहां अन्तमूर्हूतं काल तक  
रहकर उसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका आरम्भ करके पत्योपमके अर्संख्यातवें  
भाग प्रमाण स्थितिकाण्डकोंका यथाक्रमसे पतन करके सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर ली। पुनः उसके  
सम्यग्मिथ्यात्वके पत्योपमके अर्संख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति काण्डकोंका पतन करके अन्तिम

वलियमेत्तगोबुच्छाओ चिट्ठंति । पुणो तासु दुसमऊणावलियमेत्तासु अबट्टिदिगल-  
णाए गालिदासु दुसमयकालेगणसेयट्टिदिदंसणादो ।

\* अणंताणुबंधीणं जहण्णाट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४५३. सुगमं० ।

\* जरस्स विसंजोइदे दुसमयकालट्टिदियं सेसं तरस्स ।

§ ४५४. सुगममेदं; ओघम्मि परुविदत्तादो ।

\* सेसं जहा उदीरणाए तहा कायव्वं ।

§ ४५५. एदस्स अत्थो बुच्चदे-मिच्छत्त-वारसकसाय-भय-दुग्गुञ्जाणं जहण्णाट्टिदि-  
विहत्ती कस्स ? जो असण्णिपंचिदिओ सागरोवमसहस्समेत्तउक्कस्सट्टिदिवंधादो पल्लिदो-  
वमस्स संखेज्जदिभागेण जहाऊणं होदि उक्कस्सट्टिदिसंतकम्मं तहा घादिय जहण्णाट्टिदि-  
संतं करिय पुणो जहण्णासंतदो हेट्ठा अंतोमुहुत्तकालं संखे० भागहीणं पुव्वं वंधमाणो  
अच्छिदो जहण्णाट्टिदिसंतकदसमए चेव जहण्णाट्टिदिसंतसमाणं वंधिय तदो से काले  
जहण्णाट्टिदिसंतं बोलेदूण वंधिहिदि त्ति तावणियरगदीएदुसमयविग्गहं काऊण णेरइ-  
एमुअवण्णो तत्थ दोसु वि विग्गहसमएसु असण्णिपंचिदियट्टिदिं चेव वंधदि असण्णि-

उद्वेलना काण्डकी अन्तिम फालिके पतन करने पर एक समय कम आवलिप्रमाण गोपुच्छ शेष  
रहते हैं । पुनः उसके दो समय कम आवलिप्रमाण उन गोपुच्छोंके अघःस्थितिगलनाके द्वारा  
गला देने पर एक निपेककी दो समय कालप्रमाण स्थिति देखी जाती है । इससे प्रतीत होता  
है कि अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

\* नारकियोंमें अनन्तानुबन्धितुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके  
होती है ?

§ ४५३ यह सूत्र सुगम है ।

\* विसंयोजना करने पर जिस नारकीके अनन्तानुबन्धीकी दो समय काल  
प्रमाण स्थिति शेष है उसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ४५४ यह सूत्र सरल है, क्योंकि इसका कथन ओघपरूपणमें कर आये हैं ।

⊕ नारकियोंके उपर्युक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति जिस प्रकार उदीरणामें होती है उस प्रकार कहनी चाहिये ।

§ ४५५. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति किस नारकाके होती है ? जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट  
स्थितिवन्धमे से पल्योपमका संख्यातर्वो भागप्रमाण कम जिस प्रकार होवे उस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति  
सत्कर्मका घात करके जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करता है । तथा जघन्य स्थिति सत्कर्मके  
नीचे पहले अन्तमुहूर्त कालतक पल्योपमके संख्यातर्वे भाग प्रमाण कम स्थितिको बांधता  
हुआ स्थित है पुनः जघन्य स्थितिसत्त्वके होनेके समय ही जघन्य स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको  
बांधकर उसके अनन्तर कालमें जब जघन्य स्थितिसत्त्वको उल्लंघनकर बांधेगा तब दो समयका  
विग्रह करके नरकगतिमें नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । पर वहां विग्रहके दोनों ही समयोंमें असंज्ञी

पंचिदियपच्छायदस्स सण्णिपंचिदियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय अगहिदसरीरस्स अंतोकोडा-  
कोट्टिद्विदिवंधयणसचीए अभावादो । तत्थ दोसु विग्गहसमएसु असण्णिपंचिदियजहण-  
द्विदिसंतदो सरिसमहियमूणं पि बंधदि । तत्थ एसो जहण्णद्विदिसंतदो हेद्दा बंधा-  
वेदव्वो । एवं बंधिय विदियविग्गहे वट्टमाणस्स मिच्छत्त-वारसकसाय-भय-दुग्गुळाणं जहण-  
द्विदिविहत्ती । एवरि मिच्छत्तस्स सागरोवमसहस्सं पत्तिदो० संखे० भागेण्णं ।  
सेसार्णं सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागा पत्तिदो० संखे० भागेण्णया । सरीरे  
गहिदे जहण्णसामिच्चं किण्ण दिज्जदि ? ए, तत्थ अंतोकोडाकोडिसागरोवममेत्तद्विदि-  
बंधुवल्लंभादो । सत्तणोकसायाणमेवं चेव । एवरि असण्णिपंचिदियचरिमसमए सागरो-  
वमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागा पत्तिदो० संखेज्जदिभागेण्णो बंधावल्लियादिककंत-  
समए चेव कसायद्विदिसंतकम्मं असण्णिपंचिदियपाओग्गजहण्णे पडिच्छिय पुणो तथेव  
बंधवोच्छेदं करिय एिएसुप्पणपढमसमयप्पहुडि पडिवक्खपयडीओ बंधाविय पुणो  
अप्पण्णो पडिवक्खपयडिवंधगद्दाणं चरिमसमए जहण्णद्विदिविहत्तिसामिच्चं होदि ।  
तिरिक्खगहपडिवक्खपयडिवंधगद्दाओ तिरिक्खेसु चेव मालिय णेरइएसुप्पणपढमसमए

पंचेन्द्रियकी स्थितिको ही बांधता है क्योंकि जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायसे आकर संज्ञी  
पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके शरीर ग्रहण करनेके पूर्वसमय तक अन्तःकोडाकोडी, स्थितिके  
बन्ध करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती है । फिर भी वहाँ विग्रहके दो समयोंमें असंज्ञी पंचेन्द्रियके  
जघन्य स्थितिसत्त्वके समान या उससे हीन या अधिक स्थितिका भी बन्ध करता है पर इसके  
जघन्य स्थितिसत्त्वसे हीन स्थितिका बन्ध कराना चाहिये । इस प्रकार बांधकर जो दूसरे विग्रहमें  
स्थित है उस नारकीके मिथ्यात्व, धारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती  
है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति पत्यके संख्यातवें भागसे न्यून  
हजार सागरप्रमाण होती है । तथा शेष कर्माँकी हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमक  
संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण होती है ।

शंका--जिस नारकीने शरीरको ग्रहण कर लिया है उसे जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों  
नहीं कहा ?

समाधान--नहीं, क्योंकि नारकीयोंके शरीरके ग्रहण करने पर अन्तः कोडाकोडी सागर-  
प्रमाण स्थितिवन्ध पाया जाता है ।

सात नोकषायोंको जघन्य स्थितिबिभक्ति इसी प्रकार होती है । किन्तु इतनी विशेषता है  
जिसने असंज्ञी पर्यायके रहते हुए एक हजारके सात भागोंमेंसे पत्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून  
चार भाग प्रमाण कषायकी जघन्य स्थितिका बन्ध किया । पुनः बन्धावलिप्रमाण कालके ज्यतीत  
होनेके परचात् तदनन्तर समयमें ही असंज्ञी पंचेन्द्रियके योग्य कषायके जघन्य स्थितिसत्त्वके  
विघ्नित नोकषायमें संक्रमण किया पुनः जो उस विघ्नित प्रकृतिकी वहीं असंज्ञी पंचेन्द्रिय  
पर्यायके अन्तिम समयमें बन्धव्युच्छित्ति करके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । वह यदि वहाँ उत्पन्न  
होनेके पहले समयसे लेकर प्रतिपद् प्रकृतियोंको बांधता है तो उसके अपनी-अपनी प्रतिपद्  
प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबिभक्तिका स्वामित्व प्राप्त होता है ।

शंका--तिर्यचगति सम्बन्धी प्रतिपद् प्रकृतियोंके बन्धकालको तिर्यचोंमें ही धिताकर जो



जहण्णाट्टिसामिचं किण्ण दिज्जदि ? ए, तिरिक्खगइ पडिक्खक्खं गद्धाहिं तो एयरयगइ पडिक्खक्खं धगद्धाएवं बहुवत्तादो । तेसिं बहुअरां कुदो एण्वदे ? एदम्हादो चैव जहण्णसामिचु चारणादो । एवं पढमपुढविदेव० भवण० वाण० देवे त्ति । णवरि भवण० वाण० सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो ।

❀ एवं सेसासु गदीसु अणुमग्गिदव्वं ।

§ ४५६. एवं जइवसहाइरिएण सूचिदअत्थस्स उच्चारणाइरियक्खणां वत्तइस्सामो । ओथो ण वुच्चदे सुण्णिमुत्तोए परुविदत्तादो भेदाभावादो च ।

§ ४५७. विदियादि जाव छट्टि त्ति मिच्छत्त-वारसकसाय-एवणोक्क० ज० कस्स ? अण्णदरस्स जो उक्कस्साउट्टिदीए उववण्णो अंतोमुहुत्तेण पढमसम्मचं पडि-वज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुवंधिचउक्कं विसंजोइय सम्मत्तेणेव अप्पप्पणो उक्कस्साउअमखुपालिय चरिमसमयणिप्पिदमाणसम्मादिट्ठी तस्स जहण्णाट्टिदिविहत्ती । सम्मामि०-अणंताणु०४ एरिअोधं । सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो ।

नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही विवक्षित प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका स्वामित्व क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तिर्थचगति सन्वन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके वन्धनकालसे नरकगति सन्वन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका वन्धक काल बहुत है ।

शंका—नरकगति सन्वन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका वन्धकाल बहुत है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी जघन्य स्वामित्वसन्वन्धी उच्चारणसे जाना जाता है ।

इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । अर्थात् भवनवासी और व्यन्तर देवोंके सम्यक्त्वकी उद्वेगनाके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

❀ इसी प्रकार शेष गतियोंमें विचार कर समझना चाहिये ।

§ ४५६. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित अर्थका जो उच्चारण आचार्यने व्याख्यान किया है, उसे बताते हैं फिर भी यहाँ पर उच्चारण आचार्यके द्वारा कहे गये ओषका कथन नहीं करते हैं, क्योंकि उसका कथन चूर्णसूत्रके द्वारा किया जा चुका है तथा उससे इसमें कोई भेद भी नहीं है ।

§ ४५७. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवीतक मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायों की जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको लेकर द्वितीयादिक पृथिवियोंमें उत्पन्न हुआ है और अन्तमुहूर्त कालके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः अन्तमुहूर्त कालके द्वारा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके सम्यक्त्वके साथ ही अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुका पालन करके नरकसे निकला है उस सम्यग्दृष्टिके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति विभक्ति होती है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति-विभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है । तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

§ ४५८. सचमाए पुढवीए मिच्छन्न-वारसक० जह० कस्स ? अण्ण० जो उक्क-साउद्धिदिं बंधिय सचमाए उववएणो । पुणो अंतोमुहुचोए सम्मत्तं पडिवज्जिय अवरेण अंतोमुहुत्तेण अणताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय थोवावसेसे जीविए मिच्छन्नं गदो । मिच्छ-चोण जावदि सक्कं तावदियकालं द्विदिसंतकम्मस्स हेइदो बंधिय समद्धिदिं बोलेहदि चि तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । भयदुगुंझाणमेवं चेव । एवरि समद्धिदिं बंधिय आवलि-याइक्कंतस्स तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । सत्तणोक्क० एवं चेव । णवरि पडिवक्खबंधगद्धाओ बंधाविय तेसिं चरिमसमए वट्ठंतस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि०-अण-ताणु० उववकाणं विदियपुढविभंगो ।

§ ४५९. तिरिक्खेसु मिच्छन्न-वारसक० ज० कस्स ? अण्ण० जो वादरएइदियो जहासत्तीए द्विदिघादं कादूण जावदियं सक्कं तावदियं कालं द्विदिसंतकम्मस्स हेइा बंधिय समद्धिदिवंधं से काले बोलेहदि द्वा तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । भय-दुगुंझाणमेवं चेव । णवरि समद्धिदिवधादो आवल्लियाइक्कंतस्स । सत्तणोक्कसाय० जह० कस्स ? अण्ण० जो वादरेइदियो समद्धिदिवंधमाणकाले पंचिदियतिरिक्खेसु उववण्णो दीहपडि-वक्खबंधगद्धामेचद्विदिगालणट्ठं अंतोमुहुचोण अप्पणो पडिवक्खबंधगद्धाणचरिमसमए

§ ४५८. सातवी पृथिवीमें मिथ्यात्व और वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको बाँधकर सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ है । पुनः अन्तमुं हूतं कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर एक दूसरे अन्तमुं हूतंके द्वारा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके जीवितके थोड़ा शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वमे जितने कालतक शक्य हो उतने कालतक स्थितिसत्कर्मसे कम स्थितिका बन्ध करके जो अगले समयमें सत्त्वस्थितिसे अधिक बन्धस्थिति करेगां उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । भय और जुगुप्साकी इसी प्रकार जाननी चाहिये । इतनी विशेषता है कि समान स्थितिको बाँधकर एक आवलीप्रमाण काल-को अतिक्रान्त करनेवाले जीवके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । सात नोकषायोंकी इसी प्रकार जाननी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धक कालतक उन्हें बाँधाकर उनके अन्तिम समयमे रहनेवाले जीवके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । यहाँ सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका संग दूसरी पृथिवीके समान है ।

§ ४५९. तिर्यचोमें मिथ्यात्व और वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो कोई वादर एकेन्द्रिय जीव शक्यनुसार स्थितिघात करके जितने कालतक शक्य हो उतने कालतक स्थितिसत्कर्मसे हीन नवीन स्थितिको बाँधकर अनन्तर समयमें समान स्थितिबन्धको उल्लंघन करेगा उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । भय और जुगुप्साकी इसी प्रकार जाननी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि समान स्थितिबन्धके बाद जिसने एक आवली काल व्यतीत कर दिया है उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक वादरएकेन्द्रिय जीव स्थितिसत्त्वके समान स्थितिबन्धके होनेके समय पंचेन्द्रिय तिर्यचोमें उत्पन्न हुआ । पुनः दीर्घ प्रतिपन्न बन्धक कालप्रमाण स्थितियोंको गलानेके लिये अन्तमुं हूतं कालतक अपने-अपने प्रतिपन्न बन्धककालमें रहकर प्रतिपन्न बन्धककाल-

जो बट्टमाणो तस्स जहण्णट्टिदिविहृत्ती । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं णिरओघं ।

§ ४६०. पंचिदियतिरिक्ख - पंचि०तिरिक्खपज्ज - पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छन्न-बारसक०-भय-दुगुंळायां ज० कस्स ? अण्ण० जो वादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तिय-कम्मणेण पंचिदियतिरिक्खेसु उववण्णो तस्स पढमविदियविग्गहे बट्टमाणस्स जहण्ण-ट्टिदिविहृत्ती । सम्मत्त०-सम्मामिच्छन्न०-अणंताणु०चउक्काणं तिरिक्खोघं । सत्तणोक० ज० कस्स ? अण्ण० जो वादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तियकम्मणेण पंचिदियतिरिक्खेसु उव-वण्णो एवमुववज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय से काले अप्पणो बंधमाढविहृदि ति तस्स जहण्णट्टिदिविहृत्ती । एवरि पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्तस्स सम्मामिच्छन्न-भंगो । पंचि०तिरि०अपज्ज० पंचि०तिरि०जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्कस्स मिच्छन्नभंगो । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगळिदिय-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्जने ति ।

§ ४६१. मणुसिणीसु अट्टणोक० ज० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिखवयस्स चरिमट्टिदिखंडए बट्टमाणस्स जहण्णट्टिदिविहृत्ती । सेसमोघं ।

§ ४६२. जोइसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जो ति मिच्छन्न० ज० कस्स ? अण्ण० जो दो वारे कसाए उवसायेदूण चउवीसंतकम्मिओ

के अन्तिम समयमे जो विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मि-थ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है ।

§ ४६०. पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक वादर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्ति कर्मके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यचोमे उत्पन्न हुआ । पहले और दूसरे विग्रहमें विद्यमान उस जीवके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य तिर्यचोके समान है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक वादर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यचोमे उत्पन्न हुआ । वहाँ इस प्रकार उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहुत्त कालतक वहाँ रहकर तदनन्तर कालमे अपने बन्धका आरम्भ करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यचोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये ।

§ ४६१. मनुष्यनियोंमें आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान किसी अनिवृत्तिकरण क्षणके होती है । शेष कथन ओघके समान है ।

§ ४६२. ज्योतिपियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? दो बार कषायोंको

उक्कस्साउट्टिदिएसु अप्पण्णो विमाणेसु उववज्जिय चरिमसमयणिण्फिदमाणो तस्स जहण्णट्टिदिविहती । सम्मत्त-सम्मामि० अणंताणु० चउक्काणं शिरओघभंगो । वारसक०-णवणोक्क० ज० कस्स ? अण्ण० जो संजदो जहासंभवेण उवसमसेहिं चडिय हेडा ओयरिख दंसणमोहणीयां खविय उक्कस्साउएण अप्पण्णो विमाणेसु उववणो तस्स चरिमसमयणिण्फिदमाणस्स जहण्णट्टिदिविहती । अणुदिसादि जाव सव्वट्टे चि एवं चेव । णवरि सम्मामि० मिच्छत्तभंगो ।

§ ४६३. एइंदिएसु' मिच्छत्त-वारसकसाय-भय-दुगुंझा-सम्मामिच्छत्ताणं तिरिक्खोघं । अणंताणु० चउक्क० गिच्छत्तभंगो । सत्ताणोक्क० ज० कस्स ? जो एइंदिओ हदसमुप्पत्तियं कादूण समट्टिदिं बांधिय अंतोमुहुत्तमच्छिय से काले अप्पण्णो बंधमाढवेहदि चि तस्स जहण्णट्टिदिविहती । सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं सव्वएइंदिय-पंचकाए चि ।

§ ४६४. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्त-भंगो । वेउच्चिय० सोहम्मभंगो । णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो ।

§ ४६५. वेउच्चियमिस्स० मिच्छत्त० ज० कस्स ? अण्ण० जो जहासंभवेण

उपशमा कर जो कोई जीव चौबीस कर्मोंकी सत्तावाला होता हुआ एकदृष्ट आयुका लकर अपने अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य नारक्तियोंके समान है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई संयत यथासंभव उपशमश्रेणी पर चढ़कर और नीचे उतर कर तथा-दर्शनमोहनीयका काय करके एकदृष्ट आयुके साथ अपने अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यग्मिध्यात्वका भंग मिध्यात्वके समान है ।

§ ४६३ एकेन्द्रियोंमें मिध्यात्व, वारह कषाय, भय, जुगुप्सा और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य तिर्यचोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिध्यात्वके समान है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो एकेन्द्रिय हतसमुत्पत्तिक होकर, समान स्थितिको बांधकर और अन्तमुहूर्त काल तक रह कर तदनन्तर समयमें अपने अपने वन्धको आरम्भ करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय और पांच स्थावरकाय जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ४६४ औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य तिर्यचोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिध्यात्वके समान है । वैक्रियिक काययोगमें सौधर्मके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इसमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है ।

§ ४६५. वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती

उवसमसेहिं चडिदूए देवेसु उववण्णो से काले सरीर पज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स जहण्ण-  
द्विदिविहत्ती । अणंताणु० चउक्क० ज० कस्स ? अण्ण० जो अट्ठावीससंतकम्मिओ  
संजदो देवेसुववण्णो से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।  
वारसक०-भय-दुगुंछ० मिच्छत्तभंगो ' एव्वरि खइयसम्माइट्ठी देवेसु उप्पाएदव्वो ।  
सम्मत्त-सम्मामि०-सत्तणोक्क० पढमपुढविभंगो ।

§ ४६६. आहार० मिच्छत्त-सप्त-सम्मामि० ज० कस्स ? अण्ण० जो चउवीस-  
संतकम्मिओ चरिमसमयआहारसरीरो तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । एवं वारसक०-एव-  
णोक्क० । एव्वरि खइयसम्मादिट्ठिस्स वत्तव्वं । अणंताणु० ४ ज० कस्स ? अण्ण०  
अट्ठावीससंतकम्मियस्स । एवमाहारमिस्स० । एव्वरि से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति  
तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।

§ ४६७. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० ज० कस्स ? अण्ण०  
जो वादरेइंदिओ हदसमुत्पत्तियकम्मएण विदियं विग्गहं गदो तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ओघं । एव्वरि सम्मामि० उव्वेत्तलणाए कायव्वं ।

§ ४६८. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे मणुस्सिसणीभंगो । एव्वरि सत्तणोक्क०-चत्तारि

है ? जो यथासंभव उपशमश्रेणी पर चढ़कर देवोंमें उत्पन्न हुआ और तदनंतर कालमें शरीर पर्याप्ति  
को प्राप्त होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति  
विभक्ति किसके होती है ? अट्ठाईस सत्कर्मवाला जो कोई एक संयत जीव देवोमें उत्पन्न होकर तदनंतर  
समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इनके बारह कपाय,  
भय और जुगुप्साका भंग मिथ्यात्वके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति कहते समय न्यायिक सम्यग्दृष्टि जीवको देवोंमें उत्पन्न करना चाहिये । तथा  
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकपायोंका भंग पहली पृथिवीके समान है ।

§ ४६६. आहारककाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो चौबीस सत्कर्मवाला जीव आहारकशरीरी हुआ उसके  
अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार बारह कपाय और नौ नोकपायोंका  
कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति न्यायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीवके कहनी चाहिये । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती  
है ? अट्ठाईस सत्कर्मवाले किसी एक जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति  
होती है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
जो तदनंतर कालमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४६७. कर्मण काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक बाहर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ  
द्वितीय विग्रहको प्राप्त हुआ है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसके सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्य-  
ग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति उद्धेलनामे कहनी चाहिये ।

§ ४६८. वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें मनुष्यनीके समान भंग है । किन्तु इतनी

संजलण० जह० कस्स ? अण्ण० अणियद्विखवयस्स सवेदचरिमसमए वट्टमाणस्स जहण्णद्विदिविहती । एवं णवुंस० । एवरि इत्थिवेद० चरिमद्विदिविहतीए वट्टमाणस्स । पुरिस० पंचिंदियभंगी । एवरि चत्तारिसंजलण-पुरिस० ज० कस्स ? अण्ण० सवेद-चरिमसमए वट्टमाणस्स जहण्णद्विदिविहती । इत्थि-एवुंस० ज० कस्स ? अण्ण० अणियद्विखवयस्स चरिमद्विदिविहतीए वट्टमाणस्स । अत्रगद० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० ज० कस्स ? अण्ण० जो चउवीससंतकम्मिओ उवसमसेदिमारुहिय औयरमाणो से काले सवेदो होहदि ति तस्स जहण्णद्विदिविहती । एवमद्वकसाय-इत्थि०-णवुंस० । णवरि खईय० दिद्विस्स वत्तव्वं । सत्तणोक्क०-चत्तारिसंज० ओघं ।

§ ४६९, कसायाणुवादेण कोधक० ओघं । एवरि अणियद्विम्मि चरिमसमय-कोधकसायम्मि चट्टुणं संजलणाणं जहण्णद्विदिविहती । एवं माण० । एवरि तिण्हं संजलणाणं चरिमसमयमाणवेदयस्स जहण्णद्विदिविहती । एवं माय० । णवरि दोण्हं संजलणाणं चरिमसमयमायवेदयस्स जहण्णद्विदिविहती । अकसा० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० जह० क० ? अण्ण० चउवीससंतकम्मिओ जो से काले सकसाओ

विशेषता है कि सात नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सवेद भागके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपकके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदीके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान जीवके खीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । पुरुषवेदीके पंचेन्द्रियके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि चार संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सवेद भागके अन्तिम समयमें विद्यमान किसी जीवके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपकके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? चौबीस सत्कर्म वाला जो कोई जीव उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उतरता हुआ तदनन्तर कालमें सवेदी होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार आठ कषाय, खीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थितिविभक्ति त्रायिकसम्यग्दृष्टिके कहेनी चाहिये । तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है ।

§ ४६६, कषायमार्गाणाके अनुवादसे क्रोधकषायमें जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनिवृत्तिकरणमें क्रोध कषायके अन्तिम समयमें चार संज्वलनों की जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार मानकषायमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मानवेदके अन्तिम समयमें तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार माया कषायमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मायावेदके अन्तिम समयमें दो संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अकषायी जीवमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक जीव चौबीस

होहदि त्ति तस्स जह० द्विदिविहत्ती । एव वारसक०-एवणोक्क० । एववि खइय०दिद्वीसु वत्तच्चं । एवं जहाक्खाद० ।

§ ४७०. मदि-सुदअण्णाणीणं त्तिरिक्खोघं । एववि सम्मत्ता-अणंताणु०चउक्क० एइ'दियभंगो । एवमसण्णि० । विहंगयाणीसु मिच्छत्त०-सोलसक०-एवणोक्क० ज० कस्स ? अण्णद० जो उव्वरिमगेवज्जम्मि मिच्छत्तं गदो चरिमसमयणिप्पिदमाणओ तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । सम्मत्ता०-सम्मामि एइ'दियभंगो ।

§ ४७१. आभिण्णि०-सुद०-ओहि० ओघं । एववि सम्मामि० जह० खवणाए दायच्चं । एवं संजद०-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठि त्ति । मएपज्जव० एव चेव । एववि इत्थि०-एवणु'स० पुरिस०भंगो ।

§ ४७२. सामाइय-छेदो० ओहिभंगो । एववि लोहसंजल० जह० कस्स ? अण्ण० चरिमसमयम्मि अण्णियट्ठिकववयस्स । परिहार० मिच्छत्ता-सम्मत्ता-सम्मामि०-अणंता-णु०चउक्क० ओहिभंगो । वारसक०-एवणोक्क० जह० क० ? जो खइयसम्मादिद्वी जहासंभवेण उव्वसमसेट्ठिं चट्ठिय ओयरिय परिणामपच्चएण परिहार० जादो से काले सत्कर्मवाला तदनन्तर कालमे सकपायी होगी उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार चारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके कहनी चाहिये । इसी प्रकार यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये ।

§ ४७०. मत्थज्ञानी और श्रुताज्ञानीके सामान्य तिर्यचोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति एकेन्द्रियोंके समान होती है । इसी प्रकार असंज्ञी पचेन्द्रियके जानना चाहिये । विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक उपरिमग्रैवेयकमे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

§ ४७१. आभिनिबोधकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति केवल क्षणके कहनी चाहिये । इसी प्रकार संयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनः पर्ययज्ञानमें भी इसी प्रकार कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके स्वीवेद और नपुंसकवेदका भंग पुरुषवेदके समान है ।

§ ४७२. सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें अवधिज्ञानके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी अनिच्छित्ति-करण क्षणक जीवके अन्तिम समयमें लोभ संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । परिहार विच्छुद्धिसंयममे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति अवधिज्ञानियोंके समान होती है । तथा चारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव यथायोग्य उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उतरकर परिणामोंके अनुसार परिहारविच्छुद्धिसंयत हो गया और तदनन्तर कालमे क्षणक

खवगसेदिअभिमुहो होहदि चि तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । एवं संजदामंजद० ।  
णवरि से काले संजं पडिवज्जिदूण अंतोमुहुत्तेण सिज्भहिदि चि तस्स जहण्णद्विदि-  
विहत्ती । सुहुमसांपराइय० अकसाइमंगो । णवरि लोभसंजल० ओघं । असंजद०  
तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त०-सम्मामि० ओघं ।

§ ४७३. तिण्णाले० तिरिक्खोघं । णवरि किण्ह-णील्लेस्सासु सम्भत्त०  
सम्मामिच्छत्तमंगो । अणंताणु०चउक्क० ओघं । सेसलेस्साणं परिहार०मंगो । अभव०  
छब्बीसपयडीणं मदिअण्णाणिभगो ।

§ ४७४. खइय० एककवीस० ओहिमंगो । वेदयसम्मादि० मिच्छत्त-सम्मामि०  
अणंताणु०चउक्कं ओघं । णवरि सम्मायि० उव्वेन्लणाए णत्थि । सम्भत्त-वारसक०-  
णवणोक्क० ज० कस्स ? अण्ण० चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ४७५. उवसम० मिच्छत्त-सम्भत्त-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक्क० जह०  
क० ? अण्ण० जहासंभवेण उवसमसेदिं चडिय सच्चुक्कससंतोमुहुत्तद्धमच्छिय से  
काले वेदगं पडिवज्जिहदि चि तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । अणंताणु०चउक्क० ज०  
श्रेणीके सम्मुख होगा उस परिहारविशुद्धिसंयतके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार  
संयतासंयतोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जो संयतासंयत तदनन्तर कालमें  
संयमको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सिद्ध होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।  
सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके कपायरहित जीवोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । किन्तु  
इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंभवलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है ।  
असंयतोंके सामान्य तिर्यचोंके समान सब कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये । किन्तु  
इतनी विशेषता है, कि इनके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके  
समान है ।

§ ४७६. कृष्णादि तीन लेश्याओंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती  
है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीललेश्यामें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान  
है । तथा अनन्तालुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान है । शेष लेश्याओंमें  
जघन्य स्थितिविभक्ति परिहारविशुद्धि संयमके समान है । अभन्गोंमें छत्रवीस प्रकृतियोंकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति मत्त्यज्ञानियोंके समान है ।

§ ४७७. चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इकोस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति अवधिज्ञानियोंके  
समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तालुवन्धी चतुष्ककी जघन्य  
स्थितिविभक्ति ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति उद्वेजनामें नहीं होती, क्योंकि यहाँ उसकी उद्वेजना संभव नहीं है । सम्यक्त्व, वारह  
कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जिसने दर्शनमोहनीयका  
ज्ञान नहीं किया है ऐसे किसी जीवके दर्शनमोहनीयके ज्ञान होनेके अन्तिम समयमें उक्त प्रकृतियोंकी  
जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४७८. उपशमसम्यक्त्वमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ  
नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? यथासंभव जो कोई जीव उपशमश्रेणी पर  
चढ़कर और सबसे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहकर तदनन्तर समयमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होगा



कस्स ? अण्ण० दंसणमोहउवसामयस्स से काले वेदयं पडिवज्जहिदि त्ति तस्स ज० द्विदिविहत्ती । अथवा विसंजोएमाणस्स एयद्विदिदुसमयकालमेचे सेसे ।

§ ४७६. सासण० सन्वपयडीणं जहण्ण कस्स ? अण्ण० जो चारित्तमोहउव-  
सामओ सासणं पडिवण्णो से काले मिच्छं गाहदि त्ति तस्स ज० द्विदिविहत्ती ।  
सम्मामिच्छा० मिच्छत्त-वारसक०-एवणोको ज० कस्स ? अण्ण० चउवीससंतकम्मियस्स  
सम्मामिच्छं पडिवण्णस्स चरिमसमयसम्मामिच्छादिद्विस्स । सम्मत्त-सम्मामि० जह०  
कस्स ? अण्ण० सागरोवमपुधत्तसंतकम्मोण सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय जो चरिमसमय-  
सम्मामिच्छादिदी जादो तस्स० जह० विहत्ती । अण्णंताणु० चउक्क० ज० कस्स ?  
अण्ण० अट्टावीससंतकम्मिओ चरिमसमयसम्मामिच्छादिदी तस्स ज० विहत्ती ।  
मिच्छादि० एइ दियभंगो । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

❀ [ कालो । ]

§ ४७७. कालाणुगमणे दुविहो षिहसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण—

उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? दर्शनमोहनीयका उपशमक जो कोई जीव तदनन्तर कालमे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होगा उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । अथवा विसं-  
योजना करनेवाले जीवके एकस्थितिके दो समय कालप्रमाण शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ४७६. सासादन सम्यक्त्वमे सव प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? चारित्रमोहनीयकी उपशमना करनेवाला जो कोई जीव सासादनको प्राप्त हुआ है और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होगा उसके सव प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । सम्यग्-  
मिथ्यात्वमे मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ लोकषायोकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो कोई चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम समयमे उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? सागरपृथक्त्वप्रमाण सत्कर्मवाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जो अन्तिम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि है उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । मिथ्यादृष्टिके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । अनाहारकोंके कार्मणकाययोगियोंके समान भंग है ।

इस प्रकार स्वामित्वाणुगम समाप्त हुआ ।

❀ कालका अधिकार है ।

§ ४७७. कालाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा—

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४७८. एत्थ मिच्छत्ताग्गहणेण सेसपयडिपडिसेहो कदो । उक्कस्सग्गहणेण जहण्णट्ठिदिपडिसेहो कदो । सेसं सुग्गमं ।

❀ जहणणेण एगसम्मओ ।

§ ४७९. कुदो ? एगसमयमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय विदियसमए पडिहग्गस्स उक्कस्सट्ठिदीए एगसमयकालुवलंभादो । विदियसमए ट्ठिदिखंडयघादेए विणा कथमुक्कस्सत्तं फिट्ठिदि ? ए अघट्ठिदिगलणाए एगसमए गलिदे उक्कस्सत्ताभावादो । उक्कस्सट्ठिदिसमयपवद्धस्स एगो वि णिसेगो ए गलिदो; सत्तवाससहस्समेत्तआवाहाए उवरि तस्स अवहाणादो । गलिदिणिसेगो वि चिराणसंतकम्मस्स । तम्हा जाव ट्ठिदिखंडओ ए पददि ताव उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेए होद्वमिदि ? ण एस दोसो, जहण्णट्ठिदिअद्दाच्छेदो णिसेगपहाणो । तं कथं एण्वदे ? कोधसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिअद्दाच्छेदो वेमासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति सुत्तणिहेसादो । उक्कस्सट्ठिदी पुण कालपहाणां तेण णिसेगेण विणा एगसमए गलिदे वि उक्कस्सत्तं फिट्ठिदि । तदो जहण्णकालस्स सिद्धमेगसमयत्तं ।

\* मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ ४७८-यहाँ सूत्रमें मिथ्यात्व पदके ग्रहण करनेसे शेष प्रकृतियोंका निषेध कर दिया है । उत्कृष्ट पदके ग्रहण करनेसे जघन्य स्थितिका निषेध कर दिया है । शेष कथन सुगम है ।

\* जघन्य काल एक समय है ।

§ ४७९. शंका—जघन्य काल एक समय क्यों है ।

समाधान—क्योंकि एक समयतक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संकलेशसे च्युत प्राप्त हुए जीवके उत्कृष्ट स्थितिका एक समय प्रमाण काल पाया जाता है ।

शंका—दूसरे समयमें स्थितिका षडकघातके बिना स्थितिके उत्कृष्टत्वका नाश कैसे हो जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक समयके गल जाने पर स्थितिमें उत्कृष्टत्व नहीं रहता ह ।

शंका—उत्कृष्टस्थितिप्रमाण समयप्रवद्धका एक भी निषेध नहीं गला है, क्योंकि सात हजार वर्षप्रमाण आत्राधाके बाद निषेध पाया जाता है और जो निषेध गला भी है वह सत्तामे स्थित प्राचीन सत्कर्मका है अतः जबतक स्थितिका षडकका पतन नहीं होता है तबतक उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जघन्य स्थितिअद्दाच्छेद निषेकप्रधान है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्रोध संव्यलानका जघन्य स्थितिअद्दाच्छेद अन्तमुहूर्त कम दो महीना प्रमाण है इस सूत्रके निर्देशसे जाना जाता है । किन्तु उत्कृष्ट स्थिति कालप्रधान है, इसलिये निषेकके बिना एक समयके गल जाने पर भी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्टत्वका नाश हो जाता है, अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय है यह बात सिद्ध होजाती है ।

\* उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ४८०. कुदो ? दाहद्विदि वंधमाणो उक्त्सेदाहं गंतूण उक्त्सेद्विदि वंधदि; तिसो वंधकालस्स उक्त्सेण अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो ।

\* एवं सोलसकसायाणं ।

§ ४८१. मिच्छत्सेव सोलसकसायाणमुक्त्सेद्विदिकालो जहणेण एगसमजो,

विशेषार्थ—यहां मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जघन्य रूपसे कितने काल तक पाई जाती है इसका विचार किया है। बात यह है कि जब कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिके वन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर विद्युद्धि को प्राप्त होने लगता है तो उसके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व एक समय तक देखा जाता है; क्योंकि दूसरे समयमें उसमेंसे एक समय कम हो जाता है, इसलिये उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता है। इस विषयमें शंकाकारका कहना यह है कि एक तो स्थितिकाण्डकघातसे स्थिति कम होती है और दूसरे प्रथमादि निषेकोके गल जानेसे स्थिति कम होती है। किन्तु मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्ध होनेके दूसरे समयमें न तो उसका स्थितिकाण्डकघात ही होता है; क्योंकि वन्धाग्रलि सकल करणोंके अयोग्य होती है ऐसा नियम है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आवाधाकाल सात हजार वर्ष है और आवाधाकालमें निषेक रचना नहीं होती, अतः सात हजार वर्षके समयोंको छोड़ कर ही प्रथमादि निषेकों का सद्भाव पाया जाता है। यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय और वादमें निषेक गलते हैं पर वे नवीन स्थितिवन्धके न होकर प्राचीन सत्कर्म के होते हैं, अतः जिस समय मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है उस समय उसकी उत्कृष्ट स्थितिका न तो स्थितिकाण्डक घात ही हो रहा है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं यह सच है, फिर भी उत्कृष्ट स्थिति निषेकप्रधान न होकर कालप्रधान होती है, अतः दूसरे समयमें सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर में से एक समय कम होजानेके कारण उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता। हां जघन्य स्थिति अवश्य निषेकप्रधान होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो क्रोधसंस्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तमु हूत कम दो महीना नहीं घन सकती है; क्योंकि यह क्रोधसंस्वलनके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी स्थिति है जो कि उसी समय मान संस्वलनरूपसे संक्रमित हो जाती है। अतः कालकी अपेक्षा वह क्रोधरूप एक ही समय रही पर उस समय उस अन्तिम फालिमें निषेक अवश्य अन्तमु तहूर्त कम दो माहके समय प्रमाण होते हैं और इसलिये इस अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति अन्तमु हूर्त कम दो माह कही जाती है। उक्त कथनका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थितिमें कालकी प्रधानता है और जघन्य स्थितिमें निषेकोंकी। अतः सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरमें से एक समयके घट जाने पर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती।

\* उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है ।

§ ४८०. शंका—उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त क्यों है ?

समाधान—क्योंकि, दाहस्थितिको बाँधनेवाला जीव उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करता है तब उस उत्कृष्ट स्थितिके वन्धकालका उत्कृष्ट प्रमाण अन्तमु हूर्त है।

\* इसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल जानना चाहिये ।

§ ४८१. मिथ्यात्वके समान सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय

उकस्तेण अंतोसुहुत्तमेतो; परपयडीदो संकंतडिदीए विणा सगुक्कस्सबंधं चैव अस्सिदूण उकस्सट्टिदिग्गहणादो ।

\* णवंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुग्गुञ्जाणमेवं चैव ।

§ ४८२. एगसमयमेत्तजहण्णकालेण अंतोमुहुत्तमेत्तुकस्सकालेण च सोलस-कसाएहिंतो भेदाभावादो । कसायउकस्सट्टिदीए बंधावल्लियादिककंताए अप्पणो उवरि संकंताए उकस्सट्टिदिं पडिवज्जमाणं णोकसायाणं कयं कालेण समाएदा ? ए, उकस्सबंधेण सह अवरिद्वबंधाणं बंधकमेणेव पडिच्छिदउकस्सट्टिदिसंतकम्माणं कालेण समाएत्ताविरोहादो ।

और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण है; क्योंकि यहाँ पर प्रकृतिसे संक्रमण हाकर प्राप्त होनेवाली स्थितिको छोड़कर अपने उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा ही उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण किया है ।

विशेषार्थ—पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालका निर्देश करते समय जो टीकामे दाह शब्द आया है वह संक्लेशरूप परिणामोके अर्थमें आया है । दाहका मुख्यार्थ ताप या संताप होता है, जो कि संक्लेशके होने पर होता है, अतः यहाँ दाहसे संक्लेशरूप परिणामो का ग्रहण किया है । उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके प्रयोजक ऐसे संक्लेशरूप परिणाम अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त कालतक ही होते हैं अतः उत्कृष्ट स्थितिका काल अन्तमुहूर्त कहा है । चूँकि उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणाम कम से कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त काल तक होते हैं, अतः सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धसे ही प्राप्त होती है संक्रमणसे नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें संक्रमित होनेवाली सम्यक्त्व और सम्यग्विध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति यदि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर हो और सोलह कषायोंमें संक्रमित होनेवाली अन्य प्रकृतियोंकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर हो तो संक्रमणसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्राप्त हो सकती है पर अन्य प्रकृतियोंकी सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागरसे कम ही स्थिति होती है, अतः इन मिथ्यात्व आदिककी बन्धकी अपेक्षा ही उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये ।

\* नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिका काल इसी प्रकार होता है ।

§ ४८२. क्योंकि एक समय प्रमाण जघन्य काल और अन्तमुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सोलह कषायोसे इनके कालमे कोई भेद नहीं है ।

शंका—कषायोकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धावलिको व्यतीत करके नौ नोकषायोंमें संक्रान्त होती है और तब जाकर नौ नोकषायें उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होती है अतः इनकी कालकी अपेक्षा कषायोके साथ समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट बन्धके साथ जिनका बन्ध अवरिद्ध है तथा बन्धक्रमसे ही जिन्होंने उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मको प्राप्त कर लिया है उनकी कालकी अपेक्षा कषायोके साथ समानता माननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

\* सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताणमुकस्सट्टिदिविहत्तीओ केवचिर' कालादो होदि ?

§ ४८३. सुगमं ।

\* जहणुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ४८४. कुदो ? अट्टावीससंतकम्मिएण मिच्छादिट्टिएण तिव्वसकिलेसेण चउट्टाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिमैत्तदाहट्टिदि वंधमाणेण उक्कस्सट्टिदि वंधिय अंतोमुहुत्तपडिभग्गेण वेदगसम्मत्ते गहिदे तग्गहणपढमसमए चेव सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताणमुकस्सट्टिदिदंसादो ।

❀ इत्थिवेद-पुरिसवेद-हस्स-रदीणमुक्कस्सट्टिदिविहत्तीओ केवचिर' कालादो होदि ?

विशेषार्थ—भय और जुगुप्सा तो ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों हैं, अतः उनका बन्ध तो सर्वदा होता रहता है। किन्तु नपुंसकवेद, अरति और शोक, इन नोकपायोंका बन्ध अन्य समयमें हाता भी है और नहीं भी होता है परन्तु उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय अवश्य होता है। अब किसी जीवने कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक बन्ध किया और वह जीव कपायकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक इन पांच नोकपायोंका बन्ध करता रहा तो उसके एक आवलिके पश्चात् कपायोंकी वह उत्कृष्ट स्थिति पांच नोकपायोंमें संक्रमित हो जाती है और इस प्रकार उक्त पाँच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय काल तक पाई जाती है। तथा किसी अन्य जीवने अन्तमु हूर्त काल तक सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाँधी और वह जीव कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक उक्त पाँच नोकपायोंका बन्ध करता रहा तो उसके कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके प्रारम्भ होनेके एक आवलि कालसे लेकर बन्ध समाप्त होनेके एक आवलि काल तक सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पांच नोकपायोंमें संक्रमित होती रहती है और इस प्रकार पांच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अवस्थानकाल कपायोंके समान अन्तमु हूर्त प्राप्त हो जाता है।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति वालेका कितना काल है ?

§ ४८३ यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ४८४ शंका—इतका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जो अट्टाईस कर्मोंकी सत्तावाला है और जो तीव्र संक्लेशरूप परिणामोंके कारण चतुःस्थानिक व्यवस्थिके ऊपर अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण दाहस्थितिका बन्ध कर रहा है ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर अन्तमु हूर्त कालतक विद्युद्धिको प्राप्त होता हुआ जब वेदक सम्यक्त्वकी स्वीकार करता है तब उसके वेदक सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है। अतः इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है।

❀ स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालेका कितना काल है ?

§ ४८५. सुगमं ।

\* जहणणेण एगसमओ ।

§ ४८६. कुदो ? कसायाणमेगसमयमावलयियमेत्तकालं वा उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गपढमसमए पडिहग्गावल्याए वा इच्छिदणोकसायं वंधाविय गलिदसेसकसा-  
युक्कस्सट्ठिदीए तत्थ संकमिदाए एदासिं चदुण्हं पयडीणामुक्कस्सट्ठिदिकालस्स एगसमय-  
दंसणादो ।

\* उक्कस्सेण आवल्या ।

§ ४८७. कुदो ? पडिहग्गकाले चेव एदासिं चदुण्हं पयडीणं वंधणियमादो ।  
उक्कस्सट्ठिदिवंधकाले एदाओ किण्ण वज्झति ? अच्चसुहचाभावादो साहावियादो वा ।  
अहियो कालो किण्ण लब्भदि ? ए, वंधगद्धाचरिमावल्याए वद्धसमयपवद्धाणं चेव  
तत्थुक्कस्सत्तुवलंभादो ।

§ ४८५ यह सूत्र सरल है ।

\* जघन्य काल एक समय है ।

§ ४८६. शंका—इनका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिसने कषायोंकी एक समय तक अथवा एक आवलीप्रमाण काल तक उत्कृष्ट स्थितिको बांधा है उसके प्रतिभग्न होनेके पहले समयमें अथवा प्रतिभग्न होनेके आवली प्रमाण कालके भीतर इच्छित नोकषायका वन्ध कराकर अनन्तर गलकर शेष रही कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके इच्छित नोकषायमें संक्रमण करने पर इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल एक समय देखा जाता है ।

\* उत्कृष्ट काल एक आवली है ।

§ ४८७. शंका—उत्कृष्ट काल एक आवली क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रतिभग्न कालके भीतर ही इन चार प्रकृतियोंके वन्धका नियम है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थितिके वन्धकालमें ये चारों प्रकृतियां क्यों नहीं वंधती हैं ?

समाधान—क्योंकि ये प्रकृतियां अत्यन्त अशुभ नहीं हैं इसलिये उस कालमें इनका वन्ध नहीं होता । अथवा उस समय नहीं वंधनेका इनका स्वभाव है ।

शंका—उत्कृष्ट काल अधिक क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वन्धकालकी अन्तिम आवलीमें वंधे हुए समयप्रवर्द्धोंकी ही इन चारों प्रकृतियोंमें संक्रमण होनेके कालमें उत्कृष्टता पाई जाती है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलीसे अधिक नहीं हो सकता ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलीकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है और इनका वन्ध कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय होता नहीं, किन्तु जिस समय उत्कृष्ट संकेतारूप परिणामोसे जीव निवृत्त होने लगता है उसी समयसे होता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य ध्रुवस्थान काल एक समय और उत्कृष्ट

❀ एवं सञ्वासु गदीसु ।

§ ४८८. जहा ओधम्मि उक्कस्सट्ठिकालपरुवणा कदा तथा सञ्वासिं गदीण-  
मोधम्मि परुवणा कायञ्वा ण आदेसम्मि; तत्थ ओघादो विसेसदंसणादो ।

§ ४८९. एवं चुणिसुत्तपरुवणं काऊण संपहि एदेण सूचिदत्थजाणावखाह-  
मुच्चारणाइरियवक्खाणमोघादो चेव भणिससामो ।

§ ४९०. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मिञ्जत्त-सोलकसायाणमुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पंचणोकसायाण-  
मुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । कुदो ? सोलसकसाय-णवुंस०-अरदि-  
सोग-भय-दुगुंछाणं सरिसं संकिलेसं पूरेदूण उक्कस्सट्ठिदिं वंधदि । ताधे कसायाण-

अवस्थान काल एक आवलि प्राप्त होता है, क्योंकि जो एक समय तक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर और दूसरे समयसे इन स्त्रीवेद आदिका बन्ध करने लगता है उसके एक आवलीके पश्चात् एक आवलिकम कषायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे संक्रमित हो जाती है । तथा जो एक आवलि या एक आवलिसे अधिक काल तक कषायकी उत्कृष्ट स्थिति बांध कर पश्चात् स्त्रीवेद आदिका बंध करने लगता है उसके एक आवलिके पश्चात् एक आवलि काल तक ही एक आवलिकम कषायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे संक्रमित होती है । इसके पश्चात् बांधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थिति का स्त्रीवेद आदिमें संक्रमण होने पर भी उसमें एक एक समय उत्तरोत्तर कम होता जाता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति जवन्म्य रूपसे एक समय तक और उत्कृष्ट रूपसे एक आवली कालतक पाई जाती है ।

❀ इसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये ।

§ ४८८. जिध प्रकार ओघमें उत्कृष्ट स्थितिके कालकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सभी गतियों की प्ररूपणा ओघमें ही करनी चाहिये आदेशमें नहीं, क्योंकि आदेशमें ओघकी अपेक्षा विशेषता देखी जाती है ।

विशेषार्थ-यहां चूर्णिसूत्रकारने सब गतियोंमें काल सम्बन्धी ओघप्ररूपणाको स्वीकार किया है । इसका यह तात्पर्य है कि कालसम्बन्धी उपर्युक्त ओघप्ररूपणा चारों गतियोंमें बन जाती है, अतः चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणा ही है । आदेशप्ररूपणा तो वह है जिसमें ओघसे कुछ विशेषता हो, किन्तु चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणासे कुछ भी विशेषता नहीं रखती, अतः चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा भी ओघ प्ररूपणा ही है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

§ ४८९. इस प्रकार चूर्णिसूत्रोंका कथन करके अब इनके द्वारा सूचित अर्थका ज्ञान करानेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानका ओघकी अपेक्षा ही कथन करते हैं ।

§ ४९०. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ! उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जवन्म्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जवन्म्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, क्योंकि समान संक्लेशको प्राप्त होकर जीव सोलह कषायोंकी तथा नपुंसकवेद, अरति, शोक,

मुक्कस्सद्विदिविहतीए आदी होदि । णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पुण ततो आवलियमेत्तकाले गदे उक्कस्सद्विदिविहती होदि; कसायाणमुक्कस्सद्विदीए असंकेताए एदासिमुक्कस्सत्ताभावादो । तदो सव्वेसिमुक्कस्सद्विदिवंधकालं सरिसं गंतूण सोलस-कसायाणमुक्कस्सद्विदिवंधो थक्किदि । तदो तम्मि थक्के वि आवलियमेत्तकालं पंचणोकसा-याणमुक्कस्सद्विदिविहती होदि । पुणो इमं पच्चिमावलियं घेत्तूण पुव्वुत्तावलज्जणउक्कस्स-द्विदिवंधकालम्मि पक्खिवचे कसायाणमुक्कस्सद्विदिकालमेत्तस्स पंचणोकसायाणमुक्कस्स-द्विदिकालस्सुवत्तंभादो । इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणं पुण उक्क० जह० एगस०, उक्क० एगावलिया ; पडिहग्गावलियाए चेव एदासिमुक्कस्सद्विदिसणादो ।

§ ४६१. भिच्छत्त-सोलकसायाणमणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं णवरणोक० जह०

भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिको बोधता है। उस समय कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रारम्भ होता है और नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति इससे एक आवलि कालके जाने पर होती है, क्योंकि जवतक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका इनमें संक्रमण नहीं होता तबतक इनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती, अतः सभीकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धकाल समान जावर सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध रुक जाता है और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके रुक जाने पर भी एक आवली कालतक पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, अतः इस पीछेकी आवलीको ग्रहण करके इन पाँच नोकषायोके पूर्वोक्त एक आवलिकम उत्कृष्ट स्थितिवन्धकालमें मिला देने पर कषायोंके उत्कृष्ट स्थिति बन्धकाल प्रमाण पांच नोकषायोका उत्कृष्ट स्थितिकाल हो जाता है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक आवलि है, क्योंकि प्रतिभग्गावलिकालमे ही इनकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है।

**विशेषार्थ**—सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके साथ नपुंसकवेद आदि पांच नोकषायोंका ही बन्ध होता है यह बात पहले ही बतला आये हैं। अब यदि किसी एक जीवने सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध अन्तमुहुत्त काल तक किया तो उसके उत्कृष्ट स्थिति बन्धके प्रारम्भ होनेके एक आवली कालसे लेकर सोलह कषायोंकी एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिका पांच नोकषायोंमें संक्रमण होता रहेगा। और यदि यह जीव कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके बाद एक आवलि कालतक उक्त पांच नोकषायोंका और बन्ध करता रहे तो उस समय भी कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका इनमें संक्रमण होता रहेगा, क्योंकि बन्ध हुई प्रकृतिके निषेकोंका एक आवलिके बाद अन्य प्रकृतिमें (यदि अन्य प्रकृतिका बन्ध होता हो तो) संक्रमण होता है ऐसा नियम है। इस नियमके अनुसार जो अन्तिम आवलिमें कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बंधी है उसका संक्रमण एक आवलिके बाद पांच नोकषायोंमें एक आवली तक अवश्य होता रहेगा, अतः जिस प्रारम्भकी आवलीमें कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका पांच नोकषायोंमें संक्रमण नहीं हुआ था उसे कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध कालमेसे घटा देने पर और इस अन्तिम आवलिके जोड़ देने पर पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सत्त्व कालके समान प्राप्त हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ ४६१ मिथ्यत्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहुत्तं



एगसमओ, उक्क० सन्वासिमणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सम्मत्त-सम्पामिच्छ-  
चाणमुक्क० जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अणुक्क० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० वेद्धावट्टि-  
सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवं अचक्खु०-भवसि० ।

§ ४९२. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलक०-णवणोक० उक्क० ज०  
एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । णवरि इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणमात्रलिया ।

है तथा नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जिस का प्रमाण असंख्यत पुद्गल परिवर्तन है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ वत्तीस सागर है । इस प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भन्य जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो जीव उत्कृष्ट स्थितिके वन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे निवृत्त हो गया है उसे पुनः उन परिणामोंको प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तमुहूर्त काल लगता है और इस मध्यके कालमें इस जीवके मिध्यात्व और सोलह कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका ही वन्ध होगा, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । यदि कोई जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर परिभ्रमण करता रहे तो वह वहां अनन्त काल तक रह सकता है और एकेन्द्रियके मिध्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध नहीं होता, इसलिये इसके नौ नोकपायोंकी भी उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जा सकती, अतः उक्त २६ प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा । जब कोई एक जीव एक एक समयके अन्तरसे क्रोधादिककी एक समय आदि कम उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करता है और उसका उसी प्रकारसे नौ नोकपायोंमें संक्रमण करता है तब नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ताको प्राप्त करके अन्तमुहूर्तमें उनकी क्षपणा कर देता है उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त होता है । तथा जो जीव उद्वेलना कालके अन्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और छ्यासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रह कर पुनः मिध्यात्वमें जा कर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करने लगता है तथा उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः एक आबलिकम छ्यासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहता है तथा अन्तमें मिध्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ वत्तीस सागर पाया जाता है । चूर्णिसूत्रोंमें चारों गतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी काल प्ररूपणा ओघके समान कही है और उच्चारणामे चारों गतियोंको आदेश प्ररूपणामें ले लिया है । इसका कारण यह है कि उच्चारणामें उत्कृष्ट स्थितिके कालके साथ अनुत्कृष्ट स्थितिका काल भी सम्मिलित है, अतः यहाँ चारों गतियोंमें ओघ प्ररूपणा नहीं बनती । यही कारण है कि उच्चारणामें चारों गतियोंको आदेश प्ररूपणामे परिगणित किया है । किन्तु उच्चारणाकी ओघ प्ररूपणा अचक्षुदर्शन और भन्य मार्गणामे घटित हो जाती है, अतः उच्चारणामे इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है । यद्यपि इन दोनों मार्गणामें चूर्णिसूत्रोंकी ओघ प्ररूपणा भी बन जाती है फिर भी चूर्णिसूत्रका 'एवं सन्वासु गवीसु' यह वचन देशामर्षक है, अतः वहाँ अन्य मार्गणामें नहीं गिनाई है ।

§ ४९२. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिध्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । किन्तु इतनी

अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्टिदी । कथं वि देसूणा ति भणति; तत्थ पविसिय अणुक्कस्सट्टिदीए आदिकरणादो । सम्भत्त-सम्भामि० उक्क० जहणुक्क० [ एगसमओ । अणुक्क० ] जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । पढमादि जाव सत्तमा ति एवं चेव । णवरि सगसगुक्कस्सट्टिदी वत्तन्वा ।

विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आबलि प्रमाण है । तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । कहीं पर कुछ आचार्य नारकियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे कुछ कम है ऐसा कहते हैं सो वहाँ पर नरकमें प्रवेश कराके अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रारम्भ किया है ऐसा जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सब कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**मिथ्यात्व आदि सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालका खुलासा जिस प्रकार श्रोत्रमें कर आये हैं उसी प्रकार नारकियोंके कर लेना चाहिये । तथा जिसने अपने भवके उपान्त्य समयमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उस नारकीके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा जो पूरे पर्यायमें अनुत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण पाया जाता है । तथा जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें एक समयतक नौ नोकपायोंमें सोलह कपायोंकी एक आबालिकम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण किया है उस नारकीके भवके अन्तिम समयमें नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । अथवा जिस प्रकार श्रोत्रमें नौ नोकपायोंका जघन्यकाल घटित किया है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । तथा जिसके पूरी पर्यायमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध नहीं हुआ और न पूर्व पर्यायमें मरते समय एक आबलि कालके भीतर उक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हुआ उस नारकीके नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण पाया जाता है । यहाँ मूलमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है सो इसका कारण यह बताया है कि नरकमें प्रवेश कराके अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रारम्भ कराना चाहिये । जो मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके अन्तमुं हूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है, अतः यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । जो जीव नरकमें उत्पन्न होते ही सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर लेता है उसके नरकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है । तथा जो प्रारम्भके और अन्तके अन्तमुं हूर्त कालको छोड़कर जीवन भर वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा है । या जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके मध्य या अन्तमें पुनः पुनः यथायोग्य सम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी

§ ४६३. तिरिक्खवग्दीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० जह० एग-  
समओ, उक्क० अंतोमुहुत्त' । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा  
पोग्गलपरियट्ठा । णवणोक्क० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० एगावलिया ।  
अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखे० पोग्गलपरियट्ठा । सम्मत्त-  
सम्माभि० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क०  
तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४९४. पंचिदियतिरिक्ख०-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-  
सोलसक०-णवणोक्कसाय० उक्क० ओघमंगो । अणुक्क० जहणुक्क० एगसमओ,  
उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्माभि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज०  
एगसमओ, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि । एवं मणुसतिय० ।

उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है । इसी प्रकार प्रथमादि पृथिवियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितियोंका काल कहना चाहिये । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये ।

§ ४६३. तिर्यचगतिमें तिर्यचोमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और नपुंसकवेद आदि पाँचका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त और स्त्रीवेद आदि चारका उत्कृष्ट काल एक आवलि प्रमाण है । तथा नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है ।

§ ४६४. पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है । तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यच गतिमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल जिस प्रकार नारकियोंमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । हाँ अनुत्कृष्ट स्थिति के उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । तिर्यच पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है, अतः मिथ्यात्व, 'सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भी इतना ही प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यचोमें रहनेका उत्कृष्ट काल पृथक्त्व पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है अतः उस कालमें पुनः पुनः सम्यक्त्वके होनेसे सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वका

§ ४६५. पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० खुद्दामवग्गहणं समउर्रां; उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जहं एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं मणुसअपज्ज०-पंचि०अपज्ज०-त्तसअपज्जत्ताणं ।

सत्त्व बना रहता है । अतः सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पृथक्त्व पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य कहा है । पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंके सब कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष सब काल पूर्ववत् है । किन्तु मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यचोंकी पंचानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकी संतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतीकी पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य उत्कृष्ट कायस्थिति जानना चाहिये । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है जिसका खुलासा पहले किया ही है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके इसी प्रकार कथन करना चाहिये । किन्तु इनके मिथ्यात्व आदिकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय क्रमसे संतालीस, पंद्रह और सात पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य उत्कृष्ट काल कहना चाहिये ।

§ ४६५ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समयक्रम खुद्दामवग्गहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और अस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर और स्थितिघात न करके अन्तमुं हूर्त कालके परचात् पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमे उत्पन्न होता है उसके पहले समयमे उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमे उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । इसी प्रकार नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना चाहिये पर यह संक्रमणसे प्राप्त होता है । तथा इस एक समयको छोड़कर शेष खुद्दामवग्गहण प्रमाण काल उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल है और लब्धपर्याप्त अवस्थाने रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । अब यदि कोई जीव उत्कृष्ट स्थितिके विना ही पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्त हुआ और अपने उत्कृष्ट कालतक उसने वह पर्याप्त न बढ़ली, पुनः पुनः उसीमें उत्पन्न होता रहा तो उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त पाया जाता है । इसी प्रकार भवके प्रथम समयमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिये । मूलमे और जितनी मागंणाएँ गिनाई हैं उनमे भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये ।

§ ४९६. देवेसु शिरओधं । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । णवरि  
 अप्पण्णो उक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति मिच्छत्त-  
 वारसक०-एवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० सगसगजहण्णा-  
 उअं समज्जणं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । अणंताणुवंधिचउक्क० उक्क० जह-  
 एणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी ।  
 सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ । [ अणुक्क० जह० एगससओ ]  
 उक्क० सगट्ठिदी । अणुद्दिसादि जाव सवट्ठे त्ति मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक-एवणोक०  
 उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदीए समयूणा, उक्क०  
 उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० एगस०,  
 उक्क० सगट्ठि० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह०-  
 अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ४९६ देवोमे सामान्य नारकियोंके समान कथन है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार  
 स्वर्गतकके देवोके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अनुकृष्ट  
 स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । आनत  
 कल्पसे लेकर उवरिम ग्रैवेयक तकके देवोमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट  
 स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
 कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण  
 है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
 अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमु० हूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट  
 स्थितिप्रमाण है । सम्यक्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल  
 एक समय है । अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
 उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
 वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा  
 अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी  
 अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
 समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
 स्थितिप्रमाण है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
 समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमु० हूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी  
 उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—सामान्य देव तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देवोमें सब कर्मों-  
 की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंके समान है,  
 किन्तु अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपने-अपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण  
 कहना चाहिये । आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोमें भवके पहले समयमे ही मिथ्यात्व,  
 वारह कषाय और नौ नौकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और  
 उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम अपने-अपने कल्पकी

§ ४९७. इंदियाणुवादेण एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० खुदाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गल-परियट्ठा । णवणोक्क० उक्क० ज० एगस०, उक्क० आवलिया । अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० अणंतकालमसंखे० पो०परियट्ठा । सम्मत्त०—सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । एवं वादरेइंदियाणं । एववरि अणुक्कस्सुक्कस्समंगुलस्स असंखेज्जदि-

जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थिति भी भयके पहले समयमें हो सकती हैं अतः इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि जो अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ आनतादि कल्पोंमें उत्पन्न होता है। वह यदि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्दलना नहीं करता है और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करता है तो उसके जीवन भर इनकी अनुत्कृष्ट स्थिति वनी रहती है। तथा जो जीव आनतादिकोमें पैदा हुआ और पर्याप्त होकर अन्तमुहूर्त कालके भीतर जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त पाया जाता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किया हुआ कोई एक देव सासादनमें आया और दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिमें चला गया तो उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा सम्यग्मिध्यात्व और सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय क्रमसे उद्दलना और कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा घटित कर लेना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं अतः इनमें अनन्तानुबन्धी और सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालके कथनमें कुछ विशेषता है। शेष कथन पूर्ववत् ही जानना चाहिये। बात यह है कि यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय नहीं बनता केवल भवके प्रारम्भमें जिसने अन्तमुहूर्त कालके भीतर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त ही पाया जाता है। तथा जो कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि अनुदिशादिकमें उत्पन्न हुआ और एक समयतक सम्यक्त्व प्रकृतिके साथ रहकर दूसरे समयमें जायिक सम्यग्दृष्टि हो गया उसके सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा यहाँ सम्यग्मिध्यात्वके कालका कथन मिध्यात्व आदिके साथ करना चाहिये, क्योंकि यहाँ इस प्रकृतिकी उद्दलना सम्भव नहीं है।

§ ४९७. इन्द्रियमार्गोणाके अनुवादासे एकेन्द्रियोंमें मिध्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल खुदा-भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवली प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण

भागो असंखेज्जाओ ओसपिण्णिउरसपिणीओ । वादरेइंदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-  
णवणोक० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० ज० अंतोमु० णवणोकसायाणं एगसमओ,  
उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एग-  
समओ । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । वादरेइंदियअपज्ज० सुहुमेइंदिय-  
पज्जत्तापज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो । णवरि सुहुमेइंदियपज्जत्ताणं अणुक्क० ज०  
अंतोमुहुत्तं । सुहुम० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहणुक्क० एगस० ।  
अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-  
सम्मामि० एइंदियभंगो ।

§ ४६८. सव्वविगलंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहणुक्क०  
एगस० । अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु० समऊणं, उक्क० सगट्ठिदी ।  
सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसम० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क०  
सगट्ठिदी ।

है जिसका प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणी और उत्तपिणी होता है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके कालका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूत है पर नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सवका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूत है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

§ ४६८ सव विक्लोन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और एक समय अन्तमुं हूत है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ-** एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्व और सोलह कपायकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही होती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर यह उत्कृष्ट स्थिति पर्याप्त एकेन्द्रियोंके ही प्राप्त होती है और इस अपेक्षासे लब्धपर्याप्तकोंके उक्त कर्मोंकी सब स्थिति अनुत्कृष्ट कही जाती है, अतः सामान्य एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रिय पर्याप्तमें जीव असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक लगातार रह सकता है और ऐसे जीवके बीचमें उक्त

§ ४६६. पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणो०  
उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० एगावलिया । अणुक्क० ज० एगस० उक्क०  
सगसगुक्कसद्धिदी । सम्मत-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क०

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, अतः अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा । जो देव सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक बन्धकरके एक आवली कालके भीतर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है और जो देव एक आवली या इससे अधिक काल तक सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलि प्रमाण पाया जाता है । तथा जिस देवने सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और एक आवलीमें एक समय शेष रहने पर वह मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके भवके पहले समयमें नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थिति और दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, अतः नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्व आदिके समान जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भवके पहले समयमें होता है अतः एकेन्द्रियोंमें 'इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना कर ली है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा उद्देलनाके कालको अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । बादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका काल जानना । किन्तु एक जीवका निरन्तर बादर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इनके मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । बादर एकेन्द्रिय पर्यायकोके अपनी पर्यायमें रहनेका जघन्य काल अन्तमुं हूत और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है अतः इस अपेक्षासे इनके अनुकृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें एकेन्द्रियोंसे विशेषता आ जाती है । शेष कथन एकेन्द्रियोंके समान जानना । बादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोके पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोके समान काल कहना चाहिये । किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोके अपनी पर्यायमें रहनेका जघन्य काल अन्तमुं हूत है अतः इनके अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूत कहना चाहिये । तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकारके जीव गर्भित है अतः इनके अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुदा भवग्रहण प्रमाण कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार विकलत्रयोंमें यथा सम्भव उनकी स्थितिका विचार करके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये ।

§ ४६६. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्व और सोलह कषायोंका अन्तमुं हूत और नौ नोकषायोंका एक आवलीप्रमाण है । तथा अनुकृष्ट स्थिति का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल ओषके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदवाले,



ज० एगस०, उक्क० ओघभंगो । एवं पुरिस०-चक्खु-सणि त्ति ।

§ ५००. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-वादरवणप्फदिपत्तेय० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो । वादरपुढवि०-वादरआउ० एवं चेव । णवरि अणुक्कस्सुक्कस्सं सगट्टिदी । वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज० वादरेइंदिय-पज्जत्तभंगो । एवं वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्ताणं । वादरपुढविअपज्ज०-वादर-आउअपज्ज०-तेउ०-वादरतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउयज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फ-दिपत्तेयसरीरअपज्ज०-णिगोद०-वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सव्वसुहुमाणं छवीसं पय-डीणं उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० खुद्दाभवग्गहणमंतोसुहुत्तं समज्जणं,

चतुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५००. कायमार्गणके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक और वादर प्रत्येक वनस्पति-कायिक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी अपेक्षा खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । वादर पृथिवीकायिक और वादर जलकायिक जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके दृष्टेलनाकी अपेक्षा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है । भय जुगुप्सा, अरति शोक व नपुन्सक वेदकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त भी जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है । ऊपर पुरुषवेदी आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये । तथा पृथिवीकायिक वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदिके अपनी-अपनी पर्यायमें निरन्तर रहनेके कालका विचार करके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है, क्योंकि इसका पहले अनेक बार खुलासा किया जा चुका है, अतः यहाँ व आगे भी उसका विचार करके यथासम्भव कथन करना चाहिये ।

वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंका भंग वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, निगोदजीव, वादरनिगोद, वादरनिगोद पर्याप्त जीव, वादर निगोद अपर्याप्तजीव और सब सूरस जीवोंमें छवीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है

उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखेज्जदिभागो । एवरि वादरपुढविआदिअपज्जत्ताणं सुहुमपुढविआदिपज्जत्तापज्जत्ताणं च सगट्ठिदी वत्तव्वा ।

§ ५०१, पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्कसाय० उक्क० पंचि-दियभंगो । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । ओरालिय० एवं चेव एवरि सगट्ठिदी वत्तव्वा ।

§ ५०२, कायजोगि० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० उक्क० ओघं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एइंदियभंगो । सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो । ओरालिय-मिस्स० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० उक्क० जहण्णुक्क० एइंदियभंगो । मिच्छत्त-सोलसक० अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं तिसमज्जणं । एवणोक्कसाय० जह० एय-समओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिदियअपज्जत्तभंगो । एवं वेड-न्विय० णवरि मिच्छत्त-सोलसक० अणुक्क० ज० एगसमओ उक्क० अंतोमु० ।

तथा उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल परलयपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त जीवोकी तथा सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदि पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

§ ५०१ पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके मिध्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिका भंग पंचेन्द्रियोके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुंहूर्त है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुंहूर्त है । औदारिककाययोगी जीवोक इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—पांचो मनोयोग और पांचो वचनयोगोका उत्कृष्ट काल अन्तमुंहूर्त तथा औदारिककाय योगका उत्कृष्ट काल अन्तमुंहूर्त कम चाईस हजार वष है, अतः इनके अनुसार अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५०२ काययोगियोंमें मिध्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोके समान है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग एकेन्द्रियोके समान है ।

औदारिक मिश्र काययोगियोंमें मिध्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा मिध्यात्व और सोलह कपायोकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल तीन समयकम खुद्दाभवग्गहणप्रमाण है और नौ नोकपायोका जघन्यकाल एक समय है तथा सबकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुंहूर्त है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोके समान है । इस प्रकार वैक्यिक काययोगी जीवोके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिध्यात्व और सोलह

वेजचित्रयमिस्स० मिच्छत्त० सोलसक० एवणोक० उक्क० एइदियभंगो । अणुक्क० जहणुक्क० अंतोमु० । एवरि णवणोकसाय० अणुक्क० जह० एयसमओ । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवरि अणुक्क० जह० एयसमओ ।

§ ५०३. आहार० सच्चपयडीणमुक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्खादसंजदेत्ति । आहारमिस्स० सच्चपयडीणमुक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जहणुक्क० अंतोमु० । एवमुवसम०-सम्मामि० ।

§ ५०४. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । एवणोकसाय० उक्क० ज० एगस०, उक्क० वेसमया । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । एवमखाहार० ।

कषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियक मिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भंग एकेन्द्रियोंके समान है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है।

§ ५०३. आहारक काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेद वाले, अकषायी, सूक्ष्मसाम्प्रायिकसंयत और यथाख्यात-संयत जीवोंके जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ ५०४. कामणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। तथा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंके एक काययोग ही होता है, अतः काययोगमें अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। औदारिक मिश्रका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कषाय की अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना। शेष कथन सुगम है। तथा जिस वैक्रियककाययोगीने वैक्रियककाययोग के उपान्त समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और अन्त समयमें अनुकृष्ट स्थितिका बन्ध

§ ५०५. वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोको० उक्क० ओवं ।  
अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगद्धिदी । सम्भत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क०  
एगस० । अणुक्क०- ज० एगसमओ, उक्क० पणवण्णपल्लिदो० सादिरेयाणि ।  
एवुंस० मिच्छत्त०-सोलसक०-एवणोको० उक्क० ओवं । अणुक्क० ज० एगस०,

किया उसके मिथ्यात्व और सोलह कपायोकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा वैकिकिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है अतः यहाँ अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त पाया जाता है शेष कथन पूर्ववत् जानना। वैकिकिमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त तथा नौ नोकषाय मिथ्यात्व और सोलह कपायोकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त होता है। नौ नोकषायोकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल पूर्ववत् जानना। शेष कथन सुगम है। आहारक काययोगके पहले समयमें ही सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। जो जीव एक समय तक आहारक काययोगके साथ रहे और दूसरे समयमें भर गये या मूल शरीरमें प्रविष्ट हो गये उनके सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा आहारक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त कहा। अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्प्रयिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके आहारककाययोगियोंके समान काल जानना। क्योंकि उग्रशम श्रेणीकी अपेक्षा उक्त मार्गणाओमें उक्त काल वन जाता है। आहारकमिश्रकाययोगीका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त वन जाता है। तथा उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये। कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। अतः इसमें नौ नोकषायोंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और सर्व प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय वन जाता है। किन्तु नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि नौ नोकषायोंकी उत्कृष्टस्थिति अपर्याप्त अवस्थामें एक आवलिकाल तक भी पाई जासकती है पर ऐसा जीव अधिकसे अधिक दो विग्रहसे ही उत्पन्न होता है, अतः इसके कार्मणकाययोग दो समय पाया जाता है और इसीलिये कार्मणकाययोगमें नौ नोकषायोंको उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय तो स्पष्ट ही है। तथा अनाहारक जीवोंके इसी प्रकार जानना, क्योंकि संसार अवस्थामें जहाँ कार्मणकाययोग होता है वही अनाहारक अवस्था पाई जाती है।

§ ५०४. वेदमार्गणाके अनुवादेसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकपाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओषके समान है। तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पत्य है। नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओषके समान है। तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल

उक्क० अंगंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस०, अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरेयाणि । असंजद० एवुंसयभंगो णवरि मिच्छ० सोलसक० अणुक्क० जह० अंतोमु० ।

§ ५०६. चत्तारि कसाय० मणजोगिभंगो । मदिस्सुदअण्णा० ओधं । एवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० उक्क० एइंदियभंगो । एयं मिच्छादि० । अभव० एवं चेव एवरि सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि । विहंग० सत्तमपुडविभंगो । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेइंदियभंगो ।

एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । असंयत सम्यग्दृष्टियोंका भंग नपुंसकोके समान है । किन्तु विशेषता इतनी है कि इनमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ—**स्त्रीवेदका उत्कृष्ट काल सौ पत्यपृथक्त्व है, अतः इसमें उपर्युक्त छव्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण जानना चाहिये । जो अट्टाईस या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पूर्व पर्यायमें स्त्रीवेदी है और वहांसे मरकर तथा अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि होकर पचवन पत्यकी उत्कृष्ट आयुके साथ देवपर्यायमें स्त्रीवेदी हुआ उसके साधिक पचवन पत्य तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जासकती है, अतः स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य कहा है । शेष कथन सुगम है । एक जीव निरन्तर नपुंसकवेदके साथ अनन्त काल तक रह सकता है अतः नपुंसकवेदमें मिथ्यात्व आदि छव्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा । तथा जो पूर्व पर्यायमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला नपुंसकवेदी है और वहां से च्युत होकर तेतीस सागरकी आयुवाले नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके साधिक तेतीस सागर काल तक सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता पाई जा सकती है अतः इन दो प्रकृतियों की अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है शेष कथन सुगम है । असंयतों का सत्र कथन नपुंसकोके समान है किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें उक्त प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति बांधो अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थिति बांधी उसके नपुंसकवेदमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है पर ऐसा जीव मरकर भी असंयत ही रहता है, अतः असंयतके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा है ।

§ ५०६. चार कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है । मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंके ओघके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान है । इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिजीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं । विभंगज्ञानियोंका भंग सातवीं पृथिवीके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ—**एक समय और अन्तमुहूर्त सामान्यकी अपेक्षा चारो कषायों और मनोयोगका काल समान है, अतः चारों कषायोंमें मनोयोगके समान कथन करनेकी सूचना की । मत्यज्ञानी

§ ५०७. आभिरिण०-सुद०-ओहि० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अर्णताणु०  
चउक्क०-वारसक०-एवणोक्क० उक्क० जहणणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज०  
अंतोमु०, उक्क० छावद्विसागरो० सादिरैयाणि । अर्णताणु०चउक्क० देसूणाणि वा ।  
एवभोहिदंस०-सम्मादि० । वेदय० एवं चेव । एवरि सम्म०-वारसक० [णवणोक्क०]  
छावद्विसाग० पडिवुण्णाणि । सेसाणं देसूणाणि । मणपज्ज० सव्वपयदीणमुक्क०  
जहणणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं  
संजद०-परिहार०-संजदासंजद० । सामाइयच्छेदो० एवं चेव । एवरि चउवीसप०  
अणुक्क० जह० एगस० ।

और श्रुताज्ञानी जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व पत्यके असंख्यातर्व भागप्रमाण काल तक ही पाया जाता है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है । अभव्योमे भी छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान वन जाता है । इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं होती यह स्पष्ट ही है । विभंगज्ञानमें सातवीं पृथिवीके समान और सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तो वन जाता है किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल नहीं वनता, क्योंकि विभंगज्ञान मिथ्यादृष्टिके होता है और मिथ्यादृष्टिके इन दो प्रकृतियोंकी सत्ता पत्यके असंख्यातर्व भागप्रमाण काल तक ही पाई जाती है ।

§ ५०८. आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, बारह कषाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है अथवा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कुछ कम छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व बारह कषाय और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर है शेषका कुछ कम छयासठ सागर है । मनःपर्ययज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है । इसी प्रकार संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतोंके जानना चाहिये । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें चौबीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके पहले समयमें ही सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है अतः मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इन मार्गणाओंका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है, अतः सबकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर कहा । किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर भी प्राप्त होता है, क्योंकि वेदकसम्यक्त्व के कालमें से मिथ्यात्व आदि तीन प्रकृतियोंके जपण कालको घटा देने पर और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विसंयोजन कालको मिला देने पर देशान छयासठ सागर प्राप्त होते हैं । अब यदि

§ ५०८. किण्ह-णील-काउ० तेउपम्मलेस्सासु मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघं, अणुक्क० जह० एगस० । णवरि किण्हणीलकाउ० मिच्छ० सोलस० अतोमु०, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त-सम्मापि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । सुक्कले० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अंतोमु० । अणंताणु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त-सम्मापि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी ।

इसमें प्रारम्भ में हुए उपशम सम्यक्त्वके कालको मिला दिया जाता है तो साधिक छ्यासठ सागर प्राप्त हो जाते हैं और यही सबव है कि अवधिज्ञानी आदि मार्गणाओमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर भी स्वीकार किया है। अवधिदर्शन अवधिज्ञानका अविनाभावी है अतः अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानके समान व्यवस्था जानना। तथा सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार जानना। वेदकसम्यक्त्वमें यद्यपि इसी प्रकार जानना पर इसके सम्यक्त्व और बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छ्यासठ सागर होता है क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व तक वेदक सम्यक्त्वका काल पूरा छ्यासठ सागर है और उक्त प्रकृतियोंका यहाँ तक सत्त्व पाया जाता है। इससे यह भी तात्पर्य निकल आया कि उक्त प्रकृतियोंको छोड़ कर वेदकसम्यक्त्वमें शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम छ्यासठ सागर है। मनः पर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है। अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है शेष कथन सुगम है। ऊपर संयत आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं इनमें भी इसी प्रकार जानना। यद्यपि सामायिक और छेदोपस्थापनामें काल सन्बन्धी उक्त व्यवस्था बन जाती है पर जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और नौवें गुणस्थानमें एक समय तक रह कर मर जाता है उसके सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें चौबीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है।

§ ५०८. कृष्ण, नील कापोत पीत और पद्म लेश्याओमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त है और उपर्युक्त सभी लेश्याओमें उपर्युक्त सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। शुक्ल-लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है। तथा अनन्तानुबन्धीका एक समय भी है। और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—कृष्णादि पांच लेश्याओके रहते हुए मिथ्यात्व और सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है तथा सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकपायोंमें संक्रमण हो

§ ५०६. खड्य० वारसक०-जवणोक्क० [ उक्क० ] जहण्णुक्क० एगस० ।  
अणुक्क० ज० अंतोह्णु०, उक्क० तेत्तोसं सागरोवभाणि सादिरैयाणि । सासण०  
सव्वपयडी० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० ज्वावलि-  
याओ । असण्णी० एइंदिपभंगो ।

सकता है, अतः इनमें मिथ्यात्वादि छन्दाल प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओषके समान कहा है । जो पीत और पद्मलेश्यावाला जोव मर कर तिर्यंबोमें उत्पन्न होता है यदि वह सरनेके पहले उपान्त्य समयमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके अन्तमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है तो उसके पीत और पद्म लेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । किन्तु कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याएँ मरनेके पश्चात् भी एक अन्तमुँहूर्त काल तक बनी रहती हैं, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुँहूर्त ही प्राप्त होता है । तथा पांचो लेश्याओमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह लुगम हं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके पहले समयमें ही हो सकती है अतः पांचों लेश्याओमें उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा उद्वेलनाके अन्तिम समयमें जो कृष्णादि लेश्याओको प्राप्त होते हैं उनके कृष्णादि लेश्याओमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । पर सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कृष्ण और नील लेश्यामें उद्वेलनाकी अपेक्षा और कापीत आदि तीन लेश्याओमें कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा जानना चाहिये । तथा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शुक्ललेश्यामें मिथ्यात्व आदि छव्यीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा शुक्ल लेश्याका जघन्य काल अन्तमुँहूर्त है अतः इसमें उक्त छव्यीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुँहूर्त कहा है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्करी विसंयोजना किया हुआ जो शुक्ललेश्यावाला जाव मिथ्यादृष्टि हो गया और दूसरे समयमें उसकी लेश्या बदल गई उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्करी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्ववत् घटित कर लेना चाहिये उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

§ ५०६. ज्ञायिक सम्यग्दृष्टियोंमें वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुँहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तैतीस सागरप्रमाण है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आधलीप्रमाण है । असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—ज्ञायिक सम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा ज्ञायिक सम्यक्त्वका संसारमें जघन्य काल अन्तमुँहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तैतीस सागर है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुँहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तैतीस सागर कहा है । सासादन सम्यक्त्वके पहले



§ ५१०. आहारि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वेद्धावट्टिसागरो० सादिरेयाणि ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

\* जहण्णाट्टिदिसंतकम्मियकालो ।

§ ५११. अहियारसंभालणवक्कमेदं सुगमं ।

\* मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-तिवेदानं जहणुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ५१२. कुदो ? जहण्णाट्टिदिसंतुप्पण्णविदियसमए चेव एदासिं पयडीएँ जहण्णाट्टिदीए विणासुवलंभादो । सो वि ए अजहण्णाट्टिदिगमणेए विणासो; विदिय-समयमे सव प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अतः इसमें सव प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा सासादनसम्यक्त्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि प्रमाण कहा है । असंज्ञियोंमें एकेन्द्रिय प्रधान हैं अतः असंज्ञियोंके सव प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा है ।

§ ५१०. आहारकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो बार छयासठ सागर है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि छत्रीस प्रकृतियोंकी ओघके सम न उत्कृष्ट स्थिति आहारक जीवोंके ही हो सकती है अतः आहारकोंके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है । जो उपान्त्य समयमे उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करके अन्तसमयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे समयमे अनाहारक हो जाता है उस आहारकके उक्त छत्रीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब जघन्य स्थितिसत्कर्मका काल कहते हैं ।

§ ५११. अधिकारके सन्हालनेके लिए यह सूत्र वाक्य आया है । जो कि सरल है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति सत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ५१२. शंका—इनका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जघन्य स्थितिसत्त्वके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमे ही इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका विनाश हो जाता है । यह विनाश भी अजघन्य स्थितिको प्राप्त करनेसे नहीं होता ।

समए गिस्संतभावुवर्लभादो ।

\* छण्णोकसायाणं जहण्णद्विदिसंतकम्मियकालो जहण्णक्खस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५१३. अद्वाच्छेदो गिसेयपहाणो, तस्स जदि एसो कालो घेप्पदि तो छण्णो-  
कसायाणं जहण्णद्विदीए कालस्स अंतोमुहुत्तत्तं जुज्जदे; विदियद्विदीए द्विदछण्णोकसाय-  
द्विदीए चरिमकडयसरूवेण अवद्विदाए चरिमद्विदिकडयउकीरणद्धामेत्तकालम्मि  
सव्वगिसेयाणं गलणेण विणा अवट्ठाणुवर्लभादो । ए जहण्णद्विदीए अंतोमुहुत्तत्त-  
मुवल्भभदे; तत्थ कालस्स पहाणत्तुवर्लभादो त्ति ? ए एस दोसो, जहण्णद्विदि-जहण्ण-  
द्विदिअद्वाच्छेदायां जइवसहुच्चारणाइरिएहि गिसेगपहायाणं गहयादो । उक्कस्सद्विदी  
उक्कस्सद्विदिअद्वाच्छेदो च उक्कस्सद्विदिसमयपवद्धणिसेगे मोत्तूण णाणासमयपवद्ध-  
णिसेगपहाणा तेण अंतोमुहुत्तकालावट्ठायां छण्णोकसायजहण्णद्विदीए जुज्जदि त्ति ।  
पुच्चिल्लवक्खाणमेदेए सुत्तेण सह किण्ण विरुज्भदे ? सच्चमेदं विरुज्भदे चेव, किंतु  
उक्कस्सद्विदि—उक्क० द्विदिअद्वाच्छेद—जहण्णद्विदि—ज० द्विदिअद्वाच्छेदाणं भेदपख्खणहं  
तं वक्खयायं कयं वक्खवाणाइरिएहि । जुण्णिमुत्तुच्चारणाइरियायां पुण एसो णाहिप्पाओ;

किन्तु दूसरे समयमे इनका निःसत्त्वभाव पाया जाता है । अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति-  
का जघन्य काल एक समय कहा ।

\* छह नोकषायोंके जघन्य स्थिति सत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५१३. शंका—अद्वाच्छेद निषेकप्रधान है । उसका यदि यह काल लिया जाता है तो  
छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है क्योंकि द्वितीय स्थितिमें स्थित  
छह नोकषायोंकी स्थितिके अन्तिम काण्डकरूपसे अवस्थित रहनेपर अन्तिम स्थितिकाण्डके  
उत्कीरण काल प्रमाण काल तक सब निषेकोंका गलनेके विना अवस्थान पाया जाता है । पर  
जघन्य स्थितिका अवस्थान अन्तर्मुहूर्त तक नहीं बन सकता है, क्योंकि उसमे कालकी प्रधानता  
स्वीकार की गई है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जघन्य स्थिति और जघन्य स्थितिअद्वा-  
च्छेदको यतिबुधम आचार्य और उच्चारणाचार्यने निषेकप्रधान स्वीकार किया है । तथा उत्कृष्ट स्थिति  
और उत्कृष्ट स्थितिअद्वाच्छेद उत्कृष्ट स्थितिवाले समयप्रवद्धके निषेकोकी अपेक्षा न हो कर  
नाना समयप्रवद्धके निषेकोंकी प्रधानतासे होता है. अतः छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका  
अन्तर्मुहूर्तकाल तक अवस्थान बन जाता है ।

शंका—पूर्वोक्त व्याख्यान इस सूत्रके साथ विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—यह सच है कि पूर्वोक्त व्याख्यान इस सूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होता ही  
है किन्तु उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति अद्वाच्छेदमे तथा जघन्य स्थिति और जघन्य स्थिति-  
अद्वाच्छेदमे भेदके कथन करनेके लिये व्याख्यानाचार्यने वह व्याख्यान किया है । पर चूर्णिसूत्र-

छण्णीकसायजहण्णद्विदीए अंतोमृहुत्तकालुवदेसादो । पुग्गिन्लवक्खाणं ण भद्दयं, सुत्तविरुद्धत्तादो । ण, वक्खाणभेदसंदरिसणद्वं तप्पबुत्तीदो पडिक्खणायणिरायरण-मुहेण पउत्तणओ ण भद्दओ । एण च एत्थ पडिवक्खणिरायरणमत्थि तम्हा वे विणिरवज्जे त्ति घेतव्वं । द्विदि-द्विदिअद्धच्छेदाणं वित्तिमुत्तकत्ताराणमहिप्पाएण कथं भेदो ? बुच्चदे-सयलणिसेयगयकालपहाणो अद्वाछेदो, सयलणिसंगपहाणा द्विदि त्ति ण दोण्हं पुणरुत्तदा । एवं सुण्णिमुत्तोत्रं परविय संपहि जहण्णाजहण्णद्विदीणं काल-परुवणद्वमुत्ताराणाइरियवक्खाणं भणिससामो ।

§ ५१४. जहण्णए पयदं । दुविहो यिहेसो—ओघेणादेसेण य । मिच्छत्त-वारसक-  
तिण्णिवेद० ज० के० ? जहण्णुकक० एगसमओ । अजहण्ण० केव० ? अणादि-  
अपज्ज० अणादिसपज्जवसिदा । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुकक० एगसमओ ।  
अज० ज० अंतोमृहुत्तं, उक्क० वे द्वावद्विसागरो० सादिरैयाणि । अणंताणु०चउक्क०  
[ जह० ] जहण्णुकक० एगसमओ । अजह० केव० ? अणादिअपज्जवसिदा अणादि-  
सपज्जवसिदा सादिसपज्जवसिदा । जो सो सादिसपज्जवसिदो भंगो तरस इमो णिहेसो-  
कार और उच्चारणाचार्यका यह अभिप्राय नहीं है, क्योंकि उन्होंने ब्रह्म नोकपायोकी जघन्य  
स्थितिका काल अन्तमुर्द्धत कहा है ।

शंका—पूर्वोक्त व्याख्यान समीचीन नहीं है, क्योंकि वह सूत्रविरुद्ध है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि व्याख्यानभेदके दिखलानेके लिये पूर्वोक्त व्याख्यानकी प्रवृत्ति हुई है । जो नय प्रतिपक्षनयके निराकरणमें प्रवृत्ति करना है वह समीचीन नहीं होता है । परन्तु यहाँ पर प्रतिपक्ष नयका निराकरण नहीं किया है, अतः दोनो उपदेश निर्दोष हैं ऐसा प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिये ।

शंका—नो फिर वृत्तिसूत्रके कर्ताके अभिप्रायानुसार स्थिति और स्थितिअद्वाच्छेदमें भेद कैसे हो सकता है ?

समाधान—सर्वनिषेकगत कालप्रधान अद्वाच्छेद होता है और सर्वनिषेकप्रधान स्थिति होती है इसलिये दोनोके कथनमें पुनरुक्त दोष नहीं आता है ।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रकी अपेक्षा ओघका कथन दूरके अथ जघन्य और अजघन्य स्थितियोंके कालका कथन करनेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानको कहते हैं—

§ ५१४. अथ जघन्य स्थितिके कालका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमें से ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, वारह कषाय और तीन वेदोकी जघन्य स्थितिका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिका काल कितना है ? अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है । सन्यक्व और सन्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुर्द्धत है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छथासठ सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थितिका काल कितना है ? अनन्तानुबन्धी की अजघन्य स्थितिके कालके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प होते हैं । इनमें जो सादि-सान्त भंग है उसकी अपेक्षा यह प्रकृतमें

जहणु० अंतोमु०, उक० अद्रपोगलपरियट्टं देसुणं । छण्णोकसायाणं जह०  
जहणुक्क० अंतोमु० । अजह० केव० ? अणादिअपज्जवसिदा अणादिसपज्जवसिदा ।  
एवं भवसि० । णवरि अणादिअपज्जव० गत्थि ।

§ ५१५. आदेसेण गेरइएसु मिच्छत्त०-वारस०-भय-दुमुञ्जायां ज० जहणुक्क०  
एगस० । अज० ज० एगस०, उक० सगट्ठिदी । सम्पत्त-सम्प्राप्ति० जह० जहएणुक्क०

कथन किया जा रहा है । जघन्य काल अन्तमु हूतं और उत्कृष्ट काल कुछ कम अधपुद्गलपरिवर्तन-  
प्रमाण है । छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं है । तथा  
अजघन्य स्थितिका कितना काल है ? अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है । इसी प्रकार  
भव्योके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनके किसी भी प्रकृतिका अनादि-अनन्त  
काल नहीं है ।

**विशेषार्थ**—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कपाय और तीन वेदोंकी जघन्य  
स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है इसका खुलासा पहले किया ही है । तथा सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर इनकी अजघन्य स्थिति अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त होती है,  
क्योंकि अभव्योके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति अनादि-अनन्त काल तक पाई जाती है । तथा  
जिन्होंने दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षण करके हुए उक्त प्रकृतियों की जघन्य स्थितिकी  
प्राप्त कर लिया है उनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-सान्त है । किन्तु  
अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल सादि-सान्त भी पाया जाता है । जिसने सम्यक्त्व और सम्य-  
ग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त करके अन्तमु हूतं कालमें उनकी क्षण कर दी है उसके सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमु हूतं पाया जाता है । तथा सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट सत्यकाल पत्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एकसौ बचोस  
सागर है, अतः इनकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण समझना चाहिये । अनन्तानु-  
बन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त इस  
तरह तीन प्रकारका पहले बतलाया ही है । जो अनादि कालसे अनन्त कालतक मिथ्यात्वमें पड़ा है  
उसके अनादि-अनन्त काल पाया जाता है । जिसने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करते हुए जघन्य  
स्थिति प्राप्त कर ली उसके अनादि-सान्त काल पाया जाता है । तथा जिसने विसंयोजनाके पश्चात्  
पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त कर लिया उसके सादि-सान्त काल पाया जाता है । इनमें से  
सादि-सान्त कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमु हूतं है,  
क्योंकि अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त होने पर एक अन्तमु हूतंके भीतर विसंयोजना द्वारा पुनः  
उसका क्षण किया जा सकता है । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ  
कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य  
और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं है यह पहले बतला ही आये हैं । तथा मिथ्यात्व आदिके समान छह  
नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त घटित कर लेना चाहिये ।  
यह सब व्यवस्था भव्योके वन जाती है, इसलिये इनके कथनको ओषके समान कहा ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि भव्योके सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका अनादि-अनन्त यह  
विकल्प नहीं पाया जाता ।

§ ५१५. आदेशकी अपेक्षा नारकियेमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी  
जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल  
एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी

एगस०, अज० ज० एगस० । उक०, सगट्टिदी । सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एयस० ।  
अज० ज० अंतोमु०, उक० तेचीसं सागरोवमाणि । अणंताणु० जह० जहण्णुक०  
एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमयो वा, उक० सगट्टिदी । एवं पढमाए । णवरि  
सगट्टिदी ।

जघन्य स्थितिवि। जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्पत्ती जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी अपने योग्य जघन्य स्थितिके साथ दो मोड़ें लेकर नरकमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे मोड़में मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साङ्गी जघन्य स्थिति पाई जा सकती है अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसके पहले मोड़में अजघन्य स्थिति पाई जाती है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा जो उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ नरकमें उत्पन्न होता है उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति नारकीके कृतकृत-वेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समयमें और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः नारकियोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जिसके कृतकृत्यवेदकके कालमें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि भरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा जिसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि भरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। इन दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। नरकमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तमुं हूतं कालके पश्चात् एक समयके लिये प्राप्त हो सकती है, अतः सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसके पहले अन्तमुं हूतं काल तक अजघन्य स्थिति होती है, अतः सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं कहा है। तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है। अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके अन्तिम समयमें होती है, अतः नरकमें इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जिसने विसंयोजनाके पश्चात् पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त कर ली है और अन्तमुं हूतं कालके भीतर पुनः उसकी विसंयोजना कर दी है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं पाया जाता है। तथा विसंयोजना किया हुआ जो जीव सासादनमें जाकर और दूसरे समयमें अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है। तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। पहले नरकमें इसी प्रकार

§ ५१६. विद्यादि जाव छट्टि चि मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० जहणुक० एगस० । अजहणु० [ जहणुक० ] जहणुकस्सट्टिदी कायवा । सम्मत्त-सम्मामि० ज० जहणुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । अणंताणु०चउक्क० जह० जहणुक० एगस० । अज० ज० अतोमु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्टिदी । सत्तमाए मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुळा० जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी । [सम्मत्त-] सम्मामि० णिरओधं । अणंताणु०-सत्तणोक० जह० जहणुक० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी ।

जानना चाहिए। किन्तु अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय इसे पहले नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये।

§ ५१६. दूसरी से लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण करना चाहिये। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं या एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूतं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिका काल सामान्य नारकियोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूतं और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—द्वितीयादि पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तिम समयमें ही प्राप्त हो सकती है, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। पर यह जघन्य स्थिति उसी जीवके होती है जिसने उत्कृष्ट आयुके साथ नरकमें उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तमुं हूतं कालके भीतर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके जा जीवन भर वेदक सम्यग्दृष्टि बना रहा है। शेष जीवोंके तो उक्त कर्मोंकी अजघन्य स्थिति ही होती है, अतः द्वितीयादि नरकोंमें उक्त कर्मोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा। यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय उद्देलनाकी अपेक्षा घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है क्योंकि उसका पहले खुलासा कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति पर्यायके अन्तमें एक समय तक या अन्तमुं हूतं काल तक प्राप्त हो सकती है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूतं कहा। अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके अन्तिम समयमें तथा सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति भवके अन्तिम अन्तमुं हूतंके भीतर प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धकालके

§ ५१७. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-वारसक-भय-दुगुंजा जहं जं एगसं, उक्कं अंतोमुं । अजं जं एगसं, उक्कं असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-सम्मामिं जं जहणुक्कं एगसं । अजं जहं एगसं, उक्कं तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । अणंताणुं च उक्कं [ जं ] जहणुक्कं एगसं । अजं जं अंतोमुं एगसमओ वा, उक्कं अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । सत्तणोकं जं जहणुक्कं एगसं । अजं जं खुदाभवग्गहणं, उक्कं अणंतकालमसंखे पौ-परियट्ठा ।

§ ५१८. पंचिदियतिरिक्ख-पंचिंतिरिंपज्ज-पंचिंतिरिंजोणिणीसु मिच्छत्त-वारसकसाय-भय-दुगुंजं जहं जं एगसं, उक्कं वेसमया । अजं जं खुदाभवग्गहणं [ अंतोमुहुत्तं ] विसमज्जणं एगसमओ वा, उक्कं तिण्णि पलिदोवमाणि पुक्व-कोट्टिपुत्तेणंमहियाणि । सम्मत्त-सम्मामिं जहं जहणुक्कं एगसमओ । अजं जं एगसं, उक्कं सगट्ठिदी । अणंताणुं च उक्कं जहं जहणुक्कं एगसं । अजं जं अंतोमुं, उक्कं सगट्ठिदी । एवं सत्तणोकसायाणं । णवरि अणंताणुं अजं जं एगसमओ वा ।

अन्तिम समयमें प्राप्त होती है अतः इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५१७. तिरिक्खेसु मिच्छत्त, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सात नोकपायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५१८ पंचेन्द्रियतिरिक्ख, पंचेन्द्रियतिरिक्ख पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिरिक्ख योनिप्रतियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण, दो समय कम अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । इसी प्रकार सात नोकपायोका जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी है ।

§ ५१६, पंचिन्द्रियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छत्त०-सोलसक०-भय-दुग्गुञ्जाणं जह० ज० एगस०, उक्क० वे समया । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं दुसमज्जणं एयसमओ वा, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणो० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं मणुसअपज्ज०-पंचिन्द्रियअपज्ज०-तसअपज्जत्ताणं ।

§ ५१६ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण या एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति वादर एकेन्द्रियोंमें कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुं हूर्त काल तक प्राप्त होती है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त कहा है । तथा जो तिर्यच जघन्य स्थितिके पश्चात् एक समय तक उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें मर कर अन्य गतिमें उत्पन्न हो गया उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है । तिर्यचोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थिति नहीं होती और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है, अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल नारकियोंके समान जानना । किन्तु अजघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । वान यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कोई जीव तिर्यचपर्यायमें अधिकसे अधिक साधिक (पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक) तीन पल्य तक रह सकता है, अतः इनमें उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा । तिर्यचपर्यायमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिके साथ निरन्तर रहनेका काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है अतः इनमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । अन्तानुबन्धीकी अपेक्षा शेष कथन सामान्य नारकियोंके समान जानना । जो कषायोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करके पश्चात् प्रतिपन्न प्रकृतियोंका दीर्घकाल तक बन्ध करता है उसके प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा तिर्यच पर्यायमें रहनेका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, अतः सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा । पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिके पहले और दूसरे विग्रहके समय जघन्य स्थिति हो सकती है अतः इनके मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा । तथा



§ ५२०. मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिसणीसु मिञ्जत्त-वारसक०-णवणो० जह० ओघं० अज० ज० खुदाभवग्रहणं अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो । अणंताणु०चउक्क० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अजह० ज० अंतोमु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्टिदी । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० ञ्णोकसायभंगो । मणुसिणीसु अट्टणो० जह० जहणुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ५२१ देवाणं पेरइयभंगो । भवण०-वाणवेंतराणमेवं चैव । एवरि सगट्टिदी ।

इन दो समयोंको घटा देने पर पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यचोंके दो समय कम अन्तमुहूर्त अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जिस पंचेन्द्रियतिर्यच त्रिकके भवके दूसरे समयमें जघन्य स्थिति हुई उसके पहले समयमे अजघन्य स्थिति होती है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी सम्भव है । शेष कथन सुगम है । इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल उद्बलनाकी अपेक्षा ही घटित करना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तिर्यचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त अवस्थायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पूर्वमें कहे हुए कालको ध्यानमें रखकर घटित कर लेना चाहिये । मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंकी स्थिति और पर्याय पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ५२०. मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें खुदाभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमे अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्तकोंके समान है । अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समथ तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है और मनुष्यनियोमे आठ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण तथा पर्याप्त और मनुष्यनियोंका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है, अतः सामान्य मनुष्योंमें मिथ्यात्व आदि वाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और पर्याप्त तथा मनुष्यनियोमे उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । तथा मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डके शेष रहने पर जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल छह नोकपायोंके समान अन्तमुहूर्त कहा । इसी प्रकार मनुष्यनियोंके आठ कपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त जानना । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२१. देवोंमें नारकियोंके समान जानना चाहिये । भवतवासी और व्यन्तर देवोंके भी

जोदिसियादि जाव उवरिमगेवज्जो ति मिच्छत्त-वारसक०-एवणोक्क० जह० जहण्णुक०  
 एगस० । अज० ज० जहण्णुद्विदी, उक्क० उक्कस्सद्विदी । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-  
 चउक्काणं देवोघमंगो । एववि अप्पण्णो उक्कस्सद्विदी वतव्वा । अणुदिसादि जाव  
 अवरजिद० मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक०-एवणोक्क० ज० जहण्णुक० एगस० ।  
 अज० जह० ज०द्विदी, उक्क० उक्कस्सद्विदी कायव्वा । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० देवोघं ।  
 एववि अणंताणु० अज० एयसमयो एत्थि । सव्वद्व० मिच्छ०-सम्मामि०-वारसक०-  
 एवणोक्क० जह० जहण्णुक० एयसमओ । अज० जह० तेत्तीसं सागरोव० समउणाणि,  
 उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुणाणि । सम्मत्त०-अणंताणु० जह० जहण्णुक०  
 एयस० । अज० जह० एअसमओ अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० ।

इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अपनी स्थिति कहनी चाहिये ।  
 ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम प्रवेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
 जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल  
 जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और  
 अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य देवोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी  
 अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । अनुदिशिसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें मिथ्यात्व,  
 सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
 समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट  
 स्थितिप्रमाण करना चाहिये । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल सामान्य देवोंके  
 समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका  
 जघन्य काल एक समय नहीं है । सर्वार्थसिद्धिमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और  
 नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थितिका  
 जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर है । सम्यक्त्व  
 और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा  
 अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सम्यक्त्वका एक समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तमुं हूत  
 और उत्कृष्ट काल दोनोका तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ—**जिस प्रकार सामान्य नारकियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य  
 स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतला आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके जानना । तथा  
 भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि इनके अजघन्य  
 स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना चाहिये । ज्योतिषियोंसे लेकर  
 उपरिम प्रवेयक तक के देवोंके मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति भवके  
 अन्तिम समयमें सम्भव है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट  
 काल एक समय कहा । पर यह जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थितिवाले सम्यग्दृष्टि देवोंके सम्भव है,  
 अतः उक्त ऋषींसे अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपनी-अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और  
 उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । अनुदिश आदिकमें  
 इसी प्रकार जानना चाहिये । पर इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका काल मिथ्यात्वके समान  
 घटित करके कहना चाहिये, क्योंकि अनुदिशसे लेकर ऊपरके सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं,

§ ५२२. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछाणं [जह०] जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-सम्मामि० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० पल्लिदो० असंखेज्ज० भागो । सत्तणोक्क० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं सुहुमेइंदियाणं । वादरेइंदियाणमेवं चैव । एवरि सगट्ठिदी । वादरेइंदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०; उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्सभंगो । सत्तणोक्क० जह० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । वादरेइंदियपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० ज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि०-सत्तणोक्क० ज० जहण्णुक० एगमगओ । अज० ज०

अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वका उद्देलना सम्भव नहीं । तथा जा उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाला जीव भवके अन्तमे सासादनमे जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । पर यहाँ कोई भी जीव सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता अतः यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय सम्भव नहीं । सर्वार्थसिद्धिमे जघन्य और उत्कृष्ट आयुका भेद नहीं ! तथा वहाँ भवके अन्तिम समयमे मिथ्यात्व आदि तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वहाँ जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इस एक समयका कम कर देने पर अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२२. एकेन्द्रियोमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त हैं । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्लोपन्नके असंख्यातवे भागप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । बादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिये । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त हैं । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग उत्कृष्ट स्थितिके समान है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट

एगसमओ, उक० अंतोमु० ।

§ ५२३. सच्चविगलिदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं छ० ज० ज० एगसमओ, उक० वेसमया । अज० ज० खुदाभवग्रहणं अंतोमुहुत्तं विसमऊणं एयसमयो वा, उक० अप्पणो उकस्सट्ठिदी । सम्भत्त-सम्पामि० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक० सगट्ठिदी । सत्तणोक्क० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक० सगट्ठिदी ।

§ ५२४. पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-वारसक०-एवणोक्क०

काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय ओर उक्कथ काल अन्तमु हुतं है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंके अपनी अपनी उक्कथ स्थितिका विचार करके सब प्रकृतियों की अजघन्य स्थितिका उक्कथ काल कहना चाहिये । परन्तु एकेन्द्रियोमे जघन्य स्थिति केवल बादर पर्याप्तके ही होती है सूक्ष्मके जघन्य नहीं हाती और सूक्ष्मोका उक्कथ काल असंख्यात लोक है अतः एकेन्द्रियोमे अजघन्यका उक्कथ काल असंख्यात लोक कहा है । यद्यपि एकेन्द्रियोमे अजघन्यकी उक्कथ स्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है, फिर भी इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उक्कथ काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवके इससे अधिक काल तक इनकी सत्ता नहा पाई जाती । तथा इन पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि जीवोमे जो जघन्य स्थितिके पश्चात् एक समय तक अजघन्य स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें मर गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके बिना शेष सब प्रकृतियो की अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कथ काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा कहा है । तथा मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उक्कथ काल अन्तमु हुतं तथा सात नाकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कथ काल एक समय सामान्य तिर्यंचाके समान अपनी अपनी पर्यायमें घटित करके जानना चाहिये ।

§ ५२३. सब विकलेन्द्रियोमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उक्कथ काल दो समय है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल पर्याप्तकोंको छोड़ कर शेषमें दो समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तकोंमें दो समय कम अन्तमु हुतं अथवा एक समय और उक्कथ काल अपनी अपनी उक्कथ स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कथ काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उक्कथ काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उक्कथ काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमु हुतं और उक्कथ काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—विकलत्रयोमे मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उक्कथ काल दो समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और दो समय कम अन्तमु हुतं या एक समय पंचेन्द्रिय तिर्यंच त्रिकके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा अजघन्य स्थितिका उक्कथ काल अपनी अपनी उक्कथ स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय

ज० और्धं । अज० ज० खुदाभवग्रहणं अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त-सम्मामि०  
ज० जहएणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० वे द्वावट्टिसागरो० सादिरैयाणि ।  
अर्णताणु० चउक्क० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु० [ एगसमओ वा ],  
उक्क० सगट्टिदी । एवं चखु०-सण्णि त्ति ।

§ ५२५. कायाणुवादेण पुहवि०-आउ०-तेउ०-त्राउ०-वणप्फदि०-णिगोद०

और नौ नोकपायोकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल पर्याप्तकोके विना शेषमें खुदाभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तकोंमें अन्तमुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यगिमध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो द्वासाठ सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-मिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोकी जघन्य स्थितिका काल जो ओघमें कहा है वह पंचेन्द्रियादिकी प्रधानतासे कहा है, अतः इन चारोमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान जानना । तथा पंचेन्द्रिय और त्रसोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और पंचेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रस पर्याप्तकोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त हांगा । तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण हांगा । इनमें पंचेन्द्रियोंकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक हजार सागर, पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति सौ पृथक्त्व सागर, त्रसकायिकोंकी कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रस पर्याप्तकोंकी कायस्थिति दो हजार सागर है । अतः इतने काल तक उक्त जीवोंका उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिके साथ रहनेमें कोई बाधा नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कृतकृत्य वेदके अन्तिम समयमें हांगा । तथा सम्यगिमध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट एक समय काल उद्वेलना और कृतकृत्यवेदक इन दोनोंकी अपेक्षा हो सकता है । तथा इनके सम्यक्त्व और सम्यगिमध्यात्वका सत्त्व साधिक एक सौ वत्तीस सागर तक रह सकता है अतः उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ वत्तीस सागर कहा । विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धाकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और उक्त चारों प्रकारके जीवोंके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो सकती है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि मिध्यात्वमें जाय और वहाँ अतिलघु काल तक रह कर और पुनः वेदक सम्यक्त्वकी प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ले ता उसे ऐसा करनेमें अन्तमुहूर्त काल लगता है अतः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । परन्तु आयुके अन्तिम समयमें एक समय कालवाला सासदन हुआ और सरकर एकेन्द्रियोमें उत्पन्न होनेवाले किसी भी चौबीसकी सत्तावाले पंचेन्द्रिय या त्रसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त होता है । तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५२५. कायमार्गणके अनुवादसे सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अग्नि-

एहंदिबभंगो । एवरी सगसगुक्कससद्विदी वत्तव्वा ।

§ ५२६, पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-एवणोक्क० जह० ओर्थं । एवरी ङ्गणोक्क० ज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सव्वेसिमज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । ओरालि० एवं चेव । एवरी सगद्विदी । एवं वेदव्विय० । एवरी ङ्गणोक्क० ज० जहणुक्क० एगस० । कायजोगि० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० ज० मणजोगिभंगो । अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालो । सम्मत्त-सम्मामि० एहंदिबभंगो । ओरालियमिस्स० वादरेइंदिब-अपज्जत्तभंगो । एवरी सत्तणोक्क० अज० जह० अंतोमु० । वेदव्वियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-एवणोक्क० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० जहणुक्क० अंतोमु० । एवरी सम्मत्त-सम्मामि० अज० ज० एगसमओ । एवमाहार-मिस्स० । एवरी सम्मत्त-सम्मामि० अज० जहणुक्क० अंतोमु० । आहार० वेदव्वियभंगो ।

एवमकसाय-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे ति । कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंत्ता०

कायिक, सभी वायुकायिक और सभी निगाद जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाय कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य, और अजघन्य स्थितिका काल बतला आये है उसी प्रकार इनके यथायोग्य जान लेना चाहिये ।

§ ५२६. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल ओषके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है तथा सभी प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । औदारिककाययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्त काल है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एकेन्द्रियोंके समान भंग है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूत है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । आहारककाययोगियोंमें वैक्रियिककाययोगियोंके समान भंग है । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांप्रायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए । कर्मणुकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिका जघन्य

जहण्णाद्विदि० अजहण्णाद्विदि० च जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि.समया । सम्मत्त-  
सम्पाभि०-सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगसमओ, उक्क०  
तिण्णि समया । एवमणाहारि० ।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना ।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोग और पाँचों वचनयोगोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय तथा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय योग परिवर्तनकी अपेक्षा कहा है । शेष कथन सुगम है । औदारिके काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त कम बाईस हजार वर्ष है । अतः औदारिके काययोगमें सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण प्रा- होता है । शेष कथन मनोयोगके समान जानना । जो देव दो बार उपशम श्रेणी पर चढ़कर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले भवके अन्तिम समयमें वैक्रियिकाययोगी होता है उसीके वैक्रियिके काययोगमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वैक्रियिकाययोगमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इसके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनासे ही प्राप्त होगी क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि देव या नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वैक्रियिके मिश्रकाययोगके कालमें ही कृतकृत्यवेदकका काल समाप्त हो जाता है । काययोगका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुगदल परिवर्तन प्रमाण है अतः इसमें मिथ्यात्व आदि छठवीस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । काययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा इसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है उसी प्रकार काययोगमें भी जानना । औदारिकमिश्रकाययोगमें सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय न कहकर अन्तमुं हूर्त बतलाया है उसका कारण यह है कि यह जघन्य स्थिति उस जीवके होती है जो कोई वाद एकेन्द्रिय जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तमुं हूर्त काल तक अपने अपने प्रतिपन्न बन्धक कालमें रहकर प्रतिपन्न बन्धक कालके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके औदारिकमिश्रमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति होती है । औदारिकमिश्रका काल प्रतिपन्न प्रकृतिके बन्ध कालसे बहुत अधिक है । जघन्य स्थितिसे पूर्व व पश्चात् काल अन्तमुं हूर्त होता है अतः सात नोकपायों की अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त कहा है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति वैक्रियिके मिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें सर्वार्थसिद्धिमें सम्भव है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति अथवा प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तिम समयमें प्रथम नरकमें सम्भव है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति किसी भी समय सम्भव है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिस वैक्रियिकमिश्रकाययोगीके दूसरे समयमें सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । शेष कथन सुगम है । आहारकमिश्रकाययोगमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी न तो उद्वेलना होती है और न क्षणा, अतः

§ ५२७. वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छत्त-अट्टकसाय-अट्टणोकसाय-चत्तारि-संजलण० जह० जहणुक्क० एयस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं णवुंस० । णवरिं जह० जहणुक्क० अंतोसु० । सम्मत्त०-सम्मामिं जह० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० पणवणणपलिदोवमाणि सादिरेयाणि । अणंताणु०चउक्क० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोसु० एयसमयो वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है । तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पर्याप्त योग होनेके पूर्ववर्ती समयमें होगा । आहारककाययोगमें वैक्रियिक काययोगके समान सब प्रकृतियोंकी स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । मूलमें अकषाय आदि और जितनी भार्गवाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । कार्मण काययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है अतः इसमें मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बन जाता है । जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव कार्मणकाययोगके रहते हुए चायिक-सम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके कार्मणकाययोगमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है । तथा जिसने कार्मणकाययोगमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेगना की है उसके उक्त प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति कार्मणकाययोगके दूसरे समयमें प्राप्त होती है अतः इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा कार्मण काययोगमें उक्त नौ प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कार्मणकाय-योगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा बन जाता है । मोहनीयकी सत्तावाले जो जीव कार्मणकाययोगी होते हैं वे ही अनाहारक होते हैं, अतः अनाहारकोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल कार्मणकाययोगियोंके समान कहा ।

§ ५२७. वेदभार्याणके अनुवादसे खीवेदवालोंमें मिथ्यात्व, आठ कषाय, आठ नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार नपुंसक-वेदका जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पल्य है । अनन्तालुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—खीवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी क्षणणके अन्तिम समयमें और आठ कषायोंकी जघन्य स्थिति आठ कषायोंकी क्षणणके अन्तिम समयमें तथा आठ नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थिति सबेदभागके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है अतः इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । खीवेदी जीव जब नपुंसक वेदके अन्तिम काण्डकका पतन करता है तब उसके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति होती है पर इसका उत्कीरणकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इसके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समय तक खीवेदके उदयके साथ रहा और



§ ५२८. पुरिस० मिच्छत्त-वारसक०-पुरिस० ज० जहणुक्क० एयस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगसमञ्चो । अज० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्टिसागरो० सादिरेयाणि । अट्ठणोक्क० ज० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । अणताणु० जह० जहणु० एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमञ्चो वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल सौ पत्यपुत्रत्व प्रमाण है। अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसे यही काल लेना चाहिये। जो स्त्रीवेदी जीव दर्शनमोहनीय की क्षणा कर रहा है उसके अपनी अपनी क्षणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। इसी प्रकार विसंयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना। जो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उत्तर कर एक समय तक स्त्रीवेदके साथ रहा और दूसरे समयमें देव हो गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। एक जीव स्त्रीवेदके रहते हुए निरन्तर वेदकसम्यक्त्वके साथ कुछ कम पचवन पत्य काल तक रह सकता है। अब यदि कोई जीव पचवन पत्यकी आयुके साथ देवी हो गया और वहाँ उसने वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य पाया जाता है। जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिध्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला स्त्रीवेदी जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्यवेदी हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिकी उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५२८. पुरुषवेदवालोंने मिध्यात्व, वारह कषाय और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदवाले जीवोंके मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति मिध्यात्वकी क्षणाके अन्तिम समयमें, आठ कषायोंकी जघन्य स्थिति आठ कषायोंकी क्षणाके अन्तिम समयमें तथा चार संवल्लन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सवेदभागके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियों-

§ ५२९. णवुंसं मिच्छत्त-अट्ठक०-अट्ठणोक्क०-चत्तारिसंजल० ज०. जहणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेजा पो०परियट्ठा । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरैयाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोप्पु०

की जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । कोई मनुष्य उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समयके लिये पुरुषवेदी हुआ और दूसरे समयमें भरकर वह देव हो गया तो भी वह पुरुषवेदी ही रहता है अतः पुरुषवेदमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय नहीं बनता । किन्तु जो उपशमश्रेणीसे उतर कर और पुरुषवेदी हो कर अन्तमुहूर्तमें क्षणश्रेणी पर चढ़कर उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त कर लेता है उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त पाया जाता है । इसी प्रकार आठ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त घटित कर लेना चाहिये । दर्शनमोहनीयकी क्षणया करनेवाले जांघवे अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार ओषधे घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ घटित कर लेना चाहिये । जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और पुरुषवेदी होकर अन्तमुहूर्तमें दर्शनमोहनीयकी क्षणया कर देता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त पाया जाता है । या जिसने उद्वेलनाके बाद अन्तमुहूर्तमें द्वायिकसम्यग्दर्शनको प्राप्त किया है उसके भी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त पाया जाता है । अतः उसे यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये किन्तु उद्वेलना करता हुआ जो कोई जीव उपान्त्य समयमें पुरुषवेदी हो गया उसके सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । पुरुषवेदी जीवके आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तिम काण्डके समय प्राप्त होती है और उसका उत्कीरणकाल अन्तमुहूर्त है अतः यहाँ आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसको जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ताचाला जो पुरुषवेदी जीव मिथ्यात्वमें गया और अन्तमुहूर्त में सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त पाया जाता है । तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ताचाला उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनका प्राप्त हुआ और दूसरे समय में भरकर अन्यवेदी हागया उस पुरुषवेदीक अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है । शीवेदमें भी इस प्रकार एक समय काल प्राप्त किया जा सकता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५२९. नुप्पंसकवेदवालोमे मिथ्यात्व, आठ कषाय, आठ नोकषाय और चार संवलनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल

एगसमओ वा, उक्क० अणंतकालमसखेज्जा पो०परियट्ठा । इत्थि० जह० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अणंत०कालमसं०पो०परि० । अणवगदवेद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक० जह० ओघं । अज० जह० [ -एगस०, ] उक्क० अंतोमु० ।

§ ५३०. कसायाणुवादेण सव्वकसाईसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० मणजोगिभंगो । वारसक०-णवणोक० ज० ओघं । अज० जहणुक्क० अंतोमु० ।

अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अपगत-वेदवालोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**—नरकमें जीव सम्यग्दर्शनके साथ कुछ कम तेतीस सागर काल तक रह सकता है। अब यदि कोई अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्दर्शनके साथ रहा तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर पाया जाता है। तथा इनके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि नपुंसकवेदका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण है। यहाँ सब प्रकृतियोंकी जघन्य आदि स्थितियोंका शेष काल स्त्रीवेदियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका काल कहते समय वह नपुंसकवेदीके स्त्रीवेदके अन्तिम काण्ड-कघातके समय प्राप्त होता है जिसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। जो अपगतवेदी जीव उपशमश्रेणी से उतर कर अवेदभागके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसके उक्त तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा। जो अपगतवेदी न्यायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर अपगतवेदके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और आठ कषायोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा। तथा जो अपगतवेदी जीव छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें तथा पुरुषवेद और चार संव्वलन की क्षणिक अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान पाया जाता है। अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः अपगतवेदमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है।

§ ५३०. कषाय मार्गणाके अनुवादे सब कषायवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मनोयोगियोंके समान है। वारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ५३१. गाणाणवादेण मदि-सुदअण्णा० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुग्घा० ज० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० अमंखेज्जा लोगा । सत्तणोक० जह० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसं० पो० परि० । सम्भत्त-सम्भामि० जह० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । विहंग० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । सम्भत्त-सम्भामि० एइंदियभंगो ।

**विशेषार्थ**—जिस प्रकार मनोयोगी जीवके मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार चारो कषायवाले जीवोंके घटित कर लेना चाहिये । जो क्रोधादि कषायवाले जीव आठ कषाय और नौ नोकषायोंकी क्षण कर रहे हैं उनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा । क्रोधकषायीके क्रोधवेदक कालके अन्तिम समयमें चार संज्वलनोंकी, मानकषायीके मानवेदक कालके अन्तिम समयमें तीन संज्वलनोंकी, मायाकषायवालेके मायावेदककालके अन्तिम समयमें दो संज्वलनोंकी और लोभकषायवाले जीवके लोभकषायवेदककालके अन्तिम समयमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति होती है । तथा मानादि कषायवाले जीवोंके शेष कषायोंकी जघन्य स्थिति अपनी-अपनी क्षणोंके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा । तथा क्रोधादि कषायवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा ।

§ ५३१. ज्ञान मार्गणके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक-प्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पर्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नौऋणोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेरीस सागर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान एकेन्द्रियोंसे लेकर सद्धी पंचेन्द्रिय तकके सब मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके होते हैं । किन्तु यहाँ जघन्य स्थितिका प्रकरण है अतः मुख्यतः एकेन्द्रियोंकी स्थितिका ग्रहण किया है । एकेन्द्रियोंमें भी सबसे कम वादर एकेन्द्रियोंकी जघन्य स्थिति होती है । जिसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल

§ ५३२. आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्कस्सभंगो । खवरि छण्णोक्क० जह० जहण्णुक्क० अंतमु० । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय० । णवरि खवगसेहिम्मि छण्णोक्क० ज० ओयं । मण्णपज्ज० अट्टणोक्क० पुरिस०भंगो । सेस० उक्कस्सभंगो ।

अन्तमुहूर्त कहा । तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायमे निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति होती है अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा । जो वादर एकेन्द्रिय जीव जघन्य स्थितिके बन्धकालमें भरकर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके अपनी प्रतिपन्न प्रकृतिके बन्धकालके अन्तिम समयमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और एकेन्द्रिय पर्यायमे निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अब कोई जीव इतने कालतक निरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहा और अन्तमें वादर एकेन्द्रिय हुआ तथा वहाँ सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध व सत्त्व करके पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ अपनी प्रतिपन्न प्रकृतिके बन्धकालके अन्तमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस जीवके उक्त काल तक सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवके सात नोकपायों की अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्देशनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा मिथ्यात्वमे उक्त दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही पाया जाता है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । जो उपरिम प्रैवेयकका जीव अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त हो जाता है उसके विभंगज्ञानके रहते हुए मिथ्यात्व आदि छज्जीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः विभंगज्ञानीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उपरिम प्रैवेयकके देवको छोड़ कर अन्य देव तथा नारकी जीवके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होने पर विभंगज्ञानमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । विभंग ज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५३१. आमिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें जघन्य स्थितिका भंग उत्कृष्ट स्थितिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दष्टि, चाथिकसम्यग्दष्टि और वेदकसम्यग्दष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि चक्कप्रेणीमें छह नोकपायोंका जघन्य स्थितिका काल ओषधके समान है । मनःपर्ययज्ञानियोंमें आठ नोकपायोंका भंग पुरुषवेदके समान है । शेष प्रकृतियोंका भंग अपनी उत्कृष्ट स्थितिके समान है ।

§ ५३३. असंजद० मिच्छत्त० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० केवचिरं ? अणादिसपज्जवसिदो, अणादिसपज्जवसिदो सादिसपज्जव० । जो सो सादिसपज्जवसिदो तस्स इमो णिहसो—जह० अंतोमु०, उक्क० उवडुपोग्गलपरियट्टं । सम्मत्त०-सम्मापि० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरयाणि । अणंताणु०चउक्क० ओघं । वारसक०-णवणोक्क० मदि० भंगो । अचक्खु० ओघं ।

**विशेषार्थ**—क्षपकश्रेणीमें जब छह नोकषायोंका अन्तिम काण्डक प्राप्त होता है तब उनकी जघन्य स्थिति होती है और इसका काल अन्तमुहूर्त है, अतः आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार संयत आदि मार्गणाओंमें जानना । इसका यह तात्पर्य है कि इन मार्गणाओंमें जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल कह आये हैं उसी प्रकार यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल कहना चाहिये, क्योंकि इनमें परस्पर कालकी अपेक्षा समानता देखी जाती है । किन्तु इनमेंसे जिन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणी सम्भव हो उन्हींमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान जानना चाहिये शेषमें नहीं । मनःपर्ययज्ञान पुरुषवेदी जीवके ही होता है अतः इनके आठ नोकषायोंको जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल पुरुषवेदियोंके समान कहा । शेष सुगम है ।

§ ५३३. असंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका कितना काल है ? अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त इस प्रकार तीन तरहका काल है । उनमें जो सादि-सान्त काल है उसका यह कथन है । वह जघन्यसे अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टसे उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्य-मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तृतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल ओघके समान है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंका काल मत्त्यज्ञानियोंके समान है । अचक्षुदर्शनमें ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—जो असंयत मिथ्यात्वकी क्षपणा कर रहा है उसके मिथ्यात्वकी क्षपणाके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है, अतः असंयतके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । मूलमें असंयतके मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके अनादि-अनन्त, अनादिसान्त और सादिसान्त ये तीन भंग कहे हैं सो वास्तवमें ये असंयतत्वके साथ मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके तीन भंग हैं अतः उसके सम्बन्धसे मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके तीन भागोंमें बाँट दिया है, क्योंकि ऐसा किये बिना असंयतके मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाना कठिन था । इनमेंसे सादि-सान्त असंयतका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छह कष अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, अतः असंयतके मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा । असंयतके अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्विथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है तथा सम्यग्विथ्यात्वकी उद्वेगनाके अन्तिम समयमें भी जघन्य स्थिति होती है, अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जब कोई संयत कृतकृत्यवेदके कालमें दो समय शेष रहने पर असंयत हो जाता है तब

§ ५३४. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउं मिच्छत्त-वारसकं-भय-दुगुंळं जहं जं एगसं, उक्कं अंतोमुं । अजं जहं एगसं, उक्कं सगट्ठिदी । सत्तणोकं जहं जहणुक्कं एगसं । अजं जं एगसं, उक्कं सगट्ठिदी । सम्मत्तं-सम्मामिं जहं जहणुक्कं एगसं । अजं जहं एगसं, उक्कं सगट्ठिदी । अणंताणुं चउक्कं जहं जहणुक्कं एगसं । अजं जहं अंतोमुं, उक्कं सगट्ठिदी ।

§ ५३५. तेउ-पम्मं मिच्छत्त-सोलसकं-एवणोकं जहं जहणुक्कं एगसं । अजं जहं अंतोमुं अणंताणुं एगसमओ वा, उक्कं सगट्ठिदी । सम्मत्तं-सम्मामिं जं जहणुक्कं एगसं । अजं जं एगसं, उक्कं सगट्ठिदी । सुक्कं

उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा असंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । कोई जीव असंयतभावके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल तक ही रह सकता है अतः असंयतके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । जो असंयत अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर रहा है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है अतः असंयतके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओषके समान एक समय कहा । इसी प्रकार ओषमें बताये अनुसार असंयतके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका काल भी घटित कर लेना चाहिये । तथा असंयत जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मत्स्यज्ञानियोंके समान बन जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मत्स्यज्ञानियोंके समान कहा । छद्मस्थ जीवोंके अचक्षुदर्शन निरन्तर रहता है अतः अचक्षुदर्शनमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओषके समान कहा ।

§ ५३४. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामे मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

§ ५३५. पीत और पद्म लेश्यामें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । शुक्ल-

उक्कस्समंगो । णवरि छण्णोक्क० जह० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अभव० मदि०मंगो ।  
णवरि सम्मत्त-सम्मामि० णत्थि ।

लेख्यामें उत्कृष्ट स्थितिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अभव्योंमें मत्यहानियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंके कृष्णादि तीनों लेख्याएँ सम्भव हैं, अतः जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय बतला आये हैं उसी प्रकार कृष्णादि तीन लेख्याओंमें घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इनके अजघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। बात यह है कि कृष्णलेख्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर, नील लेख्याका उत्कृष्ट काल साधिक सत्रह सागर और कापोत लेख्याका उत्कृष्ट काल साधिक सात सागर है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण ही प्राप्त होगा। उक्त तीनों लेख्याओंमेंसे कोई एक लेख्यावाला जो वादर एकेन्द्रिय जीव जघन्य स्थितिके साथ पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रतिरूप प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः कृष्णादि तीनों लेख्याओंमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। अब यदि उक्त जीव दूसरे समयमें अजघन्य स्थितिके साथ रहा और तीसरे समयमें उसके विचक्षित लेख्या बदल गई तो उक्त लेख्याओंमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है इस अपेक्षासे उक्त तीन लेख्याओंमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा उत्कृष्ट काल स्पष्ट ही है। कृष्ण और नील लेख्यामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा तथा कापोत लेख्यामें सम्यक्त्वका कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा जघन्य स्थिति प्राप्त होता है जिसका काल एक समय है, अतः उक्त तीनों लेख्याओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। जिस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें दो समय शेष रहने पर कृष्णादि तीन लेख्याएँ प्राप्त होती हैं। उसके कृष्णादि तीन लेख्याओंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि कापोत लेख्यामें एक समय तक सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थिति कृतकृत्य वेदकके दो अन्तिम समयकी अपेक्षा घटित करनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वकी क्षणिके दो अन्तिम समयमें कापोत लेख्या प्राप्त करावे और इस प्रकार कापोत लेख्यामें सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहे। तथा उत्कृष्ट काल स्पष्ट ही है। विसंयोजनके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जो तीनों लेख्याओंमें सम्भव है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीका जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा उक्त लेख्याओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा उनमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा। जो ज्ञातिकस्यन्दष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उत्तर कर पीत और पद्मलेख्याको प्राप्त हुआ है वह यदि तदनन्तर शुक्ललेख्याको प्राप्त होकर क्षणश्रेणीपर चढ़े तो उसके पीत और पद्मलेख्याके अन्तिम समयमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है।



§ ५३६, उवसम० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोको० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जहणुक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जहणुक्क० अंतोमु० । एवं सम्मामि० । सासण० सन्वपयडीणं जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० छावलियाओ । मिच्छादिही० मदि०भंगो । असण्णि० तिरिक्खोघं । एवरि अणंताणु० चउक्क०-सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो ।

तथा इन दोनों लेश्यावाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति इनकी क्षणिक अन्तिम समयमें और अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । यहां इतना विशेष जानना कि उक्त लेश्याओंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्देलनाकी अपेक्षा भी प्राप्त होती है । तथा उक्त लेश्याओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इनमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा । किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पीत और पद्मलेश्याके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो सकता है अतः इनमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा । जो जीव कृतकृत्यवेदकके उपान्त्य समयमें और उद्देलनाके उपान्त्य समयमें पीत और पद्मलेश्याको प्राप्त होते हैं उनके क्रमसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः उक्त लेश्याओंमें उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । शुक्ल लेश्यामें छह नोकपायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय उनकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जो अन्तमुहूर्त काल तक रहती है, अतः इसके छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५३६ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है । मिथ्यादृष्टियोंमें मत्यज्ञानियोंके समान भंग है । अर्त्तज्ञियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अर्त्तज्ञियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकैन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—जो उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीसे उतर कर अनन्तर वेदकसम्यग्दृष्टि होनेवाला है उसके अन्तिम समयमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः उपशमसम्यग्दृष्टिके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उपशमसम्यक्त्वके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि उपशमश्रेणीमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः जो प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि जीव तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति होती है । या जिन आचार्योंके मतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानु-

§ ५३७. आहारीसु मिच्छत्त-सम्मत्त०-सम्मामि०-वारसक०-णवणीक० जह०  
ओषं । अज० जह० खुदाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-  
सम्मामि० पंचिंदियभंगो । अणंताणु०चउक्क० जह० जहणुक्क० एगस० । अज०  
जह० अंतोमु० एगसमयो वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

बन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करता है उसके विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तालुबन्धी-  
की जघन्य स्थिति होती है । जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला सन्यग्मिध्यात्व गुणस्थान-  
को प्राप्त होता है उसके अन्तिम समयमें मिध्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
जघन्य स्थिति होती है, अतः सन्यग्मिध्यादृष्टि जीवके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति-  
का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । सम्यक्त्व और सन्यग्मिध्यात्वकी पृथक्त्व-  
सागर स्थितिकी सत्तावाला जो मिध्यादृष्टि जीव सन्यग्मिध्यात्वको प्राप्त होता है उसके अन्तिम  
समयमें सम्यक्त्व और सन्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है, अतः सन्यग्मिध्यादृष्टिके  
इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । अनन्तालुबन्धीकी जघन्य  
स्थिति अट्टार्षस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सन्यग्मिध्यादृष्टिके अन्तिम समयमें होती है, अतः इसके  
अनन्तालुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इसके सब  
प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही  
है । जो उपशमश्रेणीसे गिरकर सासादनभावको प्राप्त होता है उसके सासादनके अन्तिम समयमें  
सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः सासादनसन्यग्दृष्टिके सब प्रकृतियोंकी  
जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा सासादन गुण  
स्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल  
एक समय और उत्कृष्ट काल छह आषल्लिप्रमाण कहा । मिध्यादृष्टियोंके सब प्रकृतियोंकी  
जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मत्यज्ञानियोंके समान होता है यह स्पष्ट ही है । असंज्ञी  
तिर्यञ्च ही होते हैं अतः सामान्य तिर्यञ्चोंके समान असंज्ञियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और  
अजघन्य स्थितिका काल जानना चाहिये । किन्तु सामान्य तिर्यञ्चोंमें संज्ञी तिर्यञ्च भी सम्मिलित  
हैं और उनके अनन्तालुबन्धीकी विसंयोजना भी होती है तथा उनमें कृतकृत्यवेदक सन्यग्दृष्टि  
भी उपपन्न होता है, अतः असंज्ञियोंमें सन्यग्मिध्यात्व सहित उक्त छह प्रकृतियोंकी जघन्य और  
अजघन्य स्थिति सामान्य तिर्यञ्चोंके समान नहीं बन सकती है, फिर भी यहाँ जघन्य और  
अजघन्य स्थितिके कालकी मुख्यता है जो यथायोग्य एकेन्द्रियोंके सम्भव है, अतः असंज्ञियोंके उक्त  
प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा ।

§ ५३७. आहारकोमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सन्यग्मिध्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायों  
की जघन्य स्थितिका काल ओषके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय  
कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सन्यग्मिध्यात्व-  
की अजघन्य स्थितिका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है । अनन्तालुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका  
जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय  
और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—ओषसे मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सन्यग्मिध्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी

❀ अंतरं । मिच्छुत्त-सोत्तसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिगं अंतरं जहएणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५३८. कुटो ? भण्णिकम्माणमुक्कस्सट्ठिदिं वंधमाणो जीवो अणुक्कस्सबंधओ होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो एदेसिं कम्माणमुक्कस्सट्ठिदिवंधुवलंभादो । दोण्हमुक्कस्सट्ठिदाणं विञ्चालिमअणुक्कस्सट्ठिदिवंधकालो तासिमंतरं ति भण्णिदं होदि । एगसमओ जहणंतरं किण्ण होदि ? ण, उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहगस्स पुणो अंतोमुहुत्तेण विणा उक्कस्सट्ठिदिवंधासंभवादो ।

जघन्य स्थिति आहारकोक ही सम्भव है, अतः आहारकोक उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान कहा । सन्यक्त्व और सन्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति अनाहारकोके भी होती है यहाँ इतना विशेष जानना । आहारकोका जघन्य काल तीन समय कम लुद्धभ्रमप्रदण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवै भाग असंख्यातासंख्यात अचमपर्यो उत्सपणो काज प्रमाण है, अतः इनके सन्यक्त्व और सन्यग्मिध्यात्वको छोड़कर उक्त मय प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम लुद्धाभ्रमप्रदण प्रमाण आर उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण कहा । तथा सन्यक्त्व और सन्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार पंचेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार आहारकोके जानना, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । आहारक अचस्थामे ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हाँती है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । अनन्तानुबन्धीका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसन्ध्यष्टि जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादन हुआ और दूसरे समयमें मरकर अनाहारक हो गया तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति एक समय भी पाई जायगी, अतः आहारक के अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आहारके उत्कृष्ट काल प्रमाण होता है यह स्पष्ट है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब अन्तरका प्रकरण है । उसमें मिध्यात्व और सोलह कपायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५३८. शंका—उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—क्योंकि चूर्णिसूत्रमें कहे हुए कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जो जीव अनुत्कृष्ट स्थितिका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध करता है उसके अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः पूर्वोक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध पाया जाता है । इस कथनका यह तात्पर्य है कि दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंके मध्यमे जो अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है वह उन दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंका अन्तरकाल है ।

शंका—जघन्य अन्तर एक समय क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर उससे न्युत हुए जीवके पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके बिना उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता, अतः जघन्य अन्तर एक समय नहीं होता ।

### ❊ उक्कस्समसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।

§ ५३९, कुदो ? उक्कस्सट्टिदिं बंधिय पडिहग्गो होदूण अणुक्कस्सट्टिदिं बंधमाणो ताव अञ्जदि जाव अणुक्कस्सट्टिदिवंधगद्धाए उक्कस्सियाए चरिमसमओ त्ति । तदो एइदिएसुववज्जिय असंखेज्जाणि पोग्गलपरियट्टाणि तत्थ परिभमिय पुणो पंचिदिय-तस रज्जत्तएसु उप्पज्जिय पज्जत्तयदो होदूण उक्कस्सदाहं गंतूण उक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए आवलियाए असंखेज्जिदिभागपमाणपोग्गलपरियट्टाणमंतरेणुवत्तभादो ।

### ❊ एवं एवणोक्कसायाणं । एववरि जहणणेण एगसमओ ।

§ ५४०, एवणोक्कसायाणमुक्कस्सट्टिदीए अंतरकालो मिच्चत्तादीणमुक्कस्सट्टिदि-अंतरकालेण सरिसो, किंतु जहणंतरकालो एगसमओ । कुदो ? कसाएसु अण्णदरकसायस्स उक्कस्सट्टिदिमेगसमयं बंधिदूण पुणो त्रिदियसमए सव्वेसिं कसाया-णमणुक्कस्सट्टिदिं बंधिय तदियसमए उक्कस्सट्टिदिं बंधिय एवमग्गदो अग्गदो य उक्कस्स-ट्टिदिसंतमज्जे अणुक्कस्सट्टिदिसंतं कादूण बंधावलियादिवकंतकसायट्टिदीए णोक्क-साएसु संकंताए उक्कस्सट्टिदीए आदी जादा । तदो विदियसमए अणुक्कस्सट्टिदीए

### \* उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५३६, शंका—उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण क्यों है ।

**समाधान**—किसी एक जीवने उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोसे निवृत्त होकर उसने अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और यह बन्ध अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट बन्धकालके अनन्तम समय तक करता रहा । तदनन्तर यह जीव एकेन्द्रियोमें उत्पन्न हुआ और वहाँ असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके पुनः पंचेन्द्रिय त्रस पर्याप्तकोमें उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होकर उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोको प्राप्त हुआ तब जाकर इसके उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है और इसलिये उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असंख्यातवै भागके जितने समय हों उतने पुद्गल परिवर्तनप्रमाण पाया जाता है ।

\* इसी प्रकार नौ नोकषायोका अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ५४०, नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल मिथ्यात्वादिककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरकालके समान है । किन्तु जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

शंका—नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय क्यों है ?

**समाधान**—जिस जीवने सोलह कषायोमेसे किसी एक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय तक बंधे, पुनः दूसरे समयमे सब कषायोकी अनुत्कृष्ट स्थितिको बंधा और तीसरे समयमें अन्य कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बंधा इस प्रकार जो जीव आगे आगे कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके मध्यमे कषायोकी अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वको करता है । तदनन्तर जिसके बन्धावलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके नोकषायोमे संक्रांत होने पर नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका

अंतरिय पुणो तदियसमए णोकसाएसु वंधावळियाइक्कंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए एगसयमेचंतरुवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्साणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियंतरं जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५४१. कुदो ? मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं कादूण विदियसमए अणुक्कस्सट्ठिदिं गंतूणंतरिय सव्वजहण्णसम्मत्तकालमच्छिय मिच्छत्तेण परिणामिय पुणो उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय अंतोमुहुत्तं पडिहग्गो होदूणच्छिय वेदगसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तसम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्ममुवगयस्स उक्कस्सट्ठिदीए अंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णंतरुवलंभादो ।

❀ उक्कस्समुवडुपोग्गलपरियट्टं ।

§ ५४२. तं जहा एगो अणादियमिच्छाइट्ठी छव्वीससंतकम्मियो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गो होदूण ट्ठिदिधादमकरिय वेदगसम्मत्तं घेत्तूण सम्मत्त-

प्रारम्भ हुआ । तथा जो दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको अन्तरित करके पुनः तीसरे समयमें वन्धावलिके पश्चात् कपायकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकपायोंमें संक्रान्त करता है उसके नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्रमाण पाया जाता है ।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है ।

§ ५४१. शंका—जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त कैसे है ?

समाधान—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले किसी एक जीवने वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म किया । तदनन्तर वह दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हुआ और इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका अन्तर करके सबसे जघन्य सम्यक्त्वके कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ पुनः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और संक्लेश परिणामोंसे च्युत हो विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ अन्तमुहूर्त कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला वह जीव जब वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब पुनः उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है और इस प्रकार उस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त पाया जाता है ।

❀ उत्कृष्ट अन्तर उपाधुपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५४२. वह इस प्रकार है—छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः वह उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तमुहूर्त कालतक रहकर मिथ्यात्वमें गया और वहाँ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और संक्लेश परिणामोंसे च्युत होकर स्थितिघात न करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः वहाँ सम्यक्त्व और सम्य-

सम्भामिच्छत्ताणमुक्कस्सद्विदिसंतकम्मं कादूण सम्भचेण अंतोमुहुत्तमच्चिद्वय मिच्छत्तं गंतूण देसूणद्धपोगलपरियट्टं परिभमिय पुणो तिण्णि वि करणाणि करिय पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तं गंतूणुक्कस्सद्विदं वधिय अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तमुवगयपढमसमए मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिए सम्भत्तसम्भामिच्छत्तेसु संकंताए लद्धमंतरं होदि । एवं पुञ्जिल्लंतिन्लअंतोमुहुत्तेणामद्धपोगलपरियट्टमुक्कस्संतरं । ऊणमद्धपोगलपरियट्टं उवडुपोगलपरियट्टं ति घेत्तवं ।

§ ५४३. संपहि चुण्णिसुत्तपरुवणं काऊण त्रिसेसोवलद्धिं पडुच्च पुणरुत्तभयं छंदिय सोघमुच्चारणं भणिएस्सामो । अंतरं दुविहं—जहणमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-वारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकाल० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सम्भत्त-सम्भामि० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० उवडुपोगलपरियट्टं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० उवडुपो०परियट्टं । अणंताणु०चउक्क० उक्क० अंतरं केवचिरं० ? ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकाल० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वेडावट्टिसागरो-वमाणि देसूणाणि । पंचणोक्क० उक्क० जह० एगस०, उक्क० अणंतकाल० । अणुक्क०

मिध्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मको करके तथा सम्यक्त्वके साथ अन्तमुहूर्त कालतक रहकर मिध्यात्वमे गया । पुनः वह मिध्यात्वके साथ कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन कालतक परिभ्रमण करके पुनः तीनों करण करके प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर उसने मिध्यात्वमे जाकर और वहाँ मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको वाँचकर अन्तमुहूर्त कालके द्वारा वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम समयमें मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वमे संक्रमण किया । तब जाकर उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर पहलेके और अन्तके अन्तमुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है । यहाँ सूत्रमें जो उपार्ध पुद्गल परिवर्तन पदका ग्रहण किया है सो उससे कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनरूप कालका ग्रहण करना चाहिये ।

§ ५४३. इस प्रकार चूणिसूत्रका कथन करके अब विशेष ज्ञान करानेके लिये पुनरुक्त दोषके भयको छोड़कर ओघसहित उच्चारणाका कथन करते हैं—अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य अन्तर और उत्कृष्ट अन्तर । उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तरका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिध्यात्व और वारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गलपरिवर्तन काल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गलपरिवर्तनकाल है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ वत्तीस सागरप्रमाण है । पांच नोकषायोंकी

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । चत्तारिणोक्क० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अणंत-  
काल० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एगावलिया । एसो चुण्णिमुत्तवएसो ।  
उच्चारणाए पुण वे उवएत्ता— एगावलिया आवलियाए असंखेज्जदिभागो चेदि । पडि-  
हग्गसमए चेव जे आइरिया चट्टुणोकसायाण वंधो होदि त्ति भयंति तेसिमहिप्पाएण  
एगावलियमेत्तो चट्टुणोकसायाणमणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरकालो । पडिहग्गपढम-  
समयप्पहुडि आवलियाए असंखेज्जेसु भागेषु गदेषु असंखे० भागावसेसे चट्टुणोकसाया  
वज्झंति त्ति जे आइरिया भयंति तेसिमहिप्पाएण अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरं  
आवलियाए असंखे० भागो । एवमचक्खु०-भवसिद्धि० ।

उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तथा अनुत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आवली काल है । चार नोकपायोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक आवलीप्रमाण है यह उपदेश चूर्णिसूत्रके अनुसार है ।  
उच्चारणाकी अपेक्षा तो दो उपदेश पाये जाते हैं । एक उपदेश एक आवली कालका है और  
दूसरा उ.देश आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका है । जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-  
वन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर तदनन्तर समयमे ही चार  
नोकपायोंका वन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । तथा जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-  
वन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर पहले समयसे त.कर आवलिके  
असंख्यात बहुभाग कालको वितारकर असंख्यातवें भागप्रमाण कालके शेष रहने पर चार नोकपायोंका  
वन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट  
अन्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । इसी प्रकार चक्षुदर्शनवाले और भन्य  
जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट  
अन्तरका खुलासा मूलमें किया ही है, अतः यहां अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और, उत्कृष्ट अन्तरक  
खुलासा किया जाता है । जब किसी जीवके एक समय तक मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक  
समय पाया जाता है । तथा जब किसीके मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध  
अन्तर्मुहूर्तकाल तक होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु-  
हूर्त पाया जाता है । जो जीव सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके तीसरे समयमे उपशम  
सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य  
अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा जो जीव अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमे उपशम  
सम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमे जाकर पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता है । पुनः अर्धपुद्गल परिवर्तन कालमे अन्तर्मु-  
हूर्त शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है । जिसने अनन्ता-

§ ५४४. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणुक्क० ओपं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह० एगस० । अण-ताणु० चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । पंचणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । चत्तारिणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० आबलियाए असंखे० भागो एगा-

नुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि पुनः मिथ्यात्वमें आवे तो उसे मिथ्यात्वमें आनेके लिये कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल और अधिकसे अधिक कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर काल लगता है अतः अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर प्राप्त होता है । नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । तथा शेष चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक आवली है, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आवलि है । यहाँ चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका एक आवलिप्रमाण जो उत्कृष्ट अन्तर बतलाया है वह चूर्णिसूत्रके उपदेशानुसार बतलाया है । परन्तु इस विषयमें उच्चारणमें दो उपदेश पाये जाते हैं । पहले उपदेशका सार यह है कि सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके दो चुकनेके दूसरे समयसे ही चार नोकषायोंका बन्ध होने लगता है । तथा दूसरे उपदेशका सार यह है कि सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके दो चुकनेके पश्चात् दूसरे समयसे चार नोकषायोंका बन्ध नहीं होता किन्तु जब आवलिका असंख्यातवां भाग काल शेष रह जाता है तब वहासे बन्ध होता है । इनमेंसे पहले उपदेशके अनुसार चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर एक आवलि प्राप्त होता है और दूसरे उपदेशके अनुसार आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अचक्षुदर्शन और भव्यमार्गणा छद्मस्थ जीवोंके सर्वदा पाई जाती हैं, अतः इनमें ओषके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर वन जाता है ।

§ ५४४. आदेश निर्देशकी अपेक्षा नारकियोमें मिथ्यात्व और वारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तेतीस सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल ओषके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तेतीस सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल भी इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर काल एक समय है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है । चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य



बलिया वा । एत्थ उवएसं लद्धूण एगयरणिण्णओ कायव्वो । पढमादि जाव सत्तमि  
त्ति एवं चेव । एवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा त्ति वत्तव्वं ।

§ ५४५. तिरिक्ख० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोको० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि०  
उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोमालपरियट्टं देसूणं । अणुक्क० एवं चेव ।  
णवरि जह० एगस० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० ओघं । अणुक्क० अंतरं ज०  
एगस०, उक्क० तिण्ण पलिदो० देसूणाणि । पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण अथवा एक आवली है ।  
यहाँ पर उपदेशको प्राप्त करके किसी एकका निर्णय करना चाहिये । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं  
पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम  
अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये ।

विशेषार्थ—जिसने नरकमें उत्पन्न होकर और पर्याप्त होकर मिथ्यात्व और बारह  
कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया । अनन्तर जो अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहा किन्तु  
नरकसे निकलनेके पहले जिसने पुनः उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उसके उक्त  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है । अनन्तानु-  
बन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । जिसने  
नरकमें उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानु-  
बन्धीकी विसंयोजना कर दी वह यदि नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्वको  
प्राप्त होता है तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस  
सागर पाया जाता है । जिसने पर्याप्त होकर और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मु-  
हूर्त कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके समय सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । अनन्तर जो नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष  
रह जाने पर पुनः इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है  
उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर  
पाया जाता है । जिस नारकीने नरकमें उत्पन्न हाकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना  
करके अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर किया । अनन्तर नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर  
जिसने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिको  
प्राप्त किया उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर  
पाया जाता है । तथा बारह कपायोंके समान नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ  
कम तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिये । सब प्रकृतियोंकी शेष स्थितियोंका उत्कृष्ट और  
जघन्य अन्तर जो ओघमें बतला आये हैं उसी प्रकार जानना चाहिये । तथा प्रथमादि नरकमें  
अपने अपने नरककी विशेष स्थितिका ख्याल करके इसी प्रकार कथन करना चाहिये ।

§ ५४६. तिरिचोमि मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
का अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्त-  
र्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर  
भी इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर एक समय है । अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है । पंचेन्द्रियतिरिच, पंचेन्द्रियतिरिच पर्याप्त

पंच०तिरि०जोगिणीसु मिच्छत्त-वारसक० उक्क० ज० अंतोसु०, उक्क० पुव्वकोडि-  
पुधत्तं । अणुक्कस्स० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क०  
अंतरं ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तिणिण  
पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि । अणंताणु०चउक्क० उक्क० मिच्छत्तभंगो ।  
अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तिणिण पलिदोवमाणि देसणाणि । पंचणोक्क० उक्क०  
ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० ।  
चचारिणोक्क० उक्क० ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणुक्क० ज० एगस०,  
उक्क० आवलि० असंखे०भागो एगावलिया वा । एवं मणुसतिय० ।

और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोमे मिथ्यात्व और वारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य  
अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्व है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्व है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य  
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्वसे अधिक तीन पत्य है । अनन्तानुवन्धी  
चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर मिथ्यात्वके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य  
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है । पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्वप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्व है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर आधलीके असंख्यातवें भागप्रमाण अथवा एक  
आधली है । इसी प्रकार अर्थात् पंचेन्द्रिय आदि उक्त तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंके समान सामान्य  
मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**जिस तिर्यचने अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कालके शेष रहने पर उपशम  
सम्यक्त्वको प्राप्त किया पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके  
अन्तर्मुहूर्त कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको  
प्राप्ता किया । पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देशना की । अनन्तर जो अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त  
कालके शेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर तथा मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यग्दृष्टि होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर  
कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल प्रमाण पाया जाता है । तथा इसी प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिका  
उत्कृष्ट अन्तर काल घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यह अन्तर उद्देशना  
कालके अन्तसे प्रारम्भ होता है और अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके समय समाप्त होता है ।  
कोई एक जीव भोगभूमिके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और दो माह गर्भमें रहा । अनन्तर गर्भसे निकल  
कर अन्तर्मुहूर्तमें जिसने वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना की ।  
पश्चात् जीवन भर अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजनाके साथ रह कर अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर  
अनन्तानुवन्धीका बन्ध किया । उसके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर

§ ५४६. पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णव-  
 पोक० उक० अणुक० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज० अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ०-  
 सव्वएइं दिय-सव्वविगल्लिदिय-पंचि०अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स-  
 वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-  
 सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-  
 संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-  
 [असणिण-]अणाहारि ति । णवरि एइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-आउ० तेसिं बादर-  
 पज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-तप्पज्जत्त-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-असणिण०

कुछ कम तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है । भोगभूमिमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंका जो उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य वतलाया है उसमे भोगभूमिका काल भी सम्मिलित है अतः इससे तीन पल्य कम कर देने पर जो पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण काल शेष बचता है वह उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमे मिथ्यात्व आदि अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये । यहां किस तिर्यचके पूर्वकोटि पृथक्त्वसे कितनी पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये इसका कथन अन्यत्र किया है, इसलिये वहांसे जान लेना चाहिये । उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें जिस तिर्यचने अपनी पर्यायके प्रथम समयमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की अनन्तर वह अपनी अपनी कायस्थितिके उत्कृष्ट कालतक मिथ्यादृष्टि रहा पर अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर ली उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरका कथन जिस प्रकार सामान्य तिर्यचोंके कर आये है उसी प्रकार इन तीन प्रकारके तिर्यचोंके कर लेना चाहिये । इसका प्रमाण कुछ कम तीन पल्य है । शेष कथन ओषके समान जानना चाहिए । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंके भी उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंके समान अन्तर काल जानना चाहिये । किन्तु पूर्वकोटियां जिसकी जितनी हों उतनी कहनी चाहिये ।

§ ५४६. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तिकोंमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तिक, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावर काय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कामैणकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, आमिनि-  
 बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदशैनवाले, सम्य-  
 ग्दृष्टि, क्षात्रिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंखी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी और

णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलिया दुसमयूणा । अणु० जह० एगस०, उक्क० आवलिया समयूणा ।

§ ५४७. देवगदि० मिच्छत्त-वारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अट्टारस सागरो० सादिरैयाणि । अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अट्टारस साग० सादिरैयाणि । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एकतीस सागरो० देसूणाणि । अणंताणु० चउक्क० उक्क० मिच्छत्तभंगो । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एकतीस सागरो० देसूणाणि । णवणोक० उक्क० ज० एयस०, उक्क० अट्टारस सागरो० सादिरैयाणि । अणुक्क० ओषं । भवणादि जाव सहस्तर ति एवं चेव । णवरि सगट्टिदी देसूणा । आणदादि जाव उवरिभगेवज्जो ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्क० एत्थि अंतरं णिरंतरं । सम्मत्त-

असंखी जीवोंमें नौ नोकवायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल दो समय कम आवलिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कम आवलिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्त और मनुष्य लब्धपर्याप्तसे लेकर मूलमें और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं पाया जाता । इसका कारण यह है कि इनके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थिति होती है अतः उस उस पर्यायके रहते हुए दो बार उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती । किन्तु एकेन्द्रिय आदि मूलमें गिनाई हुई कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें नौ नोकवायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर सम्भव है । यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके विषयमें सामान्य नियम तो यह है कि जिस कर्मका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध रुक जाता है उसका यदि पुनः उत्कृष्ट स्थितिवन्ध हो तो अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही हो सकता है परन्तु कषायोंको बदल बदल कर उनका एक या एकसमयसे अधिक कालके अन्तरसे भी उत्कृष्ट स्थितिवन्ध हो सकता है । अथ यदि किसी जीवने इस प्रकार कषायकी उत्कृष्ट स्थिति धार्थी और वह एकेन्द्रियादिक उक्त मार्गणाओंमेंसे किसी एक मार्गणामें उत्पन्न हुआ तो उसके नौ नोकवायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कम एक आवलिकाल प्रमाण बन जाता है । और इसके विपरीत अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम आवलि प्रमाण भी बन जाता है ।

§ ५४७. देवगतिमें मिथ्यात्व और वारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अट्टारह सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अट्टारह सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्करी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका मंग मिथ्यात्वके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । नौ नोकवायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अट्टारह सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओषके समान है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये ।

सम्मामि० उक्क० एत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा ।

§ ५४८. पंचिं०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त०-वारसक० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० ज० अंतोमु० । उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह० एगस० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वेद्धावट्टिसागरो० देसूणाणि । एवणोक्क० उक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । एवं पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है किन्तु पूर्वोक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल निरन्तर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**देवोंमें सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके ही मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य और संक्रमण सम्भव है, अतः सामान्यसे देवोंमें मिथ्यात्व आदि अष्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा । तथा नौ प्रवेयक तकके देव मिथ्यात्वमें जा सकते हैं और सम्यग्दृष्टि भी हो सकते हैं अतः सामान्य देवोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा । शेष कथन ओघके समान है । तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें अपनी अपनी स्थितिका विचार करके इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिये । आनतसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंके मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल तो होता ही नहीं, क्योंकि इनके पर्यायके प्रथम समयमें ही उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । हाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका विर्सयोजनाकी अपेक्षा अन्तरकाल सम्भव है जो मूलमें बतलाया ही है ।

§ ५४८. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व और वारह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है । नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण

§ ५४९. पंचमण-पंचवचि० उक्क० णत्थि अंतरं । णवरि पंचणोक्क० [ ज० ]  
 एयसमअ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । चटुणोक्क० [उक्क०] ज० एगस०, उक्क० आवलिया  
 दुसमउणा । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० आवलि० असंखे० भागो  
 एगावलिया वा । एवं कायजोगि०-ओरालिय०-वेउन्विय०-चत्तारिकसाए चि ।

है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदवाले, चतुर्दशनिवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—कोई भी जीव पंचन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंकी कायस्थिति प्रमाण काल तक मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ रह सकता है पर यहाँ इनकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल बतलाना है, अतः इनके प्रारम्भ और अन्तमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करावे और इस प्रकार उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल ले आवे जो उक्त जीवोंकी कुछ कम कायस्थितिप्रमाण होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतने काल तक लगातार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व सम्यक्त्व प्राप्तिकी अपेक्षा बन सकता है, अन्यथा मध्यमे इनकी उद्वेलना भी हो जायगी । जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त करे तो वह अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना अधिक्से अधिक कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर तक रह सकता है, अतः उक्त जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर कहा । शेष कथन ओघके समान है । पुरुषवेदी, चतुर्दशनी और संज्ञी जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति क्रमशः सौ सागर पृथक्त्व, दो हजार सागर और सौ सागर पृथक्त्व है, अतः इनमें भी उक्त क्रमसे अन्तर काल बन जाता है ।

§ ५४९. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें पाँच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कम एक आवलि है । तथा सत्र प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार नोकषायोंके सिवा शेषका अन्तर्मुहूर्त तथा चार नोकषायोंका आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण अथवा एक आवलिप्रमाण है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और चारों कषायवाले जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगीमें नौ नोकषायोंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । इसका कारण यह है कि इन योगीका काल थोड़ा है, अतः इनमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है । किन्तु सोलह कषायोंका बदल बदल कर अन्तरसे भी उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, अतः उनके संक्रमणकी अपेक्षासे नौ नोकषायोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट और जघन्य अन्तर बन जाता है जो मूलमें बतलाया ही है । इसी प्रकार यहाँ शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका भी अन्तर घटित कर लेना चाहिये । मूलमें काययोगी आदि जितनी मार्गणाएँ बतलाई हैं उनमें भी यथायोग्य जानना चाहिये । यद्यपि काययोगीका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है और औदारिक काययोगीका काल कुछ कम वार्डेस हजार वर्ष प्रमाण है पर यह काल एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक जीवोंके ही प्राप्त होता है, अतः इनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल

§-५५०. इत्थि० पंचिदियभंगो । णवरि सगट्टिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० पणवण्ण पलिदीवमाणि देसूणाणि । णवुंसओघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० अणुक्क० [ उक्क० ] तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि ।

§ ५५१. मदि० सुदअण्णा० ओघं । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । अणंताणु० चउक्क० वारसकसायभंगो । विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । अणंताणु० चउक्क० वारसक-सायभंगो । असंजद० णवुंस० भंगो ।

सम्भव नहीं ।

§ ५५०. स्त्रीवेदवालों में पचेन्द्रियों के समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी स्थिति कइनी चाहिये । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है । नपुंसकवेदमें ओघके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदीकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पत्य पृथक्त्व प्रमाण है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम सौ पत्य पृथक्त्वप्रमाण प्राप्त होता है । तथा स्त्रीवेदी जीव सम्यक्त्वके साथ कुछकम पचवन पत्य तक रह सकता है और कुछकम इतने कालतक उसके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसंयोजना पाई जा सकती है, अतः इसके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पत्य प्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । नपुंसकवेदमें अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तर कालको छोड़ कर शेष सब कथन ओघके समान बन जाता है । किन्तु नपुंसकवेदी लगातार कुछ कम तेतीस सागर तक ही सम्यग्दर्शनके साथ रह सकता है अतः इसके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण प्राप्त होता है ।

§ ५५१. मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ओघके समान अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग बारह कषायोंके समान है । विभंगज्ञानियों में सातवीं पृथिवीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग बारह कषायोंके समान है । असंयतोमें नपुंसकों के समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना ही होती जाती है । अतः इनके इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार विभंगज्ञानी जीवोंके भी उक्त दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं पाया जायगा । असंयतोमें नपुंसकवेद प्रधान है, अतः असंयतोका कथन नपुंसकोंके समान कहा ।

§ ५५२. तिणिले० मिच्छच०-वारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं० । सम्मच-सम्मामि० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह० एगसमओ । णवणोक० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । अणताणु० चउक्क० उक्क० वारसकसायभंगो० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगडिदी देसूणा । तेउ०-पम्म० मिच्छच-वारसक० ज० अंतोमु० । उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सम्मच-सम्मामि०-अणताणु० चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह० एयस० । णवणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सुक्कले० सम्मच-सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एककीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अणताणु० चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० अंतोमु० । उक्क० एककीस सा० देसूणाणि । सेस० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं ।

§ ५५२. कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति का अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग बारह कषायों के समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । पीत और पद्मलेश्यावालों में मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर एक समय है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । शुक्ललेश्यावालोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—कृष्णादि पाँच लेश्याओंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है । और इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बन जाता है । तथा



§ ५५३. अभव० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० ओषं । खरि अणंताणु०-चउक० मिच्छत्तभंगो । मिच्छादि० मदि०भंगो । आहार० मिच्छत्त-वारसक० उक० जह० अंतोमु०, उक० सगद्विदी देसूणा । अणुक्क० ओषं । सम्भत्त०-सम्मामि० पंचिदियभंगो । अणंताणु० चउक० उक्क० मिच्छत्तभंगो । अणुक्क० पंचिदियभंगो । णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगद्विदी देसूणा । अणुक्क० ओषं ।  
एवमुक्कस्संतराणुगामो समत्तो ।

❀ एत्तो जहण्णयंतरं ।

§ ५५४. सुगमं ।

सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल विसंयोजनाकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण बन जाता है। शेष कथन सुगम है। शुक्ल लेश्यामें सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर नौवें प्रवेयकके समान घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ५५३. अभव्योंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओषके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग मिध्यात्वके समान है। मिध्यादृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तर का भंग मत्स्यज्ञानियोंके समान है। आहारक जीवोंमें मिध्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति का जघन्य अन्तर अन्तर्मुद्गर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओषके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग मिध्यात्वके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर पंचेन्द्रियोंके समान है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओषके समान है।

विशेषार्थ—अभव्योंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, अतः इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल मिध्यात्वके समान बन जाता है। आहारकका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी प्रमाण है, अतः इनमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम उक्त काल प्रमाण बन जाता है। यहाँ जो लगातार आहारक होनेका उत्कृष्ट काल बतलाया है सो वह पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियके पश्चात् चौइन्द्रिय और चौइन्द्रियके पश्चात् तेइन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय जीव जितने काल तक लगातार आहारक होते रहते हैं उन सब आहारक कालोंको जोड़ कर बतलाया है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल पंचेन्द्रियोंमें ही प्राप्त हो सकता है अन्यत्र नहीं, अतः आहारकके इनके अन्तर कालको पंचेन्द्रियोंके समान कहा। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

\* इसके आगे जघन्य अन्तरका प्रकरण है।

§ ५५४. यह सूत्र सरल है।

ॐ मिच्छत्त-सम्मत्त-चारसकसाय-एवणोक्सायाणं जहण्णद्विदिविह-  
त्तियस्स एत्थि अंतरं ।

§ ५५५. कुदो ? खविदकम्माणं पुणरुपचीए अभावादो ।

ॐ सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णद्विदिविहत्तियस्स अंतरं  
जहण्णेण अंतोमुहुत्तां ।

§ ५५६. तं जहा—उब्बेल्लणाए सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णद्विदिसंतकम्मं कुण-  
माणो सम्मत्ताहिमुहो होदूणंतरचरिमफालीए सह उब्बेल्लणचरिमफालिमवणिय तत्तो-  
प्पहुडि मिच्छत्तपढमद्विदीए समयूणावलयमेत्तमणुप्पविसिय तत्थ पयदजहण्णद्विदि-  
संतकम्मस्सादिं कादूणतरिय कमेण मिच्छत्तपढमद्विदिं गालिय पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय  
अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिचउक्कं  
विसंजोइय पुणो अथापवत्तअणुक्करणाणि करिय अणियद्विअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु  
गदेसु मिच्छत्तं खविय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं परसरुवेण संका-  
मिय जहाकमेण अधद्विदिगलणाए उदयावलयणिसेगेसु गलमाणेसु एगणिसेगद्विदीए  
दुसमयकालाए सेसाए अंतोमुहुत्तपमाणं सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णंतरं होदि । एव-

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, चारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिका अन्तर नहीं है ।

§ ५५५. शंका उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य-स्थितिका अन्तर क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि चयको प्राप्त हुए कर्मोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है और इन  
प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति क्षणके अन्तमें ही प्राप्त होती है, अतः इनकी जघन्य स्थितिका  
अन्तर नहीं होता ।

\* सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य  
अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५५६. वह इस प्रकार है—उद्वेलनाके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्कर्म  
करनेवाला कोई एक जीव सम्यक्त्वके सम्मुख हुआ और इसने अन्तरकरणकी अन्तिम फालिके  
साथ उद्वेलनाकी अन्तिम फालिको अन्य प्रकृतिमें खिपाया । फिर वहाँसे लेकर मिथ्यात्वकी  
स्थितिमें एक समय कम आवलिप्रमाण कालको धिताकर सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसत्कर्मका  
आदि किया और इस प्रकार उसका अन्तर कर दिया । फिर क्रमसे मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको  
गलाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया और वहाँ अन्तर्मुहूर्त रह कर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त  
किया । पुनः अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की । पुनः अधःकरण और  
अपूर्वकरणको करके अनिर्वृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जाने पर मिथ्यात्वका  
चय किया । पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका पररूपसे संक्रमण  
करके यथाक्रमसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा उदयावलिसे निषेकोंको गलाते हुए जब एक निषेककी  
स्थिति दो समय कालप्रमाण शेष रह जाती है तब उस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य

मर्णाताणुबंधिचउककस्स वि । णवरि अंतोमूहुत्तभंमंतरे दो वारं तेसिं विसंयोजणं काउण जहणंतरं वत्तन्वं ।

❀ उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टं ।

§ ५५७. सुगममेदं । एवं चुण्णिमुत्तमस्सिदूण ओधंतरपरुवणं करिय संपहि तेण सूचिदसेसमग्गणाओ अस्सिदूण अंतरपरुवणाए कीरमाणाए उच्चारणमस्सिदूणं कस्सामो ।

§ ५५८. जहण्णाए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण ओदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० जह० अजह० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्कस्सभंगो । सम्मामि० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्ग० देसूणं । अज० अणुक्क०भंगो । अणंताणु०चउक्क० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्ग० देसूणं । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० बेद्धावट्टिसागरो० देसूणाणि । एवमचक्खु०-भवसि० ।

स्थितिका जघन्य अन्तर प्राप्त होता है जिसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दोबार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कराके जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

\* तथा उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है ।

§ ५५७. यह सूत्र सरल है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर ओघ अन्तरका कथन करके अब सभी मार्गाणाओमें इसके द्वारा सूचित होनेवाले अन्तरका कथन उच्चारणाके आश्रयसे करते हैं—

§ ५५८. जघन्य अन्तरका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शन-वाले और भ्रव्योंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियों की जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख चूर्णिसूत्रों की व्याख्या करते समय किया ही है अतः यहां अजघन्य स्थिति के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख किया जाता है—उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त हो जानेके बाद उससे न्यून जितनी स्थितियां प्राप्त होती हैं उन सबको अनुत्कृष्ट स्थिति कहते हैं तथा जघन्य स्थितिके अतिरिक्त जितनी स्थितियां होती हैं उन्हें अजघन्य स्थिति कहते हैं । इसके अनुसार ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितियोंका अन्तर नहीं प्राप्त

§ ५५९. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक० णवणोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० । सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मामि० जह० जह० पल्लिदो० असंखे० भागो । अज० जह० एगस०, उक्क० दोण्हं पि तेत्तीस० देसूणाणि । अणंताणु० चउक्क० ज० अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । पहमाए मिच्छत्त-वारसक० णवणोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । सम्मामि० जह० जह० पल्लिदोवमस्स असं० भागो । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० जह० अजह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । विदियादि जाव छट्ठि ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० ज० पल्लिदो० असंखे०

होता, क्योंकि ओघसे उन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितियों ज्ञापणके अन्तमे ही प्राप्त होती हैं और च्य होनेके पश्चात् पुनः इनका सत्त्व नहीं पाया जाता । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका उद्वेलनाके पश्चात् सम्यक्त्वके होने पर नियमसे सत्त्व हो जाता है और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजनाके पश्चात् पुनः सत्त्व हो सकता है अतः इन प्रकृतियोंकी ओघसे अजघन्य स्थितियों का भी अन्तर पाया जाता है । उनमेसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिके अन्तरका सुज्ञासा इनके अनुच्छष्ट स्थितिके अन्तरके समान जानना चाहिये । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके बाद पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है । तथा उच्छष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर है, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है वह यदि मिध्यात्वमें आकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करे तो उसे ऐसा करनेमें सबसे अधिक काल कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर लगता है ।

§ ५५६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । अजघन्य स्थितिका जघन्य और उच्छष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भग अनुच्छष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और दोनों स्थितियोंका उच्छष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उच्छष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । पहली पृथिवीमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उच्छष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उच्छष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और दोनोंका उच्छष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उच्छष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य

भागो । अज० ज० एगस०, उक्क० सगद्विदी देसूणा । अणंताणु०चउक्क० जह०  
 अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगद्विदी देसूणा । सत्तमाए मिच्छत्त-वारसक०-भय-  
 दुगुंछ० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोक्क०  
 जह० णत्थि अंतरं । अज० जहणुक्क० एगस० । सम्मामि०-अणंताणु० णिरओधं ।  
 सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो ।

स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवर्ग भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और दोनों जघन्य अजघन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य नारकियोंके समान है । तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—नरक में मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति दूसरे विग्रहके समय एक बार ही प्राप्त हो सकती है, अतः यहाँ जघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं कहा । किन्तु इस जीवके पहले विग्रहमें और तृतीयादि समयों में अजघन्य स्थिति रहेगी अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कहा है । नरकमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके ही सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इसकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं । तथा इसकी अजघन्य स्थितिका अन्तर काल अनुत्कृष्ट स्थितिके समान घटित कर लेना चाहिये । जिस नारकीने उद्वेलना करके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्ति की है वह उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें आकर पुनः उद्वेलना करके यदि पुनः उसकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसे ऐसा करनेमें पल्यका असंख्यातवर्ग भागप्रमाण काल लगता है, अतः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा । जिस नारकीने सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके बाद जघन्य स्थितिको प्राप्त किया और तीसरे समयमें उपशमसम्यक्त्वी होकर पुनः अजघन्य स्थितिको प्राप्त कर लिया उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । जो नारकी नरक में उत्पन्न होनेके पहले समयमें और अपनी आयुके अन्तिम समय में उद्वेलनाद्वारा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थितिको प्राप्त करता है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तैतीस सागर प्राप्त होता है । तथा जिस नारकीने उत्पन्न होनेके बाद दूसरे समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी और अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तैतीस सागर पाया जाता है । तथा नरकमें सम्भव विसंयोजनाके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तैतीस सागर प्रमाण प्राप्त होता है । प्रथम नरकके कथनमें सामान्य नारकियोंके कथनसे कोई विशेषता नहीं है । किन्तु जहाँ सामान्य नारकियोंके कथनमें कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति कही हो वहाँ प्रथम नरककी कुछ कम उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये । दूसरेसे लेकर छठे नरक

§ ५६०. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुग्घा० जह० ज० अंतोम०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्भत्त० जह० गत्थि अंतरं । अज० अणुक्कससभंगो । सम्भामि० जह० ज० पल्लिदो० असंखे० भागो । अज० ज० एगस०, उक्क० ओघं । अयांताणु० चउक्क० जह० ओघं । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देसूणाणि । सत्तणोक्क० ज० ज० पल्लिदो० असंखे०-भागो, उक्क० अयांतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । अज० जहणुक्क० एयस० ।

तकके नारकियोंके मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तिम समयमें ही प्राप्त हो सकती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । द्वितीयादि पृथिवियोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नहीं उत्पन्न होता है अतः यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरका कथन समान है । वह सामान्य नारकियोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है । सातवें नरकमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति अन्तके अन्तमुहूर्तमें कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तमुहूर्त काल तक प्राप्त हो सकती है । अथ जिसने इस अन्तमुहूर्तके मध्यमें एक समयके लिये जघन्य स्थिति प्राप्त की उसके अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा जिसने अन्तमुहूर्त तक जघन्य स्थिति प्राप्त करके अन्तमें अजघन्य स्थिति प्राप्त की उसके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त पाया जाता है । तथा सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है, अतः इनकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्राप्त होता है । शेष कथन ओघके समान है । किन्तु यहाँ भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता, अतः यहाँ सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके समान जानना ।

§ ५६०. तिर्यचोमे मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका मंग अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्त्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्त्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

**विशेषार्थ**—पहले तिर्यचोंके मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये है अतः वही यहाँ इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तथा पहले इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त बतला आये हैं अतः वही यहाँ इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यचोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके प्राप्त होती है अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरकालका निषेध किया है । तिर्यचोंके

§ ५६१. पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पञ्ज०-पंचि०तिरि०जोगिणीसु मिच्छत्त-  
वारसक०-भय-दुगुंछं जह० गत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एयसं । सम्म० जह०  
गत्थि अंतरं । अज० जह० एयसं, उक्क० तिण्ण पल्लिदोवमाणि पुच्चकोटिपुत्तणे-

सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण वतला आये हैं उसी प्रकार यहां उसकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये । किसी एक तिर्यंचने उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया । पुनः वह दूसरे समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया तो उसे मिध्यात्वमें जाकर उद्वेलनाके द्वारा पुनः सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पत्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल लगता है, अतः तिर्यंचके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर-काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । जो तिर्यंच सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके साथ एक समय तक रहा और दूसरे समयमें वह उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया उसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान जानना, क्योंकि ओघमें कहा गया उत्कृष्ट अन्तरकाल तिर्यंचोंके ही घटित होता है । एक अन्तर्मुहूर्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना दो वार प्राप्त हो सकती है और ओघसे विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है जो तिर्यंचोंके भी सम्भव है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर-काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त कहा । तिर्यंचोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका उत्कृष्ट अन्तर-काल अर्ध पुद्गलपरिवर्तन है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल ओघके समान कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन कहा । तथा तिर्यंचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा तिर्यंचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका सत्त्वकाल कुछ कम तीन पत्य है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पत्य कहा । जो एकेन्द्रिय जीव सोलह कपायोंकी जघन्य स्थितिके साथ पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रतिपन्न प्रकृतियों ४ वन्ध कालके अन्तिम समयमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है । अब यदि दूसरी वार यह जीव इसी स्थितिको प्राप्त करना चाहे तो उसे कमसे कम पत्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल लगेगा, क्यों कि किसी एकेन्द्रियको पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिका घात करके एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पत्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल लगता है, अतः तिर्यंचोंके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । अब यदि किसी एकेन्द्रियने उक्त कालके प्रारम्भ और अन्तमें पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया तो उसके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका उक्त काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है । तिर्यंचोंके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति एक समयके लिये प्राप्त होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा ।

§ ५६१. पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमत्तियोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वसे

म्हियाणि । सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे० भागो । अज० ज० एगसमओ,  
उक्क० तिणिण पलिदो० पुण्वकोडिपुधत्तेणम्हियाणि । अयांताणु० चउक्क० ज० ज०  
अंतोमुहुत्तां, उक्क० सगडिदी देसूणा । अज०-जह० अंतोमु०, उक्क० तिणिण पलिदोव-  
माणि देसूणाणि । सत्तणोक्क० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एगस० । णवारि  
पंचिदियतिरिक्खजोगिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो ।

अधिक तीन पत्यप्रमाण है। सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पत्य है। अनन्तासुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तसुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तसुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमितियोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है।

**विशेषार्थ—**उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंके मिध्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती पर्यायके रहते हुए नहीं प्राप्त होता, क्योंकि जो वाद्व एकेन्द्रिय हत समुत्पत्तिक्रमसे उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न होता है उसीके इनकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंका जघन्य अन्तर काल नहीं कहा। इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके अन्तरके नहीं होनेका भी यही कारण जानना चाहिए। तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एक समयके लिये होती है, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा। तिर्यचोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके होती है और ऐसे जीवके पुनः सम्यक्त्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः अन्तम भेदको छोड़कर उक्त दो प्रकारके तिर्यचोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा। जिस तिर्यचने सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके एक समयके अन्तरालसे उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके सम्यक्त्वका अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः विवक्षित तिर्यचोंके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय कहा। उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पत्य है। अब यदि किसीने अपने कालके प्रारम्भमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना की और अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिको प्राप्त किया तो उसके उक्त काल तक सम्यक्त्वका अन्तर पाया जाता है, अतः उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण कहा। तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल सम्यक्त्वके समान घटित कर लेना चाहिये और सामान्य तिर्यचोंके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल जिस प्रकार घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए, इसलिये इसका अलगसे खुलासा नहीं किया। किन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्मग्मिध्यात्वके समान ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता। उक्त तीनों प्रकारके तिर्यचोंके अनन्तासुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है और जिसने अनन्तासुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव मिध्यात्वमें आकर और सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः विसंयोजना करे तो क्रमसे कम



§ ५६२. पंचि०तिरि० [ अ ] पज्ज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० पंचि०-तिरिक्खभंगो । अणंताणु०चउक० मिच्छत्तभंगो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णा-जहण्ण० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज०-सञ्जविगल्लिदिय-पंचिंदियअपज्ज०-त्तस-अपज्जत्तो ति ।

§ ५६३. मणुसतिय० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरिं सम्मामि० जह० ओघं ।

अन्तमुहूर्त काल लगता है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंका जो उत्कृष्ट काञ्च पूर्वकोटिप्रथक्त्वसे अधिक तीन पल्य वतला आये हैं सो इसके आदि और अन्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करावे और इस प्रकार उभयत्र अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति ले आवे, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा । किसीने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके अन्त समयमें अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और अन्तमुहूर्तके वाद मिथ्यात्व में जाकर उसने पुनः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति प्राप्त करली तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त पाया जाता है इसीलिये उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है यह स्पष्ट ही है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा ।

§ ५६२. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोमें जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंके मिथ्यात्व आदि २२ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है और यह सब व्यवस्था पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है, अतः इस कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान करनेकी सूचना की । पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरके सम्बन्धमें यही व्यवस्था जाननी चाहिये, अतः इसके कथनको मिथ्यात्वके समान कहा । पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेगना तो होती है पर इसी पर्यायके रहते हुए पुनः इनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं बनता । मूलमें मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ५६३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर ओघके समान है ।

**विशेषार्थ—**मनुष्य त्रिकके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनियकी क्षणिके समय

§ ५६४. देव० मिच्छत्त-वारसक०-गवणो० जह० गत्थि अंतरं । अज० जहणुक्क० एयस० । सम्मत्त० जह० एत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क० एकत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । सम्मामि० जह० जह० पळिदो० असंखे० भागो । उक्क० एकत्तीससागरो० देसूणाणि । अजह० जह० [ एगसमओ, ] उक्क० एकत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अणंतायु० ज० अज० ज० अंतोसु०, उक्क० एकत्तीस० देसूणा० ।

तथा बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति चारित्रमोहनीयकी क्षणोंके समय प्राप्त होती है तथा इसके बाद इनका पुनः सत्त्व सम्भव नहीं, अतः इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । अब शेष जो छह प्रकृतियां बचती हैं सों उनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरके विषयमे जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचके खुलासा कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी खुलासा कर लेना चाहिये । किन्तु इनके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल ओषके सम्मान वन जाता है, क्योंकि इनके सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाके समान क्षणों भी पाई जाती है ।

§ ५६४. देवोमे मिध्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है ।

विशेषार्थ—जो असंखी दो मोड़ा लेकर देवोंमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे विग्रहके समय ही मिध्यात्व, बारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति सम्भव है । तथा इसी जीवके प्रतिपन्न प्रकृतियोंके वन्धकालके अन्तमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है, अतः सामान्य देवोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं कहा । तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके उक्त कृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा । देवोंमे कृतकृत्यवेदक सम्पद्यष्टि जीव उत्पन्न होते हैं अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं है । कारण स्पष्ट है । जिस देवके उद्वेलनाके एक समयके अन्तरालसे उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है, उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका अन्तर एक समय पाया जाता है अतः सामान्य देवोंके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा । देवोंमे उपरिम त्रैविक तकके देव ही मिध्यादृष्टि होते हैं । अब जिस देवने वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और अन्तर्मुहूर्तकालके शेष रह जाने पर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिको प्राप्त किया उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल कुछकम इकतीस सागर पाया जाता है, अतः सामान्य देवोंके उक्त प्रकृतिकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि

§ ५६५. भवण०वाण० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० जह० अज० देवोर्ध० । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो । उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अज० ज० एयस०, उक्क० सग० देसूणा । अणंताणु०चउक्क० जह० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । जोइसियादि जाव उवरिमगेवज्जो चि मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्कस्सभंगो । सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो । उक्क० सगसगु-क्कस्सट्टिदी देसूणा । अज० अणुक्कस्सभंगो । अणंताणु०चउक्क० ज० अज० ज०

जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त करते समय जीवनमें पत्यके असंख्यातवें भाग कालके शेष रह जाने पर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करावे और वहासे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति प्राप्त करावे । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण जिस प्रकार तिर्यचके घटित करके वर्तला आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये । तथा जिस देवने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके पहले समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः देवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय कहा । अनन्तानु-बन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकालको जिस प्रकार तिर्यचोंके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये । एक देव है जिसने जीवनके प्रारम्भमें विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया अनन्तर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया और जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाय तब वह पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर बन जाता है, अतः सामान्य देवोंके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा जिस देवने प्रारम्भमें विसंयोजना द्वारा विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और जीवन भर वह सम्यक्त्वके साथ रहा । पुनः जीवनके अन्तिम समयमें वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर पाया जाता है, अतः इसका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा ।

§ ५६५. भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिमत्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम

अंतो०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । णवरि जोइसिएसु सम्यत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । अणुदिसादि जाव सव्वद्व० सव्वपयडीणं ज० अज० णत्थि अंतरं । कम्मइय-आहार०-आहारमिसस०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-विहंग०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-अणाहारए त्ति णत्थि अंतरं ।

§ ५६६. एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० अंतोसु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० ! सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० णत्थि० अंतरं । सत्तणोक० ज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० एगस० । एवं सुहुम० । बादराणमेवं चैव । णवरि सगट्टिदी देसूणा । एवं बादरपज्जत्ता-

अपनी स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि ज्योतिषियोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मि-ध्यात्वके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, आहारकाययोगी, आहारकमिश्र-काययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, विभंगज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिक-संयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्य-ग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है ।

**विशेषार्थ**—भवनवासी और व्यन्तरदेवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके वहाँ सम्भव सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि एक बार सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः उसी स्थितिको प्राप्त करनेमें पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण काल लगता है । शेष कथन सुगम है । ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंके मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना जीवनके अन्तिम समयमें सम्भव है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर-काल नहीं पाया जाता । ज्योतिषियोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता, अतः उनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल भवनवासियोंके समान बन जाता है, शेषके नहीं । अनुदिशादिकमें सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, अतः वहाँ किसी भी प्रकृतिका अन्तरकाल सम्भव नहीं है । इसी प्रकार आहारककाययोगसे लेकर सम्यग्मिध्यादृष्टि तकके जीवोंमें अपने अपने कालके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होनेके कारण अन्तर संभव नहीं है । कार्मणकाययोग और अनाहारक ऐसी मार्गाण्य हैं जिनमें सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, क्योंकि वहाँ अन्तरालके साथ दो बार जघन्य या अजघन्य स्थिति नहीं पाई जाती ।

§ ५६६. एकेन्द्रियोंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मि-ध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका

पञ्जत्तार्ण । सुहुमपञ्जत्तापञ्जत्तएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंख० जह० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोकसाय० ज० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० जहणुक्क० एगसमओ । [सम्मत्त-सम्मा० ज० अज० णत्थि अंतरं ।]

§ ५६७. पंचिंदिय-पंचिं०पञ्ज०-तस०-तसपञ्ज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मा-मि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसुणा । अणंताणु०-

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । वादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार वादर पर्याप्तक और वादर अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—नौ वादर एकेन्द्रिय मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः उसे प्राप्त करना चाहता है उसे वैसा करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाल लगता है अतः एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा यदि ऐसा जीव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अपने उत्कृष्ट काल तक परिभ्रमण करे और फिर वादर एकेन्द्रिय हो कर जघन्य स्थिति प्राप्त करे तो असंख्यात लोकप्रमाण काल लगता है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वोक्त रीतिसे ही घटित कर लेना चाहिये । किन्तु अजघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्रमाण ही होता है, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्रमाण ही प्राप्त होगा । एकेन्द्रियोंको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, यह स्पष्ट ही है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्वादिकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है । शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है, अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है । शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है ।

§ ५६७. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग, अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है ।

चउक० ज० ज० अंतोमु०, उक० सगद्विदी देसूणा । अज० ज० अंतोमु०, उक० वे  
छावट्टिसागरो० देसूणाणि । एवं पुरिस०-चकखु०-सण्णि त्ति ।

§ ५६८. कायाणुवादेण पंचकाय० एहंदियभंगो । णवरि सगसगुक्खस्सद्विदी  
देसूणा । पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सोलसक०-गणणोको० ज० अज० णत्थि अंतरं ।  
सम्मत्त० सम्मामि० ज० णत्थि अंतरं । अज० ज० एगस०, उक० अंतोमु० । काय-  
जोमि०-ओरालि०-वेउच्चिय० मणजोगिभंगो । ओरालियमिस्स० सुहूमेहंदियअपजत्त-  
भंगो । णवरि सत्तणोको० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एगसमओ । वेउ-  
च्चियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-भय-दुगुंख० ज० अज० णत्थि  
अंतरं । सत्तणोको० ज० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एगस० ।

तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तालुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है । इसी प्रकार पुरुषवेदवाले, चक्षुदशेनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय आदि चार मार्गणाओंमें दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । तथा इनके कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समय में सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल भी सम्भव नहीं । जिसने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की और सम्यग्दृष्टि होकर अन्तर्मुहूर्त में उसकी क्षपणा की उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है, अतः इसका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६८ काय मार्गणाके अनुवादासे पांच स्थावर कायोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । पांचों मनोयोगी और पांचों मनोयोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । काययोगी, औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मनो-योगियोंके समान भंग है । औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय अप्रयत्तिकोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

**विशेषार्थ**—पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगीमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका तथा सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है सो इसका लुलासा पंचेन्द्रिय मार्गणामे जिस प्रकार कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । तथा उक्त योगोंमेंसे एक योगके रहते हुए अनन्तालुबन्धीकी दो बार विसंयोजना सम्भव नहीं, अतः

§ ५६९. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० ज० अज० एत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मामि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० ज० सम्मामिच्छत्त-भंगो । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पणवणणपल्लिदो० देसूणाणि ।

§ ५७०. एवुंस० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक्क० ज० अज० णत्थि अंतरं । सेसमोघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवमसंजद० । णवरि वारसक०-णवणोक्क० तिरिक्खभंगो । चत्तारिक्क० मणजोगिभंगो ।

§ ५७१. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० एत्थि अंतरं । अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवमभव०-मिच्छा० ।

इन्में अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । इसी प्रकार उक्त योगोंमेंसे किसी एक योग के रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका दो वार प्राप्त होना सम्भव नहीं, अतः इन्में सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलनाके अनन्तर समयमें या अन्तर्मुहूर्तके वाद विवक्षित योगके रहते हुए उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है अतः इन्में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा । औदारिकमिश्रकाययोग में सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियके एक वार ही प्राप्त होती है, अतः उसका अन्तरकाल नहीं है । किन्तु इस जघन्य स्थितिके कारण अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगमें सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६६. स्त्रीवेदवालोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्यस्थितिके अन्तरका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है ।

§ ५७०. नपुंसकवेदवालोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेत्तीस सागर है । इसी प्रकार अर्स्यतोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग तिर्यचोंके समान है । चारों कपायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है ।

§ ५७१. मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५७२. किण्हणील-काउ० मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुशुं० ज० णत्थि अंतरं । अज० ज० एयस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह-ण्णुक० एगसमओ । सम्मत्त-सम्माभि० ज० जह० पालिदो० असंखे० भागो । अज० ज० एगस०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० ज० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । णवरि काउ० सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं । तेउ० सोहम्म-भंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्कले० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सेसमुवरिमगेवज्जभंगो । असण्णि० मिच्छाइट्ठिभंगो । आहार० ओधं । णवरि सणुक्कस्सडिदी देसूणा ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ ।

§ ५७३. एदमहियारसंभालणसुसं सुगमं ।

❀ तत्थ अट्ठपदं । तं जहा—जो उक्कसियाए ढिदीए विहत्तिओ सो अणुक्कस्सियाए ढिदीए ए होदि विहत्तिओ ।

§ ५७४. कुदो ? उक्कस्सडिदीए समजणुक्कस्सट्ठिदियादिकालविसेसाणमभावादो ।

§ ५७२. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोमें मिध्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातर्षे भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कापोतलेश्यामें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । पीतलेश्याका भंग सौधर्मके समान है । पद्मलेश्याका भंग सहस्वारके समान है । शुक्ललेश्यावालोमें मिध्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका भंग उपरिसमवैयकके समान है । असंज्ञियोंमें मिध्यादृष्टिके समान भंग है । आहारफलोंमें ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

इस प्रकार अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है ।

§ ५७३. यह सूत्र अधिकारके सन्हालनेके लिये आया है जो सुगम है ।

❀ इस विषयमें यह अर्थपद है । यथा—जो उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला है वह अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला नहीं होता ।

§ ५७४. शंका—उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला क्यों नहीं होता है ? समाधान—क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिमें एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति इत्यादि काल विशेष



उक्कस्सट्ठिदिपडिसेहगुहेण अणुक्कस्सट्ठिदिपउत्तीदो वा ।

❀ जो अणुक्कस्सियाए ढिदीए विहत्तिओ सो उक्कस्सियाए ढिदीए ए होदि विहत्तिओ ।

५७५. कुदो ? परोप्परपरिहारसरूवेण उक्कस्साणुक्कस्सट्ठिदीणमवढाणादो । एव-  
मेदमेगमट्टपदं । किमट्टपदं णाम ? भणिस्समाणअहियारस्स जोणिभावेण अवट्ठिदअत्यो  
अत्यपदं णाम ।

❀ जस्स मोहणीयपयडी अत्थि तम्मि पयदं । अक्कम्मे चवहारो एत्थि ।  
§ ५७६. सुगममेदं ।

❀ एदेण अट्टपदेण मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा उक्कस्सियाए ढिदीए सिया  
अविहत्तिया ।

§ ५७७. एत्थ सियासद्धो कदाचिदित्यस्यार्थे द्रष्टव्यः, तेण कम्मि वि काले सव्वे  
जीवा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिया हांति त्ति सिद्धं । किमट्टमुक्कस्सट्ठिदीए सव्वे  
जीवा अक्कमेण अविहत्तिया ? ण, तिव्वसंक्किलेसाणं जीवाणं पाएण संभवाभावादो ।

नहीं पाये जाते । अथवा उत्कृष्ट स्थितिका प्रतिषेध करके अनुकृष्ट स्थितिकी प्रवृत्ति होती है, अतः  
जो उत्कृष्ट स्थितिभक्तिवाला है वह उसी समय अनुकृष्ट स्थितिभक्तिवाला नहीं हो सकता ।

\* जो अनुकृष्ट स्थितिभक्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिभक्तिवाला  
नहीं होता ।

§ ५७५. शंका—अनुकृष्ट स्थितिभक्तिवाला उत्कृष्ट स्थितिभक्तिवाला क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि एक दूसरेका परिहार करके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितियाँ रहती हैं,  
अतः जो अनुकृष्ट स्थितिभक्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिभक्तिवाला हो सकता ।

इस प्रकार यह एक अर्थपद है ।

शंका—अर्थपद किसे कहते हैं ?

समाधान—कहे जानेवाले अधिकारके योनिरूपसे अवस्थित अर्थको अर्थपद कहते हैं ।

\* जिसके मोहनीय प्रकृति है उसका यहाँ प्रकरण है, क्योंकि मोहनीय कर्मसे  
रहित जीवमें यह व्यवहार नहीं होता ।

§ ५७६. यह सूत्र सुगम है ।

\* इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
अविभक्तिवाले हैं ।

§ ५७७. यहाँ सूत्रमें आया हुआ 'स्यात्' शब्द 'कदाचित्' इस अर्थमें जानना चाहिये ।  
इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कालमें सब जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्ति-  
वाले होते हैं ।

शंका—सब जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति के अविभक्तिवाले क्यों होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीव्र संक्लेशवाले जीव प्रायः करके नहीं पाये जाते हैं, अतः  
सब जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्तिवाले होते हैं ।

❀ सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च ।

§ ५७८. कुदो ? कम्हि वि काले तिहुअणासेसजीवेसु अणुकस्सद्विदिविहत्तिएसु संतेसु तत्थ एगजीवस्स उक्कस्सद्विदिविहत्तिदंसणादो ।

❀ सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

§ ५७९. कुदो ? अणंतेसु अविहत्तिएसु संतेसु तत्थ संखेज्जाणमसंखेज्जाणं वा उक्कस्सद्विदिविहत्तिजीवाणं संभवुवलंभादो ।

❀ ३ ।

§ ५८०. एत्थ तिण्हंको किं कारणं द्विदो ? एवमेदे एत्थ तिण्णि चेव भंगा होंति ति जाणावण्हं ।

❀ अणुकस्सियाए द्विदीए सिया सब्बे जीवा विहत्तिया ।

§ ५८१. कुदो, उक्कस्सद्विदिविहत्तिएहि विणा तिहुवणासेसजीवाणमणुकस्स-द्विदीए चेव अवडिदाणं कम्हि वि काले उवलंभादो ।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अविभक्तवाले होते हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तवाला होता है ।

§ ५७८. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें तीन लोकके सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले रहते हुए उनमेंसे एक जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला देखा जाता है ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिअविभक्तवाले होते हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तवाले होते हैं ।

§ ५७९. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले अनन्त जीवोंके रहते हुए उनमें कदाचित् संख्यात या असंख्यात जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले पाये जाते हैं ।

❀ ३ ।

§ ५८० शंका—यहाँ पर तीनका अंक किसलिये रखा है ?

समाधान—इस प्रकार यहाँ पर ये तीन ही भंग होते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये यहाँ पर तीनका अंक रखा है ।

\* कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तवाले होते हैं ।

§ ५८१. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके विना तीन लोकके सब जीव अनुत्कृष्ट स्थितिमें ही विद्यमान पाये जाते हैं ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिअविभक्तवाले होते हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तवाला होता है ।

§ ५८२. कुदो ? एककेण अणुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिएण सह सयलजीवाण-  
मणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो ।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ।

§ ५८३. कुदो ? अणंतेहि अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिएहि सह संखेज्जासंखेज्जाण-  
मुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो ।

❀ एवं सेसाणं पि पयडीणं कायञ्चो ।

§ ५८४. जहा मेच्छत्तस्स णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा कदा तथा सेसपय-  
डीणं हि कायञ्चा ।

§ ५८५. एवं जइवसहाइरियमुच्चिदत्थस्स उच्चारणाइरिएण बालजणाणुग्गहट्ठ-  
कयपरूवणं भणिस्सामो । णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो—जहण्णओ अक्कस्सओ  
चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्दसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण  
अट्ठावीसण्हं पयडीणं उक्कस्सट्ठिदीए सिया सन्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया  
च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च । अणुक्कस्सट्ठिदीए सिया सन्वे  
जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया

§ ५८२. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले एक जीवके साथ सब जीव अनुत्कृष्ट  
स्थिति विभक्तिवाले पाये जाते हैं ।

❀ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले होते हैं और  
बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले होते हैं ।

§ ५८३. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि कदाचित् अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले अनन्त जीवोंके साथ संख्यात  
या असंख्यात उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं ।

❀ इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये ।

§ ५८४. जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भंगविचयपरूपणा की है उसी  
प्रकार शेष प्रकृतियोंकी भी करनी चाहिये ।

§ ५८५. इस प्रकार अतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये अर्थकी उच्चारणाचार्यने  
वालजनोंके अनुग्रहके लिये जो परूपणा की है उसे कहते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय  
दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो  
प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तिवाले होते हैं, कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले  
और एक जीव विभक्तिवाला होता है । कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले और बहुत जीव  
विभक्तिवाले होते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले होते हैं ।  
कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला होता है । कदाचित् बहुत जीव  
विभक्तिवाले और बहुत जीव अविभक्तिवाले होते हैं । इसी प्रकार अनाहारकर्मणात्क

च । एवं भेदञ्चं जाव अणाहारए चि । णवरि मणुसअपज्ज० उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहृत्तिया, सिया सव्वे जीवा विहृत्तिया, सिया एगो जीवो अविहृत्तियो, सिया एगो जीवो विहृत्तियो । एवमेदे चचारि एगसंजोगभंगा । दुसंजोगभंगा वि एत्तिया चेव । सव्वभंगसमातो अट्ट ८ । अणुक्कस्सस्स वि एवं चेव परूवेदञ्चं । एवं वेउच्चियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स० अवगद० अक़सा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण० सम्मामि० ।

एवमुक्कस्सओ गाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

### ❀ जहणए भंगविचए पयदं ।

लेजाना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तियाले, कदाचित् सब जीव विभक्तियाले, कदाचित् एक जीव अविभक्तियाला, कदाचित् एक जीव विभक्तियाला इस प्रकार ये एक संयोगी चार भंग होते हैं । तथा द्विसंयोगी भंग भी इतने ही होते हैं । इस प्रकार सब भंगोंका जोड़ आठ होता है न । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, सूक्ष्मसांपराधिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंग विचयानुगममें दो बातें ज्ञातव्य हैं । प्रथम यह कि एक जीवमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति एक साथ नहीं पाई जाती । और दूसरी यह कि अनुत्कृष्ट स्थितियाले नाना जीव तो सर्वदा रहते हैं किन्तु उत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाला कदाचित् एक भी जीव नहीं होता, कदाचित् एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं । इस प्रकार इन दो विशेषताओंको ध्यानमें रखकर यदि एक वार उत्कृष्ट स्थितिकी मुख्यतासे और दूसरो वार अनुत्कृष्ट स्थितिकी मुख्यतासे भंग प्राप्त किये जाते हैं तो वे छह होते हैं । यथा—कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाले नहीं हैं कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अविभक्तियाले और एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाला है, कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अविभक्तियाले और बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाले हैं, कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाले हैं । कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तियाला है तथा कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तियाले हैं । यह क्रम मोहनीयकी मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा बन जाता है । आदेशकी अपेक्षा सब मार्गणाओंमें भी यही क्रम जानना चाहिये । किन्तु मनुष्य लब्धपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, सूक्ष्मसांपराधिकसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन आठ सान्तर मार्गणाओंमें तथा मोहनीयके सत्त्वकी अपेक्षा अन्तरको प्राप्त हुई अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यातसंयत इन तीन मार्गणाओंमें एक और अनेक जीवोंके सत्त्वासत्त्वका आश्रय लेकर उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं । जो मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

❀ अब जडन्य भंगविचयका प्रकरण है ।

§ ५८६. एदमहियारसंभालणमुत्तं सुगमं ।

\* तं चेव अट्टपदं ।

§ ५८७ जमट्टपदमुक्कस्सम्मि परूविदं तं चेव एत्थ परूवेयव्वं विसेसाभावादो ।  
णवरि जहणमजहणं ति वत्तव्वं एत्तियो चेव विसेसो ।

❀ एदेण अट्टपदेण मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा जहणियाए द्विदीए सिया अविहत्तिया ।

§ ५८८. मिच्छत्तक्खवएहि दुसमयकालेगणिसेयधारएहि विणा मिच्छत्तअजहणद्विदीए चेव अवद्विदाणं सव्वेसि जीवाणं कयाइ दंसणादो ।

\* सिया अविहत्तिया च विहत्तियो च ।

§ ५८९. कुदो ? मिच्छत्तअजहणद्विधारएहि सह कम्मि वि काले एकस्स जीवस्स जहणद्विधारयस्सुवलंभादो ।

\* सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

§ ५९०. कुदो ? कम्मि वि काले अजहणद्विद्विहत्तिएहि सह संखेज्जाणं जहणद्विद्विहत्तियाणमुवलंभादो । एवमेत्थ तिणिण भंगा ।

§ ५८६. अधिकारके सम्हालनेके लिये यह सूत्र आया है जो सुगम है ।

\* यहाँ भी वही अर्थपद है ।

§ ५८७ जो अर्थपद उत्कृष्टमें कहा है वही यहाँ कहना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट के स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिये ।

❀ इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं ।

§ ५८८. क्योंकि एक निषेककी दो समय काल प्रमाण स्थितिको धारण करनेवाले मिथ्यात्वके चपक जीवोंके विना मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिमें अवस्थित सब जीव कभी भी पाये जाते हैं ।

❀ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाला है ।

§ ५८९. शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिको धारण करनेवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थितिको धारण करनेवाला एक जीव पाया जाता है ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं ।

§ ५९०. शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थितिविभक्तिवाले संख्यात जीव पाये जाते हैं । इस प्रकार यहाँ तीन भंग होते हैं ।

\* अजहणियाए द्विदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया । सिया विहत्तिया च अविहत्तियो च । सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ।

§ ५६१. एवमेदाणि तिणि वि सुत्ताणि सुगसाणि ।

❀ एवं तियिण भंगा ।

§ ५९२. एदं पि सुगमं ।

\* एवं सेसाणं पयडीणं कायव्वो ।

§ ५९३. जहा मिच्छत्तस्स गाणाजीवभंगविचयपरूपणा कदा तथा सेसपयडीणं पि भंगविचओ कायव्वो ।

§ ५९४. एवं जइवसहाइरिएण सूचिदत्थाणमुच्चारणाइरिएण मंदबुद्धिज्जाणुग्गहट्टं कयवक्खाणं भणिस्सामो ।

§ ५६५. जहण्णाए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणं जहणियाए द्विदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तियो च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च । अजहण्णाद्विदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तियो च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पञ्ज०-पंचि०-

\* मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले हैं । कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और एक जीव अविभक्तिवाला है । कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं ।

§ ५६१. इस प्रकार ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

❀ इस प्रकार तीन भंग होते हैं ।

§ ५६२. यह सूत्र भी सुगम है ।

❀ इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी प्ररूपणा करनी चाहिये ।

§ ५६३. जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भंगविचयपरूपणा की है उसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी भंगविचय करना चाहिये ।

§ ५६४. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये अर्थोंका उच्चारणाचार्यने मन्दबुद्धि जनोके अनुग्रहके लिये जो व्याख्यान किया है अब उसे कहते हैं —

§ ५६५. अब जघन्य स्थितिका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तिवाले हैं । कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं और एक जीव विभक्तिवाला है । कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं और बहुत जीव विभक्तिवाले हैं । अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले हैं । कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और एक जीव अविभक्तिवाला है । कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय

तिरिक्खजोण्णि - पंचि० तिरि० अपज्ज० - मणुसतिय-सव्वदेव - सव्वविगल्लिदिय० - सव्व-  
पंचिदिय-बादरपुढविपज्ज० - बादरआउपज्ज० - बादरतेउपज्ज० - बादरवाउपज्ज० - बादरवण-  
प्फदिपत्तेयपज्ज० - सव्वतस - पंचमण० - पंचविच० - कायजोगि० - ओरालि० - वेउव्विय० -  
इत्थि० - पुरिस० - एवुंस० - चत्तारिक० - विहंग० - आभिण्णि० - सुद० - ओहि० - मणपज्ज० -  
संजद० - सामाइय-छेदो० - परिहार० - संजदासंजद० - चक्खु० - अचक्खु० - ओहिदंस० - तेउ० -  
पम्म० - सुक्क० - भवसिद्धि० - सम्मादि० - खइय० - वेदय० - सण्णि० - आहारएत्ति ।

§ ५६६. तिरिक्खगईए तिरिक्ख० मिच्छत्त० - बारसक० - भय-दुग्घा० ज०  
अज० णियमा अत्थि । सेसपयडीणमोघं । मणुसअपज्ज० उक्क० भंगो सव्वपयडीणं ।  
एवं वेउव्वियमिस्स० - आहार० - आहारमिस्स० - अवगद० - अकसा० - सुहुम० - जहाक्खाद० -  
उवसम० - सासण० - सम्मामि० दिट्ठि त्ति ।

§ ५६७. एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० - णवणोको जह० अजह० णियमा अत्थि ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ओघं । एवं वादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-  
सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-पुढवि० - बादरपुढवि० - बादरपुढविअपज्ज० - सुहुमपुढवि० - सुहम-  
पुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ० - बादरआउ० - बादरआउअपज्ज० - सुहुमआउ० - सुहुमआउपज्जत्ता-

तिर्यंच यानिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी, संव देव, सब  
विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सब अस,  
पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्री-  
वेदवाले, पुरुषवेदवाले, नपुंसकवेदवाले, चारों कषायवाले, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी,  
श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-  
विशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतलेख्यावाले,  
पद्मलेख्यावाले, शुक्ललेख्यावाले, भन्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और  
आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५६६. तिर्यंचगतिमं तिर्यंचोमं मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और  
अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष प्रकृतियोंका कथन ओषके समान है ।  
मनुष्य अपयगोपक्रमे सब प्रकृतियोंका भंग उक्कृष्टके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकायोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत,  
यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना  
चाहिये ।

§ ५६७. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य  
स्थिति विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओषके समान  
है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादर  
पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक अपर्याप्त,  
जलकायिक, बादरजलकायिक, बादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मजलकायिकपर्याप्त,

पञ्ज-तेउ०-वाद्रतेउ०-वाद्रतेउ०अपञ्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपञ्जतापञ्ज-वाउ०-  
वाद्रवाउ०-वाद्रवाउअपञ्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपञ्जतापञ्ज-वाद्रवणप्फदि०-  
णिगोद-वाद्र-सुहुमपञ्जतापञ्ज-वाद्रवणप्फदिपत्तेयसरीरअपञ्ज०-ओरालियमिस्स-  
मदि-सुदअण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि च्चि । णवरि पुढवि-आउ०-तेउ०-वाउ०-वाद्र-  
वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं सगसगवाद्रपउज्जभंगो । ओरालियमिस्सादिसु सत्तणो-  
कसायाणं तिरिक्खोढं । अब्भ० एवं चेव । णवरि सम्मत्त०-सम्माभिच्छत्तं णत्थि ।

§ ५६८. कम्मइय० सम्म०-सम्माभि० अट्ट भंगा । सेस० जहण्ण० णियमा  
अत्थि । एवमणाहारीणं । असंजद० तिरिक्खोढं । णवरि. मिच्छत्तमोढं । किण्ह-णील-  
काउ० तिरिक्खोढं ।

एवं जहण्णओ णाणाजीवभंगविचयाणुगमो समत्तो ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

सूक्ष्मजलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, वाद्रअग्निकायिक, वाद्रअग्निकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म-  
अग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, वाद्रवायुकायिक,  
वाद्रवायुकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिकअपर्याप्त, वाद्र-  
वनस्पति कायिकप्रत्येकशरीर, निगोद, वाद्रनिगोद, वाद्रनिगोदअपर्याप्त, वाद्रनिगोदअपर्याप्त, सूक्ष्म-  
निगोद, सूक्ष्मनिगोदअपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोदअपर्याप्त, वाद्रवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर अपर्याप्त, औदारिक  
मिश्रकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु  
इतनी विशेषता है कि पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वाद्रवनस्पति-  
कायिकप्रत्येकशरीर जीवोंके अपने अपने वाद्र पर्याप्तकोंके समान भंग है । तथा औदारिकमिश्रकाय-  
योगी आदिमें सात नोकषायोंका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । अभन्योंमें भी इसी प्रकार  
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं ।

§ ५६८. कर्मणकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं ।  
तथा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । इसी  
प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिये । असंयतोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु  
इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है । कृष्ण, नील और कापोतलेरया-  
वालोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पहले ओघसे उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जिस प्रकार छह भंग  
वतला आये हैं उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा छह भंग जानने चाहिये । तथा  
यह ओघ प्ररूपणा सामान्य नाकियोंसे लेकर आहारक तक मूलमें जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं  
उनमें अपत्तो अपनी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा घटित हो जाती है, अतः इनकी  
प्ररूपणाको ओघके समान कहा । तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी  
आदेशसे जो जघन्य और अजघन्य स्थिति वतलाई है उसकी अपेक्षा उनमें एक प्रकृतियोंकी जघन्य  
और अजघन्य स्थितिवाले नाना जीव नियमसे हैं, अतः इनमें एक प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति  
बिभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं । तथा उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति-  
बिभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं ये दो भंग ही वनते हैं । हों इनके अतिरिक्त शेष  
४५



§ ५९६. भागाभागाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणमुक्कस्स-द्विदिविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । अणुक० सव्वजी० के० ? अणंता भागा । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सव्वजी० असंखेज्जदिभागो । अणुक० सव्वजीवाणं असंखेज्जा भागा । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालिय०मिस्स०-कम्मइय०-णनुंस०-चचारिक०-मदि-सुदअण्णा०—असंजद०-अचक्खु०-किण्ह०—णील०—काउ०—भवसिद्धि०—मिञ्छादिद्वि-असणिण-आहारि-अणाहारि ति । अभव० एवं चेव । णवरि सम्मत्त-सम्मामिञ्छत्ताणि णत्थि ।

§ ६००. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणमुक्क० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदि-भागो । अणुक० असंखेज्जा भागा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुस-

प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघके समान छहों भंग बन जाते हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंसे लेकर सम्यग्मिथ्या-दृष्टि तक जितनी भी मार्गणाएं मूलमें गिनाई हैं उनमें जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा आठ आठ भंग बतला आये हैं उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा आठ आठ भंग जानने चाहिये । एकेन्द्रियोंमें आदेशकी अपेक्षा जो उनकी जघन्य और अजघन्य स्थिति बतलाई है उसकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके सामान्य तिर्यचोंके समान दो भंग प्राप्त होते हैं । वे दो भंग पहले बतलाये ही हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा तो यहां भी ओघके समान छह भंग ही प्राप्त होते हैं । बादर एकेन्द्रियोंसे लेकर असंखी तक मूलमें जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमेंसे सामान्य पृथिवी आदि पांच मार्गणाओंको छोड़कर शेषमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इसी प्रकार आगे भी जिन मार्गणाओंमें जिन प्रकृतियोंकी स्थिति सम्बन्धी जो विशेषता बतलाई है उसको ध्यानमें रखकर भंगविचयकी प्ररूपणा करनी चाहिये ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य विचयानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ ।

§ ५९६. भागाभागाणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहां उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवेंभाग हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिकाययोगी, औदारिक-मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, चारों कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भग्य, मिथ्यादृष्टि, असंखी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं हैं ।

§ ६००. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव,

अपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वविगळिदिय० सव्वपंचिदिय-चत्तारिकाय-  
वादरवणफ्फादिपचोयसरीर-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउच्चि०-वेउ०-मिस्स०-इत्थि०-  
पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहि०-तेउ०-पम्म०-  
सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि०-सण्णि चि । मणुसपज्ज०-  
मणुसिणीसु सव्वपयडीणसुक्क० सव्वजी० के० ? संखेज्जदिभागो । अणुक्क० सव्वजी०  
के० ? संखेज्जा भागा । एवं सव्वट्ट०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगाद०-अकसा०-  
मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद० ।

एवमुक्त्सओ भागाभागामणुगमो समत्तो ।

भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, चारों स्थावरकाय, सभी वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सत्र व्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैकियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अधिदर्शनवाले, पीतलेरयावाले, पद्मलेरयावाले, शुक्ल-लेरयावाले, सम्यग्दृष्टि, च्यायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्याहृष्टि और संबी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियमोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदापस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांप-रायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव अनन्त हैं तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात हैं । यह तो प्रकृतियोंके सत्त्वकी अपेक्षा संख्या हुई । किन्तु उत्कृष्ट स्थिति और अनुकृष्ट स्थितिकी अपेक्षा विचार करने पर छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात प्राप्त होते हैं और अनुकृष्ट स्थितिवाले अनन्त, इसलिये भागाभागकी अपेक्षा यह बतलाया है कि छव्वीस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्तवें भाग प्रमाण हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवाले जीव प्रत्येक असंख्यात हैं फिर भी अनुकृष्ट स्थितिवालोंसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये भागाभागकी अपेक्षा यह बतलाया है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाले जितने जीव हैं उनमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और असंख्यात बहुभाग प्रमाण अनुकृष्ट स्थितिवाले हैं । मार्गणाओकी अपेक्षा सब जीव तीन भागोंमें बट जाते हैं कुछ मार्गणावाले जीव अनन्त हैं, कुछ मार्गणावाले जीव असंख्यात और कुछ मार्गणावाले जीव संख्यात । इनमेंसे अनन्त संख्यावाली जितनी भी मार्गणाएं हैं उनमें यह ओघ प्रकृष्टा बन जाती है, इसलिये उनकी प्रकृष्टाको ओघके समान कहा । वे मार्गणाएं मूलमें गिनाई ही हैं । किन्तु अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं कहना चाहिये । अब रहीं असंख्यात संख्यावाली और संख्यात संख्यावाली मार्गणाएं सो असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण

§ ६०१. जहणण पयदं । दुविहो णिइदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भिच्छत्त-सोलसक-णवणोक- जह- सव्वजी- के- ? अणंतिमभागो । अज- सव्वजी- के- ? अणंता भागा । सम्मत्त-सम्मामि- उक्क-भंगो । एवं कायजोगि-ओरालि-णवु-स-चत्तारिक-अचक्खु-भवसि-आहारि ति ।

§ ६०२. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणं जह- अज- उक्कसभंगो । एवं सव्वपंचिं-तिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-चत्तारिकाय-बादरवणप्फदिपत्तये-सव्वतस-पंचमण-पंचवचि-वेउव्विय-वेउ-मिस्स-आहार-आहारमिस्स-इत्थि-पुरिस-अवगद-अकसा-विहंग-आभिणि-सुद-ओहि-मणपज्ज-संजद-सामाइय-छेदो-परिहार-सुहुम-जहाक्खवाद-संजदासंजद-चक्खु-ओहिदंस-तिणिले-सम्मादि-खइय-वेदय-उवसम-सासण-सम्मामि-सण्णि ति ।

§ ६०३. तिरिक्ख-णारयभंगो । णवरि अणंताणु-चउक्क-सत्तणोक-ओघं ।

जानने चाहिये । तथा संख्यात संख्यावाली मार्गणाओमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात एक भागप्रमाण होते हैं । असंख्यात संख्यावाली और संख्यात संख्यावाली मार्गणाओके नाम मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०१. अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तमें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसक-वेदवाले, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंके जानना चाहिये ।

§ ६०२. आदेशकी अपेक्षा सब नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-बिभक्तिकी अपेक्षा भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब चार स्थावरकाय, सब बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सब व्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्र-काययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, अपगतवेदवाले, अकषायी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, भनःपययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सुद्धमत्संपरायिकसंयत, यथाख्यात संयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक-सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६०३. तिर्यचोंमें नारकियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें अनन्ता-नुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी अपेक्षा भंग ओघके समान है । इसी प्रकार कृष्ण, नील

एवं किण्ह०-णील-काजलेसे त्ति । एइंदिय० गारयभंगो । एवं वणप्फदि०-णिगोद-  
कम्मइय०-अणाहारि त्ति । ओरालिप्रमिस्स० तिरिक्खोषं । एवरि अणंताणु० मिच्छत्त-  
भंगो । मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि० असण्णि त्ति । असंजद० तिरिक्खोषं । एवरि-  
मिच्छत्त० ओषं । अबव० छवीसपयडीयां ओरालियमिस्सभंगो ।

एवं भागाभागानुगमो समत्तो ।

और कापोतलेइयावाले जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रियोमे नारकियोके समान भग है । इसी प्रकार सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद जीव, कर्मणकाययोगी और अनाहारकोंके जानना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमे सामान्य तिर्यचोके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार मत्स्यहानी, श्रुताहानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके जानना चाहिये । असंयतोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वका भंग ओषके समान है । अभव्योंमें छवीस प्रकृतियोंका भंग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—मिथ्यात्व, बारह ऋषय और सौ नोकषायवाले जीव अनन्त हैं । किन्तु इनमें ओषसे जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं, अतः भागाभागकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीव अनन्तवें भाग प्राप्त होते हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त बहुभाग प्राप्त होते हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त । फिर भी भागाभागकी अपेक्षा इनका भी वही क्रम वन जाता है जो पूर्वमें मिथ्यात्व आदिकी अपेक्षा बतलाया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात हैं किन्तु इनमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले असंख्यात हैं तथा दोनोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं । अतः यहां उल्लेख के समान यह भागाभाग वन जाता है कि उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण और अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । मूलमें काययोगी आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह ओष प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओषके समान कहा । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंके भागाभागको जो उल्लेखके समान कहा उसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार सब प्रकृतियोंकी अनुल्लेख स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं और उल्लेख स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिए । तथा सब पंचेन्द्रियोसे लेकर संह्री तक और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना यह जो कहा है सो इसका यह तात्पर्य नहीं कि इनमें नारकियोंके समान भागाभाग होता है किन्तु इसका यह तात्पर्य है कि इन मार्गणाओंमें जिस प्रकार उल्लेख और अनुल्लेख स्थितिकी अपेक्षा भागाभाग कहा है उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी भागाभाग कहना चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओंमें बहुतसी मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली हैं, बहुतसी असंख्यात संख्यावाली हैं तथा बहुतसी संख्यात संख्यातवाली हैं अतः इन सबमें नारकियोंके समान भागाभाग वन भी नहीं सकता । तथा इन मार्गणाओंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंकी संख्याको देखनेसे भी वही अभिप्राय फलित होता है जो हमने दिया है । तिर्यचगतिमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नारकियोंके समान है सो इसका यह अभिप्राय है कि जिस

§ ६०४. परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेसो-  
ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीसपयडीणमुक्कं केत्तिया ? असंखेज्जा । अणुक्कं  
केत्तिया ? अणंता । सम्मत्तं-सम्मामिं उक्कं-अणुक्कं केत्तिं ? असंखेज्जा । एवं  
तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद-कायजोगि-ओरालियं-ओरालियमिस्स-कम्म-  
इयं-णवुसं चत्तारिकं-मदि-सुदअण्णां-असंजदं-अचक्खुं-तिण्णिले-भवसिं-  
मिच्छादिं-असण्णिं-आहारि-अणाहारिं त्ति । एवमभवसिं । णवरि सम्मं-सम्मामिं  
णत्थि ।

प्रकार नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा अजघन्य स्थितिवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण और  
जघन्य स्थितिवाले असंख्यात एक भागप्रमाण हैं उसी प्रकार तिर्यचोंमें जानना चाहिये । यद्यपि  
तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारकी  
स्थितिवाले जीव अनन्त हैं फिर भी जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात-  
गुणे होनेसे उक्त व्यवस्था बन जाती है । तथा तिर्यचोंमें अनन्तालुबन्धी चतुष्क और सात  
नोकषायवाले जीवोंमें जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले अनन्तरगुणे हैं, अतः इनके  
कथनको ओषके समान कहा । कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें तिर्यचोंके समान व्यवस्था बन  
जाती है, अतः इनके भागाभागको तिर्यचोंके समान कहा । एकैन्द्रियोंमें भागाभाग संवन्धी कुल  
व्यवस्था नारकियोंके भागाभागके समान बनती है, अतः इनके भागाभागको नारकियोंके भागा-  
भागके समान कहा । वनस्पति आदि और जितनी मार्गणाएं मूलमें गिनाई हैं उनमें भी नारकियोंके  
समान भागाभाग जानना । औदारिकमिश्रकाययोगमें यद्यपि भागाभाग सामान्य तिर्यचोंके समान  
है पर अनन्तालुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग मिथ्यात्वकी  
जघन्य और अजघन्य स्थितिके भागाभागके समान है । अथात् तिर्यचोंमें जिस प्रकार मिथ्यात्वकी  
अपेक्षा भागाभाग कहा है उसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तालुबन्धीकी अपेक्षा जानना ।  
मूलमें जो मत्यज्ञानी आदि मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी औदारिकमिश्रकाययोगके समान  
भागाभाग जानना चाहिए । असंयतोंके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना । किन्तु इनके मिथ्यात्वकी  
जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग ओषके समान कहना चाहिये । अभव्योंके छ्वीस  
प्रकृतियोंका सत्त्व है, अतः इनके छ्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग औदारिकमिश्रकाययोगके  
समान जानना चाहिए ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ :

§ ६०४. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषकी अपेक्षा छ्वीस  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्ति-  
वाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सन्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
भिक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सब एकैन्द्रिय, वनस्पतिकायिक,  
निगोद, काययोगी, औदारिककायोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी,  
चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य,  
मिथ्यादृष्टि, असंकी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । इसी प्रकार अभव्योंके  
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सन्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं ।

§ ६०५. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडि० उक्क०-अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्व-विगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउच्चिय०-वेउच्चि-यमिस्स-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादि०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि ति ।

§ ६०६. मणुसगईए मणुस० उक्क० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवमाणदादि जाव अत्राहइद०-वडियदिद्वि ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वपयडिणमुक्क०-अणुक्क० केत्ति० ? संखेज्जा । एवं सव्वद्व०-आहार०-आहारमिस्स० अबगद०-अक्कासा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो० परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद० । एवमुक्कस्सओ परिमाणणुगमो समत्तो ।

§ ६०५ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्थव, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्गतकके, देव सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सभी चार स्थावरकाय, सब व्रस, पांचो मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिध-काययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, विभंगज्ञानी, आमिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतसंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि और संज्ञो जीवोके जानना चाहिये ।

§ ६०६. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार अनान्तकल्पसे लेकर अपराजित तकके देव और द्वायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्य-नियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपरातवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

निशेषार्थ—गुणस्थान अप्रतिपन्न सभी संसारी जीव छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले हैं । किन्तु इनमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके कारणरूपत परिणामवाले जीव थोड़े होते हैं, अतः ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्त कहे । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ता उपशमसम्यग्दृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके पाई जाती है या जो इनसे च्युत हुए हैं उनके पाई जाती है । उसमें भी मिध्यात्वमें इनका संव्यकाल परत्यके असंख्यातत्वं भागप्रमाण है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाले जीवोंकी सामान्यसे संख्या असंख्यात ही होगी । और इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंमें भी प्रत्येककी संख्या असंख्यात बन जाती है । मार्गोणास्थानोंमें राशियां तीन भागोंमें बटी हुई हैं कुछ मार्गोणाएं अनन्त संख्यावाली, कुछ मार्गोणाएं असंख्यात संख्यावाली और कुछ मार्गोणाएं संख्यात संख्यावाली हैं । उनमें जो अनन्त संख्यावाली मार्गोणाएं हैं उनमें ओघके समान व्यवस्था बन जाती है । जो असंख्यात संख्यावाली मार्गोणाएं हैं उनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात ही प्राप्त होता है । किन्तु इनमें मनुष्यगति आदि कुछ

§ ६०७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहं सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-  
वारसक०-णवणोक० जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? अणंता । सम्मत्त०  
जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० जह० अजह० के० ?  
असंखेज्जा । अणंताणु०चउक० जह० के० ? असंखेज्जा । अजह० के० ? अणंता ।  
एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंसं-चचारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ।

§ ६०८. आदेसेस णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० जह०  
अजह० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० के० ?  
असंखेज्जा । एवं पढमाए । विदियादि जाव छट्ठि ति मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक०  
जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत-सम्मामि०-अणंताणु०

मार्गाणाएं अपवाद हैं । इसका कारण यह है कि मनुष्योंमें पर्याप्त मनुष्योंके ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । और उनकी संख्या संख्यात है, अतः सामान्यसे मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात ही होंगे और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात । आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें और द्वायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी यही व्यवस्था जानना चाहिये, क्यों कि इनके अपनी अपनी पर्यायके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है पर इन्तमें मनुष्यगातसे ही जीव उत्पन्न होते हैं परन्तु अच्युत स्वर्गतक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच भी उत्पन्न होते हैं और ऐसे जीवोंकी संख्या संख्यात है, अतः उक्त मार्गाणाओमें भी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है । अब रहीं संख्यात संख्यावाली मार्गाणाएं सो उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात होगा यह स्पष्ट ही है । अनन्त, असंख्यात और संख्यात संख्यावाली मार्गाणाओंका मूलमें उल्लेख कियो ही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०७. अब जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नरुंसकवेदी, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६०८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

चउक्क० ज० अज० केत्ति० ? असंखेज्जा । सत्तमाए उक्क०भंगो ।

§ ६०६. तिरिक्खगइ० मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुब्ब० ज० अज० के० ? अणंता । सम्मत्त० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । सम्मामि० ज० अज० के० ? असंखेज्जा । अणंताणु०चउक्क०-सत्तणोको ज० के० ? असंखेज्जा । अज० के० ? अणंता । एवं किण्ह०-णील०-काउ० । णवरि किण्ह-णील० सम्म० सम्मामि०भंगो । पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणी० पढम-पुढविभंगो । णवरि पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामि०भंगो । पंचि०तिरि०-अपज्ज० एवं चेव । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-चत्तारि-काय-[सव्ववणप्फदिपत्तेय०-] तसअपज्ज० ।

§ ६१०. मणुस० सव्वपयडीणं ज० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० के० ? असं-खेज्जा । णवरि सम्मामि० जह० असंखे० । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वप० जह० अज० संखेज्जा ।

§ ६११. देव० णारयभंगो । भवण०-वाण० एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामि०-भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव अवराइद० मिच्छत्त०-वारसक०-

असंख्यात हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सातवीं पृथिवीमें उक्कृष्टके समान भंग है ।

§ ६०९. तिर्यचोमे मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीललेश्यावालोगे सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पंचेन्द्र तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी चार स्थावरकाय, सभी वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और त्रस अपर्याप्तक जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ६१०. मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं ।

§ ६११. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । व्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें



णवणोक० जह० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० एवं चेव । सम्मामि०-अणंताणु०-चउक० ज० अज० के० ? असंखे० । णवरि अणुदिसादि जाव अवराइद ति सम्मामि० जह० संखेज्जा । सव्वट्ठे० सव्वपयडि० ज० अज० के० ? संखेज्जा । एवमाहार-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाड्य-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे ति ।

§ ६१२. एइंदिय० मिळत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० के० ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० के० ? असंखेज्जा । एवं वणप्फदि-णिगोद० ।

§ ६१३. ओरालिय०मिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०-चउक० ज० अज० के० ? अणंता । वेउच्चियमिस्स० सोहम्मभंगो । णवरि अणंताणु०४ जह० संखेज्जा । कम्मइ० एइंदियभंगो । णवरि सम्मत्त० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा ।

§ ६१४. पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउच्चिय० इत्थि०-पुरि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-विहंग०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सम्मा०-वेदय० मणुसगइभंगो । णवरि विहंग०वज्जेसु अणंताणु०-चउक०

मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिये । सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर अपराजित कल्प तकके देवोंमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । स्वार्थसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामांयिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१२. एकेन्द्रियोंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यचोके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सौधर्मके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । कामेणकाययोगियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

§ ६१४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियककाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, विभंगाज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यगतिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंगा-

जह० असंखेज्जा । सम्म० जह० जम्मि खवणा णत्थि तम्मि असंखेज्जा । सम्मामि० सम्माइद्विपदेसु संखेज्जा । मदि-सुदअण्णा० सम्मत्त-अणंताणु० चउक्क० एइंदियभंगो । सेस० तिरिक्खोघं । एवं मिच्छादिद्वि-असण्णि त्ति । असंजद० तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त० ओघं ।

§ ६१५. अभव० छञ्चीसपयडि० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु० एइंदियभंगो । खइय० एकवीसपयडीणं ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । उवसम० चउवीसपयडी० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । अणंताणु० चउक्क० ज० अज० के० ? असंखेज्जा । एवं सम्मामिच्छादिद्वीणं । णवरि अणंताणु० जह० संखेज्जा । सम्म०-सम्मामि० जह० अज० असंखेज्जा । सासण० अट्ठावीस० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । सण्णि० पंचिंदियभंगो । अणाहारि० कम्मइयभंगो । एवं परिमाणाणुगामो समत्तो ।

ज्ञानियोको छोड़कर शेषमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । तथा जिस मार्गणास्थानमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं है उस मार्गणास्थानमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं और सम्यग्दृष्टि मार्गणाच्चोमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं । मत्त्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । शेष प्रकृतियोंका सामान्य तिर्यचोंके समान है । इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिये । असंयतोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है ।

§ ६१५. अभव्योमे छञ्चीस प्रकृतियोंका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । सासादन-सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । संज्ञियोंमें पंचेन्द्रियोंके ममान भंग है । अनाहारकोमें कामणकाययोगियोंके समान भंग है ।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति क्षपकभ्रेषीमें और सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण संख्यात है, अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात कहा । मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं यह स्पष्ट ही है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके अन्तिम समयमें और कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके उपान्त्य समयमें प्राप्त होती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण असंख्यात है,

§ ६१६. खेत्तं दुविहं—जहणमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिदेसो—  
ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० केवडि खेत्ते ?  
लोग० असंखे०भागे । अणुक० के० खेत्ते ? सच्चलोए । सम्भत्त-सम्मामि० उक्क०  
अणुक० के० ? लोग० असंखेज्जदिभागे । एवमयंतरासीयां पेयव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ६१७. पुढिवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादर-  
आउअपज्ज०-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-  
बादरवणएफदिकाइयपत्तये०-तेसिमपज्ज०-सव्वसुहुम-तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणमेईदियभंगो ।  
सेससंखेज्ज-असंखेज्जरासीणमुक्क० अणुक० केवडि खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे ।  
एवमि वादरवाउपज्ज० अणु० लोग० संखे०भागे ।

एवमुक्कस्सखेत्ताणुगमो समत्तो ।

अतः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात कहा । तथा सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात है यह स्पष्ट ही है । इसी प्रकार  
आगे भी जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामीका विचार करके जहाँ जो संख्या सम्भव हो उसका  
कथन करना चाहिये ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६१६. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य क्षेत्र और उत्कृष्ट क्षेत्र । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा  
मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते  
हैं ? लोकके असंख्यातवैभाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें  
रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
बिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवैभाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार  
अनाहारक मार्गणातक अनन्त राशियोंका क्षेत्र जानना चाहिये ।

§ ६१७. पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, जलकायिक,  
बादर जलकायिक, बादर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निका-  
यिकअपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिकअपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक  
प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, तथा सब सूक्ष्म और उनके पर्याप्तक  
तथा अपर्याप्तक जीवोंका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । शेष संख्यात और असंख्यात राशिवालोंमें  
उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवै भाग  
क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थिति-  
बिभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवै भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ—ओघ और आदेशसे जिसका जो क्षेत्र है, सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी  
अपेक्षा यहाँ उसका वही क्षेत्र ले लिया गया है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट  
स्थितिकी अपेक्षा तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्रमें विशेषता है । वात यह है कि  
ऐसे जीव कहीं असंख्यात और कहीं संख्यात हाते हैं । तथा जहाँ असंख्यात हैं भी वहाँ वे अतिस्वल्प  
हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकका असंख्यातवै भाग ही सर्वत्र प्राप्त होता है यह उक्त कथनका सार है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६१८. जहण्णए पयदं । दुविहं—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणो०क० जह० केवडि खेत्ते ? लो० असंखे०भागे । अज० के० खेत्ते ? सव्वलोए । सम्मत्त०-सम्माणि० ज० अज० के० खेत्ते ? लो० असंखेज्जदिभागे । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ।

§ ६१९. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसण्हं पयडीणमुक्क०भंगो । एवं सत्तसु पुढ-वीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणस-सव्वदेव-सव्ववियलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-वादर-पुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउ०पज्ज०-वादरवाउ०पज्ज०-वादरवणपफदि०पचैय-पज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि-वेउठ्विय०-वेउ०मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिणिलेस्सा-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माणि०-सण्णि ति । णवरि वादरवाउपज्ज० छव्वीसपयडीणं जह० अजह० लो०स्स संखेज्जदिभागे ।

§ ६२०. तिरिक्ख० मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुंळ० ज० अज० के खेत्ते ? सव्वलोए । सेस० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वएइंदिय० । णवरि अणंताणु०४-सत्तपोक०

§ ६१८. अय जघन्य क्षेत्रका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आवर्तिदेश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेद-वाले, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भय और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंका भंग बल्लुकके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्यक, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, वादर जलकायिकपर्याप्त, वादर अग्निकायिकपर्याप्त, वादर वायुकायिकपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सब ब्रह्म, पांचो मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाय-योगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, अपगतवेदवाले, अक्रपायी, विभंगज्ञानवाले, आभिनविधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थारनासंयत, परिहारविशुद्धि-संयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेशवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संबी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

§ ६२०. तिर्यचोमे मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग बल्लुकके समान है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि

जह० अज० सव्वलोए । एवं पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-आउ०-वादर  
आउ०-वादरआउअपज्ज०-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-वाउ०-वादरवाउ०-वादर-  
वाउअपज्ज०-सव्वेसिं सुहुम०-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय-वादरवणप्फदि-  
पत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-  
मदि-सुदअण्णाण-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि ति । णवरि ओरालियमिस्स०-मदि-  
सुदअण्णा०-मिच्छादि०-असण्णि० सत्तणोकसाय० तिरिक्खोघं ।

§ ६२१. एत्थ मूलोच्चारणाहिप्पाएण तिरिक्ख० मिच्छ०-वारसक० भय-दुगुंळ०  
जह० लोग० संखे० भागे, अज० सव्वलोए, सत्थाणविमुद्धवादेईदियपज्जत्तएसु जहण्ण-  
सामिचान्तंवागादो । एवमोरालियमिस्स०-मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि-असण्णि ति ।  
एईदिय०-वादरेईदियपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-तदपज्जत्तएसु छव्वीसपयडि०-  
एवं चेव । एदम्मि अहिप्पाए चचारिकाय-तेसिं वादर-तदपज्जत्ताणं छव्वीसपय० जह०  
लोग० असंखे० भागे । अज० सव्वलोगे । एतदणुसारेण च पोसणं णेदव्वमिदि ।  
असंजद० तिण्णिल्लेस्सा० तिरिक्खोघं । णवरि असंजद० मिच्छ० ओघं । अभव०

इनमें अनन्तानुबन्धोचतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले  
जीव सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर  
अग्निकायिक, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक-  
अपर्याप्त, इन सबके सूक्ष्म, तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर,  
वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव तथा इनके वादर  
और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, मत्तज्ञानी,  
श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहाक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता  
है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, और असंज्ञी जीवोंमें सात  
नोकषायोंका क्षेत्र सामान्य तिर्यचोके समान है ।

§ ६२१. यहाँ पर मूलोच्चारणाका ऐसा अभिप्राय है कि तिर्यचोमें मिथ्यात्व, वारह कषाय,  
भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातर्वे भाग क्षेत्रमे रहते हैं ।  
तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले सब लोकमें रहते हैं । सो यह कथन स्वस्थान विशुद्ध वादर-  
एकेन्द्रिय पर्याप्तकोमें जघन्य स्थितिके स्वामित्वको स्वीकार करके किया गया है । इसी प्रकार  
औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।  
एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रियअपर्याप्त, वादर एकेन्द्रियअपर्याप्त, वादर वायु-  
कायिक और वादर वायुकायिकअपर्याप्त जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र  
है । इसके अभिप्रायानुसार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, इनके वादर तथा इनके  
अपर्याप्त जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके असंख्यातर्वे भाग  
क्षेत्रमे रहते हैं । तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं । तथा इसीके  
अनुसार स्पष्टनका कथन करना चाहिये । असंयत और कृष्णादि तीन लेश्यावालोमें सामान्य-  
तिर्यचोके समान क्षेत्र है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंयतोंमें मिथ्यात्वका क्षेत्र ओषके समान

छन्वीसपयडि० तिरिक्त्वोषं । णवरि अणंताणु०चउक० एईदियभंगो ।

एवं खेत्ताणुगमो समचो ।

है । अभव्योंमें छन्वीस प्रकृतियोंका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिवाले जीव रूपकश्रेणीमें ही होते हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा ओघसे उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं, अतः इनका क्षेत्र सब लोक कहा । जब सामान्यसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है तब उनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । यह ओघ प्ररूपणा मूलमें गिनाई हुई काययोगी आदि कुछ मार्गणाश्रमि अविकल बन जाती है, इसलिये उनके कथनको ओघके समान कहा । सामान्य नारकियोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि नारकियोंकी संख्याको नारकियोंकी अवगाहनासे गुणित करने पर लोकका असंख्यातवां भाग ही प्राप्त होता है, अतः इनके उल्लुष्ट और अनुल्लुष्ट स्थितिके समान जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही कहा । इसी प्रकार मूलमें सातों पृथिवियोंके नारकियोंसे लेकर संज्ञितक और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी जानना चाहिये, क्यों कि सामान्यसे उनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता । हां केवल वायुकायिक पयांन जीव इसके अपवाद हैं सो इनके क्षेत्रका अनेक जगह खुलासा किया ही है । सामान्यसे तिर्यचोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है । तथा इनमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त बतला आये हैं, अतः तिर्यचोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा सब लोक क्षेत्र बन जाता है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र लोकका असंख्यातवां ही होता है । इसका कारण इनकी संख्याकी न्यूनता है । यद्यपि एकेन्द्रियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान व्यवस्था बन जाती है किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । बात यह है कि सामान्य तिर्यचोंसे एकेन्द्रियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति भिन्न बतलाई है । अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त प्राप्त होता है और इसलिये इनका वर्तमान क्षेत्र सब लोक बन जाता है । पृथिवीकायिकसे लेकर अनाहारक तक मूलमें और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी एकेन्द्रियोंके समान व्यवस्था जानना चाहिये ! किन्तु औदारिक मिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा अपवाद है । बात यह है कि इनमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियोंके अपर्याप्त कालमें होती है ! अतः जघन्य स्थितिवाले जीवोंकी संख्या एकेन्द्रियोंके समान न प्राप्त होकर सामान्य तिर्यचोंके समान प्राप्त होती है अतः इस कारण इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र सामान्य तिर्यचोंके समान होता है । यद्यपि पहले यह बतलाया है कि तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका जघन्य क्षेत्र सब लोक है फिर भी मूल उच्चारणाका यह अभिप्राय है कि ऐसे जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । सो इसका यह कारण है कि तिर्यचोंमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति वादर

§ ६२२. पोषणं दुविहं—जहणमुकस्सं च । उकस्से पयदं । दुविहो णिहेसो—  
 ओघेण आदेसेण० । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० के० खे०  
 पोसिदं ? लोग० असंखेभागो अट्ट-तेरह चोदसभागा वा देसूणा । अथवा इत्थि-  
 पुरिसवेद० उक्क० अट्ट चोदसभागा वा देसूणा । अण्णेणाहिप्पाएण वारह चोदसभागा वा  
 देसूणा । अणु० सव्वलोगो । सम्म०-सम्मामि० उक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ट  
 चोद० देसूणा । अणुक्क० [लोग० असंखे०भागो] अट्ट चोद० देसूणा सव्वलोगो वा । एवं  
 [कायजोगि-] चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०-  
 आहारि चि । अभव० एवं चेव । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्ज० ।

एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके ही प्राप्त होती है और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र  
 लोकके संख्यातवें भागप्रमाण ही है अतः इस अपेक्षासे तिर्यचोंमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य  
 स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है । और पहले जो सब  
 लोक क्षेत्र वतलाया है सो इसका कारण यह है कि मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय  
 पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र सब लोक है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले तिर्यचोंका क्षेत्र भी  
 सब लोक बन जाता है । यही क्रम औदारिकमिश्रकायोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि  
 और अर्द्धज्ञी जीवोंके भी घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके इस प्रकार घटित करनेमें कोई  
 बाधा नहीं आती है । तथा इसी प्रकार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त  
 तथा वायुकायिक, बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीवोंमें भी घटित कर लेना चाहिये ।  
 किन्तु इस मूल उच्चारणाके अनुसार पृथिवी आदि चार स्थावरकाय, इनके बादर और बादर  
 अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-  
 प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंने वर्तमान कालमें  
 लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको ही स्पर्श किया है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६२२. स्पर्शनं दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
 उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा  
 मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका  
 स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम  
 आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अपेक्षा  
 उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका  
 स्पर्श किया है । तथा अन्य अग्निप्रायानुसार त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भाग  
 प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इन सबकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका  
 स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके  
 असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श  
 किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके  
 चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार  
 काययोगी, चार कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि  
 और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व-और-सम्यग्मिथ्यात्वकी छोड़कर कहना चाहिये ।

### § ६२३. आदेसेण णेरइसु छन्वीसपयडि० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो

**विशेषार्थ—**पहले मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतला आये हैं । तदनुसार मोहनीय कर्मके अवान्तर भेदोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है इससे अधिक नहीं । इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण स्पर्श अतीत कालकी अपेक्षा बतलाया है, क्योंकि विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदसे परिणत हुए उक्त जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग स्पर्श किया है और मारणांतिक समुद्रातसे परिणत हुए उक्त जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भागका स्पर्श किया है । यहाँ आठ भागसे नीचे दो और ऊपर छह राजु क्षेत्रका ग्रहण करना चाहिये । तथा तेरह भागमें नीचेका एक राजु छोड़ देना चाहिये । एक ऐसा नियम है कि जो जीव जिस वेदवालेमें उत्पन्न होता है मरणके समय अन्तर्मुहूर्त पहलेसे उसके उसी वेदका बन्ध होता है । अथ जब इस नियमके अनुसार स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग नहीं प्राप्त होता, क्योंकि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जो जीव नपुंसकवेदियोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह स्पर्श सम्भव है, इसलिये विकल्पान्तर रूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है । किन्तु कुछ आचार्योंका मत है कि यह स्पर्श कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण प्राप्त होता है । उनके इस मतका यह कारण प्रतीत होता है कि नीचे सातवें नरक तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है और ऊपर विहारादिककी अपेक्षा अच्युत कल्प तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है । अब यदि इस क्षेत्रका संकलन किया जाता है तो वह कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्राप्त होता है । अनुकृष्ट स्थितिवाले जीव सब लोकमें पाये जाते हैं यह स्पष्ट ही है अतः यहाँ अनुकृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक बतलाया है । अब वहीं सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियाँ सो इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण अन्य प्रकृतियोंके समान जान लेना चाहिये । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो कुछ कम आठबटे चौदह भागप्रमाण बतलाया है । उसका कारण यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टियोंके पहले समयमें होती है और वेदक सम्यग्दृष्टियोंका अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका भी स्पर्श उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । तथा इनकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो तीन प्रकारका बतलाया है सो उसमेंसे लोकका असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श वर्तमान कालकी अपेक्षा प्राप्त होता है । कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श अतीत कालीन विहारादिककी अपेक्षा प्राप्त होता है और सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणांतिक तथा उपपाद् पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है । इस प्रकार यह सब प्रकृतियोंका सामान्यसे स्पर्श हुआ । कुछ मार्गणार्थ भी ऐसी हैं जिनमें यह ओघ प्ररूपणा वन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है । जैसे चारों कषाय आदि । अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नही होती । शेष सब स्पर्श ओघके समान वन जाता है, अतः उनके भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छांडकर शेषका स्पर्श ओघके समान बतलाया है ।

§ ६२३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें छन्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम



§ ६२६. पंचिं०तिरि०अपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० लोग० असंखे०भागे,  
अणुक्क० लो० असं०भागे सव्वलोगो वा । एवं सव्वमणुस-सव्वविगल्लिंदिय-पंचिं-  
दियअपज्ज०-बादरपुटविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्जत्त-बादर-  
वणप्फदिकाइयपचेयपज्ज०-तसअपज्जचे त्ति । णवरि बादरपुटवि०-आउ०-वणप्फदि-  
पचेय०पज्ज० उक्क० णव चौदसभागा वा देसूणा ।

§ ६२७. देव० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणो० उक्क० अट्ट-णव चो० देसूणा ।

चाहिये । तथा 'अथवा' कह कर नौ नोकवायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालौका स्पर्श जो कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है वह नीचे छह राजु और ऊपर छह राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये । नीचेके छह राजु तो स्पष्ट हैं परन्तु ऊपरके छह राजु उपपाद पदकी अपेक्षा जानना चाहिये । बात यह है बारहवें कल्पतकके देव मर कर तिर्यंच होते हैं । अब नीचेके जो देव सोलहवें कल्पतक विहार करके गये और वहाँसे मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए उनकी अपेक्षा ऊपर छह राजु प्राप्त हो जाते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ ६२६. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सब मनुष्य, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिक, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादरअग्निकायिक, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायु-कायिक, बादर वायुकायिकपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, और अस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने अस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—जो तिर्यंच या मनुष्य मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हो कर और स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोमें उद्वन्न होते हैं उन्हीं पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अब यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिये यहाँ उत्कृष्ट स्थितिवालौका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थिति-वालौका वर्तमान कालीन स्पर्श तो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें ही है । पर अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बन जाता है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके द्वारा इन्होंने सब लोकका स्पर्श किया है । कुछ मार्गणाएं और हैं जिनमें पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, अतः उनके कथनको इसी प्रकार कहा है । जैसे सब मनुष्य आदि । किन्तु इनमेंसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त इन तीन मार्गणाओंमें कुछ अपवाद हैं । बात यह है कि इनमें देव मर कर भी उत्पन्न होते हैं, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति-वालौका स्पर्श कुछकम नौ बटे चौदह भाग प्राप्त होता है । यहाँ नौ भागसे नीचेके दो राजु और ऊपरके सात राजु लेना चाहिये ।

§ ६२७. देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकवायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले

इत्थि-पुरिसवेद०-सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० अद्द चोद्द० देसूणा । अणुक्क० अद्द-णव चो० देसूणा । एवं सोहम्मीसाणदेवाणं । भवण०-वाण० एवं चेव । णवरि अद्दुद्द-अद्द-णव चोद्दस भागा देसूणा । सणक्कुमारादि जात्र सहस्सारा ति सन्वपय० उक्क० अणुक्क० अद्द चोद्दस० देसूणा । आणद-पाणद-आरणच्चुद० सन्वपयणीणं उक्क० लो० असंखे०भागो । अणुक्क० छ चोद्दस० देसूणा । उवरि खेत्तभंगो ।

§ ६२८. एइंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक्क० उक्क० णव चोद्द० देसूणा ।

अणुक्क० सन्वल्लो गो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्क० णव चो० । अणुक्क० ओघं । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्ज०-वणप्फदि-वादरवणप्फदि-तण्णज्जत्त-कम्मइ-अणाहारए चि ।

जीवोने त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंके जानना चाहिये। भवनवाती और व्यन्तर देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग, कुछ कम आठ भाग और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श जानना चाहिये। सनत्कुमारसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंने त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसके आगेके देवोंमें क्षेत्रके समान भंग है।

**विशेषार्थ**—सामान्य देवोका या पृथक् पृथक् देवोंका जो स्पर्श बतलाया है वही यहाँ प्राप्त होता है, अतः तदनुसार उसे यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये। हां सामान्य देवोंमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोके स्पर्शमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले देव एकेन्द्रियोंमें मारणांतिक समुद्घात नहीं करते अतः इनका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौद्द भाग ही प्राप्त होता है। तथा वेदकसम्यग्दृष्टियोंके पहले समयमें ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। अब देवोंमें इसका विचार करते हैं तो ऐसे देव नीचे तीसरे नरक तक और ऊपर सोलहवें कल्प तक पाये जा सकते हैं, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोकें स्पर्श भी कुछकम आठ बटे चौद्द भाग प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहाँ सामान्य देवोंमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोकें स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौद्द भाग प्रमाण बतलाया है।

§ ६२८. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नौकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने सब लोकका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंने त्रसनालीके चौद्द भागोंमेंसे कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रियपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पति-

णवरि कम्मइय०-अणाहार० उक्क० तेरह चो० भागा वा देसूणा ।

§ ६२६. वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुम-पुढविपज्जत्तापज्जत्त-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-वादरतेउअपज्ज०-सुहुम-तेउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-सुहुमवणप्फदि-णिगोद-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त० उक्क० लोग० असंखे० भागो सव्व-लोगो वा । णवरि वादरपुढवि-तेउ-वणप्फदिअपज्ज० सव्वलोगो णत्थि । कुदो ? उक्कस्स-ट्टिदिसंतकम्मेण पडिणियदस्खेचो चेव एदेसिसुप्पत्तीदो । अप्पुक्क० सव्वलोगो । [ ओरा-लिय० तिरिक्खोघं । ] ओरालियमिस्स० खेत्तमंगो ।

कायिकपर्याप्त, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके पायी जाती है जो देव पर्यायसे च्युत होकर एकेन्द्रिय हुए हैं, अतः एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है जो उपपादपदकी प्रधानतासे प्राप्त होता है । तथा एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतएव अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक बतलाया है । आगे जो बादर एकेन्द्रिय आदि मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा है । किन्तु कार्मणकाययोग और अनाहारकोंमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि जो देव तद्योग्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है तथा जो तियच और मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ नारकियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है । अब यदि इन दोनोंके स्पर्शका संकलन किया जाता है तो वह कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु प्राप्त होता है । यही कारण है कि कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उक्तप्रमाण बतलाया है ।

§ ६२६. वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रि अपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिकअपर्याप्त, वादरजलकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिकअपर्याप्त, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिकअपर्याप्त, वादर वायुकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिकअपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अत्येक शरीर अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व निगोद तथा इनके बादर, वादर पर्याप्त, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म, सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवी-कायिकअपर्याप्त, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिकअपर्याप्तकोंमें सब लोक स्पर्श नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मके साथ इन जीवोंकी प्रतिनियत क्षेत्रमें ही उत्पत्ति होती है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । औदारिक-काययोगियोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ ६३०. पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तगोक० उक्क० ओघं । अणुक्क० अट्ट चो० देसूणा सव्वलोगो वा । इत्थि०-पुरिस० उक्क० अट्ट-वारह चोद्दसभागा वा देसूणा । अणुक्क० अट्ट चोद्दस० सव्वलोगो वा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अट्ट चोद्द० देसूणा । अणुक्क० लो० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं चक्खु०-सण्णि-पंचमण०-पंचवचि० ।

**विशेषार्थ**—जो तिर्यच या मनुष्य मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके और स्थितिघात किये बिना बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि मार्गणाओमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। अब यदि इनके वर्तमान क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। यही कारण है कि उन बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि मार्गणाओमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वतलाया है। तथा ऐसे जीव सब लोकमें उत्पन्न होते हैं, अतः अतीतकालीन स्पर्श सब लोक वतलाया है। हां यहां इतनी विशेष बात है कि बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त इनमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका अतीत कालीन स्पर्श भी सब-लोक नहीं प्राप्त होता, क्यों किऐसे जीवोंकी उत्पत्ति नियत क्षेत्रमे ही होती है, अतः इन्होंने सब लोकको अतीत कालमे भी स्पर्श नहीं किया है। विशेष खुलासाके लिये निम्न दो बातें ध्यानमे रखनी चाहिये। पहली यह कि उक्त मार्गणावाले जीव पृथिवियोंके आश्रयसे रहते हैं और दूसरी यह कि जो संबन्धी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके और स्थितिघात किये बिना इनमे उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है। अब ऐसे जीवोंके पृथिवियोंकी ओर गमन करने पर सब लोक नहीं प्राप्त होता, अतः यहां सब लोक स्पर्शका निषेध किया है। तथा उक्त सब मार्गणाओमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो सब लोक स्पर्श वतलाया है वह स्पष्ट ही है। औदारिककाययोगवालोंका स्पर्श तिर्यचोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। औदारिकमिश्रकाययोगमे मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हीं जीवोंके प्राप्त होती है जो देव और नरक पर्यायसे आकर औदारिकमिश्रकाययोगी होते हैं, अतः इनके स्पर्शमें क्षेत्रसे अन्तर नहीं पड़ता, इसीलिये इसमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान वतलाया है।

§ ६३०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकषायवालोंमे उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है: तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। 'सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार चक्षुदर्शनवाले, संबन्धी, पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**—मिथ्यात्व आदि २४ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो ओघसे स्पर्श

§ ६३१. वेङ्गविय० मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक० उक्क० अणुक्क० अट्ट-  
तेरह चौद्दस० देसूणा । एवं हस्स-रदि० इत्थि०-पुरिस० उक्क० अट्ट-बारह० देसूणा ।  
अथवा बारह चौद्दस० णत्थि । अणुक्क० अट्ट-तेरह चो० देसूणा । सम्मत्त-सम्माभि०  
उक्क० अट्ट चो०, अणुक्क० अट्ट-तेरह चो० । वेङ्गवियमिस्स० खेत्तमंगो । एवमाहार०-  
आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-  
जहाक्खादसंजदे ति ।

बतलाया है वह पंचेन्द्रिय आदि पूर्वोक्त चार मार्गणाओंकी प्रमुखतासे ही बतलाया है, इसलिये  
यहां उक्त मार्गणाओंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श ओघके समान कहा ।  
उक्त मार्गणाओंका विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौद्दह भाग तथा  
मारणान्तिक समुद्रात और उपपादकी अपेक्षा स्पर्श सब लोक है, अतः इनमें अनुकृष्ट स्थिति-  
वालोंका स्पर्श उक्त प्रमाण कहा । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका विहार आदिकी  
अपेक्षा कुछकम आठ बटे चौद्दह भाग प्रमाण और मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा कुछ कम  
बारह बटे चौद्दह भाग प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका उक्त  
प्रमाण स्पर्श बतलाया है । तथा इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंका कुछ कम आठ  
बटे चौद्दह भाग प्रमाण स्पर्श विहारआदिकी अपेक्षा बतलाया है और सब लोक स्पर्श मारणान्तिक  
तथा उपपाद पदकी अपेक्षा बतलाया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-  
वालोंका कुछ कम आठ बटे चौद्दह भागप्रमाण स्पर्श विहार आदिकी अपेक्षा बतलाया है  
और इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंका लोकके असंख्यातर्वे भाग प्रमाण स्पर्श  
वर्तमान काल आदिकी अपेक्षा तथा सब लोक स्पर्श मारणान्तिक समुद्रात और उपपाद पदकी  
अपेक्षा बतलाया है । चक्षुदशन आदि कुछ और मार्गणाएं हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है,  
अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है ।

§ ६३१. वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट  
और अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौद्दह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ  
कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार हास्य और रति नोकषायकी अपेक्षा  
जानना चाहिये । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौद्दह  
भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा त्रस  
नालीके चौद्दह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भागप्रमाण स्पर्श नहीं है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्ति  
वाले जीवोंने त्रस नालीके चौद्दह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस  
नालीके चौद्दह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौद्दह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह  
भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी  
प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी,  
संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और  
यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—वैक्रियिककाययोगका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौद्दह भाग और कुछ कम  
तेरह बटे चौद्दह भाग है । वही यहां मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके प्राप्त

§ ६३२, णवुंस० ओषं । णवरि अट्ट चोद० णत्थि । मिच्छत्त-सोलसक०-उक्क० छ चोद० । इत्थि०-पुरिस० पंचिदियभंगो ।

§ ६३३, आभिणि०-सुद०-ओहि० सन्वपयडी० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे० भागो अट्ट चो० देसूणा । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय०-उवसम०-सम्मा-मिच्छादिद्वि ति । विहंग० मणजोगिभंगो । संजदासंजद० उक्क० खेत्तभंगो, अणुक्क०

होता है, इसलिये इसे तत्प्रमाण कहा । किन्तु पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका कुछकम तेरह बटे चौदह राजु स्पर्श न प्राप्त होकर कुछकम बारह बटे चौदह राजु प्राप्त होता है । कारणका स्पष्टीकरण ओषमें कर आये हैं । अब विकल्परूपसे जो बारह बटे चौदह राजुका निषेध किया है । उसका मुख्य कारण यह है कि नीचे सात नरके नारकी स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यद्यपि तिर्यच और मनुष्यमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं फिर भी उनका प्रमाण स्वल्प होता है अतः कुछकम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श नहीं बनता है । अनुत्कृष्टका खुलासा उत्कृष्टके समान ही है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टियोंके पहले समयमें होती है और वेदकसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह राजु होता है अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका स्पर्श भी उक्त प्रमाण ही बतलाया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोके स्पर्शका खुलासा मिथ्यात्व आदि की अनुत्कृष्ट स्थितिवालोके समान है । वैक्रीयिकमिश्रकाययोग और आहारककाययोग आदि ऐसी मार्गाणां हैं जिनके स्पर्शनमें क्षेत्रसे अन्तर नहीं पड़ता, अतः उनका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है ।

§ ६३२. नपुंसकवेदवाले जीवोंमें ओषके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भगप्रमाण स्पर्श नहीं है । मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवाले जीवोंमें पंचेन्द्रित्यर्थचोके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—नपुंसकवेदमें जो ओषके समान स्पर्श बतलाया है वह अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा बतलाया है । उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तो विशेषता है । बात यह है कि ओषसे मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका विहार आदिकी अपेक्षा जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्श बतलाया है वह नपुंसकवेदियोंके नहीं प्राप्त होता, क्योंकि वह देवोंकी मुख्यतासे बतलाया है और देवोंमें नपुंसकवेदी जीव होते नहीं । हां मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले नपुंसकवेदियोंने नीचेके छह राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका यह स्पर्श बन जाता है । तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है । इसका यह अभिप्राय है कि पंचेन्द्रियोंमें जिस प्रकार स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका स्पर्श घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ६३३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । विभंगज्ञानियोंमें मनोयोगियोंके समान भंग है । संयतासंयतोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे

छ चोद्दस देसूणा । एवं सुक्क० ।

§ ६३४. तिण्णि ले० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक्क० उक्क० छ चोद्द० चत्तारि चोद्द० वे चोद्द० देसूणा । अणुक्क० सव्वलोगो । इत्थि०-पुरिस० खेत्तभंगो । अथवा णवणोक्क० उक्क० तेरह-एकारस-णव चोद्दसभागा वा देसूणा, उववाद्दविवक्खाए तदुव-लंभादो । सम्मत्त० सम्मामि० तिरिक्खोघं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणवकुमार-भंगो । खड्द० एकवीस० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० अद्द चो० देसूणा । सासण० उक्क० अणुक्क० अद्द-वारह चोद्द० देसूणा । असण्णि० एद्दियिभंगो ।

एवमुक्कस्सपोसणाणुगमो समत्तो ।

कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके स्पर्श जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—अन्यत्र आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंका जो स्पर्श बतलाया है वही यहाँ उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवालोंका प्राप्त होता है। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। मिथ्यात्वके रहते हुए जहाँ जहाँ मनोयोग सम्भव है वहाँ वहाँ विभंगज्ञान भी सम्भव है, अतः विभंगज्ञानियोंमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श मनोयोगियोंके समान बतलाया है। जो उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः संयतासंयतोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है। तथा अनुकृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा संयतसंयतोंने इतने क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार शुक्ल-लेश्यामें भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ६३४. कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। अथवा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम तेरह, कुछ कम ग्यारह और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि उपपादकी विवक्षांमें इस प्रकारका स्पर्श पाया जाता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा स्पर्श सामान्य तिर्यचोके समान है। पीतलेश्यावालोगे सौधर्म कल्पके समान भंग है। पद्मलेश्यावालोगे सनत्कुमार कल्पके समान भंग है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकषायवालोंके जो क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ कम दो बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श है वह नारकियोंकी मुख्यतासे बतलाया है। तथा ये तीनों

§ ६३५. जहणए पयदं । लुबिहो० णिदो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० अजह० खेत्तभंगो । सम्मत्त जह० खेत्त-भंगो । अज० अणुक्क०भंगो । सम्मामि० जह० अज० अणुक्क०भंगो । अणंताणु०-चउक्क० ज० लो० असंखे०भागो अट्ट चो० देसूणा । अज० सव्वलोगो । एवं काययोगि-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति ।

लेख्यावाले जीव सब लोकमे पाये जाते हैं अतः इनमे उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक बतलाया है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भागमें पाये जाते हैं, क्षेत्र भी इतना ही है अतः इनका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । तथा विकल्परूपसे कृष्णादि तीन लेख्याओंमें उपपाद पदकी अपेक्षा नौ नोकषायोका स्पर्श जो कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है वह क्रमसे नीचे छह, चार और दो राजु तथा ऊपर सात राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये । कृष्णादि तीन लेख्यावालोंमें तिर्यचोंकी बहुलता है, अतः इनमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका स्पर्श तिर्यचोंके समान बतलाया है । शेष मार्गणाओंका स्पर्श सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६३६. अब जघन्य स्पर्शका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिध्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य और अजघन्य स्थितिभक्तिवाले जीवोका स्पर्श क्षेत्रके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिभक्तिवाले जीवोका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिभक्तिवाले जीवोका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । इसी प्रकार काययोगी, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भन्य और आहारक जीवोंक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिवालोक क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिवालोक क्षेत्र सब लोक है । स्पर्श भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान बतलाया है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति यद्यपि चारों गतिके जीवोंके पाई जाती है फिर भी ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं अतः इनका स्पर्श भी क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोक स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका स्पर्श क्षेत्रक समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिवालोक स्पर्श अनुत्कृष्टके समान सब लोक है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति त्रिसंयोजनाके समय प्राप्त होती है । अब यदि ऐसे जीवोंके वर्तमान स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहाँ जघन्य स्थितिवालोक स्पर्श उक्त प्रमाण कहा है । तथा ऐसे जीवोंका विहार आदि कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रमें पाया जाता है अतः अतीत कालीन स्पर्श उक्त प्रमाण कहा है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिवाले जीव सब लोकमें हैं, इसलिये उनका सब लोक स्पर्श बतलाना स्पष्ट ही है । कुछ मार्गणाएँ भी ऐसी हैं जिनमे यह ओघ-प्ररूपणा अविकल प्रटित हो जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है ।



§ ६३६. आदेसेण गेरइएमु सत्तावीसपयडी० ज० खेत्तभंगो । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मामि० ज० अज० अणुक्क० भंगो । पढमाए खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति छव्वीसपयडी० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० अणुक्क० भंगो ।

§ ६३७. तिरिक्ख० मिच्छत्त-वारसक० भय-दुगुंछ० ज० अज० सव्वलोगो । अण्णो पाढो जह० खेत्तं पोसणं च लोग० संखेज्जदिभागो ति । सत्तणोक्क० अणंताणु०-चउक्क०-सम्मत्त० ज० अज० खेत्तभंगो । सम्मामि० ज० अज० अणुक्क० भंगो । णवरि सम्मत्त० अज० अणुक्क० भंगो । एवं काउ० । असंजद० एवं चेव । णवरि

§ ६३६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा दूसरीसे लेकर सातवी तकके नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ— नारकियोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति उन जीवोंके प्राप्त होती है जो असंज्ञी जीव अपनी जघन्य स्थितिसे साथ नरकमें उत्पन्न होते हैं। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नारकियोंके होती है और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकियोंके होती है। अब यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। क्षेत्र भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान बतलाया है। उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है। जिनके सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ता है उन सब नारकियोंके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थिति होती है। इसमें भी जो नारकी सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें हैं उनके उसकी जघन्य स्थिति होती है। अब यदि इनके वर्तमान तथा कुछ पदोंकी अपेक्षा अतीत स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है तथा मारणात्मिक और उपपाद पदकी अपेक्षा अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम बड़ बटे चौदह राजु प्राप्त होता है। अनुत्कृष्टकी अपेक्षा भी स्पर्श इतना ही है, अतः यहां सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है। सर्वत्र पहली पृथिवीका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है अतः यहां पहली पृथिवीमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें भी इसी प्रकार जघन्यादि स्थितियोंके स्वाभियोंका विचार करके स्पर्श समझ लेना चाहिये।

§ ६३७. तिर्यन्त्रोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंमें सब लोकका स्पर्श किया है। यहां एक दूसरा पाठ है जिसके अनुसार उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र आर स्पर्शन लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है। सात नोकषाय, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी

मिच्छत्त० जह० सम्मत्तभंगो । किण्ह-णील० तिरिक्खवभंगो । णवरि सम्मत्त० सम्मा-  
मिच्छत्तभंगो । एवधोराणियमिस्स०-मदि-सुदअण्णाण-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति ।  
णवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । अभव० सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि । ओरा-  
णियमिस्स० सम्म० तिरिक्खोव० ।

अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोका स्पशं अनुत्कृष्टके समान हैं । इसी प्रकार कापोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार असंयतोके भी जानना चाहिये । किन्तु इनके इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शका भंग सम्यक्त्वके समान है । कृष्ण और नीललेश्यावालोंने तिर्यचोके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभन्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । अभन्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं । तथा औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्वका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति वादर एकेन्द्रियोंके होता है । वैसे तो वादर एकेन्द्रियोंका निवास लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमे ही है किन्तु मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा इनका स्पर्श सब लोकमे पाया जाता है, इसलिये इनका सब लोक स्पर्श वतलाया है । तथा इनकी अजघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श सब लोक है यह स्पष्ट ही है । वीरसेन स्वामीने यहां एक ऐसे पाठका उल्लेख किया है जिसके अनुसार तिर्यचोंमे उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवालोकका क्षेत्र और स्पर्श लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है । अब यदि इस पाठके अनुसार विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मारणान्तिक समुद्घातके समय जघन्य स्थिति नहीं होती होगी । सात नोकपाय, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके होती है । यद्यपि पंचेन्द्रिय तिर्यचोका मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा स्पर्श सब लोक है तो भी उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके समय ये पद सम्भव नहीं इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्रके समान बन जाता है । यद्यपि सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके समय उपपाद पद सम्भव है तो भी इससे स्पर्शमे अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं । तथा इनकी अजघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श क्षेत्रके समान है इसका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार इनका क्षेत्र सब लोक है उसी प्रकार स्पर्श भी सब लोक है । किन्तु सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक दोनों प्रकारका प्राप्त होता है । इसकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोकका स्पर्श भी ऐसा ही है । अतः सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान कहा है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श भी अनुत्कृष्टके समान घटित कर लेना चाहिये । कापोतलेश्यावाल और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके यह व्यवस्था बन जाती है अतः इनके कथनको एक प्रमाण कहा है । किन्तु असंयतोंके द्वायिकसम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय मिथ्यात्वकी भी क्षणता होती है और इसलिये यहां मिथ्यात्वकी ओघरूप जघन्य स्थिति बन जाती है । अब यदि ऐसे जीवोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिवालोकके समान लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिये असंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श सम्यक्त्वके समान वतलाया है । कृष्ण और नील लेश्यावमे भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श तिर्यचोंके समान बन जाता है । किन्तु इन दोनों लेश्यावोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति न

§ ६३८. पंचिदियतिरिक्खतिए सत्तावीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे० भागो । अज० लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । णवरि जोणिणीसु सम्म० सम्मामि० भंगो । पंचि० तिरि० अपज्ज०-मणुसअपज्ज० जोणिणीभंगो । मणुसतिए पंचि० तिरिक्खभंगो ।

§ ६३९. देवेसु मिच्छ०-सम्म०-बारसक०-णवणोक० जह० खेचं, अज०

होनेसे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण नहीं प्राप्त होती और इसलिये सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो स्पर्श पूर्वमें बतलाया है वही यहां सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका प्राप्त होता है। यही कारण है कि उक्त दोनों लेख्याओंमें सम्यक्त्वके भंगको सम्यग्मिध्यात्वके समान बतलाया है। औदारिकमिश्र आदि कुछ और मार्गणाएं हैं जिनमें उक्त व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है। किन्तु इन मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती, अतः इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श मिध्यात्वके समान बतलाया है। अभव्य मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृति नहीं होती, अतः इनका निषेध किया है। औदारिकमिश्रमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति सम्भव है अतः इसमें सम्यक्त्वका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान बतलाया है।

§ ६३८. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यचोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है। पंचेन्द्रियतिर्यचअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोमे तिर्यच योनिमती जीवोंके समान भंग है। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियामें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान भंग है।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जो स्वामी बतलाये हैं उन्हें देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है। अन्यत्र पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है। अब यदि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंके स्पर्शका विचार करते हैं तो वह उतना बन जाता है, इसलिये यहां इनके स्पर्शको उक्त प्रमाण बतलाया है। किन्तु उक्त तिर्यचोंमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थिति सब अवस्थाओंमें सम्भव है और इसलिये उक्त तिर्यचोंका जो स्पर्श बतलाया है वह सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी बन जाता है यही कारण है कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है। किन्तु योनिमती तिर्यचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान बतलाया है। पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोमें सब प्रकृतियोंकी जो जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामी बतलाये हैं उसे देखते हुए इनका स्पर्श योनिमतियोंके समान बन जाता है, इसलिये इनके भंगको योनिमतियोंके समान कहा है। मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान कहनेका भी यही तात्पर्य है।

§ ६३९. देवोंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-

लोग० असंखे०भागो अद्द-णव चोद्द० । सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे०-  
भागो अद्द-णव चोद्द० । अर्णताणु०चलक० जह० लोग० असंखे०भागो अद्द चोद्द० ।  
अज० लोग० असंखे०भागो अद्द-णव चोद्द० । एवं सोहम्मीसाण० ।

§ ६४०. भवण०-वाणवेतर०-जोदिसि० मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० जह०  
लोग० असंखे०भागो । सव्वेसिमज० सम्म०-सम्मामि० ज० अज० लोगस्स  
असंखे०भागो अद्दधुद्द-अद्द-णव चोद्द० । अर्णताणु०४ जह० अद्दधुद्द-अद्द चोद्द० ।  
सणक्कुमारादि जाव सहस्सार चि मिच्छ०-सम्म०-वारसक०-णवणोक० जह० लोग०  
असंखे०भागो । सव्वेसिमज० सम्मामि०-अर्णताणु० जह० अज० लोग० असंखे०भागो  
अद्द चोद्द० । आणदादि अच्चुदा चि मिच्छ०-सम्म०-वारसक०-णवणोक० जह०  
लोग० असंखे०भागो । सव्वेसिमजह० सम्मामि०-अर्णताणु०४ जह० अज० लोग०  
असंखे०भागो छ चोद्द० । उवरि खेत्तभंगो । एवं वेउच्चियमिस्स०-आहार-आहारमि०-

विभक्तिवाले जीवोंका स्पश क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें जानना चाहिये ।

§ ६४०. भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा सभी प्रकृतियोंकी अजघन्य तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सानत्कुमारसे लेकर सहस्सार कल्प तकके देवोंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा सभी प्रकृतियोंकी अजघन्य और सम्यग्मिध्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनतसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य और सम्यग्मिध्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसके आगेके देवोंमें क्षेत्रके

अवगद०-अकसाय०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद-  
संजदे त्ति ।

§ ६४१, एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक्क० ज० अज० सव्वलोगो ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० अणुक्कस्सभंगो । एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढवि-  
अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-  
सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ-  
पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-बादरवणप्फदि०-

समान भंग है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, नौ नोकषाय और सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति किसी खास अवस्थामें ही प्राप्त होती है और सबके सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है और इसलिये इसे क्षेत्रके समान बतलाया है । परन्तु अजघन्य स्थितिके लिये ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंका वही स्पर्श प्राप्त हो जाता है जो सामान्य देवोंका बतलाया है । यही बात सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंके लिये समझ लेना चाहिये । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजनके समय होती है पर ऐसे समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्रघात सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और कुछ कम आठ बटे चौदह राजु बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है । यह सामान्य देवोंमें स्पर्श हुआ । इसी प्रकार देवोंके प्रत्येक भेदमें अपनी अपनी विशेषताको जान कर स्पर्श जान लेना चाहिये । कहाँ कितना स्पर्श है इसका निर्देश मूलमें किया ही है । कोई विशेषता न होनेसे उसका खुलासा नहीं किया है । हां भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सम्यग्मिथ्यात्वके समान बतलाया है । यहां 'एवं' कह कर जो वैक्रियिकमिश्र आदिमें स्पर्शका निर्देश किया है सो उसका यह मतलब है कि जिस प्रकार नौ त्रैवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है उसी प्रकार इन वैक्रियिकमिश्र आदि भागोणाओंमें अपने अपने क्षेत्रके समान स्पर्श जानना चाहिये ।

§ ६४१, एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शका भंग अतुल्यके समान है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म-पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादरजल-कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि-कायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पति-

वादरवणफ्फदिपज्जत्तापज्जत्त—सुहुमवणफ्फदि—सुहुमवणफ्फदिपज्जत्तापज्जत्त—कम्मइय०—  
अणाहारि चि । एवरी कम्मइय०—अणाहारीसु सम्मत्तस्स तिरिक्खोघं । सच्चविगल्लिंदिय-  
पंचिंदियअपज्ज०—तसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । वादरपुडविपज्ज०—  
वादरआउपज्ज०—वादरतेउपज्ज०—वादरवाउपज्ज०—वादरवणफ्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०—  
तसअपज्जत्तभंगो । गवरि वादरवाउपज्ज० छ्वीसपय० ज० अज० लो० संखे० भागो  
सच्चलोगो वा ।

§ ६४२, पंचिंदिय-पंचि०पज्ज० तेवीसपयडी० ज० खेतं, अज० अणुक्क०भंगो ।  
सम्मासि० आंधं । अणंताणु०चउक्क० ज० देवोयं । अज० अणुक्क०भंगो । एवं तस-

कायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, सभी-  
निगोध, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,  
सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, कार्मण-  
काययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी  
और अनाहारकोमें सम्यक्त्वका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय  
अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोके समान भंग है । वादर पृथिवी-  
कायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त  
और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें त्रस अपर्याप्त जीवोंके समान भंग है ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य और  
अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके संख्यातर्वे भाग और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका  
स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और  
अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वत्र पाये जाते हैं इसलिये इनका स्पर्श सब लोक वतलाया है ।  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोकोंका स्पर्श अनुक्कष्टके समान  
है सो इसका खुलासा जिस प्रकार पहले कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये ।  
पृथिवीकायिक आदि मार्गणाओंमें एकेन्द्रियोंके समान स्पर्श बन जाता है, इसलिये उनके कथनको  
एकेन्द्रियोंके समान कहा है । किन्तु कार्मणकायोगी और अनाहारकोमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव  
भी उत्पन्न होते हैं अतः उनमें सम्यक्त्वका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान बन जाता है । पंचेन्द्रिय  
तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोकोंके कारण स्पर्शमें जो  
विशेषता प्राप्त होती है वही विशेषता सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त  
जीवोंमें भी प्राप्त होती है इसलिये यहां इनके स्पर्शको पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोके समान  
वतलाया है । इसी प्रकार वादर पृथिवी पर्याप्त आदिमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य  
स्थितिवालोकोंके स्पर्शको त्रस अपर्याप्तकोके समान वतलानेका कारण जान लेना चाहिये । किन्तु वादर  
वायुकायिक पर्याप्तकोका स्पर्श लोकके संख्यातर्वे भागप्रमाण व सब लोक होनेसे इनमें छ्वीस  
प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोकोंका स्पर्श उक्त प्रमाण वतलाया है ।

§ ६४२, पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंमें तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले  
जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिका भंग अनुक्कष्टके समान है ।  
सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओषके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले  
जीवोंका स्पर्श सामान्य देवोंके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका भंग अनुक्कष्टके समान है ।

तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि ति ।

§ ६४३. वेउन्विय० बावीसपयडी० ज० खेतं, अज० अणुक्क० भंगो । सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० अणुक्क० भंगो । अणंताणु० चउक्क० ज० अट्ट चो०, अज० अणुक्क० भंगो । ओरालिय०-णवुंस० ओघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० ज० तिरिक्खोघं ।

§ ६४४. विहंग० छव्वीसं पयडी० ज० खेतभंगो, अज० अणुक्क० भंगो । सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० भंगो । आभिणि०-सुद०-ओहिं०-ओहिंदंस०-सम्मादि०-वेदय० सव्वपय० जह० पंचिदियभंगो । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । अज० अणुक्क०-भंगो । संजदासंजद० सव्वपयडी० जह० खेतभंगो । अजह० अणुक्क० भंगो ।

इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चन्द्रदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ज्ञप्राप्तके समय प्राप्त होती है। इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्रके समान प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहाँ स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा है। अजघन्य स्थिति सर्वत्र सम्भव है अतः इनका स्पर्श अन्तुष्टके समान वतलाया है। सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो ओघ स्पर्श वतलाया है वह उक्त मार्गणाओंमें भी सम्भव है, अतः इनके स्पर्शको ओघके समान कहा है। उक्त मार्गणाओंमें अनन्तानुदन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिवालोंमें देवोंकी प्रमुखता है अतः इनके स्पर्शको सामान्य देवोंके समान वतलाया है। तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अन्तुष्टके समान वन जाता है, अतः इसे अन्तुष्टके समान वतलाया है। त्रसकायिक आदि मार्गणाओंमें उक्त व्यवस्था वन जाती है, अतः उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है।

§ ६४३. वैक्रियिककाययोगियोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका भंग अन्तुष्टके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले भंग अन्तुष्टके समान है। अनन्तानुदन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अजघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले भंग अन्तुष्टके समान है। औदारिककाययोगी और नपुंसकवेदवालोंमें ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुदन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है।

§ ६४४. चिभंगज्ञानियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले भंग अन्तुष्टके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग अन्तुष्टके समान है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिध्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है। तथा अजघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले भंग अन्तुष्टके समान है। संयतासंयतोमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिचिभक्तित्वाले भंग अन्तुष्टके समान है।

§ ६४५. तेड०-पम्म० तेवीसपयडि० जह० खेत्तभंगो, अज० अणुक्क०भंगो । सम्मामि० ज० अज० अणुक्क०भंगो । अणताणु०चउक्क० ज० पविं०भंगो, अज० अणुक्क०भंगो । सुक्क० तेवीसपयडी० ज० खेत्तभंगो । अज० अणु०भंगो । सम्मामि०-अणताणु०चउक्क० ज० अज० अणदभंगो ।

§ ६४६. खइय० सव्वपयडी० ज० खेत्तभंगो । अज० अणु०भंगो । उवसम० चउवीसपयडी० ज० खेत्तभंगो, अज० अणुक्क०भंगो । अणताणु०चउक्क० ज० अज० अह चोइस० । सम्मामि०-सासणसम्मा० उवसम०भंगो ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

❀ जघा उक्कस्सट्ठिदिवंधे णाणाजीवेहि कालो तथा उक्कस्सट्ठिदिसंत-कम्मेष कायव्वो ।

§ ६४७. उक्कस्सट्ठिदिवंधे जहा णाणाजीवेहि कालो परुविदो तथा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मस्स वि परुवेयव्वो । तं जहा—छन्वीसपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होति ? जह० एगसमओ; एगसमयमुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय विदिसमए

§ ६४५. पीत और पद्मलेख्यावाले जीवोमे तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । शुक्ललेख्यावालोंने तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग आनतकल्पके समान है ।

§ ६४६. चायिक सम्यग्दृष्टियोंमे सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमे चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यग्मिध्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोमे उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोके समान भंग है ।

इस प्रकार स्पर्शानुगम समाप्त हुआ ।

\* जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें नाना जीवोंकी अपेक्षा काल कहा है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मकी अपेक्षा कालका कथन करना चाहिये ।

§ ६४७. उत्कृष्ट स्थितिवन्धमें जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका कथन किया है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका भी काल कहना चाहिये । जो इस प्रकार है—छन्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है, क्योंकि एक समय तक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर दूसरे समयमे उन सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वको



अणुकस्सट्टिदिसंतं सच्चजीवेसु उवगएसु तिहुवणासेसजीवाणमेगसमयं चेव उक्कस्सट्टिदि-  
दंसणादो । उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एकस्स जीवस्स जदि उक्कस्सट्टिदिकालो  
अंतोमहुत्तमेत्तो लब्भदि तो आवलियाए असंखे० भागमेत्तजीवाणं किं लभामो त्ति फल-  
गुणिदिच्छाए पमाणेणोवट्टिदाए असंखेज्जावलयमेत्तुक्कस्सट्टिदिसंतकालुवलंभादो ।  
अणुकस्सट्टिदिसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवे पडुच्च सच्चद्धा ।  
कुदो ? तिसु वि कालेसु अणुकस्सट्टिदिसंतकम्मियजीवाणं संभवादो ।

❀ एवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदी जहरणेण एगसमओ ।

§ ६४८. कुदो ? उक्कस्सट्टिदिसंतकम्मियमिच्छादिट्टिणा मोहट्ठावीससंतकम्मिएण  
वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु  
संकाभिदाए एगसमयं चेव उक्कस्सट्टिदिकालुवलंभादो । उक्कस्सट्टिदिसंतकम्मिय-  
मिच्छादिट्टी सम्मामिच्छत्तं किण्ण णीदो ? ण, तत्थ दंसणमोहणीयस्स संकमाभावेण  
सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदीए करणुवायाभावदो ।

❀ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

प्राप्त होने पर तीन लोकके सब जीवोंके एक समय तक ही उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । तथा  
उत्कृष्टकाल पर्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि एक जीवके उत्कृष्ट स्थितिका काल  
यदि अन्तमुहुत्त है तो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके कितना काल प्राप्त होगा इस  
प्रकार त्रैराशिक करके इच्छाराशिको फलराशिसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें प्रमाणराशिका  
भाग देने पर असंख्यात आवलिप्रमाण काल तक उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व पाया जाता है । अनुत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है, क्योंकि तीनों  
ही कालोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका पाया जाना संभव है ।

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

§ ६४८. शंका—इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—जिसके मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है ऐसा कोई एक उत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें ही मिध्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वमें संक्रमण कर देता है, अतः उसके एक समय काल  
तक उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अतः इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल  
एक समय है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानको क्यों  
नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्मिध्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयका संक्रमण नहीं  
होनेसे वहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है ।

\* तथा उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६४६. कुदो ? उक्कस्सद्विदिसंतकम्मियमिच्छाद्द्वीणं गिरंतरं वेदयस्सम्मत्तं पडिवज्जंताणमावळियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालुवत्तंभदंस्सणादो । एवं जइवसहा-इरियसुत्तपरुवणं करिय एदेण चेष सुणेण देसामासिएण सच्चिदत्थाणमुच्चारणाइरिय-परुविदवक्त्वाणं भणिस्सामो ।

§ ६५०. कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण छ्वीसपयडी० उक्क० केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्मच्च-सम्मामि० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अणुक्क० के० ? सव्वद्धा । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचि०तिरि०तिय-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउ-व्वि०-तिणिवेद-वचचारिकसाय-मदि०-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु० पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिद्वि०-सण्णि०-आहारि ति । णवरि अभव० सम्म०-सम्मामि० णत्थि ।

§ ६४६. शंका—उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीका असंख्यातवां भाग क्यों है ?

समाधान—यदि उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीव निरन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हों तो वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होनेका काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही देखा जाता है । अतः उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल भी आवलीका असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके सूत्रका कथन करके अब देशामर्षक रूपसे इसी सूत्रके द्वारा सूचित हुए अर्थका उच्चारणाचार्यने जो व्याख्यान किया है उसे कहते हैं—

§ ६५०. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । प्रकृतमे उत्कृष्टसे प्रयोजन है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीवोंका काल सर्वदा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्वदा है । इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेखावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संह्री और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योमि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं हैं ।

विशेषार्थ—ओघसे नाना जीवोंकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट

§ ६५१. पंचि०तिरिक्ख०अपज्ज० सव्वपयडीणमुक्क० के० ? जह० एगस०, उक्क० आबलि० असंखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं सव्वेइंदिय-सव्वविगल्लिदिय-पंचि०अपज्ज०-पंचकाय०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्सकाय-जोगि त्ति । णवरि जत्थ देवाणमुववादो तत्थ णवणोकसाय० उक्क० ओघमंगो ।

स्थितियोंके कालका खुलासा चूर्णिसूत्रोंकी टीका करते हुए स्वयं वीरसेन स्वामीने किया ही है अतः यहां उसे पुनः नहीं दुहराया गया है। इसी प्रकार सब नारकी आदि असंख्यात और अनन्त संख्यावाली कुछ ऐसी मार्गाणए हैं जिनमें ओघके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल बन जाता है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः उनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन नहीं करना चाहिये।

§ ६५१. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सव्वदा है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावर काय तथा उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जहां देवोंका उपपाद है वहां नौ नोकवायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान है।

**विशेषार्थ—**पहले ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बतला आये हैं। अब यदि ओघसे उत्कृष्ट स्थितिवाले ये जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोमे उत्पन्न हो तो उनके भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय ही पाया जायगा, क्योंकि द्वितीयादि समयमें ओघ उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका अभाव हो जानेसे पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सम्भव नहीं, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोमे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो इस प्रकारसे प्राप्त होता है—ओघसे उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालका कथन करते हुए बतलाया है कि नाना जीव निरन्तर यदि उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करते रहें तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होगे तथा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि जीवोंकी संख्यासे कालके प्रमाणको गुणित कर दिया जाता है तो उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। किन्तु ऐसे जीवोंको यदि पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोमे क्रमसे उत्पन्न कराया जाय तो उनमें एक एक अन्तर्मुहूर्तके बाद ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होगी, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त तक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर जो जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोमे उत्पन्न होते हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकालके अन्तिम समयमें बंधी हुई स्थिति ही उत्कृष्ट हो सकती है इसके अतिरिक्त और सब स्थितियां अनुत्कृष्ट हो जायंगी, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके अन्तिम समयमें बंधी हुई स्थितिके कालसे उनका काल एक समय, दो समय आदि रूपसे और कम हो जाता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें निरन्तर ऐसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये जिन्होंने क्रमसे एक एक समय तक निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया हो। इस प्रकार

§ ६५२. मणुसतिय० छ्वीसपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्म०-सम्मामि० उक्क० ज० [एगस०], उक्क० संखेज्जा समया । अणुक्क० सव्वद्धा । मणुसअपज्ज० सव्वपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं समयुणं, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । णवरि समत्त-सम्मामि० अणुक्क० ज० एगस० । एवं वेउच्चियमिस्स० । णवरि छ्वीसपयडी० अणुक्क० ज० अंतोमु० । णवणोक्क० उक्क० ओघं । एवमव-

पंचेन्द्रिय तिर्यक् लब्धपर्याप्तकोमें उत्कृष्ट स्थितिका काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है, अतः इसमें सर्वदा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं । सब एकेन्द्रिय आदि और जितनी मार्गणाएँ सिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको पंचेन्द्रिय तिर्यक् लब्धपर्याप्तकोमें समान कहा । किन्तु जिन मार्गणाओंमें देव उत्पन्न हो सकते हैं उनमें नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेके दूसरे समयमें ही मर कर देव एकेन्द्रियोमें उत्पन्न हो सकते हैं और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति संक्रमणसे प्राप्त होती है जो बन्धावलीके बाद ही होता है । अब यदि एक एक आवलीके अन्तरालसे एक एकके क्रमसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण देव खोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका एक एक आवलि तक निरन्तर बन्ध करें और उत्कृष्ट स्थिति बन्धके दूसरे समयमें वे मर कर उसी क्रमसे एकेन्द्रियोमें उत्पन्न होते जायं तो एकेन्द्रियोमें नौ नोकषायोका उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि ऐसे देवोमें प्रत्येकके एक एक आवलितक नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जायगी । जिन मार्गणाओमें नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका यह काल सम्भव है वे मार्गणाएँ ये हैं—एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त । किन्तु इतना विशेष जानना चाहिए कि ओषमें अन्तर्मुहूर्तको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पत्यका असंख्यातवां भाग काल प्राप्त किया गया था पर यहाँ आवलिके आवलिके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पत्यका असंख्यातवां भाग काल प्राप्त करना चाहिये ।

§ ६५२. सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यिनी इन तीन प्रकारके मनुष्योमें छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोका काल सर्वदा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिबिभक्तिवाले जीवोका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोका काल सर्वदा है । मनुष्य अपर्याप्तकोमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय है । इसी प्रकार वैकियिक-मिश्रकाययोगी जीवोके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि छ्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट

सम०-सासण०-सम्माभि० । णवरि णवणोक्क० उक्क० ओघं णत्थि । सम्म०-सम्माभि०  
अणुक्क० जह० अंतोमु० । सासण० सध्वपय० अणु० जह० एयस०, उक्क० तं चेव ।

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तवाले जीवोंका काल ओघके समान है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि  
और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नौ नोकषायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी  
अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें  
सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल  
वही पूर्वोक्त है।

**विशेषार्थ—**जब कि ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
है तो मनुष्यत्रिकमें इससे अधिक कैसे हो सकता है। पर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि ओघ  
उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होनेवाले सामान्य मनुष्योंका प्रमाण संख्यात है तथा मनुष्य पर्याप्त और  
मनुष्यनियोंका प्रमाण तो संख्यात है ही। अब यदि एक समयमें प्राप्त होनेवाली मनुष्योंके उत्कृष्ट  
स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त मान लें और एक के बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तररूपसे संख्यात  
मनुष्योंके उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त कराई जाय तो भी उस सब कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्त ही होगा। यही  
कारण है कि मनुष्यत्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा एक जीवकी अपेक्षा  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतला आये  
हैं। अब यदि संख्यात जीव लगातार उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हों तो उनके कालका  
जोड़ संख्यात समय ही होगा, अतः मनुष्यत्रिकके उक्त दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल  
संख्यात समय कहा। इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय स्पष्ट ही है।  
तथा इनके सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल सर्वदा है यह भी स्पष्ट है, क्योंकि ये  
निरन्तर मार्गणाएँ हैं इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये  
जाते हैं। लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात है और उनमें आदेश उत्कृष्ट  
स्थिति होती है, अतः उनके पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके समान सब प्रकृतियोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन  
जाता है। तथा यह मार्गणा सान्तर है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम  
खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है। जघन्य  
कालमेंसे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षासे किया है। तथा उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। वैक्यिकमिश्रकाययोग  
मार्गणा सान्तर है, अतः इसमें भी लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके समान सब कर्मोंकी जघन्य और उत्कृष्ट  
स्थितिका काल जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इस मार्गणाका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त  
है अतः इसमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होगा। तथा  
इसमें प्रत्येक जीवके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त हो  
सकता है, अतः नाना जीवों की अपेक्षा यहां भी नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल  
ओघके समान पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। इसका विशेष खुलासा इसी  
प्रकरणमें एकेन्द्रियोंकी प्ररूपणाके समय कर आये हैं अतः वहांसे जान लेना चाहिये। उपशम-  
सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि ये तीन मार्गणाएँ भी सान्तर हैं, अतः इनमें  
भी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल वैक्यिकमिश्रकाययोगके समान कहा।

§ ६५३. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति सव्वपयडी० उक्क० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समय। अणुक्क० सव्वद्धा । एवमणुदिसादि जाव सव्वट्टिसिद्धि त्ति । एवं खइयसम्मादिद्वीणं । आहार० सव्वपय० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समय। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुम-सांपराय०-जहान्वादासंजदे त्ति । एवमाहारमिस्स० । णवरि अणुक्क० ज० अंतोमु० । कम्महय० एइंदियभंगो । णवरि सम्भत्त०-सम्भामि० अणुक्क० सत्तणोक्क० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवमणाहारीणं । आभिणि०-सुदो०-ओहि० सव्वपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादिद्वि०-वेदय०दिद्वि त्ति । मणपज्ज० सव्वपयडी० सव्वद्धभंगो । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार-

किन्तु इसका कुछ अपवाद है । वात यह है कि इन तीनों मार्गाओंमें एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, अतः यहां इनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओषधके समान न प्राप्त हाकर आवलिके असंख्यातर्वे भागप्रमाण ही प्राप्ता होगा । और इन मार्गाओंमें सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती है अतः यहां इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होगा । किन्तु सासादन गुणस्थानका जघन्य काल एक समय है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय ही प्राप्त होगा ।

§ ६५३. आनत करपसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार अनुदिशसे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आहारकक्राययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदवाले, अकपायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार आहारकमिश्रक्राययोगियोंके जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । कामणक्राययोगियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका और सात नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आचलीके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए । आभिनि-वोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आचलीके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा सर्वाथसिद्धिके समान भंग है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोप-स्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये । असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान

संजदे ति । [ असण्णि० एइंदियभंगो । ]

एवमुक्कस्सओ कालाणुगमो समत्तो ।

❀ जहण्णए पयदं । भिच्छुत्त-सम्मत्त-वारसकसाय-तिवेदाणं जहण्ण-  
द्विदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६५४. णाणाजीवेहि जहण्णाद्विदिविहत्तिएहि' छट्ठीए अत्थे तइया दद्वच्चा ।  
अहवा कत्तारम्मि तइया घेत्तच्चा ; जहण्णाद्विदिविहत्तिएहि' केवडिओ कालो लद्धो ति  
पदसंबंधादो । सेसं सुगमं ।

❀ जहण्णेण एगसमत्तो ।

जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—आनतादि चार कल्पोंमें यद्यपि तिर्थच भी मर कर उत्पन्न होते हैं किन्तु उनके उत्कृष्ट स्थिति नहीं-पाई जाती, अतः जो द्रव्यलिगी मनुष्य मर कर आनतादिकमे उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, पर लगातार उत्पन्न होनेवाले इन जीवोंका प्रमाण संख्यात ही होगा, क्योंकि ऐसे मनुष्य ही संख्यात हैं, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । तथा अनुदिशादिकमें और चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होता है यह स्पष्ट ही है । यदि एक साथ अनेक जीवोंने आहारक-काययोग किया और उनके उत्कृष्ट स्थिति हुई तो आहारक काययोगमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है और यदि नाना मनुष्य प्रत्येक समयमें उत्कृष्ट स्थितिके साथ आहारक काययोगको प्राप्त होते रहे तो आहारककाययोगमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय पाया जाता है । तथा आहारककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत, यथाख्यातसंयत और आहारक मिश्रकाययोगी इनकी कथनीमें आहारककाययोगकी कथनीसे कोई विशेषता नहीं है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल आहारककाययोगके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होगा । इसी प्रकार शेष मार्गाणाओमें भी कालका विचार कर सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका काल ले आना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

❀ अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कषाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नाना जीवोंका काल कितना है ।

§ ६५४. 'णाणाजीवेहि जहण्णाद्विदिविहत्तिएहि' इन दोनों पदोंमें जो तृतीया विभक्ति है वह षष्ठी विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये । अथवा कर्ता अर्थमें तृतीया विभक्ति ग्रहण करनी चाहिये; क्योंकि 'जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नाना जीवोंने कितना काल प्राप्त किया है' इस प्रकारका पदसम्बन्ध यहां विवक्षित है । शेष कथन सुगम है ।

❀ जघन्य काल एक समय है ।

§ ६५५. कुदो ? एदेसिं जहण्णणिसेयद्विदीए दुसमयकालाए एगसमयकालाए वा पयदाए विदियसमए चेव णिम्मूलविणासुवर्लंभादो ।

❀ उक्कस्सेण संखेज्जा समयया ।

§ ६५६. कुदो ? णाणाजीवाणमणुसमयं जहण्णद्विदिं पडिवज्जंताणं संखेज्ज-मणुसपज्जएहिंतो आगमुवर्लंभादो ।

❀ सम्मानिच्छत्त० अणंताणुबंधीणं चउक्कस्स जहण्णद्विदिविहत्तिपहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६५७. सुगमभेदं पुच्छामुत्तं ।

❀ जहण्णणेण एगसमओ ।

§ ६५८. कुदो ? एगणिसेगद्विदीए दुसमयकालाए विदिसमए परसरूवेण गणु-वर्लंभादो । अगमणे ण सा जहण्णद्विदी; दुवादिणिसेयाणं जहण्णत्तविरोहादो ।

❀ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

६५९. कुदो ? सम्मानिच्छत्तमुव्वेल्लंताणमणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएताणं च

§ ६५५. शंका—उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवालोका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इन प्रकृतियोंके जघन्य निषेककी स्थिति चाहे दो समय कालवाली हो या चाहे एक समय कालवाली हो तथापि दूसरे समयमे ही उसका निर्मूल विनाश पाया जाता है, अतः इनका जघन्य काल एक समय कहा है ।

❀ उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ६५६. शंका—उत्कृष्ट कालसंख्यात समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रत्येक समयमें जघन्य स्थितिको प्राप्त होनेवाले नानाजीवोंका पर्याप्त मनुष्योंमेंसे आगमन पाया जाता है, जिनकी संख्या संख्यात है ।

❀ सम्यग्मिध्मात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिभिक्तिवाले नाना जीवोंका काल कितना है ?

§ ६५७. यह पृच्छासूत्र सरल है ।

❀ जघन्य काल एक समय है ।

§ ६५८. शंका—जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इनकी दो समय काल प्रमाण एक निषेकस्थितिका दूसरे समयमें पररूपसे संक्रमण पाया जाता है । जब तक पररूपसे संक्रमण नहीं होता है तब तक वह जघन्य स्थिति नहीं है, क्योंकि दो आदि निषेकोंको जघन्य माननेमें विरोध आता है ।

❀ उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६५९. शंका—उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सम्यग्मिध्मात्वकी उद्वेलना करनेवाले और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी



पलिदो० असंखे०भागमेत्तजीवाणमावलियाए असंखे०भागमेत्तुवकमणकंडएसु तत्थ एगुक्कस्सकंडयकालग्गहणादो ।

❀ छरण्णोकसायाणं जहण्णण्णद्विदिविहृत्तिएहि एण्णजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६६०. सुगममेदं ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ६६१. कुदो ? चरिमद्विदिकंडयउक्कीरणकालग्गहणादो । एत्थ णिसेया चेय पहाणा कया ण कालो, एगसमयं मोत्तूण अंतोमुहुत्तकालपरुवणण्णहाणुववचीदो ।

§ ६६२. एवं जइवसहाइरियसुत्ताणं देसामासियाणं परुवणं काऊण संपहि एदेहि सूचिदत्थाणं लिहिदुच्चारणमणुवत्तइस्सामो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-तिण्णिवेद० जहण्णद्विदिवि०कालो ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० ज० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा । छण्णोक० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० सव्वद्धा । एवं सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचि-

विसंयोजना करनेवाले पर्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके आधुलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण उपक्रमण काण्डक होते हैं। उससे यहां एक उत्कृष्ट काण्डकका काल लिया गया है।

❀ छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले नाना जीवोंका कितना काल है ।

§ ६६०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६६१. शंका—जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान—**क्योंकि यहां अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालका ग्रहण किया है। यहां पर निषेकोकी धानता है कालकी नहीं, अन्यथा एक समयको छोड़कर अन्तर्मुहूर्त कालका कथन नहीं बन सकता था ।

§ ६६२. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके देशामर्षक सूत्रोंका कथन करके अब इनसे सूचित होनेवाले अर्थों पर जो उच्चारणा लिखी गई है उसका अनुसरण करते हैं—जघन्य कालका प्रकारण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषानिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओष की अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कषाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थिति बिभक्तिवाले जीवों का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिबिभक्ति वाले जीवोंका काल सर्वदा है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्करी जघन्य स्थिति-बिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सौधमं कल्पसे लेकर उपरिमगेवयक तकके

दिय-पंचि०पञ्ज०-तस-तसपञ्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरोलि०-तिणिं-  
वेद०-चत्तारिकसा०-चक्खु०-अचक्खु० तिणिणले०-भवसि०-सणिं०-आहारंत्ति । णवरि  
सोहम्मीसाणादिदेवेषु इत्थि-णवु'स० तेउपम्मलेस्सासु च ङ्णोक्कसाय० जहण्णद्विदिकालो  
जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समय। इत्थि० णवु'स० ओघं ङ्णोक्क०भंगो ।  
पुरिस० इत्थि०-णवु'स० ङ्णोक्क०भंगो । णवु'स० इत्थिवेद० ओघं ङ्णोक्क०भंगो ।

§ ६६३. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसपयडो० ज० जह० एगस०, उक्कं०  
आवलि० असंखे०भागो । अज० सन्वद्धा । सम्मत्तं ओघं । एवं पढमपुढवि०-पंचि०-  
तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पञ्ज० । पंचि०तिरिक्खजोणिणीसु एवं चेव । णवरि सम्मत्तस

देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, ३स, त्रसपर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कपायवाले, चतुर्दर्शनवाले, अचतुर्दर्शनवाले तीन लेश्यावाले, मन्थ, संखी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सौधर्म और ऐशान आदि कल्पके देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें तथा पीत और पद्मलेश्यावालोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। स्त्रीवेदवालोंमें नपुंसकवेदकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका काल ओघके समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि जघन्य स्थितिका काल ओघसे छह नोकपायोंके समान है। पुरुषवेदवालोंमें स्त्र वेद और नपुंसकवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है। नपुंसकवेदवालोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जघन्य स्थितिका काल ओघसे छह नोकपायोंके समान है।

**विशेषार्थ**—यहां जिन मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान बतलाया है उनमें सौधर्मसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देव, पीत और पद्मलेश्यावाले तथा तीनों वेदवाले जीव भी सम्मिलित हैं परन्तु इन मार्गणाओंमें कुछ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके कालमें कुछ विशेषता बतलाई है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—वात यह है कि पुरुषवेदको छोड़ कर इन पूर्वोक्त मार्गणाओंमें एक जीवकी अपेक्षा छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त न होकर एक समय है अतः यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होगा। तथा स्त्रीवेदियोंके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति, पुरुषवेदियोंके स्त्री और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति तथा नपुंसकवेदियोंके स्त्री वेदकी जघन्य स्थिति अन्तिम स्थिति काण्डकके पतनके समय होती है अतः इन तीनों वेदवाले जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघसे छह नोकपायोंके समान कहा है। तथा अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

§ ६६३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वकी अपेक्षा ओघके समान काल है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पंचेन्द्रियतिर्यच और पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्तकोमें जानना चाहिए। पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें

सम्मामिच्छत्तभंगो ।

§ ६६४. विदियादि जाव छट्टि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ओघं । ओघम्मि छण्णोकसायाणं जहण्णट्टिदिकालो जहण्णुकस्सेण चुण्णिमुत्तम्मि वप्पदेवा-  
इरियलिहिदुच्चारणाए च अंतोमुहुत्तमिदि भणिदो । अम्हेहि लिहिदुच्चारणाए पुणं जह०  
एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया त्ति परूविदो, कालपहाणणे विवक्खिए तंहोव-  
लंभादो । तेण छण्णोकसायाणमोघचं ण विरुद्धदे । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-  
चउक्क० ज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा ।  
एवं जोइसि०-वेउच्चि०-विहंगणाणि त्ति । णवरि विहग० अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो ।

सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—नरकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः यहां सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है। शेष कथन सुगम है। पहली पृथिवीके नारकी आदि मूलमें और जितनी मार्गणाए गिनाई है उनमें सामान्य नारकियोंके समान काल सम्बन्धी व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा। किन्तु योनिमती तिर्यचोमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः वहां सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सम्यग्मिध्यात्वके समान जानना चाहिये, क्योंकि योनिमती तिर्यचोके सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति ही प्राप्त होगी जो कि सम्यग्मिध्यात्वके समान होती है।

§ ६६४. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा ओघके समान काल है। चूणिसूत्रमें और वपदेव आचार्यके द्वारा लिखी गई उच्चारणमें ओघका कथन करते समय छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। परन्तु हमारे द्वारा लिखी गई उच्चारणमें जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है, क्योंकि प्रधानरूपसे कालकी विवक्षा होने पर जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय बन जाता है, अतः छह नोकषायोंके कालको ओघके समान कहनेमें कोई विरोध नहीं आता है। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवर्त भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार ज्योतिषीदेव, वैक्रियिककाययोगी और विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंगज्ञानियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है।

**विशेषार्थ**—ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है वह दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंके भी बन जाता है, क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि जीव इन नरकोंसे निकलकर मनुष्य पर्यायमें आते हैं उन्हींके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है किन्तु इन नरकोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नहीं बनता। फिर इन नरकोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके कालको भी ओघके समान क्यों कहा? यह शंका है जिसे मनमें रखकर वीरसेन स्वामीने 'ओघम्मि छण्णोक-  
सायाणं' इत्यादि वाक्यों द्वारा उसका समाधान किया है। उनके इस समाधानका भाव यह है कि

§ ६६५. सत्तमाए पुढवीए भिच्छत्त०-वारसक०-भय-दुगुंछ० उक्क०भंगो । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणता०चउक्क०-सत्तणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अजह० सव्वद्धा ।

§ ६६६. तिरिक्ख० भिच्छत्त०-वारसक०-भय-दुगुंछ० ज० अज० सव्वद्धा ।

चूणिसूत्र, वपदेवकी लिखी हुई उच्चारणा और वीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई उच्चारणा इनमेंसे प्रारम्भकी दो पौथियोंमें ओघसे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त निबद्ध है किन्तु वीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें ओघसे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय निबद्ध है और यहां ओघके अनुसार कथन किया जा रहा है, अतएव द्वितीयादि नरकोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके कालको ओघके समान कहनेमें कोई बाधा नहीं आती है। अब प्रश्न यह होता है कि आखिर इस मतभेदका कारण क्या है ? इसका यह समाधान है कि चूणिसूत्र और वपदेवके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल निषेकोकी प्रधानतासे कहा है और वीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल कालकी प्रधानतासे कहा है, अतः इस कथनमें मतभेद न जानकर विवक्षाभेद जानना चाहिये जिसका विस्तृत खुलासा पहले कर आये हैं। विभंगज्ञानमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग जो मिथ्यात्वके समान कहा है सो इसका कारण यह है कि विभंगज्ञानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती अतः जो उपरिम प्रवेयकका देव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहांसे च्युत होता है उसके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है। पर ऐसे जीव संख्यात ही होंगे और यदि लगातार हों तो संख्यात समय तक ही होंगे, क्योंकि पर्याप्त मनुष्य संख्यात हैं। अतः विभंगज्ञानमें मिथ्यात्वके समान अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ६६५. सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साका भंग उत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवालोकाल सर्वदा है।

**विशेषार्थ**—सातवें नरकमें एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व, वारह कषाय भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण नाना जीव क्रमशः इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त हो तो उस सब कालका जोड़ असंख्यात आवलिप्रमाण होता है जो असंख्यात आवलिचं पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होती हैं। सातवें नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भी इतना ही है अतः यहां उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके कालको इनको उत्कृष्ट स्थितिके कालके समान कहा। किन्तु सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अब यदि आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण नाना जीव क्रमशः इनकी जघन्य स्थितिको प्राप्त हों तो उस सब कालका जोड़ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा, अतः यहां उक्त छह प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६६६. तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य

सेसपयडीणं ज० अज० पंचि०तिरिक्खभंगो । एवं काउ० । किण्हणील्लेस्साणमेवं  
 चेव । णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । असंजद० तिरिक्खभंगो । णवरि मिच्छ-  
 त्तस्स सम्मत्तभंगो । ओरालियमिस्स० तिरिक्खोयं । णवरि अणंताणु०चउक्क० ज०  
 अज० सव्वद्धा । पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणीक० ज० ज०  
 एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० ज०  
 एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा । एवं सव्वविगल्लिदिय-  
 पंचिदियअपज्ज०—बादरपुढविपज्ज०—बादरआउपज्ज०—बादरतेउपज्ज०—बादरवाउपज्ज०-  
 बादरवणफ्फदिपचेयपज्ज०-तसअपज्जचे त्ति । णवरि पंचकाय-बादरपज्ज० मिच्छ०  
 सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो ।

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-  
 विभक्तिवाले जीवोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । इसी प्रकार कापोतलेश्यावाले जीवोंके  
 जानना चाहिए । कृष्ण और नीललेश्यावाले जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । असंयतोंमें तिर्यचोंके समान भंग  
 है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिध्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । औदारिकमिश्रकाय-  
 योगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी  
 चतुष्केकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाल्लोंका काल सर्वदा है । पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्या-  
 प्तकोंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाल्लोंका जघन्य काल  
 एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्ति-  
 वाल्लोंका काल सर्वदा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाल्लोंका जघन्य  
 काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । तथा अजघन्य  
 स्थितिविभक्तिवाल्लोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब विकलेन्द्रिय पंचेन्द्रियअपर्याप्त, बादर  
 पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त,  
 बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि पांचों स्थावरकाय बादर पर्याप्त जीवोंमें मिध्यात्व, सोलहकषाय, भय और  
 जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पर्योपमके  
 असंख्यातर्वे भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंका प्रमाण अनन्त है, अतः उनमें कोई न कोई जीव निरन्तर  
 मिध्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिको प्राप्त होते रहते हैं,  
 अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा । अब शेष रहीं  
 सात नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये तेरह प्रकृतियां, सो  
 सामान्य तिर्यचोंकी अपेक्षा सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर इनकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके ही  
 प्राप्त होती है और इन सबकी अजघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके सर्वदा पाई जाती है, अतः  
 इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान कहा । किन्तु सम्यग्मि-  
 मध्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सामान्यकी अपेक्षा भी आवल्लिके असंख्यातर्वे भागप्रमाण  
 है और पंचेन्द्र तिर्यचोंके भी इतना ही है अतः सामान्य तिर्यचोंके इससे अधिक नहीं प्राप्त हो  
 सकता है, क्योंकि सम्यग्मिध्यात्वकी ओष जघन्य स्थिति सर्वत्र वनजाती है, अतः सामान्य

§ ६६७. मणुस० मिच्छ० सम्म० सोलसक० तिग्णिवेद० जह० ज० एगस० ।  
 उक्क० संखेज्जा समया अज० सव्वद्धा । सम्मामि० छण्णोक्क० ओघं । मणुसपज्ज०  
 एवं चेव, णवरि सम्मामि० सम्मत्तमंगो । इत्थिवेद० छण्णोक्क० मंगो । मणुसिणी०

तिर्यचोके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यचोके समान कहा । कापोत-  
 लेश्यामें उक्त सब व्यवस्था बन जाती है अतः कापोतलेश्याके कथनको सामान्य तिर्यचोके समान  
 कहा । यही बात कृष्ण और नीललेश्याकी है । किन्तु कृष्ण और नील लेश्यावालोंमें कृतकृत्यवेदक  
 सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं अतः इनमें सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर  
 आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये इन दोनों लेश्याओंमें सम्यक्त्वकी जघन्य और  
 अजघन्य स्थितिके कालको सम्यग्मिध्यात्वके समान कहा । असंयतोके भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य  
 और अजघन्य स्थितिका काल सामान्य तिर्यचोके समान बन जाता है, क्योंकि इनका प्रमाण भी  
 अनन्त है । किन्तु मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है । वात यह है कि असंयत  
 मनुष्य भी होते हैं और इस प्रकार असंयतोके मिध्यात्वकी ओघ जघन्य स्थिति भी बन जाती है,  
 अतः असंयतोके मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात  
 समय कहा जोकि सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालके समान है ।  
 औदारिकमिश्रकाययोगियोंके भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सामान्य  
 तिर्यचोके समान बन जाता है, क्योंकि इनका प्रमाण अनन्त है । परन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी  
 जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करते अतः इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी ओघ  
 जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति ही प्राप्त होती है और इसलिये इनमें  
 इसका काल सर्वदा बन जाता है यही सबब है कि औदारिकमिश्रकाययोगीमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
 जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा । पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोमें जो एक  
 जीवकी अपेक्षा मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल दो  
 समय तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है, नाना जीवोंकी  
 अपेक्षा निरन्तर होनेवाले उस कालको यदि जोड़ा जाय तो वह आबलिके असंख्यातत्वं भागसे  
 अधिक नहीं होता है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आबलीके  
 असंख्यातत्वं भाग प्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार जो सब विकलत्रय आदि  
 मार्गणाएँ बतलाई हैं उनमें घटित कर लेना चाहिये । किन्तु पांचों स्थावर काय बादर पर्याप्त  
 जीवोंमें एक जीवकी अपेक्षा मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका  
 उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अब यदि इसे आबलिके असंख्यातत्वं भागसे गुणित कर दिया जाय  
 तो पर्यके असंख्यातत्वं भागप्रमाण काल प्राप्त होता है अतः पांचों स्थावर काय बादर पर्याप्त  
 जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल पर्यके असंख्यातत्वं भाग प्रमाण कहा ।  
 शेष कथन सुगम है ।

§ ६६७. मनुष्योंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कषाय और तीन वेदकी जघन्य स्थिति-  
 विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य  
 स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । सम्यग्मिध्यात्व और छह नोकपार्योंकी जघन्य और  
 अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान है । मनुष्य पर्याप्तिकोमें इसी प्रकार  
 जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिध्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । तथा  
 स्त्रीवेदका भंग छह नोकपार्योंके समान है । मनुष्यनियोमें सामान्य मनुष्योके समान भंग है । किन्तु

मणुसभंगो । एवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । पुरिस० णवुंस० छण्णोकसायभंगो । मणुसअपज्ज० मिच्छ० सम्म० सम्मामि० सोलसक० भयंदुगुद्ध० जह० ज० एगस० । उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० जह० एगस० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सत्तणोक० जह० ज० एगस० । उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० जह० अंतोपु० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । तथा पुरुषवेद और नपुंसक वेदका भंग छह नोकषायोंके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—सामान्य मनुष्योंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कषाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति कहते समय पर्याप्त मनुष्योंकी मुख्यता है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी यही बात है, अतः इनके कालको ओघके समान कहा क्योंकि ओघमें जो छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको बतलाया है वह पर्याप्त मनुष्योंके ही सम्भव है । किन्तु सामान्य मनुष्योंके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल लब्धपर्याप्तक मनुष्योंकी प्रधानतासे कहा है, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके भी सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सम्भव है और इसलिये सामान्य मनुष्योंके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है । उपर्युक्त सब कथन मनुष्य पर्याप्त जीवोंके भी बन जाता है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके कथनमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त जीवोंका प्रमाण संख्यात ही है अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वके समान संख्यात समय ही होगा । तथा इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी कुछ विशेषता है, क्योंकि इनके स्त्रीवेदका स्वोदयसे क्षय नहीं होता अतः जिस प्रकार यहाँ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है उसी प्रकार यहाँ स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये । सामान्य मनुष्योंके समान ही मनुष्यनियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व, पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मनुष्यनियोंकी संख्या भी संख्यात है, अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान संख्यात समय ही होगा । तथा पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान होगा, क्योंकि मनुष्यनियोंके इन दोनों वेदोंका स्वोदयसे क्षय नहीं होता है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका

§ ६६८. देवाणं पारगभंगो । एवं भवण०-वाण०, णवरि सम्म० सम्मामि-  
 च्छत्तभंगो । अणुदिसादि जाव अवाइद ति चउवीस-पयडीणं ज० ज० एगसमओ ।  
 उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । अणंताणु० ओधं । सव्वद्ध० सव्वपय० जह०  
 द्विदि० जह० एगस० उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा एवं परिहार० ।  
 एवं संजद-सामाइयखेदो०-खइयसम्मादिद्वि ति । णवरि छण्णोक्कसाय० ओधं ।

उत्कृष्ट काल भी एक समय ही प्राप्त होता है अतः इनके नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और सांत्तर मार्गणा होनेके कारण उत्कृष्ट काल पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है । तथा इनके एक जीवकी अपेक्षा सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थिति कमसे कम अंतर्मुहूर्त काल तक पाई जाती है इसलिये सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा शेष कथन पूर्वोक्त प्रकृतियोंके समान ही है ।

§ ६६८. देवोके नारकियोंके समान भंग है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोमे चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल ओषके समान है । सर्वार्थसिद्धिके देवोंमे सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार परिहार विशुद्धिसंयतोके जानना । तथा इसी प्रकार संयत, सामायिक-संयत, खेदोपस्थापना संयत, और चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे छह नोकषायोंकी अपेक्षा काल ओषके समान ।

विशेषार्थ—देवोमे सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण, अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा तथा सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओषके समान बन जाता है इसलिये इनके कथनको नारकियोंके समान कहा । भवनवासी और व्यन्तरोंमे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते इसलिये इनमे सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका कुल काल सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । उक्त दोनों प्रकारके देवोमे इस विशेषताको छोड़कर शेष सब कथन सामान्य देवोके समान है । अनुदिश आदिमे प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति भवके अन्तिम समयमें होती है और ये जीव मरकर मनुष्य पर्याप्तक्रमे ही उत्पन्न होते हैं अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । तथा यहां सम्यक्त्व प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति कृत-कृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके प्राप्त होती है अतः इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होता है, क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि संख्यात ही होते हैं । पर यहां अनन्तानुबन्धीकी क्रमशः विसयोजना करनेवाले जीव असंख्यात हैं अतः इसकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओषके समान बन जाता है । सर्वार्थसिद्धिमे देवोका प्रमाण संख्यात ही है अतः वहां सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होगा । शेष कथन सुगम है । सर्वार्थसिद्धिके समान परिहार विशुद्धि संयतोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है क्योंकि उनका



§ ६६६, एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० सव्वदा । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिदिय-अपज्जत्तभंगो । एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढवि०-अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-त्राउ०बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्तात्ति । मदिमुदअण्णा०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णीसु एवं चेव, णवरि सत्तणोक० जह० तिरिवखोघं ।

प्रमाण भी संख्यात है । तथा संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है, क्योंकि इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनतीयकी क्षणआदिके समय होती है और ये जीव संख्यात ही होते हैं । किन्तु इन संयत आदिके छह नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान है क्योंकि इनके क्षणक्षणमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है ।

§ ६६६, एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंको जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, जीवोंके जानना चाहिये । मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालेका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंका प्रमाण अनन्त है इसलिये इनमें मिथ्यात्व आदि छन्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा बन जाता है । तथा सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव स्वरूप हैं अतः एकेन्द्रियोंमें भी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालको पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान कहा । आगे जो पृथिवी आदिक मार्गाणाँ गिनाई हैं उनमें कईका प्रमाण तो अनन्त है और कईका प्रमाण असंख्यात होते हुए भी बहुत अधिक है अतः इनमें भी एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल बन जाता है । यही बात मत्यज्ञानी आदि मार्गाणाओंकी है किन्तु इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है । बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा इनकी जघन्य स्थितिका काल

§ ६७०. वेउच्चियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सोलसक०-भयदुगुंढ० ज० ज० एगस० । उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० अंतोमु० । उक्क० पल्लिदो० असंखे०-भागो । णवरि सम्म० अज० ज० एयस० । सम्मामि० सत्तणोक० जह० पढमपु-दविभंगो । अज० अणुक्कससभंगो ।

§ ६७१. आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदेत्ति उक्क-ससभंगो । णवरि अवगद० छण्णोक० जह० ओघं । कम्मइय० एइंदियभंगो, णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० ज० ओघं । अज० अणुक्क०-भंगो । एवमणाहारीणं ।

एक समय है अथ यदि इसे आवलिके असंख्यातवें भागसे गुणा किया जाय तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः इन मार्गणाओंमें सात नोकपायोकी जघन्य स्थितिके कालको सामान्य तिर्यचोंके समान कहा, क्योंकि तिर्यचोंके भी इतना ही काल प्राप्त होता है ।

§ ६७२. वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोकें जघन्य काल एक समय है । सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालोकें भंग पहली पृथिवीके समान है तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवालोकें भंग अनुत्कृष्टके समान है ।

**विशेषार्थ**—जब यथायोग्य मनुष्य संयत जीव मरकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होते हैं तब उनके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति पाई जाती है पर ऐसे जीवोंका प्रमाण संख्यातसे अधिक नहीं हो सकता अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । पर यह जघन्य स्थिति अन्तिम समयमें होती है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा, क्योंकि वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है इसलिये इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । यही बात सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके संबन्धमें भी जानना चाहिये । किन्तु जिस कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थिति शेष रहनेपर वैक्रियिकमिश्रकाययोगकी प्राप्ति हुई है उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है । पहली पृथिवीमें सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी घटित हो जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके कालको पहली पृथिवीके समान कहा । तथा इन आठ प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका काल अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है वह स्पष्ट ही है ।

§ ६७३. आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगत वेदी, सूक्ष्म सांपरायिकसंयत और यथाख्यात संयतोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपगत वेदमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालोकें काल ओघके समान है । कर्मणकाययोगियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालोकें काल ओघके समान है । तथा अजघन्यस्थितिबिभक्तिवालोकें भंग अनुत्कृष्ट

§ ६७२. आभिणि० सुद० ओहि० ओघं, णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । एव-  
मोहिदंसण-सम्माइट्टि त्ति । मणपज्ज० संजदभंगो । णवरि इत्थि० णवुंसं ज्जणो-  
कसायभंगो । संजदासंजद०-वेदय० अणुदिसभंगो । उवसम० चउवीसपयडी० ज०  
ज० एगसमओ । उक्क० संखेज्जा समया । अज० अणुक्क० भंगो । अणताणु० चउक्क०  
उक्क० भंगो । सम्मामि० सव्वपय० जह० ज० एगस० । उक्क० संखेज्जा समया । अज०  
अणुक्क० भंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० ज० ज० एगस० । उक्क० आवलि०  
असंखे० भागो । सासण० सव्वपयडी० ज० ज० एगसमओ । उक्क० संखेज्जा समया ।  
अज० ज० एगस० । उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं । सव्वपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमंतरं केव-  
चिरं कालादो होदि ।

§ ६७३. सुगममेदं ।

❀ जहणणेण एगसमओ ।

के समान है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६७२. आभिनिबोधक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधि ज्ञानियोंमें ओषके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । इसी प्रकार अवधि दर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंमें संयतोके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भंग छद्म नोकषायोंके समान है । संयतासयत और वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अनुदिशके समान भंग है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग उत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगमका अधिकार है । सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ६७३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अन्तर काल एक समय है ।

§ ६७४. कुदो ? उक्कस्सद्विदिसंतकम्मोणच्चिदसव्वजीवेसु अणुक्कस्सद्विदिसंत-  
कम्मोण एगसमयमच्चिय तदियसपयमिह उक्कस्सद्विदिवधेण परिणदेसु उक्कस्सद्विदीए  
एगसमयंतखलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदि भागो ।

६७५. कुदो ? एक्कस्से द्विदीए उक्कस्सद्विदिवंधकालो जदि अंतोमुहुत्तमेत्तो  
लब्भदि तो संखेज्जसागरोवमकोडाकोडीमेत्तद्विदीणं किं लभामो त्ति पमाणेण फल्लु-  
ण्णिदिच्छाए ओषद्विदाए अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तरकालुवलंभादो । एवं  
जइवसहपरुविदत्तुण्णिमुत्तं देसामासियं परुविय संपहि तेण छ्विदत्थस्सुच्चारणाइरिय-  
परुविदवक्खवाणं भणिस्सामो ।

§ ६७६. अंतरं दुविहं जहण्णमुक्कस्सं च । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिह्-  
देसो ओषेण आदेसेण य । तत्थ ओषेण सव्वपयडीणमुक्कस्संतरं के० ? जह० एगस० ।  
उक्क० अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । अणुक्क० णत्थि अंतरं । एवं सत्तसु पुहवीसु, सव्व-  
तिरिक्ख०-मणुसतिय-सव्वदेव-सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छकाय०-पंच-  
मण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालियमिस्स०-वेउच्चिय०-तिण्णवेद-वच्चारि-क०-म-

§ ६७४. शंका—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मरूपसे स्थित सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म  
रूपसे एक समय तक रह कर तीसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिवन्धरूपसे परिणत होने पर उत्कृष्ट  
स्थितिका एक समय प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

❀ उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६७५ शंका—उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—एक स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिवन्धकाल यदि अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तो  
संख्यात कोडाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितियोंका कितना प्राप्त होगा, इस प्रकार फल राशिसे इच्छा  
राशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें प्रमाणांशिका भाग देनेपर अंगुलके असंख्यातवें  
भागप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा कहे गये देशामर्षक  
चूर्णिसूत्रका कथन करके अब उसके द्वारा सूचित होने वाले अर्थका जो उच्चारणाचार्यने व्याख्या  
किया है उसे कहते हैं—

§ ६७६. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंगुलके  
असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार  
ज्ञातों पृथिवियोंके नारकी, सब तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सब देव, सब  
एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, छहों स्थावरकाय, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी,  
काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कपायवाले,

दिसुदअण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-पणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो-  
परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-छलेस्स०-भवसि०-  
अभवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-मिच्छा०-सण्णि०-असण्णि०-आहारए त्ति ।

§ ६७७. मणुसअपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० ज० एगस० । उक्क० अंगुलस्स  
असंखेज्जदि० भागो । अणुक्क० ज० एगस० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवं  
सासण० सम्माभि०दिट्ठि त्ति । वेउव्वियमिस्स० सव्वपयडी० उक्क० ओघं । अणुक्क०  
ज० एगस० । उक्क० वारस० मुहुत्ता । आहार०-आहारमिस्स० उक्क० ओघं ।  
अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । कम्मइय० सम्म०.सम्माभि० उक्क० ओघं ।

मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत,  
सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनवाले,  
अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहो लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
ज्ञाधिकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—यहां पर सब प्रकृतियोंको उत्कृष्ट स्थितिका जो जघन्य अन्तरकाल एक समय  
बतलाया है सो स्पष्ट ही है, किन्तु उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाते  
हुए उसका वीरसेन स्वामीने जो खुलासा किया है उसका भाव यह है कि प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट  
बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इस हिसाबसे संख्यात कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण सब स्थितियोंका  
बन्धकाल जोड़ा जाय तो कुल कालका जोड़ अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, क्योंकि  
अन्तर्मुहूर्तसे संख्यात कोड़ाकोड़ी सागरोंके समयोंको गुणित करनेपर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह  
एक अंगुलप्रमाण या अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण न होकर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण  
ही होता है । अब यदि कुछ जीवोंने मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया,  
अनन्तर वे अन्यस्थितिविकल्पके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहें और इतने कालके भीतर  
अन्य कोई भी जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त न हो तो सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर  
काल उक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है । परन्तु मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका  
अन्तरकाल नहीं पाया जाता, क्योंकि अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है ।  
ऊपर सातों पृथिवियोंके नारकी आदि और जितनी मार्गंणाएँ गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था  
बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

§ ६७७. मनुष्य अपयीप्रकोमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्लोप-  
मके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके  
जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोका  
अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोका जघन्य अन्तरकाल एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारहसुहूर्त है । आहारकअययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें  
उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लो  
का जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । कर्मण्यकाययोगियोंमें  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोका अन्तरकाल ओघके समान है ।  
तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सेसं ओघं । एवमणाहारीणं ।

§ ६७८. अवगद० चउवीसपयडी० उक्क० ओघं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । णवरि दंसणतिय०-अट्टकसा०-अट्टणोक्क० वासपुघत्तं ।

अन्तर्मुहूर्त है । शेष कथन ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारकोके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—लघ्न्यपर्याप्त मनुष्य सान्तर मार्गणा है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातर्वे भागप्रमाण कहा, क्योंकि इस मार्गणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल जिस प्रकार ओघमे घटित कर आये है उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तरकाल लघ्न्यपर्याप्त मनुष्योंके समान है, अतः इनमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका अन्तरकाल लघ्न्यपर्याप्त मनुष्योंके समान कहा । वैकिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कहा । आहारककाययोग और आहारक-मिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । शेष सब कथन सुगम है । कार्मणकाययोगमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरमे छह विशेषता है । शेष कथन आघके समान है । वात यह है कि कार्मणकाययोगमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, अतः इसमें इन दोनो प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका अन्तर भी उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है । यही वात अनाहारक मार्गणामे जानना चाहिये, क्योंकि मोहनीयकी सत्ता रहते हुए कार्मणकाययोगी जीव ही अनाहारक होता है ।

§ ६८०. अपगतवेदबालोंमे चौबीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तिबालोंका अन्तर काल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिभिक्तिबालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल छह महीना है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीनों दर्शनमोहनीय, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है ।

**विशेषार्थ**—मोहनीयकी सत्ता रहते हुए अपगतवेदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है, अतः इसमे अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण कहा । किन्तु उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः अपगतवेदके तीन दर्शनमोहनीय और आठ कषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होगा । तथा जो नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयसे उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसीके अपगतवेद अवस्थामें आठ नोकषायोंका सत्त्व पाया जाता है पर इनका भी उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः अपगतवेदमे आठ नाकषायोका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होगा । तात्पर्य यह है कि अपगतवेदमे पुरुषवेद और चार संज्वलनोकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण और शेष उन्नीस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६७९. अकसा० आहारभंगो । एवं जहाक्वादसंजदाणं । सुहुम० एवं चेव ।  
णवरि लोसंजल० अणुक्क० उक्क० छम्मासा । उवसम० सव्वपयडी० उक्क० ओर्ध ।  
अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० चउबीस अहोरत्ताणि ।

एवमुक्कस्सओ अंतराणुगमो समत्तो ।

\* एत्तो जहण्णयंतरं ।

६८०. सुगममेदं ।

❀ मिच्छुत्ता-सम्मत्ता-अट्टकसाय-ज्जण्णोकसायाणं जहण्णट्टिदिविहत्ति-  
अंतरं जहण्णेण एगसमत्तो ।

§ ६८१. कुदो ? पुण्विल्लसमए जहण्णट्टिदिं कादूण तदणंतरविदियसमए अंतरिय  
पुणो तदियसमए अण्णेसु जीवेसु जहण्णट्टिदिमुवगएसु एगसमयंतरुवलंभादो ।

§ ६७९. अकषायियोंमें आहारककाययोगियोंके समान भंग है । इसी प्रकार यथाख्यात संयतोंके जानना । सूक्ष्मसांपराधिकसंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है किलोभसंख्यानकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है ।

**विशेषार्थ**—अकषाय अवस्थाके रहते हुए मोहनीयकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता उपशान्त मोह गुणस्थानमें पाई जाती है और इसका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है तथा आहारककाययोगका अन्तरकाल भी इतना ही है, अतः अकषायी जीवोंके कथनको आहारककाययोगियोंके समान कहा । यही बात यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसाम्पराधिक संयतोंके भी यही बात घटित हो जाती है, पर क्षण सूक्ष्मसाम्पराधिक संयतका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है अतः इसमें लोभकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण जानना चाहिये । उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब इसके आगे जघन्य अन्तरानुगमका अधिकार है ।

§ ६८०. यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८१. शंका—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि कुछ जीवोंने पहले समयमें जघन्य स्थिति की । तदनन्तर दूसरे समयमें अन्तराल देकर पुनः तीसरे समयमें अन्य जीव जघन्य स्थितिको प्राप्त हुए इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है ।

❀ उक्कस्सेण छुम्मासा ।

§ ६८२. कुदो ? खवगाणं छुम्मासं भोत्तूण उवरि उक्कस्संतराणुवलंभादो ।

❀ सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहयणद्विदिविहत्तिअंतरं जहयणेण एगसमओ ।

§ ६८३. सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्तो सादिरेगे ।

§ ६८४. कुदो ? कारणाणुरुक्कज्जुवलंभादो । तं जहा-सम्मत्तं पडिवज्जंताण-मुक्कस्संतरं सादिरेगचउवीसमहोरत्ताणि जहा जादाणि तथा एदेसिं मिच्छत्तं गच्छमाणाणं पि उक्कस्संतरं सादिरेगचउवीसअहोरत्तमेत्तं । मिच्छत्तं गंतूणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-त्ताणि उव्वेत्तल्लणंताणं पि एवं चेव उक्कस्संतरं; अण्णहाभावस्स कारणाभावादो । एव-मणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएताणं संजुज्जमाणाणं च सादिरेयचउवीसअहोरत्ततरस्स उक्कस्सस्स कारणं वत्तव्वं । सम्मत्तं पडिवज्जंताणं चउवीसअहोरत्तमेत्तुक्कस्संतरणियमो कुदो ? साभावियादो ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है ।

§ ६८२. शंका—उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि तपकोंके छह महीना अन्तर कालको छोड़कर आगे उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं पाया जाता है ।

❀ सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिभिभक्तिवाल्लोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात है ।

§ ६८४. शंका—उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कारणके अनुरूप कार्य होता है । इसका लुलासा इस प्रकार है—जिस प्रकार सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिनरात है उसी प्रकार मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिनरात है । मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेगना करनेवाले जीवोंका भी इसी प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है, क्योंकि इससे अन्य प्रकार होनेका और कोई कारण नहीं पाया जाता । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले और अनन्तानुबन्धीचतुष्कसे संयुक्त होने वाले जीवोंके साधिक चौबीस दिनरात प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल के कारणका कथन करना चाहिये ।

शंका—सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन-रात प्रमाण होता है यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा नियम है ।



❀ तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं जहणणट्टिदिविहृत्तिअंतरं जहणणेण एगसमअओ ।

§ ६८५. सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सेण वस्सं सादिरियं ।

§ ६८६. कोधजहणणट्टिदीए उक्कस्संतरकालो चत्तारि छम्मासा २४ माणस्स तिण्णिण्णं छम्मासा १८ मायाए दो छम्मासा १२ जेण होदि तेण तिण्हं संजलणाणमुक्कस्संतरकालो वासं सादिरियमिदि ण घडदे, किंतु पुरिसवेद-माणसंजलणाणमेदमंतरं जुज्जदे; तत्थट्टारसमासमेत्तुक्कस्संतरुवलंभादो त्ति ? होदि एसो दोसो जदि सव्वकालमुक्कस्संतराणं चैव संभवो होदि, ण पुण एवं संभवो उक्कस्संतराणमणुवद्धाणं जदि संभवो होदि तो दोण्हं चैय ण तिण्हं चटुण्हं वा । एवं कुदो णव्वदे ? तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं वासं सादिरियमुक्कस्संतरं भण्णमाणसुत्तादो । तेणेदेसिं चटुण्हं कम्माणं दोण्हं छम्मासाणमुव्वरि को वि जिणदिट्ठभावो कालो अहिओ त्ति वत्तव्वं । मायासंजलणाए संपुण्णवेद्धमासा चैव उक्कस्संतरं, तत्थ कथं वासं सादिरियमेत्तंतरं जुज्जदे ? ण, तत्थ वि लोभोदएण दो-तिण्णिआदिवारं खवगसेहिं चडाविदे सादिरियेव-छम्मासमेत्तुक्कस्संतरुवलंभादो । जदि एवं तो माण-माया-लोभाणमेग-दो-तिसंयोगाणं

❀ तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविमक्तिवालोंका जघन्य अन्तर काल एक समय है ।

§ ६८५. यह सूत्र सुगम है ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

§ ६८६. शंका—चूंकि क्रोधकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल चौबीस महीना, मानका अठारह महीना और मायाका बारह महीना होता है इसलिये तीन संज्वलनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष नहीं बनता, किन्तु पुरुषवेद और मान संज्वलनका साधिक एक वर्ष अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंका अठारह महीना प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ?

समाधान—यदि सर्वथा उत्कृष्ट अन्तरकालोंका ही संभव होता तो यह दोष होता परन्तु ऐसा संभव नहीं है । क्योंकि अनुवद्ध रूपसे उत्कृष्ट अन्तरकालोंकी यदि संभावना है तो दोकी ही है, तीन और चार की नहीं ।

शंका—ऐसा किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—तीन संज्वलन और पुरुषवेदके साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर कालको कहनेवाले उक्त सूत्रसे ही यह जाना जाता है । अतः इन चार कर्मोंका एक वर्ष और इसके ऊपर जितना अधिक जिन भगवान्ने देखा हो उतना उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है, ऐसा कहना चाहिये ।

शंका—मायासंज्वलनका पूरा एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तर काल है, अतः उसका साधिक एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तरकाल कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोभके उदयसे दो, तीन आदि बार जीवोंको क्षणभङ्गीपर चढ़ाने पर मायाका भी साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है ।

खवगसेद्विचडणवारसहस्सेहि क्रोधसंजलणस्स संखेज्जसहस्सखमासंतरकालो किण्ण लब्भदे ?  
णं, संखेज्जसहस्संतरकालेसु मेळ्ढिदेसु वि सादिरेयवेळ्ढयासमेत्तपमाणत्तादो । तं कुदो  
णञ्चदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ।

❀ लोभसंजलणस्स जहण्णद्विदिविहत्तिञ्तरं जहण्णेण एगसमयो ।

§ ६८७, सुगममेदं ।

\* उक्कस्सेण छुम्मासा ।

§ ६८८, कुदो ? जस्स कस्स वि कसायस्स उदएण खवगसेद्वि चडिदजीवारं  
लोभस्स जहण्णद्विदिसंतकम्मप्पत्तीदो । ण सेसाणमसो कमां, सोदएणेव खवगसेद्वि  
चडिदारं जहण्णद्विदिसंतकम्मप्पत्तीदो ।

❀ इत्थिणवुंसयवेदाणं जहण्णद्विदि [ विहत्ति ] अंतरं जहण्णेण  
एगसमयो ।

§ ६८९, सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि ।

शंका—यदि ऐसा है तो कभी मान, कभी मान माया और कभी मान, माया लोभके  
उदयसे जीवोंको हजारों बार क्षपकश्रेणीपर चढ़ाते रहनेसे क्रोधसंज्वलनका संख्यात हजार छह महीना-  
प्रमाण अन्तरकाल क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, संख्यात हजार अन्तरकालोंके मिला देने पर भी क्रोधसंज्वलनके उत्कृष्ट  
अन्तरकालका प्रमाण साधिक एक वर्ष ही होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है

❀ लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल  
एक समय है ।

§ ६८७, यह सूत्र सुगम है ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है ।

§ ६८८, शंका—उत्कृष्ट अन्तर छह महीना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिस किसी भी कषायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवोंके  
लोभके जघन्य स्थिति सत्कर्मकी उत्पत्ति हो जाती है । परन्तु शेष कषायोंका यह क्रम नहीं है,  
क्योंकि, शेष कषायोंकी अपेक्षा स्वोदयसे ही क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवोंके जघन्य स्थिति सत्कर्मकी  
उत्पत्ति होती है ।

❀ स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८९, यह सूत्र सुगम है ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है ।

§ ६९०. कुदो, अप्पसत्थवेदाणमुदएण खवगसेहिं चडमाणजीवाणं पाएण संभवा-  
भावादो ।

§ ६९०. शंका—उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष क्यौं है ?

समाधान—क्यौंकि अप्रशस्त वेदोके उदयसे चपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव प्रायः नहीं पाये जाते हैं ।

**विशेषार्थ**—दर्शनमोहनीयकी चपणाके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी, तथा चारित्र मोहनीयकी चपणाके समय आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति नियमसे होती है और दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयकी चपणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण कहा । यद्यपि दर्शनमोहनीयकी चपणाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी भी जघन्य स्थिति होती है पर यह उद्वेलना प्रकृति है, अतः उद्वेलनाके समय भी इसकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसका अन्तरकाल अलगसे कहा है । ऐसा नियम है कि कोई भी जीव यदि सम्यक्त्वको प्राप्त न हो तो साधिक चौबीस दिनरात तक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होगा । तत्पश्चात् कोई न कोई जीव सम्यक्त्वको अवश्य ही प्राप्त होगा । इस परसे निम्न चार बातें फलित होती हैं ( १ ) सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वको न प्राप्त हों तो साधिक चौबीस दिन तक नहीं प्राप्त होंगे । इसके बाद कोई न कोई सम्यग्दृष्टि जीव अवश्य ही मिथ्यादृष्टि हो जायगा । ( २ ) यदि कोई भी जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ करेंगे । ( ३ ) यदि कोई भी जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करेगा । ( ४ ) जिन जीवोंने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है वे यदि मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उससे संयुक्त न हों तो अधिकसे अधिक साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं होंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करेगा । इस कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है यह तो स्पष्ट ही है । तथा संव्वलन क्रोध, संव्वलन मान, संव्वलन माया और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष बतलाया है सो उसका खुलासा इस प्रकार है—जो भी जीव चपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके लोभका उदय तो अवश्य ही होता है, शेष तीनका उदय हो और न भी हो । जो मायाके उदयसे चपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु शेष दोका उदय नहीं होता । जो जीव मानके उदयसे चपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मान, माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु क्रोधका उदय नहीं होता । तथा जो जीव क्रोधके उदयसे चपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके क्रोधादि चारोंका उदय अवश्य होता है । अब यदि पहले छह महीनामें केवल लोभके उदय वाले जीवोंको, दूसरे छह महीनामें माया और लोभके उदयवाले जीवोंको, तीसरे छह महीनामें मान, माया और लोभके उदयवाले जीवोंको और चौथे छह महीनामें चारों कषायोंके उदयवाले जीवोंको चपकश्रेणी पर चढ़ाया जाय तो क्रमसे लोभकी जघन्य स्थितिका छह महीना उत्कृष्ट अन्तर मायाकी जघन्य स्थितिका एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर, मानकी जघन्य स्थितिका डेढ़ वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर और क्रोधकी जघन्य स्थितिका दो वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अतएव

\* णिरयगईए सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णद्विदि [ विहत्ति ] अंतरं जहण्णेण एगसमओ ।

§ ६६१. सुगममेदं ।

\* उक्कस्सं चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे ।

§ ६६२. एदं पि सुगमं; ओघम्मि परुविदत्तादो । णवरि ओघम्मि उतंतरादो एदेणंतरेण सविसेसेण होदव्वं; एगगइमस्सिदूणं द्विदस्स चउगइमल्लीणंतरेण सह समाणत्तविरोहादो ।

\* सेसाणि जहा उदीरणा तहा एोदव्वाणि ।

§ ६९३. सेसाणि पयडिअंतराणि जहा उदीरणाए एदासिं पयडीणं परुविदाणि तहा परुवेदव्वं । संपहि जइवसहमुहविणिग्गयचुण्णिमुत्तस्स देसामासियस्स अत्थपरुवणं काऊण तेण सूचिदत्थस्स परुवणद्वं लिहिदुच्चारणं भणिस्सामो ।

§ ६९४. जहण्णंतराणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ

क्रोध, मान और माया संबलनकी जघन्य स्थितिका जो उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है वह नहीं बन सकता है यह एक शंका है जिसका वीरसेन स्वामीने प्रारम्भमे उल्लेख करके उसका इस प्रकारसे समाधान किया है । वीरसेन स्वामीका कहना है कि इस प्रकार छह छह महीनाके अन्तरकाल लगातार नहीं प्राप्त होते हैं । कदाचित् यदि प्राप्त भी हुए तो दो ही अन्तरकाल प्राप्त हो सकते हैं । दो अन्तरकालोके बाद तीसरे और चौथे अन्तरकालका प्राप्त होना तो किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है । यदि ऐसा न माना जाय तो चूर्णिसूत्रकारने जो तीन संबलनोंका साधिक एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है वह नहीं बन सकता है ।

❀ नरकगतिमें सम्यग्भिष्यत्वात् और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ६६१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है ।

§ ६६२. यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि इसका ओघ परूपणाके समय कथन कर आये हैं । किन्तु इतना विशेष है कि जो अन्तर ओघमे कहा है उससे यह अन्तर ऊँच अधिक होना चाहिये, क्योंकि एक गतिके आश्रयसे जो अन्तर स्थित है उसकी चार गतिसे संबन्ध रखनेवाले अन्तरके साथ समानता माननेमें विरोध आता है ।

❀ शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल, जिस प्रकार उदीरणामें अन्तर कहा है उस प्रकार जानना चाहिये ।

§ ६६३. पहले जो पाँच प्रकृतियों गिना आये हैं उन्हें छोड़कर शेष प्रकृतियोंका जिस प्रकार उदीरणामें अन्तरकाल कहा है उस प्रकार उनका अन्तरकाल जानना चाहिये । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके मुखसे निकले हुए देशामर्पक चूर्णिसूत्रके अर्थका कथन करके अब उससे सूचित होनेवाले अर्थका कथन करनेके लिये उसके ऊपर लिखी गई उच्चारणको कहते हैं ।

§ ६६४. जघन्य अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और

ओषेण मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्टकसायट-उण्णोक० ६-लोभसंज० ज० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । अज० गत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० गत्थि अंतरं । इत्थि०-णवुंस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० गत्थि अंतरं । तिण्णिसंज०-पुरिस० जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० गत्थि अंतरं । एवं मणुस-मणुसपज्ज०-पंचिं०-पंचिं०-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरा-लि०-चक्खु०-अचक्खु० सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि ति । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जह० उक्क० छम्मासा ।

§ ६९५. आदे० णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० उक्क० भंगो । सम्मत्त० ज० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० गत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० जह० एगस० । उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० गत्थि अंतरं । एवं पढमाए पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज० । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचिं०तिरि०

आदेशनिर्देश । उनमेसे ओषकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय, छह नोकषाय और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भन्य, संधी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है ।

§ ६९५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यक और पंचेन्द्रिय तिर्यक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान

जोणिणी-भ्रवण०-वाण०-जोदिसि०-वेडव्विय० जोगे ति ।

§ ६६६. तिरिक्कव० मिळ्ळत्त-वारसक्क०-भय-दुगु० ज० अज० पाल्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० पढमपुढवीभंगो । सत्तणोक्क० एवं चेव । पंचिं०तिरि०-अपज्ज० पंचिं०तिरिक्कवजोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्क० अपज्जत्तुक्कसभंगो । एवं सव्वविगल्लिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-तसअपज्जचे ति ।

है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतला आये हैं तथा यह भी बतला आये हैं कि इनकी अनुकृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता । इसी प्रकार यहां भी मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरकालके विषयमें जानना चाहिये । कारण जो उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिके अन्तरके समय बतला आये हैं वे ही यहां जानना चाहिये । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके अन्तरकालके विषयमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि नरकमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः वहां सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्राप्त होता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिके ही प्राप्त होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात जानना चाहिये । इसका कारण ओघ-प्ररूपणाके समय बतला ही आये हैं । तथा इन छहों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता यह स्पष्ट ही है । मूलमें पहली पृथिवीके नारकी आदिक जो और तीन मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह सब व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा है । द्वितीयादि पृथिवियोंमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं अतः वहां सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति सम्भव न होकर आदेश जघन्य स्थिति पाई जाती है जो उद्वेगनाके समय सम्भव है और उद्वेगनाका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है अतः यहां सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा । यहां इतनी ही विशेषता है शेष सब कथन सामान्य नारकियोंके समान है । मूलमें जो पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिमती आदि मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें दूसरी पृथिवीके समान व्यवस्था बन जाती है, इसलिये उनके कथनको दूसरी पृथिवीके समान कहा ।

§ ६६६. तिर्यंचोमें मिथ्यात्व वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिभिक्तवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग पहली पृथिवीके समान है । सात नोकषायोंका भंग भी इसी प्रकार जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तिर्यंचोका प्रमाण अनन्त है । उनमें मिथ्यात्व, वाहर कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं अतः इनका अन्तर काल नहीं है । तिर्यंचोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वके समय, सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य

§ ६६७. मणुसिणीसु सम्मामि०-अणंताणु०चउक० ओषं । सेस० ज० ज० एगस०, उक० वासपुधत् । अज० पत्थि अंतरं । मणुसअपज्ज० छ्वीसपयडीणं उक्कस्सभंगो । सम्म०-सम्मामि० जह० अज० जह० एयसमओ, उक० पल्लिदो० असंखे०भागो ।

§ ६९८. देवाणं णारगभंगो । एवं सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । अणुहिसादि जाव स्ववट्ठा त्ति एवं चेव । णवरि सम्म०-अणंताणु०चउक० जह० ज०

स्थिति उद्वेलनाके समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके समय पाई जाती है जिनका अन्तरकाल पहले नरकके समान यहां भी बन जाता है, अतः इनके भंगको पहली पृथिवीके समान कहा तथा सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति, जो एकेन्द्रिय स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको बांधकर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए हैं उनके, प्रतिपन्न प्रकृतिके बन्धकालके अन्तिम समयमें होती है। अब यदि नानाजीवोंकी अपेक्षा इसका अन्तरकाल देखा जाय तो पहली पृथिवीके नारकियोंके समान यहां भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है इसलिये तिर्यंचोंमें सात नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका भंग पहले नरकके समान कहा। पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंके पहले सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर दूसरी पृथिवीके समान कर आये हैं उसी प्रकार यहां पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके कर लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, इसलिये यहां अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी ओष जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये यहां इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है जो कि इनके अनन्तानुबन्धीकी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है। यही कारण है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिके अन्तरको अपने ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा। मूलमें जो सब विकलेन्द्रिय आदि मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी यही व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा।

§ ६९९. मनुष्यनियोंमें सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा अन्तरकाल ओषके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। तथा अजघन्य स्थिति बिभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छत्र्नीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भंग उत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

**विशेषार्थ**—मनुष्यनियोंके दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षणका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण पाया जाता है, अतः इनमें सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीको छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है। मनुष्यअपर्याप्तकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६९८. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इसी प्रकार सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंके जानना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके भी इसी प्रकार

एगस०, उक० वासपुधत्तं पलिदो० संखे० भागो ।

§ ६६६. एहंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० एत्थि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि० पंचि०तिरि०अपज्जत्तभंगो । एवं पुढवि०-वादरपुढवि०-वादर-पुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउ अपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुम-तेउ०-सुहुमतेउ०पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुम-वाउ०पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोदवादरसुहुमपज्जत्ता-पज्जत्त-कम्मइय० अणाहारि ति । णवरि पच्छिमदोपदेसु सम्मत्त० जह० तिरिक्खोघं । सम्म० सम्मामि० अज० अणुक्कस्सभंगो । पंचकाय०वादरपज्ज० पंचि०तिरि०अपज्जत्तभंगो ।

जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमशः वर्षपृथक्त्व और पर्याप्तमके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—अनुदिश आदिमें अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती है अतः इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा । इसी प्रकार सर्वाथिसिद्धिमें अधिकसे अधिक परत्यके संख्यातवें भागप्रमाण काल तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती है इसलिये इनमें एक प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर परत्यके संख्यातवें भागप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ६६६. एकेन्द्रियोमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर काल नहीं है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्ष पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान भंग है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर निगाद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगाद अपर्याप्त, कामरूपाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु अन्तिम दो पदोंमें इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर काल सामान्य तिर्यचोंके समान है और सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुकृष्टके समान है । पांचों स्थावरकाय वादर पर्याप्त जीवोंमें पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान भंग है ।



§ ७००. ओराखियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०चउक्क० एइंदिये-  
भंगो । वेउव्वियमिस्स० सम्मत्त-सम्मामि० ज० देवोघं । सेस० उक्क०भंगो ।

§ ७०१. आहार०-आहारमिस्स० उक्क०भंगो० । एवमकसा०-जहाक्खाद-  
संजदे ति । इत्थि० सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ओघं । मिच्छत्त-सम्मत्त-

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है तथा अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है यह पहले बतला आये हैं उसी प्रकार एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये, इसलिये एकेन्द्रियोंके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है । मूलमें सामान्य पृथिवी आदि जो और मार्गाणाँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिये इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा । किन्तु कार्मण्णकाययोग और अनाहारकोंमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि इनमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति बन जाती है । तदनुसार यहाँ इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है जो सामान्य तिर्यचोंके इस प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके अन्तरके समान है । अतः यहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरको सामान्य तिर्यचोंके समान कहा । तथा इन दोनों मार्गाणाँओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है और यही यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट या अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल है, इसलिये यहाँ इन दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके अन्तरको अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा । पाँचों स्थावरकाय बादर पर्याप्त जीवोमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है, अतः इनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ७००. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान भंग है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिवालोंका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियों का अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है ।

**विशेषार्थ**—औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती है इसलिये इनके उक्त प्रकृतियोंकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जिसका यहाँ अन्तर नहीं पाया जाता । यही बात एकेन्द्रियोंके है । अतः औदारिक-मिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भंगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । सामान्य देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वषपृथक्त्व है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी सम्भव है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भंगको सामान्य देवोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । इसी प्रकार अकपायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । स्त्रीवेदवालोंमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कपाय और नौ

वारसक०-णवणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । एवं णवुंसयवेदानं । पुरिस० मिच्छत्त०-सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु०-उत्तक० ओघं । वारसक०-णवणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेंयं । अज० णत्थि अंतरं । अवगद० मिच्छत्त०-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्टक०-अट्टणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० एवं चेव, विसेसाभावादो । सेसाणं जह० ओघं । अज० अणु-क्क०भंगो ।

§ ७०२. क्रोध० ओघं । णवरि णवक०-छण्णोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेंयं । अज० णत्थि अंतरं । एवं माण-माय० । एवं लोभ० । णवरि लोभसंजल० ओघं ।

नोकपायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व प्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोकान्तर नहीं है । इसी प्रकार नपुंसकवेदवालोंके जानना चाहिये । पुरुषवेदवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्करी अपेक्षा अन्तर काल ओघके समान है । तथा वारह कपाय और नौ नोकपायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोका अन्तर नहीं है । अपगतवेदवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कपाय और आठ नोकपायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोका अन्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोकान्तर ओघके समान है और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोका भंग अनुत्कृष्टके समान है ।

**विशेषार्थ**—दर्शनमोहनीयकी क्षण और चारित्रमोहनीयकी क्षणामे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व वतलाया है, अतः स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा । पुरुषवेदमें ज्ञानकश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिये इसमें वारह कपाय और नौ नोकपायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा । अवगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और आठ कपायोकी जघन्य और अजघन्य स्थिति उपशमश्रेणीकी अपेक्षा पाई जाती है । तथा जो जीव स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षणकश्रेणीपर चढ़ते हैं उनके आठ नोकपायोकी जघन्य और अजघन्य स्थिति पाई जाती है । आठ नोकपायोकी अजघन्य स्थिति अपगतवेदी उपशमश्रेणीवाले जीवोंके भी सम्भव है पर इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः अपगतवेदमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०२. क्रोधकपायवालोंमें अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ कपाय और छः नोकपायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोकान्तर जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मान और मायाकपायवाले जीवोंके जानना चाहिए । लोभकपायवाले जीवोंके भी इसी प्रकार

§ ७०३. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि सम्मत्त-अणंताणु० एइंदिय-भंगो । एवं भिच्छादि०-असण्णि त्ति । विहंग० सम्मामिच्छत्तमोघं । सेसपयडीण-मुक्क०भंगो । णवरि सम्म० सम्मामि०भंगो ।

§ ७०४. आभिणि०-सुद० ओघं । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-सम्मादिट्ठि त्ति । ओहिणाणि०-ओहिदंसणी० एवं चैव । णवरि ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुघत्तं । एवं मणपज्ज० ।

जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि लोभसंज्वलनको अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—यद्यपि क्रोध कषायमें सब प्रकृतियोंका कथन ओघके समान कहा है पर ओघमें अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बतलाया है जो क्रोधमें किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें क्रोधका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष पाया जाता है अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा । मान, माया और लोभमें भी यह व्यवस्था बन जाती है । किन्तु क्षपकश्रेणीमें लोभका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, अतः लोभमें लोभसंज्वलनका अन्तर ओघके समान ही जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०३. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा भंग एकेन्द्रियोंके समान है इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए । विभंगज्ञानियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्टके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें न तो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होता है और न अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना ही होती है अतः इनमें इन प्रकृतियोंके भंगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । विभंगज्ञानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इसमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान और सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०४. आभिनिवाधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानियोंमें ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । इसी प्रकार संयत, सामाधिक-सयत, छेदोपस्थापनासंयत और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें जघन्य स्थितिभिक्कि-वाल्लोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आभिनिवाधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती, अतः यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान कहा । मूलमें संयत आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें उक्तप्रमाण व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको आभिनिवाधिक-ज्ञानी आदिके समान कहा । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें यह व्यवस्था बन तो जाती

§ ७०५. परिहार० मिच्छत्त०-सम्मत्त०-सम्मापि० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । अणंताणु०चउक्क० ओघं । सेसपयडि० उक्क०-भंगो । सुहुम० तेवीसपयडी० ज० अज० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । लोभसंजल० अवगद०भंगो । संजदासंजद० मिच्छत्त-सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० ओघं । सम्मापि० सम्मत्तभंगो । सेसपयडि० उक्क०भंगो । असंजद० तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त०-सम्मत्तं० ओघभंगो ।

§ ७०६. काउ० तिरिक्खोघं । किण्ह०-णील० एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मापिच्छत्तभंगो । तेउ०-पम्म० सम्मापिच्छत्तमोघं । सेसपयडि० संजदासंजदभंगो । अभवसि० छ्वीसपयडी० ओराळियमिस्सभंगो । खइय० एक्कवीसपयडी० ओघं ।

है पर क्षपक श्रेणीमें इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः ओघमे जिनकी जघन्य स्थितिका क्षपकश्रेणीमें वर्षपृथक्त्वसे कम अन्तर सम्भव है उनकी जघन्य स्थितिका यहाँ जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानमे भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०५. परिहारविशुद्धिसंयतोमे मिध्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोमे तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा लोभसंज्वलनका भंग अवगतवेदवालोंके समान है । संयतासंयतोमे मिध्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी स्थिति-विभक्तिवालोंका अन्तर ओघके समान है । सम्यग्मिध्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । असंयतोमें सामान्य तिर्यचों के समान भंग जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे मिध्यात्व और सम्यक्त्वका भंग ओघके समान है ।

विशेषार्थ—परिहारविशुद्धिसंयतमे चार्थिकसम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः यहाँ मिध्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । सूक्ष्मसांपरायमे मिध्यात्व आदि तेईस प्रकृतियोंकी सम्भावना उपशमश्रेणीकी अपेक्षा है और उपशमश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । संयतासंयतोके सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेगना नहीं होती, अतः यहाँ सम्यग्मिध्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान कहा । असंयतके दर्शनमोहनीयकी क्षपणा होती है, अतः यहाँ मिध्यात्व और सम्यक्त्वका भंग ओघके समान कहा ।

§ ७०६. कापोतलेश्यावालोंमे सामान्य तिर्यचोंके समान भंग जानना चाहिये । कृष्ण और नील लेश्यावालोंमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । पीत और पद्मलेश्यावालोंमे सम्यग्मिध्यात्वका अन्तर ओघके समान है तथा शेष प्रकृतियोंका भंग संयतासंयतोके समान है । अभव्योंमे छ्वीस प्रकृतियोंका भंग

वेदय० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०—अणंताणु० चउक्क० आभिणि० भंगो । सेसपयडी० उक्क० भंगो । उवसम० अणंताणु० चउक्क० ज० अज० ज० एगस०, उक्क० चउवीस-महोरत्ताणि सादिरयाणि । सेसपयडी० उक्क० भंगो । सासाण०-सम्माभि० उक्क० भंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ ७०७. भावाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्साणुक्कस्सपदाणं सव्वेसिं को भावो ? ओदइओ; मोहोदएण चिणा तेसिमसंभवादो । ण उवसंतकसाएण वियहिचारो, तत्थ संतस्स मोहणीयस्स उदओ णत्थि चेवे त्ति णियमाभावादो । भाविम्मि भूदोवयारेण तत्थ वि ओदइयभावुवलंभादो । एवं णेदच्चं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ७०८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वपयडिं ज० अज० को भावो ? ओदइओ । कुदो ? शरीरणात्मकमोदएण कम्म-इयवग्गणक्खंघाणं कम्मभावेण परिणाप्पुवलंभादो । एसो अत्थो एत्थ पहाणो त्ति

औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है । द्वायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंका अन्तर ओघके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भंग आभिनित्तोधिकज्ञानियोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है ।

विशेषार्थ—कृष्ण और नीललेख्यामें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता है अतः इनमें सम्यक्त्वके भगको सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा । पीत और पद्म लेख्यामें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ७०७. भावानुगम दो प्रकार हैं—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सभी उत्कृष्ट और अतुत्कृष्ट पदोका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । क्योंकि मोहनीय कर्मके उदयके विना कोई पद नहीं होता है इसलिये सब पदोंमें औदायिक भाव है । यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर उपशान्तकपायके साथ व्यभिचार प्राप्त होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि वहा पर विद्यमान मोहनीयका उदय नहीं ही होता है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि भाविकार्यमें भूत कार्यका उपचार कर देनेसे वहां भी औदायिक भाव पाया जाता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ७०८. अब जघन्य भावानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । औदायिक भाव क्यों है ? क्योंकि शरीर नामकर्मके उदयसे कर्मण वर्गणास्कन्धोंका कर्मरूपसे परिणमन पाया जाता है ।

घेतव्वो ण पुच्चिल्लत्थो, उवयारमवलंबिय अवद्विदत्तादो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

\* सणियासो ।

§ ७०९. उच्चदि त्ति एत्थ पदञ्जभाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तहावगमाणुव-  
वत्तीदो । कः सन्निकर्षः? सन्निकृष्यन्ते प्रकृतयो यस्मिन् स सन्निकर्षो नामाधिकारः ।  
एदमहियारसंभालणसुत्तं ।

\* मिच्छत्तस्स उक्कस्सियाए डिदीए जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-  
सम्माभिच्छत्ताणं सिया कम्मंसिओ सिया अकम्मंसिओ ।

§ ७१०. कुदो ? जदि अणादियमिच्छाइट्ठी सादियमिच्छाइट्ठी वा उव्वेल्लिद-  
सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तसंतकम्मिओ मिच्छत्तस्स उक्कस्सियं द्विदिं बंधदि तो सम्मत्त  
सम्माभिच्छत्ताणमकम्मंसिओ होदि । जदि पुण सादियमिच्छाइट्ठी अणुव्वेल्लिदसम्मत्त-  
सम्माभिच्छत्तसंतकम्मो उक्कस्सियं द्विदिं बंधदि तो संतकम्मंसिओ त्ति दद्वव्वो ।  
संपहि असंतकम्मियम्मि णत्थि सणिकासो; भावस्स अभावेण सह संबंधविरोहादो ।

यह अर्थ यहाँ पर प्रधान है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, पहलेका अर्थ नहीं, क्योंकि वह उपचारका  
आश्रय लेकर अवस्थित है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

❀ अब सन्निकर्षको कहते हैं ।

§ ७०९. 'सणियासो' इद सूत्रमे 'उच्चदि' इस क्रियापदका अध्याहार करना चाहिये,  
अन्यथा सूत्रके अर्थका ज्ञान नहीं होसकता है ।

शंका—सन्निकर्ष किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें प्रकृतियाँ सन्निकृष्ट की जाती हैं अर्थात् जिसमें प्रकृतियोंका उच्छ्रु-  
स्थिति आदिकी अपेक्षा संयोग वतलाया जाता है वह सन्निकर्ष नामका अधिकार है ।

यह सूत्र अधिकारके संहालनेके लिये आया है ।

❀ जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाला होता है और कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके  
सत्कर्मवाला नहीं होता है ।

§ ७१०. शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—यदि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव या जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसत्कर्म  
की उद्वेलना कर दी है ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है तो वह  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाला नहीं होता है । और जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्व सत्कर्मकी उद्वेलना नहीं की है ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको  
बांधता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाला होता है ऐसा जानना चाहिये । जिस  
जीवके कर्मकी सत्ता नहीं होती उसके सन्निकर्ष नहीं होता है, क्योंकि भावका अभावके

तत्थ संतकम्मियस्स सण्णियासपरूणणहमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ जदि कम्मसिओ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७११. कुदो ? मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदीए बद्धाए सम्मत्त-सम्मा मिच्छत्ताण-  
मुक्कस्सट्ठिदीए वेदयसम्मादिट्ठिपढमसमए चेव समुप्पज्जमाणाए उप्पत्तिविरोहादो । ण  
च पढमसमए वेदगसम्माइट्ठिपडिबद्धं कज्जं मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियमिच्छा-  
इट्ठिपडिबद्धं होदि; कज्ज-कारणणियमाभावप्पसंगादो । तदो णियमा अणुक्कस्सा त्ति  
सद्दहेयन्वं ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्त एमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति ।

§ ७१२. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले  
सम्मत्तट्ठिदी सणुक्कस्सं पेक्खिदूण समयूणा दुसमयूणा तिसमयूणा वा ण होदि; सम्मत्तु-  
क्कस्सट्ठिदिधारयवेदगसम्मादिट्ठिविदियसमए तदियसमए वा मिच्छत्तकम्मस्स बंधा-  
भावादो । ण च मिच्छत्तपच्चएण बज्जमाणाणं पयडीणं तेण विणा बंधो अत्थि; अतक-  
ज्जत्तप्पसंगादो । तम्हा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले सम्मत्त-सम्मा मिच्छत्तट्ठिदीए  
सगसणुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणियाए होद्वं । केत्तिएणूणा ? समयूण-

साथ सम्बन्धका विरोध है, अतः सत्कर्मवालोंके सन्निकर्षका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं

❀ यदि वह जीव सत्कर्मवाला होता है तो नियमसे उसके इन दोनोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ७११. क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथम  
समयमे ही होती है, अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय उसकी उत्पत्ति माननेमे विरोध  
आता है । और वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयसे सम्बन्ध रखनेवाला कार्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके साथ सम्बद्ध नहीं होसकता, अन्यथा कार्यकारण नियमके अभावका  
प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवालेके सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर दो समय-  
वाली एक स्थिति पर्यान्त होती है ।

§ ७१२. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम, दो समय  
कम या तीन समय कम नहीं होती है, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक वेदकसम्यग्दृष्टिके  
दूसरे या तीसरे समयमे मिथ्यात्व कर्मका बन्ध नहीं होता है । यदि कहा जाय कि मिथ्यात्वके  
निमित्तसे बंधनेवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बिना भी बन्ध होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि  
ऐसा मानने पर वह मिथ्यात्वका कार्य नहीं होगा । अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त  
कम अवश्य होनी चाहिये ।

वेदगसम्मत्त जहणकालेण मिच्छत्तं गंतुणुक्कस्ससंफिलोसावूरणजहणकालेण च । एवकेण सम्मत्तसंतकम्मिएण मिच्छाइट्ठिणा उक्कस्ससंफिलोसमावूरिय वद्धमिच्छत्तु-  
क्कस्सद्विदिणा सव्वजहणपडिभग्गद्धमच्छिय वेदगसम्मत्तं घेत्तूण कयसम्मत्तुक्कस्स-  
द्विदिणा अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तसम्मत्तुक्कस्सद्विदिं कमेण अधद्विदि-  
गलणाए जहणवेदगसम्मत्तद्धमेणेण ऊणियं करिय मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण-  
कालेणावूरिदुक्कस्ससंफिलोसेण मिच्छत्तु कस्सद्विदीए पवद्धाए एत्तियमेत्तेणेव कालेणुत्तु व-  
लंभादो ।

§ ७१३. पुणो मिच्छत्तस्स समयूणुक्कस्सद्विदिं वंधिय अवद्विदपडिहग्गकालेण  
अधद्विदिगलणाए ऊणं करिय वेदगसम्मत्तं घेत्तूण सम्मत्तुक्कस्सद्विदिं समयूणमुप्पाइय  
अवद्विदसम्मत्तमिच्छत्तद्धाओ कमेण गमिय मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवद्धाए सम्मत्तद्विदी  
सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण समयाहियअंतोमुहुत्तेण ऊणा होदि । एवं दुसमयूणमिच्छ-  
त्तुक्कस्सद्विदिं वंधिय अवद्विदपडिहग्गसम्मत्तमिच्छत्तद्धाओ जहणियाओ कमेण गमिय  
मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवद्धाए सम्मत्तद्विदीए सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण दुसमयाहिय-

**शंका—कमका प्रमाण कितना है ?**

**समाधान—**एक समय कम वेदक सम्यक्त्वका जघन्य काल और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर  
उत्कृष्ट संकलेशको पूर्ण करनेवाला जघन्य काल ये दोनों काल यहाँ कम का प्रमाण है । जिसने  
उत्कृष्ट संकलेशको करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधा है ऐसे किसी एक सम्यक्त्व  
सत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवने मिथ्यात्वसे च्युत होनेमें लगनेवाले सबसे जघन्य काल तक  
मिथ्यात्वमे रह कर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया और वहाँ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको  
किया । अनन्तर वह जीव सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट  
स्थितिको क्रमसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा वेदक सम्यक्त्वके जघन्य काल प्रमाण कम करके  
मिथ्यात्वमें गया और वहाँ उसने सबसे जघन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संकलेशको पूरा करके  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधा इस प्रकार वेदक सम्यक्त्वके पहले समयसे लेकर यहाँ तकका  
काल ही यहाँ कम का प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् इतने कालको सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे  
घटा देने पर जो स्थिति शेष रहे अधिकसे अधिक उतनी अनुत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके समय संभव हैं, इससे और अधिक नहीं ।

§ ७१३. पुनः मिथ्यात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और अवस्थित  
प्रतिभन कालको अधःस्थितिगलनाके द्वारा कम करके अनन्तर वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करके  
और वेदक सम्यक्त्वके पहले समयमें सम्यक्त्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको उत्पन्न करके  
तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको क्रमसे व्यतीत करके जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण कम होती है । इसी प्रकार मिथ्यात्व-  
की दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर तदनन्तर प्रतिभनकाल, सम्यक्त्वकाल और  
मिथ्यात्वकाल इन तीनों अवस्थित जघन्य कालोंको क्रमसे विता कर जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट



अंतोमुहुत्तूणा होदि । एवं ति-चदुसमयादि जावावलयिमुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरादिमूणं करिय णेदव्वं ।

§ ७१४. संपहि आबाधाकंडएणणसम्मत्तट्टिदीए इच्छिज्जमाणेण सव्वजहण्ण-सम्मत्तद्धाए सव्वजहण्णमिच्छत्तद्धाए च ऊणेण आवाहाकंडएण ऊणियं मिच्छत्तट्टिदिं बंधाविय पुणो पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए सम्मत्तुक्कस्सट्टिदिंमंतोमहुत्तूणसत्तरिमेत्तं पेक्खिदूण वट्टमाणसम्मत्तट्टिदी एगाबाहा-कंडएण्णा होदि ।

§ ७१५. संपहि आवाहाकंडयस्स हेट्ठा इच्छिज्जमाणे दोहि अवट्टिदअंतोमुहुत्तोहि ऊणावाहाकंडएण समयाहिण्ण ऊणियं मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं बंधिय अवट्टिदजहण्ण-द्धाओ तिण्णि वि अथट्टिदिगलणाए कमेण गालिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए सम्मत्तट्टिदी सगुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण समयाहियआबाहाकंडएण ऊणा होदि । एव-मेदमत्थपदं चित्तेणावहारिय ओदारेदव्वं जाव णिव्वियप्पा अंतोकोडाकोडिमेत्ता सम्मत्तट्टिदी जादा त्ति । णवरि जत्तिय-जत्तियआवाहाकंडएहि ऊणं सम्मत्तट्टिदि-मिच्छदि तत्तिय-तत्तियमेत्तावाहाकंडयाणि दोहि अवट्टिदजहण्णाद्धाहि परिहीणाणि

स्थितिको देखते हुए दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण कम होती है । इसी प्रकार तीन और चार समयसे लेकर एक आबली, एक मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष, एक महीना, एक ऋतु, एक अयन, एक वर्ष आदिको कम करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति ले आना चाहिये ।

§ ७१४. अब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी एक आबाधा काण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः सबसे कम सम्यक्त्वके कालको और सबसे कम मिथ्यात्वके कालको आबाधाकाण्डकमेसे कम करके जो शेष रहे उतने आबाधाकाण्डकसे कम मिथ्यात्वकी स्थितिको बंधा कर पुनः मिथ्यात्वसे निवृत्त होकर और सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अनन्तर जो मिथ्यात्वमे जा कर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बंधके समय सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए वर्तमान सम्यक्त्वकी स्थिति एक आबाधाकाण्डक कम होती है ।

§ ७१५. अब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय एक आबाधाकाण्डकसे नीचे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः समयाधिक आबाधाकाण्डकमेसे दो अवस्थित अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालको कम करने पर समयाधिक आबाधाकाण्डकका जितना काल शेष रहे उतना कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बंधा कर तदनन्तर तीनों ही अवस्थित जघन्य कालोंको अधःस्थितिगलनाके द्वारा क्रमसे गला कर जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक एक आबाधाकाण्डक काल प्रमाण कम होती है । इस प्रकार इस अर्थपदको अपने चित्तमें धारण करके सम्यक्त्वकी स्थितिको तब तक कम करते जाना चाहिये जब तक निर्विकल्प अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण सम्यक्त्वकी स्थिति प्राप्त हो । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय जहां जितने जितने आबाधाकाण्डकसे कम सम्यक्त्वकी स्थिति इच्छित हो वहां दो अवस्थित जघन्य कालोंको उतने उतने आबाधाकाण्डकमेसे कम करने पर जो काल

उक्कस्सद्विदिम्मि ऊणाणि करिय बंधिदूण ओदारेद्वं । संपहि मिच्छत्तमस्सिदूण हेहा ओदारेदु' ण सक्के उव्वविसुद्धेण मिच्छाइडिणा घादिदसजहण्णाद्विसंतं तिहि अबद्धिदजहण्णाहाहि यूणं सम्मत्तद्विदी पत्ता त्ति ।

§ ७१६. संपहि सम्मत्तसंतकम्मियमिच्छाइडिजीवे धेत्तूणुव्वेण्णणाए मिच्छत्तु-  
क्कस्सद्विदीए सह सम्मत्तहेट्ठिमद्विदीणं सण्णियासो बुच्चदे । तं जहा—तत्थ समया-  
हियउव्वेण्णकंडयमेत्तजीवे अस्सिदूण सण्णियासपरूवणं कस्सामो । एत्थ ताव समयाहिय-  
कंडयमेत्तजीवाणं सम्मत्तद्विदीए दीहसं बुच्चदे—पढमजीवो मिच्छत्ताधुवट्ठिदीदो समुपण्ण-  
सम्मत्ताधुवट्ठिदीए उव्वरि समयूणुक्कीरणद्धाहियसयलेगुव्वेण्णकंडयधारओ विदियजीवो सम-  
यूणुक्कीरणद्धाहियसमयूणुव्वेण्णकंडएण अहियसम्मत्तधुवट्ठिदिधारओ तदियजीवो समयूणु-  
क्कीरणद्धाहियदुसमयूणुव्वेण्णकंडएणभहियसम्मत्तधुवट्ठिदिधारओ चउत्थजीवो समयूणु-  
क्कीरणद्धाहियतिसमयूणुव्वेण्णकंडयभहियसम्मत्तधुवट्ठिदिधारओ पंचमजीवो समयूणु-  
क्कीरणद्धाहियचदुसमयूणुव्वेण्णकंडयभहियसम्मत्तधुवट्ठिदिधारओ एवं णेद्वं जाव समया-  
हियउव्वेण्णकंडयमेत्तजीवा त्ति । तत्थ एदेसु जीवेसु जो पढमजीवो तेणुव्वेण्णएगकंडए

शेष रहे उतना कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इसके आगे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको अपेक्षा सम्यक्त्वकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे और नीचे उतारना शक्य नहीं है क्योंकि घात करने पर जिसके ( संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके योग्य ) मिथ्यात्वकी सबसे जघन्य स्थितिका सत्त्व है ऐसे सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टिने मिथ्यात्वके जघन्य स्थिति सत्त्वकी अपेक्षा तीन अवस्थित जघन्य कालोसे न्यून सम्यक्त्वकी स्थिति प्राप्त कर ली है ।

§ ७१६. अब सम्यक्त्व सत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवका आश्रय लेकर उद्वेलनामें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे नीचेकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहते हैं । जो इस प्रकार है—इस कथनमें पहले एक समय अधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण जीवोका आश्रय लेकर सन्निकर्षका प्ररूपण करेंगे । अतः यहाँ पर पहले एक समय अधिक आवाधाकाण्डकप्रमाण जीवोंके सम्यक्त्वकी स्थितिका दीर्घत्व कहते हैं—मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिसे जो सम्यक्त्वको ध्रुवस्थिति उत्पन्न होती है उसके ऊपर एक समय कम उत्कीरणाकालसे अधिक पूरे उद्वेलनाकाण्डकका धारक प्रथम जीव है । एक समय कम उत्कीरणाकालको एक समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक दूसरा जीव है । एक समय कम उत्कीरणाकालको दो समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक तीसरा जीव है । एक समय कम उत्कीरणाकालको तीन समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक चौथा जीव है । एक समय कम उत्कीरणा कालको चार समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक पांचवां जीव है । इस प्रकार समयाधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण जीव प्राप्त होने तक इसीप्रकार कथन करते जाना चाहिये । अब इन जीवोंमें जो पहला जीव है उसके द्वारा एक उद्वेलनाकाण्डकके घात करने पर सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे एक समय कम सम्यक्त्वकी स्थिति

पादिदे सम्मत्तधुवट्टिदीदो समयूणा सम्मत्तट्टिदी होदि । ताथे चेव मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए बद्धाए अवरो सण्णियासवियप्पो होदि । पुणो तदणंतरविदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए पादिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो दुसमयूणा होदि । ताथे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । पुणो तदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो तिसमयूणा । तत्थ तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । पुणो चउत्थजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो चदुसमयूणा । ताथे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । पंचमजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो पंचहि समएहि ऊणा । एदेण क्रमेण चरिमजीवेणुव्वेल्लकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो समयाहियउव्वेल्लणकंडएणूणा । ताथे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो लब्भदि । एवं पढमवारपरूवणा गदा ।

§ ७१७. एदं परूवणमवहारिय विदिय-तदिय-चउत्थादि जाव पल्लिदोवमस्स असंखे० भागमेत्तवारसु उव्वेल्लणकंडए पादिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं बंधावि यसण्णियासवियप्पा उप्पाएदव्वा । तत्थ चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए पादिदाए सम्मत्तट्टिदी सेसा समयूणुदयावलयमेत्ता होदि । ताथे मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पबद्धाए

प्राप्त होती है । और उसी समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । पुनः तदनन्तर दूसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके घात करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे दो समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । पुनः तीसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे तीन समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है । पुनः चौथे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे चार समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है । पुनः पांचवें जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे पांच समय कम होती है । इसी क्रमसे अन्तिम जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर वहां सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे समयाधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । इस प्रकार प्रथमवार प्ररूणा समाप्त हुई ।

§ ७१७. इस प्रकार इस प्ररूणाको समक कर आगे दूसरी, तीसरी और चौथी बारसे लेकर पर्योपमके असंख्यातवें भागवार उद्वेलनाकाण्डकोंका घात करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न कर लेने चाहिये । उसमे भी अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके घात करनेपर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति एक समय कम उदयावलिप्रमाण प्राप्त होती है । तथा उसी समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष-

अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । दुसमयूणुदयावळियमेत्तसम्मत्तद्विधारएण मिच्छत्तु-  
क्कस्सद्विदीए पवद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । एवं गंतूए दुसमयकालेग-  
सम्मत्तण्णिसेयद्विधारएण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवद्धाए चरिमो सण्णियासवियप्पो  
होदि । एदस्स सुत्तस्स एसा संदिही ।

० ० ०	०२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००

❀ एवचरि चरिमुञ्ज्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊएा ।

§ ७१८. जहा सेसुञ्ज्वेल्लणकंडएसु णाणाजीवे अस्सिदूण गिरंतरद्वाणाणि  
लद्धाणि तथा चरिमुञ्ज्वेल्लणकंडयम्मि गिरतरद्वाणाणि किण्ण लब्धंति ? ण, चरिम-  
जहण्णुञ्ज्वेल्लणकंडयादो कम्मि वि जीवे समयूणादिकमेणूणचरिमुञ्ज्वेल्लणकंडयाणुवल्लंभादो ।  
उञ्ज्वेल्लणकण्डयफालीओ सच्चजीवेसु सरिसाओ किण्ण होंति ? ए, तासिं सरिसत्ते संते  
धुवद्विदीए हेट्ठा सांतरद्वाणुत्तिप्पसंगादो । ण च एवं; चरिमकंडयचरिमफालिं मोत्तूण  
अण्णत्थ गिरंतरक्रमेण सण्णियासपरुवयसुत्तेणेदेण सह विरोहादो । एवं पढमपरुवणा  
समत्ता ।

विकल्प प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्वकी दो समय कम उद्यावलिप्रमाण स्थितिको धारण करने-  
वाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्ध करने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त  
होता है । इसी प्रकार आगे जाकर सम्यक्त्वके एक निषेककी दो समय कालप्रमाण स्थितिको  
धारण करनेवाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्ध करने पर अन्तिम सन्निकर्ष-  
विकल्प प्राप्त होता है । इस सूत्रकी यह संदृष्टि है । ( संदृष्टि मूलमे देखिये । )

किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सन्निकर्षविकल्प अन्तिम उद्वेलेनाकाण्डककी  
अन्तिम फालिसे रहित हैं ।

§ ७१८. शंका—जिस प्रकार शेष उद्वेलेना काण्डकोमे नाना जीवोंकी अपेक्षा सन्निकर्षके निरन्तर  
स्थान प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अन्तिम उद्वेलेनाकाण्डकमे निरन्तर स्थान क्यों नहीं प्राप्त होते हैं ?  
समाधान—नहीं, क्यों कि किसी भी जीवके अन्तिम जघन्य उद्वेलेनाकाण्डकसे एक समय  
कम आदि क्रमसे न्यून अन्य अन्तिम उद्वेलेना काण्डक नहीं उपलब्ध होता है ।

शंका—उद्वेलेना काण्डककी फालियां सब जीवोंमे समान क्यों नहीं होती हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि उनको समान माना जाता है तो ध्रुवस्थितिके नीचे सान्तर  
स्थानों की उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होता है । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर अन्तिम  
काण्डककी अन्तिम फालिको छोड़ कर अन्य सब स्थानोंमे निरन्तर क्रमसे सन्निकर्षका कथन करने-  
वाले इसी सूत्रके साथ विरोध आता है । इस प्रकार प्रथम प्ररूपणा समाप्त हुई।

**विशेषार्थ**—सन्निकर्ष दो या दो से अधिक वस्तुओंके सम्बन्धको कहते हैं। प्रकृतमें मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंका प्रकरण है, जिनके उत्कृष्ट, अनुकृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चार भेद हैं। तदनुसार यहाँ मोहनीयकी किस प्रकृतिकी कौन-सी स्थितिके रहते हुए उससे अन्य किस प्रकृतिके कितने स्थितिविकल्प सम्भव हैं इसका विचार किया गया है। उसमें भी पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कितने स्थितिविकल्प किस प्रकार प्राप्त होते हैं यह बतलाया है। यद्यपि यह सम्भव है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता न हो, क्योंकि जो अनादि मिथ्यादृष्टि है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो सकता है पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। इसी प्रकार जिसने सम्यक्त्वसे च्युत होनेके बाद सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके होने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। पर यहाँ सन्निकर्षका प्रकरण है इसलिये ऐसे जीवका ही ग्रहण करना चाहिये जिसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता हो। अब देखना यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वके कितने स्थितिविकल्प सम्भव हैं। बात यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अपने बन्धके समय मिथ्यादृष्टिके होती है और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक-सम्यग्दृष्टिके पहले समयमें प्राप्त होती है जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि जिस मिथ्यादृष्टि जीवने वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त हो जाय तो उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थिति सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे संक्रमित हो जाती है जो सम्यक्त्वप्रकृतिकी अपेक्षा उसकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। पर इस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमें अन्तर्मुहूर्त कम हो गया है। और हमें सर्वप्रथम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अधिकसे अधिक कौनसा स्थितिविकल्प सम्भव है यह लाना है, अतः पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवको अतिलघु अन्तर्मुहूर्त काल तक वेदकसम्यक्त्वमें रख कर मिथ्यात्वमें ले जाय और वहाँ अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे। इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती है किन्तु अनुकृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा नियमसे पूर्वोक्त दो अन्तर्मुहूर्त कम है। इससे सिद्ध हुआ कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी नियमसे अनुकृष्ट स्थिति होती है। फिर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अनुकृष्ट स्थितिका केवल यही विकल्प सम्भव नहीं है किन्तु इसके नीचे सम्यक्त्वकी अनुकृष्ट स्थितिके दो समयवाली अनुकृष्ट स्थिति तक जितने भी विकल्प हो सकते हैं वे सब सम्भव हैं किन्तु कुछ अपवाद है जिसका उल्लेख हम यथास्थान करेंगे। इन सब स्थितिविकल्पोंको लानेके लिये आगे कही जानेवाली चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये। (१) मिथ्यात्वका स्थितिबन्ध (२) प्रतिभग्नकाल अर्थात् उत्कृष्ट संक्लेशसे निवृत्त होकर सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिको प्राप्त होनेका काल (३) वेदकसम्यक्त्वका काल और (४) मिथ्यात्वमें जाकर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होनेका काल। अब पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम, दो समय कम आदि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे अनन्तर नम्बर २ के प्रतिभग्नकालके भीतर उसे वेदकसम्यक्त्वके योग्य विशुद्धि प्राप्त करावे। इसके बाद नम्बर ३ के वेदकसम्यक्त्वके कालके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वबद्ध स्थितिका सम्यक्त्वमें संक्रमण करावे। पश्चात् वेदक सम्यक्त्वमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक उस जीवको रखकर मिथ्यात्वमें

लेजाय और वहाँ नम्बर चारके काल द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर एक एक समय कम स्थितिका सन्निकर्ष प्राप्त करता जाय। यहाँ नम्बर २, ३ और ४ के काल तो अवस्थित रहते हैं उनमें घटा-वढ़ी नहीं होती किन्तु नम्बर एकमें जो मिथ्यात्वकी स्थिति कही है उसमें एक एक समय घटता जाता है और इसीलिये सन्निकर्षके समय सम्यक्त्वकी स्थितिमें भी एक एक समय घटता जाता है। इस प्रकार यह क्रम सम्यक्त्वकी नम्बर २, ३ और ४ के कालसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक चलता रहता है, क्योंकि सँझी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके मिथ्यात्वकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे कम स्थितिका बन्ध नहीं होता। अब सम्मसे जो नम्बर २, ३ और ४ के कालको कम किया है सो सन्निकर्षके समय तक इतना काल और कम हो जाता है अर्थात् उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति इन तीन कालोसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण रहती है। मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थितिके इतने सन्निकर्ष विकल्प तो पूर्वोक्त क्रमसे प्राप्त होते हैं किन्तु आगेके सन्निकर्ष विकल्प उद्वेलनाकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि सँझी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके मिथ्यात्वका स्थितिवन्ध अन्तः-कोड़ाकोड़ी सागरसे कम न होनेके कारण संक्रमणकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी पूर्वोक्त स्थितिसे कम स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है। फिर भी सम्यक्त्वके आगेके स्थितिविकल्प नाना जीवोंकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि एक-एक स्थितिकाण्डकका उत्कीरणकाल यद्यपि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है फिर भी स्थितिकाण्डकका घात अन्तिम फालिके पतनके समय ही होता है इससे पहलेके उत्कीरण कालके समयमें तो स्थितिकाण्डकके पूरे निषेकोका पतन न होकर उनके नियमित संख्या-वाले परमाणुओका ही पतन होता है, अतः एक जीवकी अपेक्षा उद्वेलनामे सम्यक्त्वकी स्थितिके सब सन्निकर्ष विकल्प नहीं प्राप्त हो सकते हैं और इसीलिये वीरसेन स्वामीने आगेके सन्निकर्ष विकल्पोंको प्राप्त करनेके लिये नाना जीवोंकी अपेक्षा कथन किया है। उसमे भी वहाँ सर्व प्रथम सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितिविकल्प प्राप्त करना है, क्योंकि तभी तो सम्यक्त्वके उन स्थितिविकल्पोंके साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त किये जा सकेंगे, अतः उद्वेलनाके लिये ऐसी स्थितियोंका ग्रहण करना चाहिये जिससे उद्वेलनाके होनेपर सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितिविकल्प प्राप्त किये जा सकें। इसी प्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतन तक उत्तरोत्तर एक-एक समय कमके क्रमसे स्थितियोंको घटाते जाना चाहिये पर इतनी विशेषता है अन्तिम स्थितिकाण्डकका प्रमाण सर्वत्र एक समान है, अतः सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डक प्रमाण स्थितिविकल्प सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा भी वह सबके एकसी ही होगी। तत्पश्चात् सम्यक्त्वकी स्थितिके एक समय कम एक आबलिप्रमाण स्थिति विकल्पोंके शेष रहने पर उनकी अपेक्षा भी तत्प्रमाण सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त कर लेना चाहिये। आगे अंक-संख्यासे पूर्वोक्त कथनके खुलासा करनेका प्रयत्न किया जाता है—यहाँ जितने भी अंक दिये जा रहे हैं वे सब काल्पनिक हैं। उनसे केवल पूर्वोक्त कथनके समझनेमें सहायता मिलती है, अतः उनकी योजना की गई है।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति	मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थिति	प्रतिभग्नकाल
१०००	३००	१६
वेदकसम्यक्त्व लघन काल	उत्कृष्ट संक्लेश पूरण काल	
१६	१६	

मिथ्यात्वकी बन्ध- स्थिति	प्र० अ० काल	संक्रमणसे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थिति	वे० सं० काल	सं० पू० काल	मि० की उ०स्थि० व० के सं० सम्यक्त्वकी स्थि०
१०००	१६	६८४	१६	१६	६५२
६६६	"	६८३	"	"	६५१
६६८	"	६८२	"	"	६५०
६६७	"	६८१	"	"	६४९
६६६	"	६८०	"	"	६४८
६६५	"	६७९	"	"	६४७
६६४	"	६७८	"	"	६४६
....	....	....	....	....	....
३०२	"	२८६	"	"	२५४
३०१	"	२८५	"	"	२५३
३००	"	२८४	"	"	२५२
					स० की ध्रुवस्थिति

इतने सन्निकर्ष विकल्प सक्रमणसे प्राप्त हुए हैं। ये कुल सन्निकर्ष विकल्प ७०१ हुए। अब आगे अंकसंघट्टिसे उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्पोंके खुलासा करनेका प्रयत्न किया जाता है—

नाना जीव ८, स्थितिकाण्डक १६, उत्कीरणकाल ४

नाना जीव	सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थिति	१ समय कम उ० का०	उत्तरोत्तर एक एक समय कम उ० काण्डक	सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति	उत्कीरणकाल और उद्वेलना काण्डकका योग	सम्यक्त्वकी उद्वेलनासे प्राप्त स्थिति
१ ला	२५२	३	१६	२७१	२०	२५१
२ रा	२५२	३	१५	२७०	२०	२५०
३ रा	२५२	३	१४	२६९	२०	२४९
४ था	२५२	३	१३	२६८	२०	२४८
५ वाँ	२५२	३	१२	२६७	२०	२४७
६ ठा	२५२	३	११	२६६	२०	२४६
७ वाँ	२५२	३	१०	२६५	२०	२४५
८ वाँ	२५२	३	९	२६४	२०	२४४

यहाँ जो उत्कीरणकालमे एक समय कम करके और उद्वेलनाकाण्डकमे उत्तरोत्तर एक एक समय कम करके अनन्तर इनके योगको सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिमें जोड़ा है सो नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति उत्तरोत्तर एक-एक समय कम बतलानेके लिये किया गया है। यहाँ उत्कीरणकालप्रमाण स्थिति तो अधःस्थिति गलनासे गल जाती है और उद्वेलना काण्डक-प्रमाण स्थितिका उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय घात हो जाता है। यही कारण है कि सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थितिमेंसे सर्वत्र उत्कीरणकाल और उद्वेलनाकाण्डक प्रमाण स्थितियों घटाकर बतलाई गई हैं। इसी प्रकार आगे भी उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्प ले

§ ७१६. संपहि विदियपयारेण सण्णियासपरूवणा कीरदे । तं जहा—वेदग-  
पाओगमिच्छादिट्ठिणा वद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा सव्वजहण्णपडिहग्गकालमच्छिय  
सम्मत्तं घेत्तूण मिच्छत्तट्ठिदिसंक्रमे सम्मत्तस्सुक्कस्सट्ठिदिं कादूण सव्वजहण्णसम्मत्त-  
कालमच्छिदेण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णमिच्छत्तकालेणुक्कस्ससंफिलेसं पूरेदूण  
मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदी अंतोमुहुत्तूणा होदि । तदो अण्णेण

आने चाहिये । किन्तु अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकके घात होनेपर अनेक स्थितिविकल्प नहीं प्राप्त होते, क्योंकि जघन्य उद्वेलनाकाण्डकका प्रमाण सब जीवोंके समान है, अतः उसका घात होनेपर सबके एक ही स्थिति प्राप्त होती है । यथा—

नाना जीव	सम्यक्त्वकी सत्त्व स्थिति	उत्कीरणाकाल	उद्वेलनाकाण्डक	उद्वेलनासे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थिति
१ ला	२७	४	१६	७
२ रा	२७	४	१६	७
३ रा	२७	४	१६	७
४ था	२७	४	१६	७
५ वों	२७	४	१६	७
६ ठा	२७	४	१६	७
७ वों	२७	४	१६	७
८ वों	२७	४	१६	७
				एक समय कम उद- यावलिप्रमाण नि०

यहाँ उत्कीरणा कालप्रमाण स्थितियों तो अधःस्थिति गलनाके द्वारा गलती गई हैं, अतः उनकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्प बन जाते हैं पर उद्वेलनाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका घात एक साथ हुआ है और सम्यक्त्वकी सत्त्व स्थितियोंमें विभिन्नता न होनेसे उद्वेलनाकाण्डकघातसे नाना जीवोंके स्थितियाँ भी एकसी ही प्राप्त हुईं, अतः उद्वेलनाकाण्डक १६ प्रमाण स्थितियाँ सन्निकर्षसे परे हैं । तथा अन्तमें प्रत्येक जीवके जो एक कम उदयावलिप्रमाण निषेक वचे हैं वे अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलते जाते हैं और इस प्रकार उतने सन्निकर्षविकल्प और प्राप्त हो जाते हैं । इस प्रकार उद्वेलनासे कुल सन्निकर्षविकल्प २५१ - १६ = २३५ प्राप्त हुए ।

§ ७१६. अब दूसरे प्रकारसे सन्निकर्षकी प्ररूपणा करते हैं, जो इस प्रकार है—जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके सबसे जघन्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करके पहले समयमें उसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति की और वहाँ सम्यक्त्वके सबसे जघन्य काल तक रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संकलेशकी पूर्ति करके उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम होती है ।



जीवेण वेदगसम्मत्तपाओग्गेण बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा समयाहियसव्वजहण्णपडिहग्ग-  
 द्दमच्छिय सम्मत्तं घेत्तूण सव्वजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्तद्दाओ गमिय उक्कस्ससंकिलेसं  
 पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्दाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्त  
 ट्ठिदी समयाहियअंतोमुहुत्तेण्णा होदि । पुणो अण्णेण जीवेण बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा  
 दुसमयाहियपडिहग्गद्दमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवण्णेण सव्वजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्त-  
 द्दाओ गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्दाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदीओ संपहियसम्मत्तट्ठिदी  
 दुसमयाहियअंतोमुहुत्तेण्णा होदि । एवं पडिहग्गकालं तिसमयाहिय-चदुसमया  
 हियादिकमेण वड्ढाविय सेससम्मत्त-मिच्छत्तजहण्णकाले अवट्ठिदे कादूण मिच्छत्तुक्कस्स-  
 ट्ठिदिं बंधाविय णेदव्वं जाव जहण्णपडिहग्गकालादो उक्कस्सेण संखेज्जगुणं पावेदि  
 त्ति । तं पत्ते मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय गेण्हिदव्वं । पुणो उक्कस्सपडिहग्गकालम्मि  
 जहण्णपडिहग्गकालं सोहिय सुद्धसेसमेत्तकालेणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गो  
 होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तं गंतूणवट्ठिट्ठिदिणिकाले अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए  
 पवद्दाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्तट्ठिदी अंतोमुहुत्तेण पडिहग्ग-

तदनन्तर जिसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हुआ है ऐसा वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक  
 अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके समयाधिक सबसे जघन्य प्रतिभग्न कालतक  
 मिथ्यात्वमें रह कर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको  
 व्यतीत करके उसने उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति की तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने  
 पर सम्यक्त्वकी सामान्य उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए इस समयकी सम्यक्त्वकी स्थिति एक समय  
 अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कम होती है । तदनन्तर जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
 किया है ऐसा कोई एक अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके दो समय अधिक  
 जघन्य प्रतिभग्न काल तक मिथ्यात्वमें रहकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व  
 तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको व्यतीत किया और इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
 स्थितिके बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी ओघ उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा इस समयकी सम्यक्त्वकी  
 स्थिति दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कम होती है । इसी प्रकार मिथ्यात्वसे च्युत होनेके  
 कालको तीन समय अधिक, चार समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाते हुए तथा सम्यक्त्व और  
 मिथ्यात्वके शेष दो जघन्य कालोंको अवस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
 कराते हुए तब तक कथन कराते जाना चाहिये जब जाकर मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य कालसे  
 उत्कृष्ट काल संख्यात गुणा प्राप्त होवे । इस प्रकार इसके प्राप्त होने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
 बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थिति ग्रहण करना चाहिये । पुनः मिथ्यात्वसे च्युत होनेके उत्कृष्ट  
 प्रतिभग्न कालमेंसे मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य प्रतिभग्न कालको घटाकर जो शेष रहे उतने  
 कालसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करके तथा प्रतिभग्न होकर और वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त  
 करके अनन्तर जो मिथ्यात्वमें गया है और इस प्रकार तीन अवस्थित कालों तक तीनों स्थानोंमें  
 रहा है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते  
 हुए इस समय संबंधी सम्यक्त्वकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त और प्रतिभग्नकालविशेष प्रमाण कम होती  
 है । यह सन्निकर्षधिकल्प पुनरुक्त है । तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक अन्य मिथ्यादृष्टि

कालविसेसेण च ऊणा होदि । एस वियप्पो पुणरुत्तो । तदो अण्णो जीवो वेदगपाओग्ग-  
मिच्छाद्विदी पडिहग्गकालविसेसेण पुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय समयाहियसव्वजहण्ण-  
पडिहग्गकालमिच्छय सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तं गंतूय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए  
पवद्दाए पुव्वुत्तसम्मत्तद्विदी समयूणा होदि । एसो वियप्पो अपुणरुत्तो । एवं  
पुव्वं व दुसमयाहिय-तिसमयाहियादिकमेण पडिहग्गकालो वड्ढावेयव्वो जाव जहण्णादो  
उक्कस्सओ संखेज्जगुणो त्ति । एवं वड्ढाविय पुणो पुव्वविहाणेण जहण्णपडिहग्गद-  
मुक्कस्सपडिहग्गद्विदी सोहिय सुद्धसेसेण दुगुणेणामिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय  
अवट्ठिदद्विदो जहण्णाओ तिण्ण वि गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्दाए पुणरुत्तो  
सण्णियासवियप्पो होदि । एदेण कमेण ओदारेदुण खेदव्वं जाव णिच्चियप्पधुवद्विदी-  
पत्ता त्ति । पुणो पुव्वं व उव्वेळ्ळणमस्सिदूण णेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा द्विदी  
दुसमयकालपमाणा चेद्विदा त्ति । एवमोदारिदे विदियपरूवणा समत्ता ।

§ ७२०. संप्रति तदियपरूवणा वुच्चदे । तं जहा—वेदगपाओग्गमिच्छाद्विद्विणा  
बंधुक्कस्सट्ठिदिणा सव्वजहण्णपडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्वेणुक्कस्सट्ठिदीए पवद्दाए पुण-  
रुत्तवियप्पो होदि, तिण्हं पि अद्धानं जहण्णभावुवलांभादो । अपुणरुत्तवियप्पो इच्छिज्ज-

जीव प्रतिभनकालविशेषसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बांधकर और मिथ्यात्वसे च्युत होनेके  
एक समय अधिक सबसे जघन्य प्रतिभन काल तक मिथ्यात्वमे रह कर सम्यक्त्वकी प्राप्त हुआ ।  
तथा पुनः मिथ्यात्वकी प्राप्त करके उस जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर पूर्वोक्त  
सम्यक्त्वकी स्थिति एक समय कम होती है । यह सन्निकर्षविकल्प अपुनरुक्त है । इसी प्रकार  
पहलेके समान दो समय अधिक और तीन समय अधिक इत्यादि क्रमसे मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका  
काल तब तक बढ़ाते जाना चाहिये जब तक जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा प्राप्त होवे ।  
इस प्रकार पुनः मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको बढ़ाकर पुनः पूर्वविधानानुसार मिथ्यात्वसे  
निवृत्त होनेके जघन्य कालको मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट कालमेसे घटाकर जो काल शेष  
रहे उसके दूने कालसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके और तीनों ही जघन्य  
अवस्थित कालोंको विता कर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर सन्निकर्षका पुनरुक्त  
विकल्प प्राप्त होता है । आगे इसी क्रमसे निर्विकल्प ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी  
स्थितिको घटाते हुए ले जाना चाहिए । तदनन्तर पहलेके समान उद्धेलताका आश्रय लेकर  
सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना  
चाहिए । इस प्रकार सव्यक्त्वकी स्थिति घटाने पर दूसरी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२०. अब तीसरी प्ररूपणाको कहते हैं जो इस प्रकार है—जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिको बांधा है ऐसा वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्याद्वि जीव पुनः मिथ्यात्वसे च्युत होनेके  
सबसे जघन्य प्रतिभन कालके साथ तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंके साथ  
जब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके  
समय सन्निकर्षका पुनरुक्त विकल्प होता है, क्योंकि यहाँ पर तीनों ही काल जघन्य पाये जाते हैं ।  
अब अपुनरुक्त विकल्प इच्छित होने पर उसे इस विधिसे लाना चाहिये जो इस प्रकार है—

माणे एदाए किरियाए आणेयन्वो । तं जहा—मिच्छत्तु कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्ग-  
कालमवट्ठिदमच्छिय सम्मत्तकालं समयाहियं मिच्छत्तकालमवट्ठिदमच्छिय सकिलेसं  
पूरेदुणुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए अपुणरुत्तवियप्पो होदि । पुणो जहा पडिहग्गकालं वड्ढाविय  
सम्मत्तट्ठिदी ओदारिदा तथा सम्मत्तकालं वड्ढाविय ओदारेदव्वा जाव णिवियप्प-  
धुवट्ठिदि त्ति । पुणो उव्वेल्लणमस्सिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एया ट्ठिदी  
दुसमयकालपमाणा चेट्ठिदा त्ति । एवं एहीदे तदियपरूवणा समत्ता होदि ३ ।

§ ७२१. चउत्थपरूवणा संपहि बुच्चदे । तं जहा—पुणरुत्तवियप्पं पुञ्चविहाणेण  
भणिदूण मिच्छत्तु कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय  
समयाहियमिच्छत्तद्धमच्छिदेण आऊरिट्ठुक्कस्ससंकिलेसेण मिच्छत्तु कस्सट्ठिदीए पवद्धाए  
अपुणरुत्तवियप्पो होदि । एवं मिच्छत्तद्धाए दुसमत्तरादिकमेण वड्ढाविय ओदारिदे  
चउत्थपरूवणा समप्पदि ४ । एवमेगसंजोगपरूवणा गदा ।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके मिथ्यात्वसे च्युत होनेके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमे  
रह कर फिर सम्यक्त्वके एक समय अधिक अवस्थित कालतक सम्यक्त्वके साथ रह कर फिर  
मिथ्यात्वके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमें रह कर और उसी समय उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके  
जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । तदनन्तर पहले जिस प्रकार मिथ्यात्वसे पुनः च्युत होनेके  
कालको बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाया था उसी प्रकार यहां पर वेदकसम्यक्त्वके कालको  
बढ़ाकर निर्विकल्प ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वको स्थितिको घटाना चाहिये । पुनः  
उद्वेलनाका आश्रय लेकर सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होनेतक उसकी  
स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थिति घटाते हुए ले जाने पर तीसरी  
प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२१. अब चौथी प्ररूपणाको कहते हैं जो इस प्रकार है—पहले पूर्वोक्त विधिसे पुनरुक्त  
विकल्पको कह ले । फिर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके फिर मिथ्यात्वसे पुनः च्युत  
होनेके अवस्थित कालतक और सम्यक्त्वके अवस्थित काल तक मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें रहकर  
फिर जो मिथ्यात्वके एक समय अधिक अवस्थित काल तक मिथ्यात्वमे रह कर और उत्कृष्ट  
संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । इस प्रकार मिथ्यात्वके कालको दो  
समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौथी प्ररूपणा  
समाप्त होती है ।

**विशेषार्थ—**दूसरी प्ररूपणामें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके और प्रतिभन्न-  
कालमें एक-एक समय बढ़ाकर संक्रमणसे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थितिमें एक-एक समय कम किया  
गया है । तथा वेदक सम्यक्त्व काल और संक्लेश पूरण कालको अन्नस्थित रखा है । पर जब  
प्रतिभन्नकालमें एक-एक समय बढ़ाते हुए उत्कृष्ट प्रतिभन्नकाल प्राप्त हो गया तब उत्कृष्ट प्रतिभन्न-  
कालमेंसे जघन्य प्रतिभन्न कालको घटाकर जो शेष बचा उससे न्यून मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध कराया गया और पुनः जघन्य प्रतिभन्न कालमें एक-एक समय बढ़ाते हुए संक्रमणसे प्राप्त

§ ७२२. संपहि दुसंजोगेण पंचमपरुवणं वचइस्सामो । तं जहा—एक्केण पुण्वुप्पाइदसम्मत्तेण अविणहवेदगपाओगेण समयूणं मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गद्धं समयाहियमच्छिय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए अपुणरुत्तवियप्पो होदि । पुण्वुत्तसम्मत्तट्ठिदिं पेक्खिदूण एसा तट्ठिदी दुसमयूणा होदि, दोण्हं गिसेगाणमेगवारेण गालिदत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण दुसमज्जणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय समयाहियपडिहग्गद्धमवट्ठिदसम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए सम्मत्तट्ठिदी तिसमयूणा होदि । पुणो अवरणेण जीवेण वद्धत्तिसमज्जणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा समयाहियजहण्णपडिहग्गद्धमच्छियेण सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए सम्मत्तट्ठिदी चटुसमयूणा होदि । एवं मिच्छत्तट्ठिदी चटुसमयूणादिकमेण ओदारेयव्वा जाव मिच्छत्त-

सम्यक्त्वकी स्थितिमे एक-एक समय कम किया गया है । और इस प्रकार सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थिति प्राप्त होनेतक सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त किये गये हैं । आगे जिस प्रकार उद्वेलनासे प्रथम प्ररूपणामे सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त किये गये हैं उसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त कर लेना चाहिये । इस प्रकार दूसरी प्ररूपणा समाप्त हुई । तीसरी प्ररूपणामे प्रतिभन्न कालके समान सम्यक्त्वके कालमें एक-एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्व प्रकृतिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है । विशेष विधि दूसरी प्ररूपणाके समान जानना चाहिये । चौथी प्ररूपणामे मिथ्यात्वके कालमे एक एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्व प्रकृतिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है । यहाँ भी विशेष विधि दूसरी प्ररूपणाके समान जानना चाहिये । इस प्रकार एक संयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई, क्योंकि इससे और अधिक वार एकसंयोगी प्ररूपणा संभव नहीं है ।

इस प्रकार एकसंयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२२. अब दो संयोगसे पांचवीं प्ररूपणाको बतलाते हैं जो इस प्रकार है—जिसने पहले सम्यक्त्व उत्पन्न किया था और जिसका वेदक सम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वका काल नष्ट नहीं हुआ है ऐसा कोई एक जीव एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक अवस्थित कालको व्यतीत करके तदनन्तर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका अपुनरुत्त विकल्प होता है । पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति दो समय कम है, क्योंकि यहाँ उसके दो निवेक एक ही वारमें गला दिये गये हैं । पुनः अन्य कोई जीव दो समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक अवस्थित काल तक तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालो तक क्रमसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमे रह कर यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उसके उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिको देखते हुए तीन समय कम होती है । पुनः जिसने तीन समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमे रहा । पुनः सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको व्यतीत करके यदि उसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है तो उसके उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिको देखते हुए चार समय कम होती है । इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके

ध्रुवद्विदिं सम्मत्तग्गहणपाओग्गं पत्ता त्ति । पुणो अण्णेण जीवेण बद्धमिच्छत्तध्रुव-  
द्विदिणा दुसमउत्तरपडिहग्गद्धमच्छिदेण सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्टिदाओ अचिच्छय  
मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पबद्धाए अण्णो अपुणरुत्तावियप्पो होदि । एवं सण्णियास-  
पाओग्गध्रुवद्विदिमवट्टिदेए कमेण बंधाविय पडिहग्गद्धा तिसमयुत्तरादिकमेण वट्टा-  
वेयव्वा जाव सगजहण्णद्धादो संखेज्जगुणचं पत्ता त्ति । एवं वट्टाविदे पंचमवियप्पो  
समत्तो होदि ।

§ ७२३, अधवा पंचमवियप्पो एवमुप्पाएयव्वो । तं जहा—समयूणमिच्छत्तु-  
क्कस्सद्विदिं बंधाविय पडिहग्गद्धं चेव समयुत्तरादिकमेण जहण्णद्धादो संखेज्जगुणं चि  
वट्टाविय पुणो पडिहग्गद्धाविसेसमेत्तमेगवारेण मिच्छत्तद्विदिमोदारिय पुणो तमवट्टिदं  
कादूण समयुत्तरादिकमेण पडिहग्गद्धं चेव संखेज्जगुणं चि वट्टाविय पुणो मिच्छत्तद्विदी  
अप्पिदद्विदीदो पडिहग्गद्धाविसेसमेत्तमोदारेदव्वा । एवं णेयव्वं जाव तप्पाओग्गमिच्छत्त-  
ध्रुवद्विदि चि । एवं णीदे विदियपयारेण पंचमवियप्पो परुवियो होदि ।

§ ७२४, संपहि तदियपयारेण पंचमवियप्पस्स परुवणा कीरदे । तं जहा—  
समयूणक्कस्सद्विदिपबद्धमिच्छादिद्विणा समयाहियपडिहग्गद्धमच्छिदेण सव्वजहण्ण-

योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुव स्थितिके प्राप्त होने तक चार समय कम आदिके क्रमसे मिथ्यात्वकी  
स्थितिको घटाते जाना चाहिये । पुनः जिसने मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई  
एक अन्य जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके दो समय अधिक अवस्थित मिथ्यात्वमें रहा । पुनः सम्य  
क्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंतक सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रह कर यदि उसने मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है तो उसके उस समय सन्निकर्षका एक अन्य अपुनरुक्त विकल्प प्राप्त  
होता है । इसी प्रकार आगेके विकल्प लानेके लिये जो सन्निकर्ष के योग्य ध्रुवस्थितिको अवस्थित  
करके उसका बन्ध करता है और जब तक अपने जघन्यसे उत्कृष्ट विकल्प संख्यातगुणा नहीं प्राप्त  
होता है तब तक मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके अवस्थित कालको तीन समय अधिक आदिके क्रमसे  
बढ़ाता जाता है उसके इस प्रकार उक्त कालके बढ़ाने पर पांचवां विकल्प समाप्त होता है ।

§ ७२३, अथवा पांचवां विकल्प इस प्रकार उत्पन्न करना चाहिये, जो इस प्रकार है—पहले  
एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्रावे । तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो  
जघन्य काल है उसे पहली बार एक समय और दूसरी बार दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे  
संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त होने तक बढ़ाता जावे । तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट  
कालमेंसे जघन्य कालको घटा कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको एक साथ घटा  
कर उसे अवस्थित करदे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो जघन्य काल है उसे पहली बारमें  
एक समय, दूसरी बारमें दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त  
होने तक बढ़ाता जावे । तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालको घटा  
कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको दूसरी बार घटाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वके  
योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक यह विधि करते जाना चाहिये । इस प्रकार इस  
विधिके करने पर दूसरे प्रकारसे पांचवें विकल्पकी प्ररूपणा होती है ।

§ ७२४, अब तीसरे प्रकारसे पांचवें विकल्पकी प्ररूपणा करते हैं, जो इस प्रकार है—एक  
समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला एक मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे

सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अचिच्चय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । पुणो मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं दुसमयूणं वंधिय पडिहग्गद्धं समयाहियमच्चिय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अचिच्चय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । पुणो अण्णेण जीवेण दुसमऊणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय दुसमयुत्तरं जहण्णपडिहग्गद्धमच्चिय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अचिच्चय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो । एवमेगवारं ट्ठिदिं समयूणं वट्ठुविय विदियवारं पडिहग्गकालसमए एक्केण वट्ठुविय ओदारेदव्वं जाव जहण्ण-पडिहग्गद्धा संवेज्जगुणा जादा त्ति । पुणो एदेण सरूवेण जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेद्विदा त्ति । एवमण्णत्थ वि एदमत्थपरूवणमव-हारिय परूवेदव्वं । एवं पंचमवियप्पो गदो ५ ।

§ ७२५. संपहि छट्टवियप्परूवणा कीरदे । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समऊण-दुसमऊणादिकमेण वंधाविय पडिहग्गद्धमवट्ठिदं करिय सम्मत्तद्धं समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वट्ठुविय. मिच्छत्तकालमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए छट्टवियप्पो होदि । एत्थ पंचवियप्पस्सेव तीहि पयारेहि परूवणा कायव्वा ।

निवृत्त होनेके एक समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमे रहा । पुनः उसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य काल तक क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमे रह कर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है । पुनः दो समय कम मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर कोई एक जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमे रहा । तदनन्तर उसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालो तक क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमे रहकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । पुनः एक अन्य जीव दो समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी बांधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके दो समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमे रहा । तदनन्तर उसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोतक क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमे रहकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । इस प्रकार एक बार मिथ्यात्वकी स्थितिको एक समय कम करके और दूसरी बार मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिको तब तक घटाते जाना चाहिये जब जाकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जघन्य काल संख्यातगुणा हो जावे । पुनः इसी क्रम से आगे भी सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इसी प्रकार अन्यत्र भी इस अर्थपदका निश्चय करके कथन करना चाहिये । इस प्रकार पाचवें विकल्प समाप्त हुआ ।

§ ७२५. अब छठे विकल्पकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध कराके और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक, दो समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने पर छठा विकल्प होता है । यहां पर जिस प्रकार पांचवें विकल्पकी तीन प्रकारसे प्ररूपणा की है उसी प्रकार छठे विकल्पकी तीन प्रकारसे प्ररूपणा करनी चाहिये । इस प्रकार

एवं छट्टपरूवणा गदा ।

§ ७२६. संपहि सत्तमभंगे भण्णमाणे मिच्छत्तुकस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेणो-  
दारिय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ करिय मिच्छत्तद्धं समयादिकमेण  
वड्ढाविय मिच्छत्तुकस्सट्ठिदिं बंधाविय पुवं व जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्त-  
चरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे सत्तमपरूवणा समत्ता होदि ।

§ ७२७. संपहि अट्ठमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुकस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्ग-  
कालं सम्मत्तकालं च समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तद्धमवट्ठिदं  
कादूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे  
अट्ठमभंगपरूवणा गदा ८ ।

§ ७२८. संपहि णवमभंगपरूवणे भण्णमाणे मिच्छत्तुकस्सट्ठिदिं बंधाविय  
पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय सम्मत्त-  
द्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुकस्सट्ठिदिं बंधाविय ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एया  
ट्ठिदी दुसमयकाला ट्ठिदा त्ति । एवं णीदे णवमभंगपरूवणा समत्ता ९ ।

§ ७२९. संपहि दसमपरूवणे भण्णमाणे सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ समउत्तरादि-  
कमेण परिवाडीए वड्ढाविय पडिहग्गकालमवट्ठिदं करिय उभयत्थमिच्छत्तुकस्सट्ठिदिं

छठी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२६. अब सातवें भंगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय कम  
इत्यादि क्रमसे घटाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित  
करके और मिथ्यात्वके कालको एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध करावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिका अन्तिम विकल्प प्राप्त होने तक पहलेके समान  
जानकर उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर  
सातवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२७. अब आठवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको और सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक और दो समय  
अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके सम्यक्त्वकी दो समय  
कालप्रमाण एक स्थिति प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी  
स्थितिके घटाने पर आठवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२८. जब नौवें भंगकी प्ररूपणा करने पर मिथ्यात्वको उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक और दो  
समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी  
स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार विधिके करने पर नौवें भंगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२९. अब दसवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर  
एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा

बंधाविय ओदारदेद्वं जाव सम्मत्तस्स एगा द्विदी दुसमयकालपमाणा चेद्विदा त्ति । एवमोदारिदे दसमभंगपरुवणा गदा होदि १० ।

§ ७३०. संपहि चत्तारि एगसंजोगे भंगे च दुसंजोगभंगे च परुविय तिसंजोग-भंगपरुवणा कीरदे । ताए कीरमाणाए मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिं समयूणादिकमेण बंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ परिवाडीए समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण वद्धाविय मिच्छत्तद्ध-मवद्विदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिं बंधाविय णंदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा द्विदी दुसमयकाला सेसा त्ति । एवं णीदे एक्कारसमपरुवणा तिसंजोगभंगम्मि पढमा परुविदा होदि ११ ।

दोनों जगह मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर दसवें भंगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

**विशेषार्थ**—यहाँ दो संयोगकी अपेक्षा पाँचवीं प्ररूपणा तीन प्रकारसे की है । पहले प्रकारमें बतलाया है कि मिथ्यात्वकी एक एक समय स्थिति कम करता जाय और प्रतिभन्न कालमें सर्वत्र एक समय बढ़ावे तथा शेष दो कालोंको अवस्थित रखे । दूसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि सर्वत्र एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और प्रतिभन्न कालमें एकसंयोगी दूसरी प्ररूपणामें बतलाई विधिके अनुसार एक एक समय बढ़ाता जाय तथा शेष दो कालोंको अवस्थित रखे । तीसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि एक बार मिथ्यात्वकी स्थिति घटावे और दूसरी बार प्रतिभन्न कालमें एक समय बढ़ावे तथा शेष कालोंको अवस्थित रखे । इस प्रकार इन तीनों प्रकारोंसे सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त की जा सकती है । द्विसंयोगी छठी प्ररूपणामें प्रतिभन्न कालके स्थानमें सम्यक्त्वके कालमें एक एक समय बढ़ाना चाहिये । शेष सब कथन पाँचवीं प्ररूपणामें समान है । सातवीं प्ररूपणामें प्रतिभन्न कालके स्थानमें मिथ्यात्वके कालमें एक एक समय बढ़ावे । शेष सब कथन पाँचवीं प्ररूपणामें समान है । द्विसंयोगी आठवीं प्ररूपणामें सर्वत्र मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे किन्तु प्रतिभन्नकाल और सम्यक्त्वकालमें एक-एक समय बढ़ाता जाय । नौवीं प्ररूपणामें प्रतिभन्नकाल और मिथ्यात्वकालको एक समय बढ़ाना चाहिये । तथा दसवीं प्ररूपणामें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको एक-एक समय बढ़ावे । इस प्रकार करनेसे सर्वत्र सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त हो जाती है । चारके द्विसंयोगी भंग कुल छह ही होते हैं, अतः यहाँ द्विसंयोगी प्ररूपणा छह प्रकारसे की गई है ।

§ ७३०. इससे पहले चार एकसंयोगी भंग और द्विसंयोगी भंगोंकी प्ररूपणा करके अब तीनसंयोगी भंगोंकी प्ररूपणा करते हैं । उस तीन संयोगी भंगोंकी प्ररूपणाके करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके अवस्थित कालको तथा सम्यक्त्वके अवस्थित कालको उत्तरोत्तर एक समय अधिक, दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाता जावे और मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय प्रमाण एक स्थितिकेशेप रहने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाते हुए लेजाना चाहिये । इस प्रकार लेजाने पर ग्यारहवीं प्ररूपणा और तीन संयोगी भंगमें पहली प्ररूपणाका कथन समाप्त होता है।



§ ७३१, बारसमभंगे तिसंजोगम्मि विदिए भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेण बंधाविय पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय सम्मत्तकालमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं पुन्वं व जाणिदूण ओदारोदव्वं जाव सम्मत्तचरिमवियणो त्ति । एवमोदारिदे बारसमपरुवणा समत्ता होदि १२ ।

- § ७३२, संपहि तेरसमपरुवणे भण्णमाणे एक्को वेदगसम्मादिट्ठी मिच्छत्त-ट्ठिदिं समयूण-दुसमयूणादिकमेण बंधाविय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ परिवाडीए समयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय पडिहग्गद्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय ओदारोदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे तेरसम-वियणो समत्तो होदि १३ ।

§ ७३३, संपहि चौद्दसमवियण्णे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्त मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तरादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय ओदारोदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एव-मोदारिदे चौद्दसवियणो समत्तो होदि १४ ।

§ ७३१, अब बारहवें भंगके और तीन संयोगीमें दूसरे भंगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे, और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक, दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ावे तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थितिके अन्तिम विकल्पके उत्पन्न होने तक पहलेके समान जानकर उसकी स्थितिको घटाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर बारहवाँ प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३२, अब तेरहवाँ प्ररूपणाके कथन करने पर एक वेदकसम्यग्दष्टि जीव मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करे और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करे । इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर तेरहवाँ विकल्प समाप्त होता है ।

§ ७३३, अब चौदहवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ता जावे तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थितिको घटाना जावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौदहवाँ विकल्प समाप्त होता है ।

**विशेषार्थ—**चारके तीन संयोगी भंग कुल चार होते हैं । ग्यारहवाँ, बारहवाँ, तेरहवाँ और चौदहवाँ प्ररूपणामें ये ही चार भंग बतला कर सम्यक्त्वकी स्थिति उत्तरोत्तर न्यून प्राप्त की गई है । कहाँ किनके संयोगसे स्थिति कम प्राप्त की गई है इसका खुलासा मूलमें किया ही है, अतः यहाँ उसे पुनः नहीं दुहराया गया है ।

§ ७३४. संपहि पण्णारसमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादि-  
क्रमेण वंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्दाओ समयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय पुणो  
मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तदुसमयकालेगा ट्ठिदि त्ति ।  
एवमोदारिदे पण्णारसमपरूवणा समत्ता होदि १५ ।

§ ७३५. अहवा पण्णारसमपरूवणा एवं वत्तव्वा । तं जहा—धुवट्ठिदीए  
समयूणाए ऊणुक्कस्सट्ठिदिसमयरयणं काऊण पुणो पडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तानं जहण्ण-  
द्दाओ सगसगुक्कस्सद्दासु जहण्णद्दाहिंतो संखेज्जगुणासु सोहिय रूवाहियं कादूण  
पुध पुध एदेसिं पि समयाणं पंतियागारेण रयणं काऊण पुणो चचारि अक्खे च्चदुसु  
पंतीसु ट्ठविय तत्थ अंतियअक्खो ताव संचारेयव्वो जावप्पणो समयपंतीए अंतं पत्तो  
त्ति । पुणो तमक्खं तत्थेव ट्ठविय तदियक्खो क्रमेण संचारेयव्वो जावप्पणो समय-  
पंतियज्जवसाणं पत्तो त्ति । पुणो तं पि तत्थेव ट्ठविय विदियक्खं क्रमेण संचारिय  
अप्पणो समयपंतिरयणाए अंतम्मि जोजये । तदो तिण्हमद्दाणं समयपंतिरयणसंकल-  
णाए ज्जचिया समया तत्तियमेत्तासमए एगवारेण पढमक्खो ओयारेयव्वो । पुणो सेस-  
त्तिणिण वि अक्खे तिण्णं पंतीणं पढमसयएसु ठविय पुव्वं व अक्खसंचारं काऊण  
तदो तत्तियमेत्तं चेवद्दाणं पुणो वि पढमक्खो पढमसमयपंतीए ओयारेयव्वो । एवं  
पुणो पुणो ताव कायव्वं जाव पढमक्खो पढमसमयपंतीए अंतं पत्तो त्ति । पुणो सेसत्तिणिण

§ ७३४. अब पन्द्रहवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय  
कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा  
सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे उत्तरोत्तर बढ़ाता जावे । पुनः  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके शेष  
रहने तक उसकी स्थितिको घटाता जावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने परपन्द्रहवीं  
प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३५. अथवा पन्द्रहवीं प्ररूपणाका इस प्रकार कथन करना चाहिये । आगे उसीको  
ताते हैं—उत्कृष्ट स्थितिमे एक समय कम ध्रुवस्थितिको कम करके जो शेष रहे उसके समयोंकी  
रचना करे । पुनः मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके जघन्य कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके जघन्य  
कालोंको जघन्य कालोसे संख्यातगुणे अपने अपने उत्कृष्ट कालोमेसे घटाकर और एक अधिक  
करके अलग अलग इनके भी समयोंकी पंक्तिरूपसे रचना करे । पुनः चारों पंक्तियोंमे चार अक्षोंकी  
स्थापना करके उनमेंसे अन्तिम अक्षका अपनी समयपंक्तिके अन्तको प्राप्त होने तक संचार  
करते रहना चाहिये । पुनः उस अक्षको वहीं पर स्थापित करके तृतीय अक्षका अपनी समयपंक्तिके  
अन्तको प्राप्त होने तक क्रमसे संचार करते रहना चाहिये । पुनः इस अक्षको भी वहीं पर स्थापित  
करके दूसरे अक्षको क्रमसे संचार कराके अपनी समयपंक्तिरचनाके अन्तको प्राप्त करावे । तदनन्तर  
तीनों कालोंकी समयपंक्तिरचनाके जोड़ करने पर जितने समय हों प्रथमाक्षको उतने समयप्रमाण  
एक बारमे उतारे । पुनः शेष तीनों ही अक्षको तीनों पंक्तियोंके पहले समयोमे स्थापित करके और  
पहलेके समान अक्षसंचार करके तदनन्तर प्रथम अक्षको उतने समय प्रमाण प्रथम पंक्तिमे उतारे ।  
इस प्रकार जब तक पहला अक्ष पहली पंक्तिमे अन्तको प्राप्त होवे तब तक पुनः पुनः इसी प्रकार

वि अक्खा पुच्चं व संचारिय सगसगपंतीए अंतम्मि कायच्चा । एवं कदे द्विदिवंधो-  
सरणेपुप्पणसव्वसण्णियासवियप्पा लद्धा होंति । पुणो सेसवियप्पे णाणाजीवाणमुच्चे-  
ल्लणमस्सिदूण उप्पाएज्जो । एवमुप्पाइदे पणारसमपरूवणा समत्त होदि १५ ।

§ ७३६. सोलसमपरूवणे भण्णमाणे दुममयकालेगद्विदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तु-  
क्कस्सद्विदीए पबद्धाए एगो सण्णियासवियप्पो । दोद्विदितिसमयसंतकम्मिएण मिच्छत्तु-  
क्कस्सद्विदीए पबद्धाए विदियो सण्णियासवियप्पो । तिण्णिद्विदिचदुसमयसम्मससंत-  
कम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पबद्धाए तदिओ सण्णियासवियप्पो । एवं गंतूण  
समयुणावलिपमेत्तद्विदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पबद्धाए समयुणावलिपमेत्ता  
सण्णियासवियप्पा लब्भंति । पुणो आवलियब्भहियचरिमुच्चेल्लणकंडयचरिमफालिमेत्त-  
द्विदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पबद्धाए आवलियमेत्ता सण्णियासवियप्पा  
होंति । कुदो, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमंतरिदूण संपहियसण्णियासवियप्पु-  
प्पत्तीदो । एत्तो उत्ररिमसण्णियासवियप्पट्टाणाणि पहिलोमेण णिरंतगमुप्पाइय घेत्तव्वाणि  
जाव मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिं बंधिय सव्वजहण्णपंडिहगग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय मिच्छ-  
त्तुक्कस्सद्विदिं बंधिय द्विदो त्ति । एवं णीदे सोलसमपरूवणा समत्ता होदि । एदे सण्णि-  
यासवियप्पा सव्वे वि पुणरुत्ता पढमपरूवणाए उप्पण्णाणं चेवुप्पत्तीदो । तदो पढमरूवणा

करना चाहिये । पुनः शेष तीनों ही अच्छोका पहलके समान संचार करके उन्हें अपनी अपनी पंक्तिमें  
अन्तको प्राप्त कराना चाहिये । इस प्रकार करने पर स्थितिबन्धापसरणासे उत्पन्न हुए सभी  
सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त हो जाते हैं । पुनः शेष विकल्प नाना जीवोंके उद्वेलनाकां आश्रय लेकर  
उत्पन्न करना चाहिये । इस प्रकार उत्पन्न करने पर पन्द्रहवें प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३६. अब सोलहवें प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक  
स्थितिनियेकसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक सन्निकर्षविकल्प  
होता है । सम्यक्त्वकी तीन समय कालप्रमाण दो नियेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके बन्ध होने पर दूसरा सन्निकर्षविकल्प होता है । सम्यक्त्वकी चार समयप्रमाण तीन  
नियेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर तीसरा सन्निकर्षविकल्प  
होता है । इसी प्रकार आगे जाकर एक समय कम आवलीप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक समय कम आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं । पुनः  
एक आवली अधिक अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम कालप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं, क्योंकि  
पल्योपमके असंख्यातवें भागको अन्तरित करके वर्तमानकालीन सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न हुए हैं ।  
इसी प्रकार आगे भी उपरिम सन्निकर्षविकल्पस्थानोंको प्रतिलोमपद्धतिसे निरन्तर उत्पन्न करके  
तब तक ग्रहण करना चाहिये जब तक मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदन्तर  
मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके सबसे जघन्य कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य  
कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बन्ध करनेवाला प्राप्त होवे । इस प्रकार  
सन्निकर्षविकल्पोंके ले जाने पर सोलहवें प्ररूपणा समाप्त होती है ।

शंका—सभी सन्निकर्षविकल्प पुनरुक्त हैं, क्योंकि पहली प्ररूपणामें उत्पन्न करके बतलाये

चेव कायव्वा, ण विदियादिपरूवणाओ चि ? ण एस दोसो, सणियासवियप्पाणधुप्यत्ति-  
वियप्पपरूवणाह' तपरूवणादो । एवं सम्मामिच्छत्तास्स वि वत्तव्वं, विसेसाभावादो ।

\* सोलसकसायाणं किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७३७. सुगममेदं ?

\* उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७३८. यदि मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए वज्जमाणाए सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदि-  
वंधो होज्ज तो उक्कस्सा । अह ण होज्ज तो अणुक्कस्सा । उक्कस्ससंकिलेसे संते किमहुं

गये सन्निकर्षविकल्पोको ही आगेकी प्ररूपणाओंमें उत्पन्न करके बताया गया है, अतः पहली  
प्ररूपणा ही करनी चाहिये, द्वितीयादि प्ररूपणाएँ नहीं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उत्पन्न किये  
जा सकते हैं इसका कथन करनेके लिये उन द्वितीयादि प्ररूपणाओंका कथन किया है ।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्षविकल्प कहना चाहिये क्योंकि सम्यक्त्वकी  
प्ररूपणासे सम्यग्मिथ्यात्वकी प्ररूपणामे कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—पन्द्रहवीं प्ररूपणा चार संयोगी है जो दो प्रकारसे बतलाई है । पहला प्रकार  
तो स्पष्ट है किन्तु दूसरे प्रकारमे कुछ विशेषता है जिसका यहाँ खुलासा किया जाता है । एक समय  
क्रम ध्रुवस्थितिसे न्यून मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके जितने समय हो उनकी एक एक करके  
पंक्तिरूपसे स्थापना करे । अनन्तर अपने-अपने उत्कृष्ट कालोंमेंसे जघन्य कालके घटाने पर जो  
प्रतिभनकाल, सम्प्रकत्वकाल और मिथ्यात्वकालके समयोंका प्रमाण आवे उनकी भी प्रथक-प्रथक  
तीन पंक्तियों करे । तदनन्तर अन्तिम पंक्तिके समयोंकी गिनती कर ले । तदनन्तर तृतीय पंक्तिके  
समयोंकी गिनती करे । तदनन्तर दूसरी पंक्तिके समयोंकी गिनती करे । इस प्रकार गिनती करनेसे  
इन तीनों पंक्तियोंके समयोंकी जितनी संख्या हो उतना प्रथम पंक्तिके समयोंमेंसे घटा दे । तद-  
नन्तर दूसरी और तीसरी आदि बार भी यही क्रम चालू रखे । इस प्रकार इस क्रमके करनेसे  
ध्रुवस्थिति पर्यन्त कितने सन्निकर्ष विकल्प होते हैं उनका प्रमाण आ जाता है । तथा इसके आगेके  
शेष विकल्प नाना जीवोंकी उद्देलनाकी अपेक्षा प्राप्त होते हैं । इस प्रकार इस प्ररूपणाके द्वारा कुल  
सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त हो जाते हैं । सोलहवीं प्ररूपणामे सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण  
जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त प्रतिलोम क्रमसे सन्निकर्ष विकल्प उत्पन्न करके बतलाये  
गये हैं । इस प्रकार यद्यपि पूर्वमे सोलह प्ररूपणाएँ बतलाई हैं पर उनसे सन्निकर्ष विकल्पोंमें  
न्यूनाधिकता नहीं आती । ये प्ररूपणाएँ तो केवल सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उत्पन्न किये  
जा सकते हैं इसमें चरितार्थ है । इनके कथन करनेका अन्य कोई प्रयोजन नहीं है । इसी  
प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिकी अपेक्षासे भी सन्निकर्ष विकल्प जानने चाहिये ।

\* मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषायोंकी क्या उत्कृष्ट स्थिति  
होती है या अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ?

§ ७३७. यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है ।

§ ७३८. यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका बन्ध होता है तो उत्कृष्ट स्थिति होती है । और यदि नहीं होता है तो अनुत्कृष्ट

सव्वकम्माणमकमेणुक्कस्सट्ठिदिबंधो ण होदि ? ण, सगसगविसेसपच्चएहि विणा उक्कस्स-  
संकिलेसमेत्तेण चव सव्वपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिबंधाभावादो । सव्वकम्माणं जे विसेसपच्चया  
तेसिमकमेण संबवो किण्ण होदि ? को एवं भणदि ण होदि त्ति, किं तु कयाइ होदि,  
सव्वकम्माणमकमेण कम्मिह वि काले उक्कस्सट्ठिदिबंधुवलंभादो । कयाइ ण होदि, कम्मिह  
वि काले तदणुवलंभादो । के विसेसपच्चया ? जिणपडिमालयसंघाइरियपवयणपडिज्जल-  
दादओ असंखेज्जलोगमेत्ता ।

§ ७३९. अणुक्कस्सवियप्पदुप्पायणद्वमुत्तरसुरां भणदि ।

\* उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण पल्लिदोवमस्स असंखे-  
ज्जदिभागोपूणा त्ति ।

§ ७४०. तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्स-  
ट्ठिदिं बंधदि । एवं गंतूण समयूणावाहाकंडएणुक्कस्सट्ठिदिं पि बंधदि । किया-  
वाहाकंडयं णाम ? उक्कस्सावाहं विरलेज्जण उक्कस्सट्ठिदिं समखंडं करिय विरलणरूवं

स्थिति होती है ।

**शंका**—उत्कृष्ट संक्लेशके रहते हुए एक साथ सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि अपने अपने स्थितिवन्धके विशेष कारणोंको छोड़कर केवल उत्कृष्ट संक्लेशमात्रसे सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है ।

**शंका**—सब कर्मोंके जो विशेष प्रत्यय हैं उनका एक साथ पाया जाना क्यों संभव नहीं है ?

**समाधान**—ऐसा कौन कहता है कि उनका एक साथ पाया जाना संभव नहीं है । किन्तु यदि सब प्रत्यय एक साथ होते हैं तो कदाचित् होते हैं, क्योंकि सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध किसी कालमें पाया भी जाता है । और कदाचित् सब प्रत्यय नहीं भी होते हैं, क्योंकि सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध किसी कालमें नहीं भी पाया जाता है ।

**शंका**—वे विशेष प्रत्यय कौन हैं ?

**समाधान**—जिन प्रतिमा, जिनायल, संघ, आचार्य और प्रवचनके प्रतिकूल चलना आदि असंख्यात लोकप्रमाण विशेष प्रत्यय हैं ।

§ ७३६. अब अनुत्कृष्ट विकल्पोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पन्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७४०. उसका खुलासा इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जीव सोलह कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है । इस प्रकार आगे जाकर वह जीव एक समय कम आवाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको भी बाँधता है ।

**शंका**—आवाधाकाण्डक किसे कहते हैं ?

पडि दिण्णे तत्थेगख्वधरिदमाबाहाकंडओ णाम । तत्थ एगसमयमादिं कादूण जाव समयूणाबाहाकंडओ चि ताव कसायाणमणुक्कस्सद्विदिसंतवियप्पा होंति । संपुण्णाबाहाकंडयमेत्ता किण्ण होंति ? ण, एकस्स कम्मस्स उक्कस्सद्विदीए बज्जमाणाए सव्वकम्माणं वज्जमाणाणमुक्कस्साबाहाए चेव तत्थ संबवादो । तं कुदो णव्वदे ? गुरूवएसदो द्विदिवंधाणसुत्तादो य ।

❀ इत्थि-पुरिसवेद-हस्स-रदीणं णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७४१. कुदो ? सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिवंधे संते एदासिं चतुण्हं पयडीणं वंधाभावादो । ण च वंधेण विणा अवद्विदकम्मसेसु कसायाणमुक्कस्सद्विदी वंधावलियाए

**समाधान**—उत्कृष्ट आवाधाका विरलन करके और विरलित राशिके प्रत्येक एक पर उत्कृष्ट स्थितिको समान खण्ड करके देयरूपसे दे देने पर एक विरलनके प्रति जो राशि प्राप्त होती है उतनेको एक आवाधाकाण्डक कहते हैं ।

उनमें कवायोके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके विकल्प एक समयसे लेकर एक समय कम आवाधाकाण्डक प्रमाण होते हैं ।

**शंका**—कवायोके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके विकल्प संपूर्ण आवाधाकाण्डकप्रमाण क्यों नहीं होते हैं ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि एक कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर बंधनेवाले सभी कर्मोंकी उत्कृष्ट आवाधा ही वहाँ पर संभव है ।

**शंका**—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—गुरूपदेशसे जाना जाता है और स्थितिवन्धस्थानके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है ।

**विशेषार्थ**—ऐसा नियम है कि किसी एक कर्मके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय बंधनेवाले सब कर्मोंकी आवाधा उत्कृष्ट ही होती है किन्तु स्थितिमें फरक भी रहता है । वात यह है कि आवाधाके एक एक विकल्पके प्रति पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्प प्राप्त होते हैं, अतः उस समय बंधनेवाले सब कर्मोंकी स्थिति उत्कृष्ट ही होनी चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है । जिनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके कारण पाये जाते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति होती है और जिनके उत्कृष्ट स्थितिवन्धके कारण नहीं पाये जाते हैं उनकी स्थिति अनुत्कृष्ट होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्यके असंख्यातवें भाग कम तक हो सकती है । यही कारण है कि यहाँ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय सोलह कवायोकी स्थिति उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों प्रकारकी बतलाई है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विकल्प एक समय कम आवाधाकाण्डक प्रमाण बतलाये हैं । यहाँ आवाधाकाण्डक प्रमाण विकल्पोंमेंसे उत्कृष्ट स्थितिका एक विकल्प कम कर दिया है ।

❀ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ७४१. क्योंकि सोलह कवायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय इन चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है । यदि कहा जाय कि जिन कर्मोंका बन्ध नहीं हो रहा है किन्तु सत्तामे स्थित हैं

ऊणा संकमदि 'बंधे संकमदि' चि सुचेण सह विरोहादो । ण च कसायट्टिदिं सगुवरि संकंतं मोत्त ण सगबंधेणेदासिं चटुण्हं पयडीणमुक्कस्सट्टिदिसंतं होदि; दस-पण्णारस-सागारोवमकोडाकोडिमेत्तट्टिदीणमावल्लियुण्णचालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तविरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडा-कोडि चि ।

§ ७४२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिं बंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदं बंधाविय बंधावल्लियादिककंतं कसायट्टिदिं उक्कस्समित्थिवेदम्मि संकामिदे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तस्समए मिच्छरं णियमा अणुक्कस्सं, तत्थ तस्सुक्कस्सट्टिदिवंधाभावादो । तदो अंतोमुहुत्तमच्छिय संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्स-ट्टिदीए पवद्दाए त्काले इत्थिवेदट्टिदी अप्पणो उक्कस्सट्टिदिं पेक्खिवदूण अंतोमुहुत्तूणा

उनमे बन्धावलिसे कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण हो जायगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर 'बंधे संकामदि' इस सूत्रके साथ विरोध आता है । यदि कहा जाय कि कषायकी स्थितिका इनमें संक्रमण होकर जो इनकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है उसे छोड़कर अपने बन्धसे इन चारों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिस्त्त्व हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि दस और पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंके एक आवलीकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होनेमें विरोध आता है ।

विशेषार्थ—संक्रमणके पाँच भेद हैं । इनमेंसे अधःप्रवृत्त संक्रम जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें ही अन्य सजातीय प्रकृतिका होता है । किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः सोलह कषायोंका पहले उत्कृष्टस्थिति बन्ध करावे और एक आवलि बाद स्त्रीवेद आदिका बन्ध करावे हुए उनमें एक आवलि कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण करावे । पुनः अन्तमुहूर्तमें उत्कृष्ट संक्षेपको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । इस प्रकार यह सब व्यवस्था देखनेसे विदित होता है कि जिस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है उस समय स्त्रीवेद आदिकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी देखते हुए अन्तमुहूर्त कम होती है । यहाँ बन्धकी अपेक्षा इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होनेका प्रश्न इसलिए नहीं उठता है, क्योंकि बन्धसे इनका उत्कृष्ट स्थिति स्त्त्व न प्राप्त होकर संक्रमणसे ही उत्कृष्ट स्थिति स्त्त्व प्राप्त होता है । इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना होता है और उत्कृष्ट स्थितिस्त्त्व कितना होता है यह स्पष्ट ही है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी तक होती है ।

§ ७४२. उसका खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी बांधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके समयमें ही जो स्त्रीवेदका बन्ध करके बन्धावल्लिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदमे संक्रमण करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । और उस समय मिथ्यात्व नियमसे अनुत्कृष्ट होता है, क्योंकि वहाँ पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है । तदनन्तर अन्तमुहूर्त ठहर कर और संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी

होदि । एस वियप्पो सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिं बंधिदूणिगतियवेदम्मि संकामिदे लद्धो । पुणो अण्णेगेण जीवेण सोलसकसायाणं वद्धसमयूणुक्कस्सद्विदिणा पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदं बंधमाणेण तस्सुवरि संकामिदबंधावलियादिककंतकसायद्विदिणा तेण इत्थिवेदस्स समयूणुक्कस्सद्विदिधारएण तत्तो उवरि अवद्विदमंतोमुहुत्तमच्चिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवद्धाए एसो इत्थिवेदस्स विदियवियप्पो होदि, पुव्वुत्तद्विदिं पेक्खिदूण समयूणत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण सोलसकसायाणं वद्धसमयूणुक्कस्सद्विदिणा पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधमाणेण तदुवरि संकामिदबंधावलियादिककंतकसायद्विदिणा अवद्विदमंतोमुहुत्तमच्चिय उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवद्धाए इत्थिवेदस्स अण्णो वियप्पो होदि; पुव्वुत्तद्विदिं पेक्खिदूण दुसमयूणत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण वद्धतिसमयूणसोलसकसायुक्कस्सद्विदिणा पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधतेण तदुवरि संकामिदबंधावलियादिककंतकसायद्विदिणा अवद्विदमंतोमुहुत्तमच्चिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवद्धाए इत्थिवेदस्स अण्णो वियप्पो होदि; पुव्वुत्तद्विदिं पेक्खिदूण तिसमयूणत्तादो । एवं चट्ठसमयूणपंचसमयूणादिकपेण सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिं बंधाविय पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधाविय बंधावलियादिककंतकसायद्विदिमित्थिवेदसरूवेण संकामिय मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिं

देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यह विकल्प सोलह कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर उसका स्त्रीवेदमे संक्रमण कराने पर प्राप्त होता है । पुनः जिसने सोलह कषायोकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक जीव जब प्रतिभग्न होनेके समयमें ही स्त्रीवेदका बन्ध करके उसमे बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण करता है तब वह स्त्रीवेदकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका धारक होता हुआ इसके आगे अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है । उस समय उसके स्त्रीवेदका यह दूसरा विकल्प होता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति एक समय कम है । पुनः जिसने सोलह कषायोकी दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और प्रतिभग्न होनेके समयमें स्त्रीवेदका बन्ध करते हुए उसमे बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया है ऐसा कोई एक अन्य जीव अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उस समय उसके स्त्रीवेदका अन्य विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति दो समय कम है । पुनः जिसने सोलह कषायोकी तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और प्रतिभग्न होनेके समयमें स्त्रीवेदका बन्ध करते हुए उसमे बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया है ऐसा कोई एक अन्य जीव अवस्थित अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उस समय उसके स्त्रीवेदका एक अन्य विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति तीन समय कम है । इसी प्रकार चार समय कम, पांच समय कम इत्यादि क्रमसे पहले सोलह कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके तदनन्तर प्रतिभग्न समयमें स्त्रीवेदका बन्ध कराके और बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण कराके तदनन्तर अवस्थित अन्तर्मुहूर्त



बंधाविय ओदारेदव्वं जाव आबाधाकंडएणुणं ति ।

§ ७४३. संपहि आबाहाकंडएणुण्णित्थिवेदद्विदीए इच्छिज्जमाणाए सोलसकसायाणमंतोमुहुत्तेणुणेण आबाहाकंडएणुण्णकस्सद्विदिं वंधिय पडिहज्जिदुणित्थिवेदे बज्जमाणाे बंधावलियादीदकसायद्विदिमित्थिवेदसरूवेण संकामिय अब्बद्विमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पबद्धाए तक्काले इत्थिवेदमपणो ओघुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण एगाबाहाकंडएणुणं होदि । संपहि एदस्साबाहाकंडयस्स हेट्ठा जं द्विदिमिच्छदि तिस्से द्विदीए उवरि सोलसकसायद्विदिमंतोमुहुत्तब्भहियं बंधाविय पुच्चिल्लविहाणं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव इत्थिवेदपाओग्गसव्वजहणमंतोकोडाकोडि ति । एवं पुरिसवेद-हस्स-रदीणं पि परूवेदव्वं, विसेसाभावादो ।

✽ एवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुग्गुंछाणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

§ ७४४. सुगममेदं ।

✽ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७४५. मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए बज्जमाणाए जदि सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिबंधो णत्थि तो णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुग्गुंछाणं पि णत्थि उक्कस्सद्विदिसंतकम्मं, कसाएहिंतो एदासिं पयडीणमुक्कस्सद्विदिसंतुप्पत्तीदो । मिच्छत्त-सोलसकसायाणकालके बाद उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके एक आबाधाकाण्डकसे न्यून स्थितिके प्राप्त होने तक घटाते जाना चाहिये ।

§ ७४३ अब आबाधाकाण्डकसे कम स्त्रीवेदकी स्थितिके इच्छित होनेपर सोलह कषायोंकी अन्तर्मुहूर्त कम आबाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और प्रतिभ्रम होकर स्त्रीवेदका बन्ध करते समय बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण करके तदनन्तर अवस्थित अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक आबाधाकाण्डक कम होती है । अब इस आबाधाकाण्डकके नीचे स्त्रीवेदकी जो स्थिति इच्छित हो उस स्थितिसे सोलह कषायोंकी स्थितिका अन्तर्मुहूर्त अधिक बन्ध कराके पूर्वोक्त विधिको जानकर उसके योग्य स्त्रीवेदकी सबसे जघन्य अन्तःकोडाकोडी स्थितिके प्राप्त होने तक स्थिति घटाता जावे । इसी प्रकार पुरुषवेद, हास्य और रतिका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि उसमे इनमे कोई विशेषता नहीं है ।

✽ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थितिभिक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७४४. यह सूत्र सुगम है ।

✽ उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७४५. मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय यदि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है तो नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म नहीं होता है, क्योंकि कषायोसे इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होती है । मिथ्यात्व और

मुक्कस्सद्विदिवंधे संते वि एदासिं पयडीणमुक्कस्सद्विदिसंतकम्मं भयणिज्जं; वंधावलि-  
 ञ्मंतरे वद्धकसायउक्कस्सद्विदीए संक्रमाभावाद्दो । वंधावलिआदिककंतकसायसमयपवद्धुक्कस्स-  
 द्विदीए एदासिं पयडीणमुवरि संकंतावत्थाए जदि मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधो होदि तो  
 मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिविहत्तीए सह एदासिं पयडीणमक्कस्सद्विदिविहत्ती होदि । एवं  
 होदि ति काऊण जइवसहभडारएण उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा होदि ति भणिदं ?

❖ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणभादिं काडूण जाव वीससागरोवम-  
 कोडाकोडीओ पल्लिदोवमस्स असखेज्जदिभागेण ऊणाओ त्ति ।

§ ७४६. एत्थ ताव णवुंसयवेदमस्सिदूण सुत्तयविवरणं कस्सामो । तं जहा-  
 मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिं वंधिय सोलसकसायाणं समयणुक्कस्सद्विदिं वंधिय पुणो वंधावलि-  
 यादिककंतकसायद्विदीए णवुंसयवेदसरूवेण संकामिज्जमाणावत्थाए जदि मिच्छत्तस्स  
 उक्कस्सद्विदिवंधो होदि तो णवुंसयवेदस्स अणुक्कस्सद्विदिविहत्ती; सगोघुक्कस्सद्विदिं  
 पेक्खिदूण समयणुत्तादो । पुणो अणणेण जीवेण कसायाणं दुसमऊणक्कस्सद्विदिं वंधिय  
 वंधावलिआदिककंतकसायद्विदीए णवुंसयवेदसरूवेण संकामिदाए तत्थ मिच्छत्तुक्कस्स-  
 द्विदिवंधे संते णवुंसयवेदस्स अणुक्कस्सद्विदिविहत्ती, सगोघुक्कस्सं पेक्खिदूण दुसमयूण-  
 तादो । एवमेदेण कमेण सोलसकसायद्विदिं तिसमयूणादिसरूवेण वंधाविय वंधावलि-  
 यादिककंतकसायद्विदी णवुंसयवेदसरूवेण संकामिय संकंतसमए मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिं

सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हाने पर भा इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म  
 भजनीय है, क्योंकि वंधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धावलीके भीतर संक्रमण नहीं होता है ।  
 तथा बन्धावलिसे रहित कषायके समयप्रचद्वोकी उत्कृष्ट स्थितिका इन प्रकृतियोंमें संक्रमण होते  
 समय यदि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है तो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके साथ  
 इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय  
 इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है ऐसा समझ कर यतिवृषभ भडारकने  
 'उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट' यह कहा है ।

❖ अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमका  
 असंख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ७४६. यहा पहले नपुंसकवेदका आश्रय लेकर सूत्रके अर्थका खुलासा करते हैं । वह इस  
 प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और सोलह कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट  
 स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण  
 होनेके समय यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तो नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति-  
 बिभक्ति होती है, क्योंकि उस समय अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए वह एक समय कम होती  
 है । पुनः अन्य जीवके कषायकी दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर वंधावलिसे रहित कषायकी  
 स्थितिका नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण होते समय यदि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है तो  
 उस समय उसके नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है, क्योंकि अपनी ओर उत्कृष्ट  
 स्थितिको देखते हुए वह दो समय कम होती है । इस प्रकार इसी क्रमसे सोलह कषायोंकी  
 स्थितिका तीन समय कम आदिरूपसे बन्ध करके और बन्धावलीसे रहित कषायकी स्थितिका

बंधाविय ओदारेदव्वं जाव णवुंसयवेदस्स ओघुकस्सट्ठिदी एगेणावाधाकंडएण्णा जादा त्ति ।

§ ७४७. एदिस्से ट्ठिदीए उप्पत्तिविहाणं वुच्चदे । तंजहा—मिच्छत्त-सोलसकसायाणमावाहाकंडएण्णउकस्सट्ठिदिमात्रलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उकस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुकस्सट्ठिदीए पवद्धाए तक्काले आवाधाकंडएण्णावलियादीदकसायट्ठिदि णवुंसयवेदस्सुवरि संकामिय मिच्छत्तुकस्सट्ठिदीए पवद्धाए णवुंसयवेदस्स अणुकस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । कुदा ? आवलियम्भहियआवाहाकंडएण्णचत्तालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदितादो । एवं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव बीसंसागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदि त्ति ।

§ ७४८. संपहि वीसंसागरोवमकोडाकोडिममाणे इच्छिज्जमाणे सोलसकसायाणमावलियम्भहियवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिभावलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उकस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुकस्सट्ठिदिबज्जमाणसमए पुच्चुत्तावलियादीदकसायट्ठिदीए णवुंसयवेदस्सरूवेण संकंताए णवुंसयवेदट्ठिदी अणुकस्सटा होदि; वीससागरोवमकोडाकोडिममाणत्तादो । पुणो समयूणावाहाकंडयमेत्तट्ठिदिमप्पणो बंधमस्सिदूणोदारिय गेण्हदव्वं । एवमरदि-सोम-भय-दुग्गुञ्जणं पि वत्तव्वं, वीससागरोवमकोडाकोडिट्ठिदिबंधादीहि तत्तो विसेसाभावादो । एवं मिच्छत्तेण सह सव्वपयडीणं सण्णियासो गदो ।

नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण कराके तथा संक्रमणके समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके नपुंसकवेदकी ओघ उत्कृष्ट स्थिति एक आवाधाकाण्डक कम होने तक घटाते जाना चाहिये ।

§ ७४९. अब इस स्थितिके उत्पन्न होनेकी विधि कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी एक आवाधाकाण्डक न्यून उत्कृष्ट स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके उसी समय एक आवाधाकाण्डक कम और एक आवलि रहित कषायकी स्थितिका नपुंसकवेदमें संक्रमण कराने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्ति होती है, क्योंकि यह स्थिति एक आवलि अधिक आवाधाकाण्डक कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है । इसी प्रकार जानकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक नपुंसकवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये ।

§ ७५०. अब बीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिके इच्छित होने पर सोलह कषायोंकी एक आवलि अधिक बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय पूर्वोक्त एक आवलिसे रहित कषायकी स्थितिका नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण होने पर नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि यह स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर है । पुनः अपने बन्धकी अपेक्षा एक समय कम आवाधाकाण्डक प्रमाण स्थितिको घटाकर ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध आदिकी अपेक्षा नपुंसकवेदसे इनमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

❁ सम्मत्तस्स उक्कस्सट्टिदिविहृत्तियस्स मिच्छत्तास्स ट्टिदिविहृत्ती  
किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

§ ७४९. सुगमपेदं ।

❁ णियमा अणुक्कसा ।

§ ७५०. कुदो ? सम्मादिट्टिमि मिच्छत्तस्स वंधाभावेण तत्थ तदुक्कस्सट्टिदीए  
असंभवादो । ण च पढमसमयवेद्दयसम्मादिट्टि धोत्तण्णत्थ सम्मत्तस्सुक्कस्सट्टिदि-  
विहृत्ती होदि, मिच्छादिट्टिमिह अपडिग्गहसम्यत्तकम्मे सम्मत्तस्सुवरि मिच्छत्तट्टिदीए  
संक्रमाभावो ।

❁ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणा ।

§ ७५१. कुदो ? मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदि वंधिय पडिहज्जिदूण अंतोमुहुत्तमच्चिय  
वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए मिच्छत्तट्टिदीए सम्मत्तस्सुवरि संक्रताए सम्मत्तस्सु-  
क्कस्सट्टिदिविहृत्ती होदि, तत्थ मिच्छत्तट्टिदीए सगोघुक्कस्सट्टिदि पेक्खदूण अंतोमुहु-  
त्तूणत्तुवलंभावो ।

❁ णत्थि अण्णो वियप्पो ।

§ ७५२. सम्मत्तट्टिदीए उक्कस्सियाए संतीए जहा अण्णेसिं कम्माणमणुक्कस्सट्टिदी  
अण्येयवियप्पा तथा मिच्छत्ताणुक्कस्सट्टिदी णाणेमवियप्पा; सम्मत्तुक्कस्सट्टिदीए एय-  
वियप्पत्तण्णहाणुववत्तीदो ।

\* सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति  
क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७४९. यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७५०. क्योंकि सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वका बन्ध नहीं होता, अतएव वहाँ उसकी उत्कृष्ट स्थिति  
नहीं हो सकती और प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिको छोड़कर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्ति अन्यत्र होती नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्व प्रकृति पतद्ग्रहणनेके अयोग्य है,  
अतः उसके सम्यक्त्वमे मिथ्यात्वकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है ।

§ ७५१. क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करके और मिथ्यात्वसे निवृत्त होकर  
तथा वहाँ अन्तर्मुहूर्तकाल तक ठहरकर जो वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समयमे मिथ्यात्वकी  
स्थितिका सम्यक्त्वमे संक्रमण करता है उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । पर  
वहाँ मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम पाई जाती है ।

\* यहाँ मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका इससे अतिरिक्त अन्य विकल्प  
नहीं होता ।

§ ७५२. सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए जिस प्रकार अन्य कर्मोंको अनुत्कृष्ट स्थिति  
अनेक प्रकारकी होती है उस प्रकार मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अनेक प्रकारकी नहीं होती है,

❀ सम्मामिच्छत्तद्विद्विहृत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

§ ७५३. सुगममेदं ।

❀ णियमा उक्कस्सा ।

§ ७५४. कुदो ? अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तमिच्छत्तद्विदीए पढम-समयवेदगसम्मादिद्विम्मि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसरूवेण जुगवं संकतिदंसणादो । सम्मामिच्छत्तसुदयणिसेगो सगसरूवेण णत्थि; थिवुक्कसंकमेण सम्मत्तुदयणिसेगसरूवेण परिणदत्तादो । तम्हा सम्मत्तुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण सम्मामिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए एगणिसेगेण्णाए होदव्वं । ण च उदयणिसेगस्स सगसरूवेण धरणद्वमद्दावीससंत-कम्मियमिच्छाइद्वी तप्पाओगुक्कस्समिच्छत्तद्विदिसंतकम्मिओ सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जावेहुं सविकज्जइ, सम्मामिच्छाइद्विम्मि दंसणतियस्स संकमाभावेण दोणं पि अणुक्कस्सद्विदि-प्पसंगादो त्ति ? ण, उक्कस्सद्विदीए पक्कंताए कालं मोत्तूण णिसेयाणं पहाणत्ता-भावादो । कत्थ पुण णिसेयाणं पहाणत्तं ? जहण्णद्विदीए । तं कुदो णव्वदे ? छण्णो-कसायजहण्णद्विदीए अंतोमुहुत्तावद्वाणपरूवणसुत्तादो । ण कोइसंजल्लेण वियहिचारो,

अन्यथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्टस्थिति एक प्रकारकी नहीं बन सकती है ।

❀ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिध्यात्वकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७५३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ७५४. क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़कोड़ी सागरप्रमाण मिध्यात्वकी स्थितिका वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वरूपसे एक साथ संक्रमण देखा जाता है ।

शंका—सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यग्मिध्यात्वका उदयनिषेक अपने रूपसे उदयमें नहीं आता है, क्योंकि स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उसका सम्यक्त्वके उदयनिषेकरूपसे परिमणन हो जाता है । अतः सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक निषेक कम होनी चाहिये । यदि कहा जाय कि जिससे सम्यग्मिध्यात्वका उदयनिषेक अपने रूपसे प्राप्त हो जाय इसलिये अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिध्यादृष्टि जीवको तत्प्रायोग्य मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थान प्राप्त करा दिया जाय सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सम्यग्मिध्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता, अतः वहाँ दोनोंकी ही अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिमें कालको छोड़कर निषेकोंकी प्रधानता नहीं है ।

शंका—तो फिर निषेकोंकी प्रधानता कहाँ पर है ?

समाधान—जघन्य स्थितिमें ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—जह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त है इस बातका कथन करने-



द्विदिणा बंधावल्याइकंतकसायद्विदिसंकमेणुककस्सीकयणवणोकसाएण जहणपडि-  
हग्गद्धमच्छिय सम्भत्ते पडिवण्णे सम्भत्तुककस्सद्विदिविहत्ती होदि । तक्काले सोलस-  
कसाय-णवणोकसायाणुककस्सद्विदी अंतोमुहुत्तूणा; जहणपडिहग्गद्धाए अघद्विदिगलणाए  
गल्लिदत्तादो । मिच्छत्तुककस्सद्विदिवंधकाले सोलसकसायाणं समयूणुककस्सद्विदीए  
पवद्धाए अण्णा सोलसकसाय-णवणोकसायाणमणुककस्सद्विदी होदि; पुव्वद्विदिं पेक्खि-  
दूण समयूणत्तादो । एवं दुसमयूण-तिसमयूणादिकमेण ओदाररेद्वं जाव समयूणावाहा-  
कंडएणूणुककस्सद्विदि ति । तत्थ सव्वपच्छिमवियप्पो बुच्चदे । तंजहा—मिच्छत्तुककस्स-  
द्विदिवंधेण सह कसायाणं समयूणावाहाकंडएणूणुककस्सद्विदिं बंधिय अवद्विद-  
पडिहग्गद्धमधद्विदिगलणाए गालिय सम्भत्ते पडिवण्णे सोलसकसाय-णवणोकसायाणं  
द्विदी सगुककस्सद्विदिं पेक्खिदूण समयूणावाहाकंडएण जहणपडिहग्गद्धाए च ऊणा ।  
एत्तो हेट्ठा णोदाररेदुं सकिज्जह, ओदारिदे सम्भत्तुककस्सद्विदिविणासादो ।

❀ एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि ।

§ ७५८. जहा सम्भत्तुककस्सद्विदिणरोहं काऊण अवसेसकम्मद्विदीणं सणियासो  
कदो तथा सम्मामिच्छत्तुककस्सद्विदिणरोहं काऊण सेसकम्मद्विदीणं सणियासो कायवो,

बांधी है और बन्धावलीके बाद जिसने कपायकी स्थितिका संक्रमण करके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट  
स्थिति की है ऐसा अट्टारिस प्रकृतियोंका सत्कर्मवाला जीव यदि जघन्य प्रतिभग्नकाल तक  
मिध्यात्वमे रहकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ तो उस समय उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति  
होती है और उसी समय उसके सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त  
कम होती है, क्योंकि इसके जघन्य प्रतिभग्न काल अघःस्थितिगलनाके द्वारा गल चुका है । तथा  
मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सोलह कषायों की एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अन्य  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति एक समय कम है ।  
इसी प्रकार दो समय कम, तीन समय कम आदि क्रमसे एक समय कम आबाधा काण्डके न्यून  
उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थितिको घटाते जाना  
चाहिये । वहाँ अब सबसे अन्तिम विकल्प कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिध्यात्वके उत्कृष्ट स्थिति  
बन्धके साथ कषायोंकी एक समय कम आबाधाकाण्डके न्यून उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर  
जदन्तर अवस्थित प्रतिभग्नकालको अघःस्थितिगलनाके द्वारा गलाकर इस जीवके सम्यक्त्वके  
प्राप्त होने पर सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक  
समय कम आबाधाकाण्डके और जघन्य प्रतिभग्न काल प्रमाण कम होती है । यहाँ सोलह कषाय  
और नौ नोकषायोंकी स्थितिको इससे और कम नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इनकी स्थितिको  
इससे और कम करने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका विनाश हो जाता है ।

❀ इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियों  
की स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये ।

§ ७५९. जिस प्रकार सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर अर्थात् सम्यक्त्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए शेष कर्मोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहा उसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी

विसेसाभावादो ।

❀ जहा मिच्छत्तस्स तथा सोलसकसायाणां ।

§ ७५६. जहा मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिणिहंभणं काऊण सेसासेसभोहपयडिद्विदीणं सणियासो कदो तथा सोलसकसाएसु एगेकसायस्स उक्कस्सद्विदिणिहंभणं काऊण सेसकम्मद्विदीणं सणियासो कायव्वो; अविसेसादो ।

\* इत्थिवेदस्स उक्कस्सद्विदिविहृत्तियस्स मिच्छत्तस्स द्विदिविहृत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७६०. सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७६१. कुदो ? इत्थिवेदबंधकाले मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधाभावादो । ए च इत्थिवेदस्स बंधेण विणा द्विदीए उक्कस्सचं संभवइ, अपडिग्गहस्सिइत्थिवेदस्सुवरि बंधाव-  
लियाइक्कंतकसायुक्कस्सद्विदीए संकभाभावादो । तम्हा णियमा अणुक्कस्सा त्ति सुत्तं सुभासिदं ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा त्ति ।

उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष कर्मोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहना चाहिये ; क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियों की स्थितियोंका सन्निकर्ष कहा उसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियोंकी स्थितियोंका भी सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

§ ७५६. जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको रोक कर शेष सब मोह प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष किया है उसी प्रकार सोलह कषायोंमेंसे एक एक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको रोककर शेष कर्मोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये, क्योंकि इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है ।

स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके समय मिथ्यात्वकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७६१. क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिका बन्ध नहीं होता है । और स्त्रीवेदका बन्ध हुए विना उसकी स्थिति उत्कृष्ट हो नहीं सकती, क्योंकि अपतद्ग्रहरूप स्त्रीवेदमें बन्धावलिके बाद कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता है । इसलिये स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है यह सूत्र उचित ही कहा है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग कम स्थिति तक होती है ।



§ ७६२. तं जहा—मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदबंधावलियादिककंतकसायट्ठिदीए इत्थिवेदसरुवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्सु-कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तकाले मिच्छत्तं समयूणं होदि; उक्कस्सट्ठिदीदो अघट्ठिदि-गलणाए गल्लिदेगसमयत्तादो । संपहि सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिवंधकाले मिच्छत्तस्स-समयूणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधंतेण कसायट्ठिदीए तस्सरुवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तस्समए मिच्छत्तस्स अणुक्कस्स-ट्ठिदिविहत्ती; सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण दुसमयूणत्तादो । एवं तिसमयूणादिकमेण मिच्छत्तमोदारेयव्वं जाव आवाहाकंडएण्णट्ठिदिं पचं ति । पुणो वि आवाहाकंडयस्स हेट्ठा मिच्छत्तं समउणावलियमेत्तमोदरदि । तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमतो-सुहुत्तमेत्तमावलियमेत्तं वा कालं बंधंतेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदी वि समयूणावाहाकंडएण्णा बद्धा । पुणो पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधंतेण बंधावलियादीदकसायट्ठिदी तस्सरुवेण संकामिदा ताधे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । एवं पडिहग्गावलियमेत्तकाल-मित्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती चेव; बंधगद्धाए चरिमावलियमेत्तुक्कस्सट्ठिदीणं तत्थ संकंतिदंसणादो । मिच्छत्तं पुण पडिहग्गपढमसमए आवाहाकंडएण्णं विदिसमए तेण समयाहिण तदियसमए तेण दुसमयाहिण एवं णेदव्वं जाव पडिहग्गावलियचरिम-

§ ७६२. उसका खुलासा इस प्रकार है—जो मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्नकालके भीतर ही स्त्रीवेदका बन्ध करता हुआ बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण करता है उसके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । तथा उस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि इसकी उत्कृष्ट स्थितिसे अघःस्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है । अब सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय मिथ्यात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर प्रतिभग्न कालके भीतर स्त्रीवेदको बांधते हुए किसी जीवके कषायकी स्थितिके स्त्रीवेदरूपसे संकामित होने पर जिससमय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है उस समय मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए यह दो समय कम होती है । इसी प्रकार तीन समय कम इत्यादि क्रम से आवाधाकाण्डक प्रमाण कम स्थितिके प्राप्त होने तक मिथ्यात्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । तथा इसके बाद भी आवाधाकाण्डकके नीचे मिथ्यात्वकी स्थितिको एक समय कम आवलिप्रमाण और कम करना चाहिये । खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको एक अन्तर्मुहूर्तकाल तक या एक आवलि कालतक बांधते हुए किसी जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति भी एक समयकम आवाधाकाण्डकप्रमाण न्यून बांधी । पुनः प्रतिभग्नकालके भीतर स्त्रीवेदका बंध करते हुए उस जीवने बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण किया तब उस जीवके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । इस प्रकार प्रति-भग्नकालके एक आवलि काल तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति ही होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धकालमें अन्तिम आवलिप्रमाण कषायकी उत्कृष्ट स्थितियोंका स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है । तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रतिभग्नकालके पहले समयमें तो एक आवाधाकाण्डकप्रमाण कम होती है, दूसरे समयमें एक समय अधिक एक आवाधाकाण्डकप्रमाण

समञ्जो त्ति । णवरि तत्थ मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदी समयूणावखलियञ्चहियआवाहाकडएण ऊणा होदि । कुदो ? वंघेण समयूणावाहाकडएणूमिच्छत्तस्स ट्ठिदीए पुणो वि अव-  
द्विदिगलणाए आवखलियमेत्तट्ठिदीणं परिहाणिदंसणादो ।

❀ सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७६३. सुगमभेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७६४. मिच्छादिद्विम्मि सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदीए अभावादो । ए च इत्थिवेदस्स मिच्छादिद्विं मोत्तूण सम्माइद्विम्मि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि; तत्थ वंधाभावोणित्थिवेदस्स पडिहग्गत्ताभावादो कसायट्ठिदीए वि तत्थ उक्कस्सत्ताभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा द्विदि त्ति ।

§ ७६५. तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं घेत्तूण तत्थ सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिओ होदूण सम्मत्तेणंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण सच्चजहण्णेण कालेण संकिलेसं गंतूण सोलसकसायाणमेगसमयमावखलियमेत्तकालं

कम होती है और तीसरे समयमें दो समय अधिक एक आवाधाकाण्डकप्रमाण कम होती है । इस प्रकार प्रतिभग्न कालकी एक आवलिके अन्तिम समय तक मिथ्यात्वकी स्थिति घटते जाना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वहाँ पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम आवलिप्रमाण कालसे अधिक एक आवाधाकाण्डक कालप्रमाण कम होती है, क्योंकि वन्धकी अपेक्षा एक समय कम आवाधाकाण्डक कालप्रमाण कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा आवलिप्रमाण स्थितियोंकी हानि और देखी जाती है ।

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति विभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७६४. क्योंकि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जाती है । यदि कहा जाय कि मिथ्यादृष्टिको छोड़कर सम्यग्दृष्टिके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति रही आवे सो भी बात नहीं है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके स्त्रीवेदका वन्ध नहीं होता है, अतः वहाँ पर स्त्रीवेदका पतद्ग्रहणना नहीं पाया जाता है । तथा वहाँ पर कपायकी स्थिति भी उत्कृष्ट नहीं होती है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर एक स्थिति तक होती है ।

§ ७६५. उसका खुलासा इस प्रकार है—जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर, और प्रतिभग्न होकर, तदनन्तर सम्यक्त्वको ग्रहण करके, उसके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिका धारक होकर तथा सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर तदनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर और सबसे जघन्य कालके द्वारा संक्षोभकी पूर्ति करके सोलह कपार्यों-

वा उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहगपढमसमए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तक्काले सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताणमणुक्कस्सट्ठिदी; सणुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तू-एत्तादो । सेसं जहा मिच्छत्तू कस्सट्ठिदीए गिरुद्धाए सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताणं सण्णियासो कदो तहा इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदीए गिरुद्धाए वि तासिं पयडीणं ट्ठिदीए सण्णियासो कायव्वो; विसेसाभावो ।

❀ एवचरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति ।

§ ७६६, अंतोमुहुत्तूणुक्कस्सट्ठिदिंपहुडि जावेगा ट्ठिदिं त्ति सव्वट्ठिदीहि सह सण्णियासे पुव्वसुत्तेण संपत्ते तस्सापवाददहमेदं सुत्तमागदं । चरिमुव्वेल्लणकंडयम्म उक्कीरणद्धामेत्ताओ फालीओ होंति । एत्तियमेत्ताओ फालीओ होंति त्ति कुदो णव्वदे ? चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति एदम्हादो सुत्तादो । ण च एगसमएण ट्ठिदिखंडए पदंते संते 'चरिमफालीए ऊणा' त्ति णिहेसो जुज्जदे; एक्कम्मि चारिमा-चरिमववहाराभावो । होदु णाम फालीणं बहुत्तसिद्धी, ताओ उक्कीरणद्धामेत्ताओ त्ति कथं णव्वदे ? ट्ठिदिंकंडयणिवदणकालस्स उक्कीरणद्धाववएसण्णहाणुव्वत्तीदो । ण च

की एक समय तक या एक आवालि काल तक उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है उसके प्रतिमग्न होनेके प्रथम समयमे स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । तथा उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है; क्योंकि वह अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । आगे जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका रोक कर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी शेष स्थितियोंका सन्निकर्ष किया है उसी प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिको रोक कर भी उन प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये, क्योंकि दानोमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि वह अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति अन्तिम उद्वेलेना काण्डककी अन्तिम फालिसे न्यून होती है ।

§ ७६६, अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थितिक अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । इस प्रकार पूर्वे सूत्र वचनसे सब स्थितियोंके साथ सन्निकर्षके प्राप्त होने पर उसके अपवादके लिये यह सूत्र आया है । अन्तिम उद्वेलेनाकाण्डकमे उत्कीरणा काल प्रमाण फालियां होती हैं ।

शंका—इतनी फालियां होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—'चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा' इस सूत्र वचनसे जाना जाता है । यदि एक समयके द्वारा स्थितिकाण्डकका पतन स्वीकार किया जाय तो 'चरिमफालीए ऊणा' यह निर्देश नहीं बन सकता है, क्योंकि एकमें अन्तिम और अनन्तिम इस प्रकारका व्यवहार नहीं बन सकता है ।

शंका—फालियां बहुत होती हैं यह भले ही सिद्ध हो जाओ परन्तु वे उत्कीरणकाल प्रमाण होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—यदि फालियां उत्कीरण काल प्रमाण न मानी जायें तो स्थितिकाण्डकके पतन होनेके कालकी उत्कीरण काल यह संज्ञा नहीं बन सकती है । इससे जाना जाता है कि फालियां

द्विदिपदेसाणमुक्तीरणमकुणमाणए अद्धाए उक्कीरणद्धा त्ति ववएसो घड्दे । णाणत्थिया  
एसा सण्णा, आगमसव्वसण्णाणमत्थाणुगयाणमुवलंभादो । एदं सुत्तं देसाभासियं ति  
काऊण सव्वद्विदिकंडयाणि अंतोमुहुत्तेण णिवदंति त्ति घेत्तव्वं । ण समुग्घादग्द-  
केवल्लिद्विदिकंडएहि वियहिचारो; केवलीणमकेवलीहि साहम्भाभावादो ।

§ ७६७ चरिममुव्वेळणकंडयस्स चरिमफालीए जत्तिया णिसेया तत्तियमेत्तद्विदीओ  
मोत्तूण जत्तियाओ सेसद्विदीओ तत्तियमेत्ता चेव सण्णियासवियप्पा होंति । चरिम-  
फालिमेत्ता किण्ण लद्धा ? ण, तत्तियमेत्तद्विदीसु एगवारेण णिवदिदासु भिच्छत्तुक्कस्स-  
द्विदीए सह पादेक्कं तद्विदीणं सण्णियासाणुवलंभादो । ण तदुवरिमादिमुव्वेळणकंड-  
एहि वियहिचारो, तेसि कंडयाणमवद्विदआयामाभावेण सव्वणिसेगणं भिक्खत्तुक्कस्स-  
द्विदीए सह सण्णियासुवलंभादो । ण चरिमुव्वेळणकंडयम्मि जहण्णम्मि आयामं पडि  
अणियमो; तिकालविसयासेअजीवेसु चरिमुव्वेळणजहण्णकंडयायामस्स एगसरूवत्तादो ।  
एदं कुदो णव्वदे ? एदस्स सुत्तणिहेसस्स अण्णहाणुववत्तीदो ।

उत्कीरण कालप्रमाण होती हैं । तथा स्थितिगत प्रदेशकी उत्कीरणा नहीं करने पर कालको  
उत्कीरणकाल यह संज्ञा दी नहीं जा सकती । यदि कहा जाय कि यह संज्ञा निष्फल है, सो भी  
वात नहीं है, क्योंकि आगमिक सभी संज्ञाएं अर्थका अनुसरण करनेवाली होती हैं ।

यह सूत्र देशामर्षक है ऐसा समझकर सब स्थितिकाण्डकोका पतन अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा  
होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये । यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर समुद्घातगत केवलीके  
स्थितिकाण्डकोके साथ व्यभिचार आता है सो भी वात नहीं है, क्योंकि केवलियोंकी इतर  
छद्मस्थोंके साथ समानता नहीं पाई जाती है ।

§ ७६७ अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके जितने निपेक होते हैं उतनी स्थिति-  
योंको छोड़कर शेष जितनी स्थितियां हो उतने ही सन्निकर्ष विकल्प होते हैं ।

शंका—अन्तिम फालिप्रमाण सन्निकर्षविकल्प क्यों नहीं प्राप्त होते हैं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि उतनी स्थितियोंका एक वारमे पतन हो जाता है, इसलिये  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ उनमे से प्रत्येक स्थितिका सन्निकर्ष नहीं पाया जाता है ।

यदि कहा जाय कि इसप्रकार तो इसके ऊपरके उद्वेलनाकाण्डकसे लेकर प्रथम उद्वेलनाकाण्डक  
तक सभी उद्वेलनाकाण्डकोके साथ व्यभिचार हो जायगा, सो भी वात नहीं है, क्योंकि उन काण्डकोंका  
अवस्थित आयाम नहीं पाया जाता, इसलिये उनके सब निपेकोंका मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
साथ सन्निकर्ष बन जाता है । यदि कहा जाय कि जघन्य अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकमे आयामका  
कोई नियम नहीं है, सो भी वात नहीं है, क्योंकि त्रिकालवर्ती सब जीवोंमे जघन्य अन्तिम  
उद्वेलनाकाण्डकका आयाम एकसा ही होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रका निर्देश अन्यथा बन नहीं सकता था, इससे जाना जाता है कि  
जघन्य अन्तिम उद्वेलना काण्डकका आयाम एकसा होता है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रकरण यह है कि मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? इसका जो उत्तर दिया है उसका

भाव यह है कि नियमसे अनुकूल होती है, क्योंकि मिथ्यात्व आदिकी उच्छ्र स्थिति मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राप्त होती है और उक्त दोनों कर्मोंकी उच्छ्र स्थिति वेदकसम्बन्धदृष्टिके पहले समयमें सम्भव है, अतः मिथ्यात्व आदिकी उच्छ्र स्थितिके समय सम्यक्त्वं और सम्यग्मिथ्यात्वकी उच्छ्र स्थिति तो हो नहीं सकती। हाँ अनुकूल स्थिति अवश्य सम्भव है सो भी वह अन्तर्मुहूर्त कम उच्छ्र स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक जानना चाहिये। किन्तु इसका एक अपवाद है। वात यह है कि सब प्रकृतियोंके प्रथमादि स्थितिकाण्डक सम और विपम दोनों प्रकारके होते हैं। इसलिये उन स्थितिकाण्डकमें प्राप्त स्थितिविकल्पोंके साथ नाना जीवोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष वन जाता है। किन्तु अन्तिम जघन्य स्थितिकाण्डक एक समान होता है। अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व सम्बन्धी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिमें जितने निपेक सम्भव हैं उतने स्थितिविकल्प सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त होते, क्योंकि उनका पतन क्रमसे न होकर एक समयमें हो जाता है। इस पर एक स्थितिकाण्डकमें प्राप्त होनेवाली फालियों उत्कीरणकालकी सार्थकता और समुद्घातको प्राप्त हुए केवलीके स्थितिकाण्डके साथ आनेवाला व्यभिचारका निराकरण इनका विचार किया गया है। पहली और दूसरी वातका विचार करते हुए बतलाया है कि एक स्थितिकाण्डकमें एक फालि न होकर अनेक फालियाँ होती हैं। प्रमाण रूपमें 'एष्वरि चरिमुव्नेत्स्यकंड्यचरिमफालीए अण्ण' यही सूत्र उपस्थित किया गया है। इस सूत्रमें फालिके साथ चरम विशेषण आया है इससे प्रतीत होता है कि एक स्थितिकाण्डकमें अनेक फालियाँ होती हैं। अन्यथा फालिको चरम विशेषण देनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि एकमें चरम और अचरम यह व्यवहार नहीं वन सकता है। तो फिर वे कितनी होती हैं। इस शंकाके होने पर बतलाया है कि स्थितिकाण्डकका जितना उत्कीरण काल होता है उतनी फालियाँ होती हैं। इसका यह तात्पर्य है कि उत्कीरण कालके एक-एक समयमें एक-एक फालिका पतन होता है। यहाँ फालि शब्द फाँक इस अर्थमें आया है। जैसे लड़कीके चीरने पर उसमें अनेक फलक या स्तर निकलते हैं उसी प्रकार स्थितिकाण्डकका पतन होते समय विवक्षित स्थितिकाण्डकके अनेक स्तर या फलक हो जाते हैं। उनमेंसे एक-एक फलकका एक-एक समयमें पतन होता है। इस प्रकार इन फालियों के पतनमें कितना समय लगता है उस सब कालको उत्कीरणकाल कहते हैं। उत्कीरणका अर्थ उकीरना है और इसमें जो काल लगता है उसे उत्कीरणकाल कहते हैं। भावार्थ यह है कि एक स्थितिकाण्डकके पतनका काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। इसलिये उत्कीरण कालका प्रमाण भी इतना ही होता है। और एक स्थितिकाण्डकमें फालियों भी उक्तप्रमाण ही होती हैं। परन्तु प्रत्येक फालि स्थितिकाण्डकके आयामप्रमाण होती है। और तभी उसकी फालि यह संज्ञा सार्थक है। तीसरी वातका विचार करते हुए बतलाया है कि अकेवलियोंके साथ केवलियोंकी समानता करना ठीक नहीं। मतलब यह है कि संसारी जनोंको एक-एक स्थितिकाण्डकके पतनमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और समुद्घातगत केवलीको एक-एक समय ही लगता है। अब जब कि सब स्थितिकाण्डकोंका काल अन्तर्मुहूर्त मान लिया जाय तो यह वात केवलियोंके स्थितिकाण्डकमें घटित नहीं होती, इसलिये व्यभिचार दोष आता है। बस इसी शंकाका समाधान करते हुए यह बतलाया है कि केवलियोंकी छद्मस्थ जनोंके साथ समानता नहीं है। अर्थात् एक-एक स्थितिकाण्डकका काल जो अन्तर्मुहूर्त बतलाया है वह छद्मस्थ जनोंकी अपेक्षा बतलाया है समुद्घातगत केवलियोंकी अपेक्षा नहीं, इसलिये कोई दोष नहीं प्राप्त होता। समुद्घातगत केवलियोंके तो परिणामोंकी विशुद्धिके कारण एक-एक समयमें एक-एक स्थिति काण्डकका पतन हो जाता है। इस प्रकार इतने कथनका यह तात्पर्य है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके निषेकोंका एक साथ पतन होता है इसलिये उतने निपेक सन्निकर्षको नहीं प्राप्त होते।

❀ सोलसकसायाणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कसा ?

§ ७६८. सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७६९. ऋदो ? कसायाणमुक्कस्सद्विदिवंधकाले इत्थिवेदस्स बंधाभावादो । बंधभावेण अपडिहग्गस्सिस्सिवेदस्स सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिवंधकाले उक्कस्सद्विदीए संबवाभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समज्जणमादिं कादूण जाव आवलियूणा त्ति ।

§ ७७० तं जहा—पडिहग्गपढमसमए बंधावलियादिककंतकसायद्विदीए इत्थिवेदम्मि संकंताए इत्थिवेदस्स उक्कस्सद्विदिविहत्ती होदि । तक्काले कसायद्विदी सणुक्कस्सं पेन्नियदूण समयूणा; चरिमसमयम्मि बंधुक्कस्सद्विदीए गलिदेगसमयत्तादो । एवं विदियसमए दुसमयूणा तदियसमए तिसमयूणा एवमावलियमेत्तसमएसु कसायुक्कस्सद्विदी आवलियूणा होदि । इत्थिवेदद्विदी पुण उक्कस्सा चेव, चरिमसमयम्मि वद्धकसायुक्कस्सद्विदीए बंधावलियादिककंताए इत्थिवेदस्सुवरि संकंतिदंसणादो । आवलियादो उवरि कसायुक्कस्सद्विदी उणा किण्ण कीरइ ? ण, उवरि इत्थिवेदुक्कस्स-

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषायोंकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६८. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

७६९. क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता है । तथा बन्धरूपसे पतद्ग्रहपनेको नहीं प्राप्त हुए स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय संभव नहीं है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कम से लेकर एक आवलिक्रम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७७०. इसका खुलासा इस प्रकार है—प्रतिभ्रमकालके प्रथम समयमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके स्त्रीवेदमें संक्रान्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । उस समय कषायकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है, क्योंकि यहाँ पर अन्तिम समयमें बंधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय गलत गया है । इसी प्रकार दूसरे समयमें दो समय कम तीसरे समयमें तीन समय कम तथा इसी प्रकार आवलिप्रमाण समयोंके व्यतीत होने पर कषायकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिक्रम होती है परन्तु यहाँतक स्त्रीवेदकी स्थिति उत्कृष्ट ही रहती है, क्योंकि अन्तिम समयमें बंधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धावलिसे व्यतीत होने पर स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है ।

शुंका—कषायकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि काल तक ही कम क्यो होती है इससे और

द्विदीए असंभवादो ।

❀ पुरिसवेदस्स द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७७१ सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७७२ कुदो ? इत्थिवेदबंधकाले सेसवेदानं वंधाभावादो । किमिदि णत्थि बंधो ! साहावियादो । ण च सहावो पडियवोयणाजोग्गो, अव्ववत्थावत्तीदो । ण च वंधेण विणा पुरिसवेदो कसायद्विदिं पडिच्चदि, अपडिग्गहत्तादो ।

\* उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तण्णमादिं कादूण जाव अंतो-  
कोडाकोडि ति ।

§ ७७३ तं जहा—कसायाणमुक्कस्सद्विदिं पडिबंधिय पडिहग्गसमए बज्ज-  
माणपुरिसवेदस्सुवरि वंधावळियादीदकसायद्विदीए संकंताए पुरिसवेदस्सुक्कस्सद्विदि-  
विहत्ती होदि । पुणो सव्वजहण्णेणंतोमुहुत्तोणुक्कस्ससंकिलेसं गंतूण कसायुक्कस्सद्विदिं

अधिक कम क्यों नहीं की जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि आवलिसे अधिक कषायकी स्थितिके कम होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका पाया जाना संभव नहीं है ।

\* स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेदकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनत्कृष्ट ?

§ ७७१. यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अनत्कृष्ट होती है ।

§ ७७२ क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध नहीं होता है ।

शंका—स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है कि स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध नहीं होता है और स्वभावमें शंका नहीं की जा सकती, अन्यथा अव्यवस्थाकी आपत्ति प्राप्त होती है । और बन्धके बिना पुरुषवेद कषायकी स्थितिको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उस समय वह अपतद्ग्रहरूप है । तात्पर्य यह है कि जब तक पुरुषवेदका बन्ध न हो तब तक उसमें कषायकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता ।

\* वह अनत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर अन्तः कोड़ाकोड़ी तक होती है ।

§ ७७३. इसका खुलासा इस प्रकार है—कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर प्रतिभन्नकालके पहले समयमें बंधनेवाले पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रमण होने पर पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । पुनः सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संकलेशको प्राप्त होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभन्न कालके प्रथम समयमें

बंधिय पहिहग्गसमए बज्झमाणित्थिवेदम्मि बंधावलियादिककंतकसायद्विदीए संकंताए इत्थिवेदद्विदी उक्कस्सा होदि । तक्काले पुरिसवेदद्विदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा; पुरिस-णवुंसयवेदजहण्णबंधगद्धानं समूहस्स अंतोमुहुत्तुचुवलंभादो । पुणो कसायाणं समयूक्कस्सद्विदिं बंधिय पहिहग्गसमए बज्झमाणपुरिसवेदम्मि बंधावलियादीदकसायुक्कस्सद्विदीए संकंताए पुण्विल्लद्विदिं पेक्खिदूण पुरिसवेदद्विदी संपहि समयूणा होदि । पुणो अवद्विदमंतोमुहुत्तमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण कसायाणमुक्कस्सद्विदिं बंधिय पहिहग्गसमए बज्झमाणित्थिवेदम्मि बंधावलियादीदकसायद्विदीए संकंताए इत्थिवेदस्स उक्कस्सद्विदी होदि । तक्काले पुरिसवेदद्विदी सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण समयाहियअंतोमुहुत्तूणा । एवं जाणिदूण ओदारेयव्वं जाव णिवियप-अंतोकोडाकोडि चि ।

\* हस्स-रदीणं द्विदिविहृती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७७४. सुगममेदं ।

❁ उक्कसा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७७५. यदि इत्थिवेदे बज्झमाणे हस्स-रदीणं बंधो अत्थि तो इत्थिवेदुक्कस्स-द्विदीए विहृत्तिओ एदासिं पि उक्कस्सद्विदीए; तिण्हं पयडीणमुवरि अकमेण संकंतीए ।

बंधनेवाले स्त्रीवेदमे बन्धावलिले रहित कषायकी स्थितिके संक्रमण करने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इस समय पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि पुरुषवेद और नपुंसकवेदके बंधन्य बन्धककालोंका समूह अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । पुनः कषायकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर प्रतिभन्नकालके पहले समयमे बंधनेवाले पुरुषवेदमे बन्धावलिले रहित कषायकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर पुरुषवेदकी पहलेकी स्थितिको देखते हुए इस समयकी स्थिति एक समय कम होती है । पुनः अवस्थित अन्तर्मुहूर्त कालतक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर तथा कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभन्न कालके प्रथम समयमे बंधनेवाले स्त्रीवेदमे बन्धावलिले रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । तथा उस समय पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम होती है । इसी प्रकार जान कर निर्विकल्प अन्तःकोडाकोडी स्थितिके प्राप्त होनेतक पुरुषवेदकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये ।

❁ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय हास्य और रतिको स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७४. यह सूत्र सुगम ह ।

❁ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७७५. यदि स्त्रीवेदके बन्धके समय हास्य और रतिका बन्ध होता है तो स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला होता हुआ इन दोनोंकी भी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला होता है ; क्योंकि बन्धावलिले रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थिति तीनों प्रकृतियोमे एकसाथ संक्रान्त हुई है ।



अण्णहा अण्णकस्सा; बंधाभावेण अपडिग्गहाणं हस्स-रदीणमुवरि कसायुक्कस्सद्विदीए संकमाभावादो ।

❊ उक्कस्सादो अण्णकस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ?

§ ७७६. तं जहा—अंतोमुहुत्तकालमावलिद्यमेत्तकालं वा कसायुक्कस्सद्विदिं बंधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणित्थिवेद-हस्स-रदीसु बंधावलियादिककंतकसायद्विदीए संकंताए तिण्हं पि उक्कस्सद्विदिविहृती होदि । पुणो तदणंतरउवरिप्रसमए हस्स-रदि-बंधवोच्छेददुवारेण अरदि-सोगेसु बंधमागदेसु इत्थिवेदस्सुक्कस्सद्विदीए सह हस्स-रदीणमण्णकस्सद्विदी होदि; अण्णो उक्कस्सद्विदीदो अधद्विदिगलणेण गलिदेगसम-यत्तादो । एवं हस्स-रदिद्विदीए जाव समयूणावलिद्यमेत्तकालो गळदि तावित्थि-वेदस्सुक्कस्सद्विदिविहृती चेव । उवरि अण्णकस्सा होदि; तत्थ बंधावलियादीदकसायु-क्कस्सद्विदिसंकंतीए अभावादो ।

§ ७७७. तदो अण्णेण जीवेण एगसमयं समयूणावलिद्युणकसायउक्कस्सद्विदिं बंधिय समयूणावलिद्यमेत्तकालमुक्कस्सद्विदिं बंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदेण सह वज्झमाणहस्स-रदीसु आवलियादिककंतकसायद्विदीए संकामिदाए इत्थिवेद-हस्स-रदीणं

अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्ध नहीं होनेसे अपतद्ग्रहको प्राप्त हुई हास्य और रतिमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ७७६. खुलासा इस प्रकार है—अन्तर्मुहूर्त काल तक या एक आवलि कालतक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रम कालके पहले समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेद, हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर तीनों ही प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । पुनः तदनन्तर अगले समयमें हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छित्ति होकर अरति और शोकके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ हास्य और रतिकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि तब इन प्रकृतियोंकी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है । इस प्रकार जब तक हास्य और रतिकी स्थितिमेंसे एक समय कम एक आवलि प्रमाण काल जीर्ण होता है तब तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति ही रहती है तथा इसके बाद स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है, क्योंकि एक समय कम एक आवलिके बाद स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं पाया जाता है । अर्थात् तब स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिसे उत्तरोत्तर कम स्थितिका संक्रमण होता है ।

§ ७७७. तदनन्तर किसी एक जीवने एक समय तक एक समयसे न्यून एक आवलि कम कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर एक समय एक आवलि प्रमाण काल तक कषाय की उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर प्रतिभ्रमकालके पहले समयमें स्त्रीवेदके साथ बंधनेवाली हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया तब उसके स्त्रीवेद, हास्य और रति

द्विदी सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण समयूणावलियाए ऊणा होदि । विदियसमए हस्स-रदिबंधवोच्छेददुवारेण अरदि-सोगेसु बंधमागदेसु इत्थिवेदसुक्कस्सद्विदिविहृती होदि; बंधावलियादिक्कंतकसायुक्कस्सद्विदीए तत्थित्थिवेदम्मि संकंतिदंसणादो । हस्स-रदि-द्विदी पुण सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण आवलियूणं; बंधाभावादो । एवं जाव दुसम-यूणावलियमेत्तमद्धानसुवारी गच्छदि तावित्थिवेदद्विदी उक्कस्सा चेव । हस्स-रदीणं पुण जाव तत्तियमद्धानं गच्छदि ताव सगुक्कस्सद्विदी दुसमयूणा दोआवलियूणां होदि । बंधावलियादीदकसायुक्कस्सद्विदीए आवलियाहि ऊणा होदि ।

§ ७७८. तदो अण्णो जीवो दुसमयूणदोआवलियाहि ऊणियं कसायुक्कस्स-द्विदिं बंधिय पुणो समयूणावलियमेत्तकालसुक्कस्सद्विदिं बंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेद-हस्स-रदीसु वज्जमभाणियासु बंधावलियादीदकसायद्विदिं संकामिय तिण्हं पि अणुक्कस्स-द्विदिविहृत्तिओ जादो । तदो उवरिमसमयप्पहुडि हस्स-रदिवंधवोच्छेददुवारेण इत्थिवेदेण सह अरदि-सोगे बंधाविय पुव्वं व ओदारेदव्वं । एवं पुणो पुणो एदेण विहाणेण ओदारेदूण गेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । णवरि जं जं द्विदिं णिहं भिदुमिच्छदि तत्तो आवलियव्बहियमेगसमयं बंधाविय पुणो समयूणावलियमेत्तकालं कसायाणसुक्कस्स-द्विदिं बंधिय पडिहग्गसमए वज्जमभाणित्थिवेद-हस्स-रदीसु पुव्वणिरुद्धद्विदीए आवलि-

की स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी देखते हुए एक समयसे न्यून एक आवलिकाल प्रमाण कम होती है । तथा दूसरे समयमें हास्य और रतिकी वन्ध व्युच्छित्तिके द्वारा अरति और शोकके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभाक्त है; क्योंकि बन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका वहाँ स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है । पर हास्य और रति की स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी देखते हुए एक आवलि कम होती है, क्योंकि उस समय उनका वन्ध नहीं है । इस प्रकार जब तक दो समय कम आवलिप्रमाण काल आगे जाते हैं तब तक स्त्रीवेदकी स्थिति उत्कृष्ट ही होती है । पर हास्य और रतिकी उतना काल आगे जाने तक उनकी उत्कृष्ट स्थिति दो समयसे न्यून दो आवलि कम होती है ।

§ ७७८. पुनः अन्य जीवने एक समय तक दो समय कम दो आवलियोसे न्यून कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके पुनः एक समय कम एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके प्रतिभन्न कालके पहले समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेद, हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिका संक्रमण किया तब वह तीनों ही प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्तिका धारक हुआ । तदनन्तर इसके आगेके समयसे लेकर हास्य और रतिकी वन्धव्युच्छित्तद्वारा स्त्रीवेदके साथ अरति और शोकका वन्ध करके पहलेके समान हास्य और रतिकी स्थितिकी घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार पुनः पुनः इस विधिसे अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक हास्य और रतिकी स्थितिकी घटाते हुए लेजाना चाहिये ; किन्तु इतनी विशेषता है कि जिस जिस स्थितिकी रोकना चाहो उससे एक आवलि अधिक कपायकी स्थितिका एक समय तक वन्ध करके पुनः एक समय कम एक आवलि काल तक कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके प्रतिभन्न कालके पहले समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेद, हास्य और रतिमें पहले रुकी हुई स्थितिके एक आवलिके

१. आ. प्रतौ-‘आवलिया’ इति स्थाने ‘विहृत्तिओ’ इति पाठः ।

यादीदाए संकंताए तिण्हं अणुकस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तदो उवरिमसमए हस्स-रदिवंधे फिद्धे अरदि-सोभिगत्थिवेदानमुकस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तत्काले हस्स-रदीणं पुच्च-णिरुद्धट्टिदी समयूणा होदि ।

❀ अरदि-सोगाणं ट्टिदिविहत्ती किमुकस्सा अणुकस्सा ?

§ ७७६. सुगमवेदं ।

❀ उकस्सा वा अणुकस्सा वा ।

§ ७८०. इत्थिवेदे वञ्जमाणे जदि अरदि-सोगा वञ्ज्जाति तो इत्थिवेदुकस्स-ट्टिदीए सह अरदि-सोगाणं पि उकस्सट्टिदिविहत्ती होदि; वंधावलिआदीदकसायुकस्स-ट्टिदीए अक्रमेण तिण्हमवरि संकंतीए । अण्णहा अणुकस्सा; पडिहग्गावलियाए अरदि-सोगाणं वंधाभावेण णट्टपडिहग्गाभावाणं कसायुकस्सट्टिदीए आगमाभावादो ।

❀ उकस्सादो अणुकस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीससागरो-वमकोडाकोडीओ पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोण्णाओ ति ।

§ ७८१. एदासिं पयडीणं समयूणुकस्सट्टिदिआदिट्टिदीणं सण्णियासो वुच्चदे । तं जहा—आवलियमेत्तकालं कसायाणमुकस्सट्टिदिं वंधिय पडिहग्गसमए वञ्ज्जमा-णित्थिवेद-अरदि-सोभेसु वंधावलियादिककंत्तकसायट्टिदीए संकंताए तिण्हं पि उकस्स-

वाद संक्रान्त होने पर तीनोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है तदनन्तर इसके आगेके समयमें हास्य और रतिकी वन्धव्युच्छिन्ति हो जानेपर अरति, शोक और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । तथा उस समय हास्य और रतिकी पहले रुकी हुई स्थिति एक समय कम होती है !

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय अरति और शोककी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७६. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७८०. स्त्रीवेदके वन्धके समय यदि अरति और शोकका वन्ध होता है तो स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी भी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि वन्धावलि-से रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक साथ तीनोंमें संक्रमण हुआ है । अन्वथा अरति और शोक की स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्न कालकी एक आवलिके भीतर वन्ध नहीं होनेसे पतद्ग्रहपनेसे रहित अरति और शोकमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ७८१. अब इन प्रकृतियोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर शेष स्थितियोंका सन्निकर्ष कहते हैं । जो इस प्रकार है—एक आवलिकाल तक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें वंधनेवाली स्त्रीवेद, अरति और शोक प्रकृतियोंमें वंधावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होनेपर तीनोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । तदनन्तर

द्विदिविहृत्ती होदि । तदो उवरिमसमए अरदि-सोगबंधवोच्छेददुवारेण हस्स-रदीसु बंधमागयासु अरदि-सोगुक्कस्सद्विदी समयूणा होदि; पडिभगहचाभावेण तत्थ कसाय-द्विदीए संकमाभावादो । एचमुवरि वि वत्तच्चं जाव समयूणावलियाए ऊणमुक्कस्स-द्विदी जादा त्ति । सेसुवरिमपरूवणा जहा हस्स-रदीणमित्थिवेदुक्कस्सद्विदिसंधंधाणं कदा तहा कायच्चा । णवरि एत्थ समयूणावाहाकंडएणूणवीससागरोवमकोडाकोडीओ कसायुक्कस्सद्विदिबंधेण सह अरदि-सोगे बंधाविय पडिभगसमए अरदि-सोगबंध-वोच्छेदं कादूण आबलियमेत्तद्विदीओ गालिय अंतिमवियप्पो वत्तच्चो । कुदो ? कसायु-क्कस्सद्विदीए वज्झमाणाए णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुञ्जाणं णियमेण तत्थ बंधे संते सगुक्कस्सद्विदीदो समयूणावाहाकंडएणूणस्सेव द्विदिवंधस्सुवलांभादो ।

❀ एवं णवुंसयवेदस्स ।

§ ७८२. जहा अरदि-सोगाणं इत्थिवेदुक्कस्सद्विदिपडिवद्धानं परूवणा कदा तहा णवुंसयवेदस्स वि परूवणा कायच्चा; समयूणमादिं कादूण जाव वीससागरोवम-कोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखे०भागेण ऊणाओ त्ति एदेहि सणियासवियप्पेहि अबिसेसादो । एत्थतणविसेसपदुप्पायणद्वसुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ णवरि णियमा अणुक्कस्सा ।

आगेके समयमे अरति और शोककी वन्धुच्छित्ति होकर हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि उस समय पतद्ब्रह्मपना नहीं रहनेसे उनमे कषायकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता है । इसी प्रकार आगे भी एक समयकम एक आबलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । शेष आगेकी प्ररूपणा, जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाली हास्य और रतिकी की है उस प्रकार करनी चाहिये । किन्तु यहाँ पर कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके साथ अरति और शोकका एक समय कम आवाधाकाण्डकसे न्यून वीस कोडाकोडी सागर स्थितिप्रमाण बन्ध कराके तथा प्रतिभन कालके प्रथम समयमे अरति और शोककी बन्धव्युच्छित्ति कराके और एक आबलि प्रमाण स्थितियोंको गलाकर अन्तिम विकल्प कहना चाहिये, क्योंकि कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध होता है पर वह स्थितिवन्ध अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम आवाधाकाण्डकसे न्यून तक ही होता है ।

❀ इसी प्रकार नपुंसकवेदकी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

§ ७८२. जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी प्ररूपणा की है उसी प्रकार नपुंसकवेदकी भी प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्न्योपमके असंख्यातर्वं भाग कम वीस कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति तक होनेवाले सन्निकर्षके भेदोंकी अपेक्षा अरति और शोकके कथनसे नपुंसकवेदके कथनमे कोई भेद नहीं है । अब इस विषय मे विशेषता बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७८३. कुदो ? इत्थिवेदेण सह णवुंसयवेदस्स बंधाभावादो । तेण पडिहग्ग-पढमसमए बज्झमाणित्थिवेदम्मि बंधावलियादीदकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदी होदि णवुंसयवेदस्स पुण णियमेण समयुणुक्कस्सट्ठिदी । एत्तो उवरि जाव आवलियमेत्तद्धाणं गच्छदि तावित्थिवेदो उक्कस्सो चेव । णवरि णवुंसयवेदुक्कस्सट्ठिदी आवलियूणा होदि । एवमुवरि अरदि-सोगोयरणविहाणं बुद्धीए काऊण ओदारैयव्वं ।

❁ भय-दुगुंझाणं द्विविहती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७८४. सुगमं ।

❁ णियमा उक्कस्सा ।

§ ७८५. जम्मि काले इत्थिवेदो बज्झदि तम्मि काले भय-दुगुंझाणं बंधो णियमा अत्थि; धुवबंधितादो । तेणित्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदीए संतीए भय-दुगुंझाओ द्विदि पडुच्च णियमा उक्कस्साओ त्ति भणिदं ।

❁ जहा इत्थिवेदेण तहा सेसेहि कम्मोहि ।

§ ७८६. जहा इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदीए णिरुद्धाए सेसकम्मोहि सणियासो कदो तहा हस्स-रदि-पुरिसवेदानुक्कस्सट्ठिदिणिरंभणं कादूण सणियासो वत्तव्वो

§ ७८३. क्योंकि स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता है । अतः प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिले रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके संकान्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है परन्तु उस समय नपुंसकवेदकी नियमसे एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसके आगे एक आवलिकाल व्यतीत होने तक स्त्रीवेद उत्कृष्ट ही रहता है परन्तु नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति उस समय एक आवलि कम होती है । इसी प्रकार आगे अरति और शोककी स्थितिके घटानेकी विधिको बुद्धिसे विचार कर उसी प्रकार नपुंसकवेदकी स्थितिको घटाना चाहिये ।

❁ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७८४. यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ७८५. जिस कालमें स्त्रीवेदका बन्ध होता है उस कालमें भय और जुगुप्साका बन्ध नियमसे होता है, क्योंकि ये दोनों प्रकृतियां ध्रुवबन्धिनी हैं । अतः स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके होने पर भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है । यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

\* जिस प्रकार स्त्रीवेदके साथ सन्निकर्षके विकल्प कहे हैं उसी प्रकार शेष कर्मोंके साथ जानने चाहिये ।

§ ७८६. जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके सद्भावमें शेष कर्मोंके साथ सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार हास्य, रति और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका सद्भाव करके सन्निकर्ष कहना

विसेसाभावादो ।

❀ एवारि विसेसो जाणिद्वो ।

§ ७८७. तथ्य पुरिसवेदणिरु'भणं काऊण भण्णमाणे णत्थि विसेसो; सव्वकम्महि सह सण्णिकासिज्जमाणे इत्थिवेदसण्णिकासेण समाणत्तादो । हस्स-रदिणिरु'भणं काऊण भण्णमाणे भिञ्चत्त-सम्मत्त-सम्मामिञ्चत्त-सोल्लसकसाय-भय-दुग्गुञ्जाणं सण्णियासेसु णत्थि विसेसो; इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदिसण्णियासेण समाणत्तादो । इत्थि-पुरिसाणं सण्णियासे अत्थि विसेसो, तं वचइस्सासो । तं जहा—हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदीए संतीए इत्थि-पुरिसवेदाणं ट्ठिदी सिया उक्कस्सा; कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए पडिच्चिदाए चटुण्हं पि कम्ममाणमुक्कस्सट्ठिदिदंसणादो । सिया अणुक्कस्सा; पडिहग्गसमए हस्स-रदीसु वञ्चमाणियासु इत्थि-पुरिसवेदाणं वंधाभावे संते उक्कस्सट्ठिदीए अभावादो । जदि अणुक्कस्सा तो अंतोसुहुतूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । कुदो सम-ऊणुक्कस्सट्ठिदिआदिवियपो ण लब्भदे ? हस्स-रदीणं व इत्थि-पुरिसवेदाणभेगसमएण पयडिबंधस्स वोच्चेदाभावादो ।

§ ७८८. एदस्स णयणिरुद्धाए कपो वुच्चदे । तं जहा—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं

चाहिये, क्योंकि इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ किन्तु कुछ विशेष जानना चाहिये ।

§ ७८७. उनमेंसे पुरुषवेदको रोककर कथन करने पर कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि सब कर्मोंके साथ पुरुषवेदका सन्निकर्ष करने पर स्त्रीवेदके सन्निकर्षके समान है । हास्य और रतिको रोक कर कथन करने पर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके सन्निकर्षमें कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ उक्त प्रकृतियोंकी स्थितिका होनेवाला सन्निकर्ष स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ होनेवाले सन्निकर्षके समान है । पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदके सन्निकर्षमें कुछ विशेषता है । आगे उसीको बताते हैं । जो इस प्रकार है—हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है, क्योंकि कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके इनमें संक्रमित हो जाने पर चारों ही कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । कदाचित् अनुकृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभद्र कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नहीं होने पर उनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती है । यदि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अनुकृष्ट स्थिति होती है तो, वह अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः कोडाकोड़ी तक होती है ।

शंका—एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि विकल्प क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—क्योंकि जिस प्रकार हास्य और रतिका एक समयतक बन्ध होकर अनन्तर उसकी व्युच्छित्ति हो जाती है, उस प्रकार स्त्रीवेद और पुरुषवेदका एक समयतक बन्ध होकर उसकी व्युच्छित्ति नहीं होती ।

§ ७८८. अब नयकी अपेक्षा इसके क्रमका कथन करते हैं, जो इस प्रकार है—कषायोंकी

बंधिय पडिहगसमए बज्झमाणित्थि-पुरिसवेदेसु बंधावलियादिवकंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए इत्थि-पुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिं कादूण पुणो अंतोमुहुत्तं णवुंसयवेद-अरदि-सोगेहि सह कसायुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहगसमए अरदि-सोगपयडिबंधवोच्छेद-दुवारेण बज्झमाणहस्स-रदीसु बंधावलियादिवकंतकसायट्ठिदीए संकंताए हस्स-रदीण-मुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तक्काले इत्थि-पुरिसवेदट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा । संपहि एदमंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण णेदव्वं जाव धुवट्ठिदि ति एसो विसेसो ति ।

§ ७८६. के वि आइरिया भणंति—एदासु वि पयडीसु णत्थि विसेसो; हस्स-रदीणं व एगसमएण पयडिबंधवोच्छेदसंभवादो । इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण बंधवोच्छेदो होदि ति कुदो णव्वदो ? महाबंधसुत्तादो हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदि-णिरुंभणं काउणित्थि-पुरिसवेदाणं समयूणादिसणियासवियप्परुवयंउच्चारणादो च णव्वदे । 'णवरि विसेसो जाणियव्वो' ति चुणिसुत्तणिहेसण्णहाणुववत्तीदो इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण बंधवोच्छेदो ण होदि ति ण वोत्तुं जुत्तं; एदस्स णिहेसस्स णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणं सणियासेसु उववत्तिदंसणादो । तं जहा—इत्थिवेदे

उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभन्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । पुनः अन्तर्मुहूर्त काल तक नपुंसकवेद, अरति और शोकके साथ कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभन्नकालके प्रथम समयमें अरति और शोक इन दो प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्तद्वारा बंधनेवाली हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । तथा उस समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । अब इस अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर ध्रुवस्थिति प्राप्त होने तक स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । यही यहाँ विशेषता है ।

§ ७८६. कुछ आचार्य कहते हैं कि इन प्रकृतियोंमें भी कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि हास्य और रतिके समान इन प्रकृतियोंका भी एक समय तक बन्ध होकर अनन्तर उनकी व्युच्छित्ति संभव है ।

**शंका**—स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति होती है यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

**समाधान**—महाबन्धसूत्र से । तथा हास्य और रति की उत्कृष्ट स्थितिको रोककर स्त्रीवेद और पुरुषवेद की एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि सन्निकर्ष विकल्पों का कथन करनेवाली उच्चारणासे जाना जाता है ।

**शंका**—'णवरि विसेसो जाणियव्वो' इस प्रकार चूर्णिसूत्रका निर्देश अन्यथा बन नहीं सकता, इसलिये स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती ।

**समाधान**—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस निर्देशकी सार्थकता नपुंसकवेदअ, रति

गिरुद्धे गवुं सयवेदो णियमा अणुक्कस्सा; इत्थिवेदबंधकाले गवुं सयवेदस्स बंधाभावादो । हस्स-रदीणं पुण उक्कस्सद्विदीए गिरुद्धाए गवुं सयवेदद्विदी सिया उक्कस्सा; हस्स-रदिवंधकाले वि गवुं सयवेदस्स बंधुवलंभादो । सिया अणुक्कस्सा; कयाइ तत्थ-बंधाभावेण तस्स समयूणादिवियप्पुवल्लदीदो । इत्थिवेदुक्कस्सद्विदीएण अरदि-सोगाणं सिया उक्कस्सा; इत्थिवेदेण सह एदेसिं बंधं पडि विरोहाभावादो । सिया अणुक्कस्सा; पडिहग्गसमए हस्स-रदीसु बंधमागदासु अरदि-सोगाणं समयूणमादिं कादूण जाव पल्लोवमस्स असखेज्जदिभागम्भहियवीसंसागरोवमकोडाकोडिमेत्तवियप्पुवलंभादो ॥ हस्स-रदीणमुक्कस्सद्विदीए गिरुद्धाए पुण अरदि-सोगद्विदी णियमा अणुक्कस्सा; पडिहग्गसमए हस्स-रदीसु वज्जमाणियासु तप्पडिवक्खाणमरदि-सोगाणं बंधाभावादो । तदो इत्थि-पुरिसवेदेसु णत्थि विसेसो त्ति सिद्धं ।

§ ७६०. सुत्ताहिप्पाएण पुण इत्थि-पुरिसवेदेसु वि विसेसो अत्थि चेव, हस्स-रदीणं व इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण बंधुवरमाणब्युवगमादो । तदो इत्थिवेदे गिरुद्धे हस्स-रदीणं समयूणादिवियप्पा हांति । हस्स-रदीसु पुण गिरुद्धासु इत्थि-पुरिसवेदाणमंतो-सुहुत्तूणादिवियप्पा त्ति ।

और शोक प्रकृतियोंके सन्निकर्षोंमें बतलाई गई है । खुलासा इस प्रकार है—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके समय नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता । परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर नपुंसकवेदकी स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है, क्योंकि हास्य और रतिके बन्धके समय भी नपुंसकवेदका बन्ध पाया जाता है । कदाचित् अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि कदाचित् हास्य और रतिका वहां बन्ध नहीं होनेसे नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिमें एक समय कम आदि विकल्प पाये जाते हैं । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिसे साथ अरति और शाकरी स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धक साथ इनका बन्ध होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । कदाचित् अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होने पर अरति और शाकरी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्यका असंख्यातवां भाग अधिक वास कोड़ाकोड़ी सागर तक स्थितिविकल्प देखे जाते हैं । परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर अरति और शोककी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट हाता है, क्योंकि प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होने पर उनकी प्रतिपन्नभूत अरति और शोक प्रकृतियोंका बन्ध नहीं हाता है, इसलिये स्त्रीवेद और पुरुषवेदके विषयमें कोई विशेषता नहीं है यह सिद्ध हुआ ।

§ ७६०. परन्तु उक्त सूत्रके अभिप्रायानुसार स्त्रीवेद और पुरुषवेदके विषयमें भी विशेषता है ही, क्योंकि उक्त सूत्रमें हास्य और रतिके समान स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्ध व्युच्छिन्त नहीं स्वीकार की है, अतः स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर हास्य और रतिके एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि विकल्प होते हैं । परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदके अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थिति आदि विकल्प हांते हैं ।



❀ एतुं सयवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स ट्टिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७९१. सुगमं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७९२. एतुं सयवेदट्टिदीए उक्कस्साए संतीए जदि मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदी पवद्धा होज्ज तो मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि अण्णहा अणुक्कस्सा; उक्कस्सादो हेट्टिमट्टिदीदो बंधंतस्स उक्कस्सत्ताभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण जणा ति ।

§ ७९३. पल्लिदो० असंखे० भागो किंपमाणो ? एगावलियब्भहियसमयूणावाहाकंडयमेत्तो । अहिच्चो किण्ण होदि ? ण, कसाएसु उक्कस्सट्टिदिवंधे संते मिच्छत्तस्स समज्जणावाहाकंडएण्णउक्कस्सट्टिदिमेत्तजहण्णट्टिदिवंधस्स तत्थुवलंभादो । एगावलियाए अहियत्तं कथमुवल्लभदे ? ण, पडिहग्गकाले वि एतुं सयवेदस्स आवलियमेत्तकालमुक्कस्सट्टिदिसंभवादो । सेसं सुगमं; बहुसो परुविदत्तादो ।

\* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७९१. यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७९२. नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि उत्कृष्टसे कमकी स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है ।

§ ७९३. शंका—यहांपर पल्योपमके असंख्यातवें भागका कितना प्रमाण लिया है ?

समाधान—एक समय कम आवाधाकाण्डकमे एक आवलि कालके जोड़ देने पर जितना प्रमाण हो तत्प्रमाण यहां पल्यका असंख्यातवें भाग काल लिया है ।

शंका—इससे अधिक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कथायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होते समय मिथ्यात्वका कमसे कम स्थितिवन्ध एक समय न्यून आवाधाकाण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति मात्र ही होता है, इससे कम नहीं ।

शंका—पल्यके असंख्यातवें भागको जो एक आवलि अधिक और एक समय कम आवाधा काण्डक प्रमाण बतलाया है तो यहां एक आवलि काल अधिक कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रतिभन्न कालके भीतर भी नपुंसकवेदकी एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थिति संभव है ।

सूत्रका शेष व्याख्यान सुगम है, क्योंकि उसका अनेकवार कथन कर आये हैं ।

❀ सम्मत्त-सम्मानिच्छताणं द्विदिविहती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७६४, सुगमं० ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७६५, णत्तुं सयवेदुकस्सद्विदिविहत्तियम्मि मिच्छाइद्विम्मि सम्मत्त-सम्मानिच्छ-  
ताणमुक्कस्सद्विदीए अभावादो । ण च सम्माइद्विपढमसमए पडिवद्धाए सम्मत्त-सम्मा-  
मिच्छतुकस्सद्विदीए अण्णत्थत्थि संभवो; विरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तण्णमादिं कादूण जाव एगा द्विदि  
त्ति । एवरि चरिसुव्वेण्णकंडयचरिमफालीए ज्जा ।

§ ७६६, एदेसिं दोण्हं सुत्ताणमत्ये भण्णमाणे जहा मिच्छतुकस्सद्विदिण्हं भणं  
काऊण सम्मत्त-सम्मानिच्छत्तदोसुत्ताणं परूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा; विसेसा-  
भावादो ।

❀ सोलसकसायाणं द्विदिविहती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७६७, सुगमं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

\* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी  
स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६४, यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७६५, नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक मिध्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति नहीं पाई जाती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थिति सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें होती है, अतः उसका अन्यत्र पाया जाना संभव नहीं  
है, क्योंकि ऐसा मानने पर विरोध आता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक  
स्थिति तक होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमेंसे अन्तिम उद्वेजनाकाण्डककी  
अन्तिम फालिप्रमाण स्थितिको कम कर देना चाहिए ।

§ ७६६, इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहनेपर जिस प्रकार मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते  
हुये सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वसम्बन्धी दो सूत्रोंका कथन किया है उसी प्रकार यहाँ भी करना  
चाहिये, क्योंकि दोनोंके कथनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

\* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषायोंकी स्थितिविभक्ति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६७, यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७९८. यदि णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदीए संतीए अप्पिदकसायाणमुक्कस्स-ट्ठिदिवंधो होज्ज तो उक्कसा, अण्णहा अणुक्कस्सा; समयूणादिट्ठिदीसु बद्धासु उक्कस्सत्त-विरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव आवलिज्जाणा त्ति ।

§ ७९९. तं जहा—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमावलियमेत्तकालं वंधिय पडिहग्ग-समए बज्जमाणणवुंसयवेदम्मि बंधावलियादिककंतकसायट्ठिदीए संकंताए णवुंसयवेद-ट्ठिदी उक्कस्सा होदि तस्समए कसायट्ठिदी समयूणा होदि; उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदि-गल्लणाए गल्लिदेगसमयत्तादो । एवं दुसमयूणादिकमेण णेदव्वं जाव आवलियमेत्तकालो कसायट्ठिदीए गल्लिदो त्ति । अहिओ किण्ण गाल्लिज्जे ? ण, उवरि णवुंसयवेदुक्कस्स-ट्ठिदीए असंभवादो ।

❀ इत्थि-पुरिसवेदाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८००. सुगमं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ८०१. णवुंसयवेदबंधकाले णियमेणित्थि-पुरिसवेदाणं बंधाभावादो । किं

§ ७९८. यदि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए विवक्षित कषायका उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होवे तो उत्कृष्ट स्थिति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि एक समय कम आदि स्थितियोंके बंधने पर उन्हें उत्कृष्ट माननेमें विरोध आता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर आवली कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७९९. जो इस प्रकार है—कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि कालतक बांधकर प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले नपुंसकवेदमे बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर नपुंसकवेदकी स्थिति उत्कृष्ट होती है और उस समय कषायकी स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि उस समय कषायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थिति गलनाके द्वारा एक समय गल गया है ! इसी प्रकार कषायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे दो समय कम आदि क्रमसे आवलि प्रमाण कालके गलने तक कथन करते जाना चाहिये ।

शंका—कषायकी उत्कृष्ट स्थितिमें से एक आवलिसे अधिक काल क्यों नहीं गलाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इसके आगे नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना असंभव है ।

\* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८००. यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ८०१. क्योंकि नपुंसकवेदके बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नियमसे नहीं होता है ।

कारणं ? तदभावे अर्च्यताभावो ?

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तण्णमादिं कादूण जाव अंतो-  
कोडाकोडि त्ति ।

§ ८०२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिं वंधिय पडिहग्गसमए समया-  
विरोहेण वज्झमाणित्थि-पुरिसवेदेसु वंधावलियादिककंतकसायद्विदीए संकंताए इत्थि-  
पुरिसवेदाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती होदि । तदो अंतोमुहुत्तेण संकिलेसं गंतूण कसायु-  
क्कस्सद्विदिं वंधिय वंधावलियादिककंतकसायद्विदिम्मि णवुंसयवेदे संकामिदम्मि  
णवुंसयवेदस्स उक्कस्सद्विदिविहत्ती । तत्थुद्देसे णं इत्थि-पुरिसवेदद्विदी पुण णियमा  
अंतोमुहुत्तणा; सगुक्कस्सद्विदीदो अधद्विदिगलणाए गलिदंतोमुहुत्तत्तादो । एवं  
समयूणादिकमेण कसायद्विदिं वंधिय ओदारेदूण णेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ।

§ ८०३. इत्थिवेदिणरुं भणे कदे णवुंसयवेदुक्कस्सद्विदी समयूणा जादा ।  
णवुंसयवेदम्मि णिरुं भणे कदे पुण इत्थिवेदद्विदी सगुक्कस्सादो अंतोमुहुत्तणा जादा ।  
किमेदस्स कारणं ? वुच्चदे—कसायाणमुक्कस्सद्विदीए वज्झमाणाए णवुंसयवेदस्स  
जेण तत्थ णियमेण वंधो तेण पडिहग्गसमए इत्थिवेदे उक्कस्सद्विदिमुवगदे णवुंसय-

श्रुंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—नपुंसकवेदके बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नहीं होनेमें अत्यन्त-  
भाव कारण है । अर्थात् नपुंसकवेदके बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बन्धका सर्वथा  
अभाव है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः-  
कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ८०२. जो इस प्रकार है—सोलह कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिको बौधकर प्रतिभग्नकालके  
प्रथम समयमें आगमात्तुकूल बंधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी  
स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । तदनन्तर  
एक अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा संकतोशको प्राप्त होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके  
बन्धावलीसे रहित कषायकी स्थितिके नपुंसकवेदमें संक्रान्त होने पर नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति-  
बिभक्ति होती है । तब वहाँ पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति नियमसे अन्तर्मुहूर्त  
कम होती है, क्योंकि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके  
द्वारा एक अन्तर्मुहूर्त गल गया है । इस प्रकार एक समय कम आदिके क्रमसे कषायकी स्थितिका  
बन्ध करके अन्तःकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थितिको  
घटाते जाना चाहिये ।

§ ८०३. श्रुंका—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय  
कम होती है और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिसे अशुभ्रूत कम होती है, इसका क्या कारण है ?

समाधान—कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिके बंधते समय नपुंसकवेदका चूंकि नियमसे बन्ध  
होता है इसलिये प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होने पर नपुंसक-

वेदो सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिय समयूणो होदि; तत्थ तदो गळिदेगसमयत्तादो । णवुंसय-  
वेदे पुण उक्कस्सट्ठिदिमुवगदे इत्थिवेदो णियमेण अंतोमुहुत्तूणो इत्थिवेदबंधपडिसेह-  
दुवारेण कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए सह णवुंसयवेदे बंधमागदे तबंधपढमसमयपहुडि जाव  
अंतोमुहुत्तू ण गदं ताव कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिवंधसंभवाभावादो । तं कुदो णव्वदे ?  
उक्कस्सट्ठिदिवंधंतरस्स जहण्णस्स वि अंतोमुहुत्तपमाणपरूवबंधमुत्तादो । इत्थि-पुरिस-  
वेदाणमेगसमएण बंधुवरमाणब्धुवगमादो च अंतोमुहुत्तू णत्तमविरुद्धं सिद्धं ।

❀ हस्स-रदीणं द्विदिविहृत्ती किसुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८०४. सुगमं

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ८०५. पडिहग्गपढमसमए णवुंसयवेदुक्कस्सट्ठिदीए संतीए जदि हस्स-रदीणं  
बंधो होज्ज तो उक्कस्सा, अण्णहा अणुक्कस्सा; बंधाभावेण हस्स-रदीसु कसायट्ठिदि-  
संकंतीए अभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समज्जणमादिं कादूण जाव अंतोकोडा-  
कोडि सि ।

वेदकी उत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है, क्योंकि वहां पर उसमेंसे एक समय गल गया है । परन्तु नपुंसकवेदके उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होने-पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि कषायोंको उत्कृष्ट स्थितिके साथ नपुंसक-वेदके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता और स्त्रीवेदके बन्धके प्रथम समयसे लेकर जब तक अन्तर्मुहूर्त काल नहीं व्यतीत होता है तब तक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध संभव नहीं है । अतः नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अन्तर्मुहूर्त कम हो जाता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धान्तर भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है इस प्रकार कथन करनेवाले बन्धसूत्रसे जाना जाता है । तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्ध-व्युच्छिन्न नहीं स्वीकार की गई है अतः इससे भी नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति ठीक अन्तर्मुहूर्त कम सिद्ध होती है ।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८०४ यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ८०५. प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यदि हास्य और रतिका बन्ध होवे तो उनकी स्थिति उत्कृष्ट होती है अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्धके बिना हास्य और रतिमें कषायकी स्थितिका संक्रमण नहीं पाया जाता है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः-कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ८०६. पडिहग्गपडमसमयम्मि णवुंसयवेद-हस्स-रदीणं वंधे संते तिण्हं पि उक्कस्सद्विदिविहती होदि । तदणंतरविदियसमए हस्स-रदिवंधे वोच्छिण्णे हस्स-रदीणं समयूणुक्कस्सद्विदी होदि । एवं दुसमयूणादिकमेण णेदव्वं जाव समऊणवळियाए ऊणुक्कस्सद्विदि त्ति । उवरि इत्थिवेदे णिरुद्धे हस्स-रदीणं वत्तकमं बुद्धीए अवहारिय वत्तव्वं ।

❀ अरदि-सोगाणं द्विदिविहती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८०७. सुगमं ?

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ८०८. णवुंसयवेदबंधकाले अरदि-सोगाणं वंधे संते तिण्हं पि उक्कस्सद्विदिविहती होदि, अण्णहा अणुक्कस्सा; अबज्जभाणबंधपयडीणं पडिहग्गत्ताभावादो ?

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव वीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊण्णाओ ।

§ ८०९. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिमंतोमुहुत्तमेत्तकालं वंधिय पडिहग्गसमए अरदि-सोगबंधवोच्छेददुवारेण हस्स-रदीसु बंधमागयासु णवुंसयवेदद्विदी तत्थ उक्कस्सा; वज्जभाणत्तादो । अरदि-सोगद्विदी पुण समयूणुक्कस्सा; वंधाभावादो ।

§ ८०६. प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें नपुंसकवेद, हास्य और रतिके बन्ध होते हुए तीनों की ही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । तदनन्तर दूसरे समयमें हास्य और रतिके बन्धके व्युच्छिन्न हो जाने पर हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है । इस प्रकार दो समय कम आदि क्रमसे लेकर एक समय कम आधलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थिति तक जानना चाहिये । तथा; इसके आगे स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए हास्य और रतिका जो क्रम कहा है उसका बुद्धिसे निश्चय करके यहाँ भी कथन करना चाहिये ।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय अरति और शोककी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८०७. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ८०८. नपुंसकवेदके बन्धके समय अरति और शोकके बन्ध होने पर तीनोंकी ही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है; क्योंकि नहीं बंधनेवाली प्रकृतियोंमें पतद्ग्रहणना नहीं पाया जाता है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्योपमके असंख्यातवें भाग न्यून वीस कोड़ाकोड़ीं सागर तक होती है ।

§ ८०९. जो इस प्रकार है—सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त काल तक बाँधकर प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें अरति और शोककी बन्ध व्युच्छित्ति होकर हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होने पर वहाँ पर नपुंसकवेदकी स्थिति उत्कृष्ट होती है, क्योंकि उसका बन्ध ही रहा है परन्तु अरति और शोकको उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि उनका बन्ध

एवं जाव पडिहग्गावलियमेत्तकालो उवरि गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सद्विदी आवलियूणा होदि । पुणो समयाहियावलियपढमसमए कसायाणमावलियुक्कस्सद्विदि वंधिय पुणो आवलियमेत्तकालं उक्कस्सद्विदि वंधिय पडिहग्गपढमसमए हस्स-रदीसु वंधमागदासु अरदि-सोगुक्कस्सद्विदी समयाहियावलियाए ऊणा होदि । पुणो जाव आवलियमेत्तकालो गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सद्विदी दोहि आवलियाहि ऊणा होदि । एवं जाणिदूण ओदारेयव्वं जाव आवलियव्वभहियसमऊणावाहाकंडएगूणवीसं सागरोवमकोडाकोडिमेत्तकम्मद्विदी चेद्विदा त्ति ।

❀ भय-दुगुंछाणं द्विदीविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८१०. सुगमं ?

❀ नियमा उक्कस्सा ।

§ ८११. धुवबंधितादो ।

❀ एवमरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि ।

§ ८१२. जहा णवुंसयवदस्स सव्वकम्मोहि सह सण्णियासो कदो तहा अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि कायव्वं ।

नहीं हो रहा है । इस प्रकार एक आवलिप्रमाण प्रतिभग्नकालके आगे जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिप्रमाण कम हो जाती है । पुनः एक समय अधिक आवलिके प्रथम समयमें कषायोंकी एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर पुनः एक आवलि काल तक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय अधिक एक आवलि कम होती है । पुनः एक आवलि प्रमाण कालके जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति दो आवलि काल प्रमाण कम होती है । इस प्रकार एक समय कम आवाधाकाण्डकमें एक आवलि कालके जोड़ने पर जितना प्रमाण हो उतने कालसे न्यून बीस कोड़ाकोड़ सागर प्रमाण कर्मस्थितिके प्राप्त होने तक अरति और शोककी स्थितिको घटाते जाना चाहिये ।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८१०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ८११. क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं ।

❀ इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी सब कर्मों के साथ सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

§ ८१२. जिस प्रकार नपुंसकवेदका सब कर्मोंके साथ सन्निकर्ष किया उसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी करना चाहिये ।

❀ एचरि विसेसो जाणियच्चो ।

§ ८१३. एत्थ विसेसपरुवणट्ठं वुच्चदे—अरदि-सोगाणमक्कस्सट्ठिदिणिणं भणं कादूण भण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्पामिच्छत्त-सोलसकसायाणं णवुंसयवेदभंगो । अरदि-सोगाणमक्कस्सट्ठिदीए संतीए इत्थिवेदस्स सिया उक्कस्सट्ठिदी; पडिहग्गपठम-समए अरदि-सोगेहि सह इत्थिवेदे वज्झमाणे तिण्हं पि उक्कस्सट्ठिदिविहृत्तिदंसणादो । अण्णहा अण्णुक्कस्सा; वंधाभावे कसायट्ठिदिपडिच्छणसत्तीए अभावादो । अथ अण्णु-क्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । कुदो ? इत्थिवेदबंधकालस्स एगसमए संते समयूणउक्कस्सट्ठिदिसंतुवलंभादो ।

§ ८१४. जेसिमाइरियाणमित्थिवेदबंधकालो जहण्णओ अंतोमुहुत्तमेत्तो तेसिम-हिप्पाएण अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । तं जहा—कसायु-क्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेद-अरदि-सोगाणमावलियमेत्तकालमुक्कस्सट्ठिदी होदि । संधि इत्थिवेदबंधो जाव अतोमुहुत्तं ण गदं ताव ण फिट्ठिदि । एदम्मि आवलिय-वज्जंतोमुहुत्तमेत्तइत्थिवेदबंधकालम्मि इत्थिवेद-अरदि-सोगाणं ट्ठिदीओ अपट्ठिदिगलणाए गलमाणओ चेट्ठंति । कुदो ? जाव अतोमुहुत्तं ण गदं ताव संकिलेसं पूरेट्ठुं णो सक्कदि त्ति कादूण लह्हुमुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविदो । पुणो तप्पाओग्गेण जहण्णकालेणुक्कस्स-

❀ परन्तु कुद्व विशेष जानना चाहिये ।

§ ८१३. अब यहाँ पर विशेषका चर्चन करते हैं—अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिको रोककर कथन करने पर सिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्याग्मध्यात्व और सोलह कपायोंका भंग नपुंसक-वेदके समान है । अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए स्त्रावेदका कदाचित् उत्कृष्ट स्थिति होती है; क्योंकि प्रतिभनकालके प्रथम समयमें अरति और शोकके साथ स्त्रावेदके बन्ध होने पर तीनोंकी ही उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति दखा जाती है । अन्यथा अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रावेदकी स्थिति अनुत्कृष्ट हाता है, क्योंकि स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होने पर उसमें कषायकी स्थितिका संकामत करनेकी शक्ति नही पाइ जाती है । अब यदि अनुत्कृष्ट स्थिति होती है तो वह एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकाड़ाकाड़ा सागर तक हाता है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धकालके एक समय होनेपर एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति पाई जाता है ।

§ ८१४. किन्तु जिन आचार्योंके मतसे स्त्रावेदका बध्णकाल भी अन्तमुहूर्त है उनके अभिप्रायानुसार अन्तमुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकाड़ाकोड़ी सागर तक अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । उसका खुलासा इस प्रकार है—कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको शोधकर प्रतिभनकालमें स्त्रावेद, अरति और शोककी एक आवलिकाल तक उत्कृष्ट स्थिति होती है । यहाँ पर स्त्रीवेदका बन्ध जब तक अन्तमुहूर्त काल व्यतीत नहीं हुआ है तब तक नहीं छूटता है । इस एक आवलिसे रहित अन्तमुहूर्त प्रमाण स्त्रीवेदके बन्धकालमें स्त्रीवेद, अरति और शोककी स्थितियों अर्धबंधयति गलनाके द्वारा गलती रहती हैं, क्योंकि जब तक एक अन्तमुहूर्त काल व्यतीत नहीं हुआ है तब तक उत्कृष्ट संक्लेशको पूरा करना शक्य नहीं है, ऐसा समझकर छोटे अन्तमुहूर्त काल तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराया है । पुनः उसके योग्य जघन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त



संकिलेसं गंतुण्णकस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए संकामिदाए अंतो-  
 मुहुत्तकालं सच्चमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि । कुदो ? कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए  
 उक्कस्ससंकिलेसेण बच्चमाणाए हस्स-रदीहि विणा अरदि-सोगाणं चैव बंधसंभवादो ।  
 कसायुक्कस्सट्ठिदिविहृत्तिकालेण अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहृत्तिकालो सरिसो कसा-  
 याणमुक्कस्सट्ठिदिविहृत्तिकालेण वि आवलियमेत्तकालमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहृत्ति-  
 दंसणादो । संपहि इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा । पुणो अप्पणेण  
 जीवेण कसायाणं समज्जणुक्कस्सट्ठिदिमंतोमुहुत्तकालं बंधिय पडिहग्गसमए बच्चमाणा-  
 इत्थिवेदम्मि बंधावलियादीदकसायट्ठिदी संकामिदा । ताधे इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्सं  
 पेक्खिदूण समज्जणा । तदो अंतोमुहुत्तकालमित्थिवेदं बंधिय अवरेगमंतोमुहुत्तकालं  
 णवुंसयवेदं बंधिय पुणो अंतोमुहुत्तेणुक्कस्ससंकिलेसं पूरेदुण्णकस्सकसायट्ठिदिं बंधिय  
 बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए संकामिदाए अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि । तम्मि  
 समए इत्थिवेदो अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूणं समयाहियअंतोमुहुत्तूणो होदि । एवं  
 दुसमयाहिय-तिसमयाहिय-अतोमुहुत्तमूणं कादूण णेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि चि ।  
 एवं परिसवेदस्स । णवुंसयवेदस्स एवं चैव । णवरि समज्जणमादिं कादूण [ जाव ]  
 वोसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ चि णेदव्वं ।

होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रमित होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालतक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट संकलेशसे बंधने पर हास्य और रतिको छोड़कर अरति और शोकका ही बन्ध संभव है । यद्यपि अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिभिन्निका काल कषायकी उत्कृष्ट स्थितिभिन्निके कालके समान है तो भी कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके हक जाने पर भी एक आवलि काल तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिभिन्निके देखी जाती है । यहाँ पर स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम है । पुनः अन्य जीवने कषायोंको एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त काल तक बाँधा और प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया तो उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है । तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका बन्ध करके तथा दूसरे एक अन्तर्मुहूर्त काल तक नपुंसकवेदका बन्ध करके पुनः एक अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संकलेशकी पूर्ति करके और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर बन्धावलिसे रहित उस कषायकी स्थितिका अरति और शोकमें संक्रमण होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है । तथा उस समय स्त्रीवेद अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिवाला होता है । इसी प्रकार दो समय अधिक और तीन समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः-कोडाकोड़ी सागर तक स्त्र.वेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इसी प्रकार पुरुषवेदकी स्थिति होती है । तथा नपुंसकवेदकी स्थिति भी इसी प्रकार होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्न्योपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोड़ी सागर तक घटाते हुए ले जाना चाहिये ।

§ ८१५. हस्स-रदीण गियमा अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडा-  
कोडि ति । भय-दुगुंझाणं गियमा उक्कस्सा; धुववधिचादो । भय-दुगुंझाणं गिरुंभणं  
कादूण भण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-तिण्णिवेदानमरदि-  
सोगभंगो । हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं णनुंसयवेदभंगो ।

§ ८१६. एवं चुण्णिमुत्तमस्सिदूण सण्णियासपरूवणं करिय संपहि उच्चारणम-  
स्सिदूणक्कस्ससण्णियासं कस्सामो । पुणरुत्तमिदि एत्थ अण्णयरो ण कायव्वो;  
आइरियाणमुवदेसंतरजाणावणहं परूविदाए पुणरुत्तदोसाभावादो ।

§ ८१७. सण्णियासो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए  
पयदं । दुविहो गिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्तउक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स  
सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?  
गियमा अणुक्कस्सा । अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा द्विदि ति । णवरि चरिसु-  
व्वेल्लणकंडएण्णया । सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।  
उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव पत्तिदोवमस्स असंखेज्जदिभाणेण  
ऊणा । चत्तारिणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण

§ ८१५. हास्य और रतिकी स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः-  
कोडाकोड़ी सागर तक नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । तथा भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे  
उत्कृष्ट होती है, क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं । भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिके  
रहते हुए सन्निकर्षका कथन करनेपर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और  
तीनों वेदोंका भंग अरति और शोकके समान है । तथा हास्य, रति, अरति और शोकका भंग  
नपुंसकवेदके समान है ।

§ ८१६. इस प्रकार चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर सन्निकर्षका कथन करके अब उच्चारणाका  
आश्रय लेकर उत्कृष्ट सन्निकर्षको बताते हैं । यदि कोई कहे कि जिसका चूर्णिसूत्र द्वारा कथन किया  
है उसका उच्चारणा द्वारा कथन करने पर पुनरुक्त दोष आता है, अतः किसी एकका कथन नहीं करना  
चाहिये सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि आचार्योंके उपदेशोंमें अन्तरका ज्ञान करानेके लिए  
चूर्णिसूत्रके कथनके बाद भी उच्चारणाका कथन करने पर पुनरुक्त दोष नहीं आता है ।

§ ८१७. सन्निकर्ष हो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण  
है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषकी  
अपेक्षा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति-  
बिभक्ति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो क्या उत्कृष्ट होती या अनुत्कृष्ट ? नियमसे  
अनुत्कृष्ट होती है । जो एक अन्तर्लुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक होती है ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकके सन्निकर्ष विकल्पों  
से न्यून हाती है । सोलह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा  
अनुत्कृष्ट होती है । उनमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्त्योपम  
के असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । चार नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट

जाव अंतोकोडाकोडि ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयुणमादि कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखे० भागेरूणाओ ति ।

§ ८१८. सम्भत्तुकस्सट्टिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणा । णत्थि अण्णो वियप्पो । सम्भामि० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा उक्कस्सा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादि कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेरूणा ति । एवं सम्भामि० ।

§ ८१९. अणंताणु०कोध० मिच्छत्त-पण्णारसक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयुणमादि कादूण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेरूणा ति । सम्भत्त-सम्भामि० मिच्छत्तभंगो । चत्तारिणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादि कादूण जाव अंतोकोडाकोडि ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । जदि अणुक्कस्सा समरूणमादि कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ ति । एवं पण्णारसकसायाणं ।

होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट हातां है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकांडी सागर तक होती है । पांच नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । उनमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पर्योपमका असंख्यावां भाग कम वीस कोडाकोडी सागर तक होती है ।

§ ८१८. सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यहां मिथ्यात्वकी स्थितिका अन्य विरूप नहीं होता । सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पर्योपमक असंख्यातवें भाग कम तक होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्षका कथन करना चाहिये ।

§ ८१९. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और पन्द्रह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पर्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । चारों नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकांडी सागर तक होती है । पांच नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । यदि अनुत्कृष्ट होती है तो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पर्योपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोडी सागर तक होती है । इसी प्रकार शेष पन्द्रह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष ज्ञान्ता चाहिये ।

§ ८२०. इत्थिवेदुक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा, एगसमयमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेणूणा । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । अथवा अतोमुहुत्तूणमादिं कादूणे त्ति वत्तव्वं । णवुंस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा, समयूणमादिं कादूण जाव वीसं सागरोवमकोडाकोडात्रो पल्लिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ । हस्स-रदि० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कसा अणुक्कस्सा वा । उक्कसादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडाओ । अरदि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कसा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ । भय-दुगुंछ० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । समयूणमादिं कादूण जाव आवलिऊणा । एवं पुरसवेदस्स ।

§ ८२१. णवुंसयवेदुक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेण ऊणा । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ?

§ ८२०. स्वभावैदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी सागर तक होती है । अथवा एक समय कमके स्थानमे अन्तर्मुहुत्तू कमसे लेकर ऐसा कहना चाहिये । नपुंसकवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोड़ी सागर तक होती है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी सागर तक होती है । अरति और शोककी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोड़ी सागर तक होती है । भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

§ ८२१. नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । सोलह कपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है -या

उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव आव-  
लिउणा । इत्थि-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? शियमा अणुक्कस्सा । समयूणमादिं  
कादूण जाव अंतोकोडाकोडि ति । अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण । हस्स-रदि०  
किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूण-  
मादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि ति । अरदि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा  
अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवम-  
कोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ । भय-दुगुंजा० इत्थिवेदभंगो ।

§ ८२२. हस्सउक्कस्सद्विविधित्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ?  
णियमा अणुक्कस्सा । समयूणमादिं कादूण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा ।  
सम्मत्त-सम्पामि० मिच्छत्तभंगो । सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० ।  
एगसमयमादिं कादूण जाव आवलिउणा । इत्थि-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ?  
उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतो-  
कोडाकोडि ति । अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण । णवुंसय० किमुक्क० अणुक्क० ?  
उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसं-

अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट  
स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती  
है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर  
अन्तःकोडाकोड़ी सागर तक होती है । अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर के' स्थानमें  
'अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' कहना चाहिये । हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उसमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय  
कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी सागर तक होती है । अरति और शोककी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उसमें अनुत्कृष्ट  
स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्योपमका असंख्यातवां भाग कम बीस  
कोडाकोड़ी सागर तक होती है । भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है ।

§ ८२२. हास्य प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे  
लेकर पत्योपमके असंख्यातवां भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग  
मिथ्यात्वके समान है । सोलह कथायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे  
अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है ।  
स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और  
अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी  
सागर तक होती है । अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' के स्थानमें 'अन्तर्मुहूर्त कम  
उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?  
उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट

सागरोवमकोडाकोडीओ पलियो० असंखे० भागेणूणाओ । अरदि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा । समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलियो० असंखे० भागेणूणाओ । रदि-भय-दुगुंढाओ किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । एवं रदि० ।

§ ८२३. अरदि० उक्कस्साद्विदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्करसा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलियो० असंखे० भागेणूणा । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । सोलसक० णनुंसगभंगो । इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदाणं रदिभंगो । हस्स-रदि० किमुक्क० ? णियमा अणुक्क० । समयूण-मादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । सोग-भय-दुगुंढाणं णियमा उक्कस्सा । एवं सोग० ।

§ ८२४. भय० उक्क० द्विदिवि० मिच्छत्त०-सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-तिण्णिवेद० अरदिभंगो । हस्स-रदि-अरदि-सोग० णनुंसयभंगो । दुगुंढ० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्क० । एवं दुगुंढ० । एवं सच्चणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरि० पज्ज०-पंचिं०-तिरि०-जोणिणी०-यणुसतिय०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिं०-पंचिं०-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओराळि०-

स्थितिसे लेकर पत्थोपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोडी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्थोपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोडी सागर तक होती है। रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार रति प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८२३. अरति प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कमसे लेकर पत्थोपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थितितक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। सोलह कषायोंका भंग नपुंसकवेदके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदका भंग रतिके समान है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है। तथा शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार शोकप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८२४. भयप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और तीन वेदोंका भंग अरतिके समान है। हास्य, रति, अरति और शोकका भंग नपुंसकवेदके समान है। जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार जुगुप्सा प्रकृतिकी स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचो मनोयोगी पांचों

वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसिद्धि०-  
सण्णि-आहारि ति ।

§ ८२५. पंचिंदियतिरि० अपज्ज० मिच्छत्त उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त०-  
सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा  
अणुक्कस्सा । अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एया ट्ठिदी । णवरि चरिमुव्वेल्लण-  
कंडएणूणा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा  
वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे० भागेणूणा ।  
सम्मत्त० उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क०  
अंतोमुहुत्तूणा । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । सोलसक०-  
णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव  
पलिदोवयस्स असंखे० भागेणूणा । एवं सम्मामि० । अणंताणुबंधिकोष० उक्कस्सट्ठिदि-  
विहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो  
अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे० भागेणूणा । सम्मत्त० सम्मा-  
मिच्छत्तभंगो । पणारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा ।

वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले,  
असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेस्यावाले, भव्य, संबी और आहारक  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८२५. पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तकोंमें मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व ये दो प्रकृतियों कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति पर्यंत होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें अन्तिम  
उद्वेगना काण्डक प्रमाण स्थितिको घटा देना चाहिये ; सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति  
क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट  
स्थिति एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।  
सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या  
अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । सम्यग्मि-  
ध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कषाय  
और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो  
अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक  
होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।  
अनन्तानुबन्धी क्रोधकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय  
कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग मिध्यात्वके समान है । पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार पन्द्रह कषाय

एवं पण्णारसक०-एवणोकासायाणं । एवं मणुसअपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमइंदिय-  
पज्जतापज्जत्त-सव्वविगल्लिदिय-पंचिंअपज्ज०-बादरपुडविअपज्ज०-सुहुमपुडवि-पज्ज-  
तापज्जत्त-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ-पज्जतापज्जत्त-तेउ-बादरसुहुमपज्जतापज्जत्त-  
वाउ०-बादरसुहुमपज्जतापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-गिगोद-बादरसुहुमपज्ज-  
तापज्जत्त-तसअपज्जत्ता त्ति ।

§ २२६. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जं ति मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिविहृत्तियस्स  
सम्मत्त-सम्मामि० सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि किमुक्क० अणुक्क० ?  
उक्क० अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पलिदो० असंखेभागुणमार्दिं कादूण  
जाव एगा द्विदि त्ति । णवरि चरिमुवेल्लणकंडयचरिमफालीयाए ऊणा । सोलसक०-  
णवणोक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवं सोलसक०-णवणोक्क० ।  
सम्मत्त० उक्कस्सद्विदिविहृत्तियस्स मिच्छत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक्क० किमुक्क०  
अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवं सम्मामि० ।

§ २२७. अणुदिसादि जाव सव्वद्विसिद्धिं त्ति मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिविहृत्तियस्स

और नौ नोकषायोंकी स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्य  
अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त,  
सब विकलान्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म  
पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक,  
सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर-  
अग्निकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर  
वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त,  
बादर वनस्पतिकायिक प्रत्यक शरार अपर्याप्त, निगाद, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर  
निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगाद अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त-  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२६. आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोमे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियों कदाचित् है और कदाचित्  
नहीं हैं । यदि हैं ता इनकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और  
अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति प्रत्यापनके असंख्यातव भाग कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे  
लेकर एक स्थिति तक होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमेंसे आन्तम उद्वेलनकाण्डकी  
अन्तिम फालिप्रमाण स्थितियोंको घटा देना चाहिये । सालाह कषाय और नौ नाकषायोंकी स्थिति  
क्या उत्कृष्ट हाती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट हाती है । इसी प्रकार सोलाह कषाय और  
नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सालाह कषाय और नौ नाकषायोंकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होता है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट हाता है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व  
की उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ २२७. अनुदिसासे लेकर सर्वाथोसिद्धि तकके देवोमे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके



सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा उक्क० । एवमेक्केक्कस्स । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाकवाद०-संजदासंजद०-खइय-उवसम०-सासण०-दिट्ठि ति ।

§ ८२८. एइदिय-बादरेइदिय-तप्पज्ज०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउपज्ज०-वणप्फदि-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-तप्पज्ज०-ओरालियमिस्स-वेउच्चियमिस्स-कम्मइय०-असण्णि०-अणाहारि०-मदि०-सुद०-विहंग०-मिच्छादिट्ठि ति ओघं । णवरि एइदियादि अणाहारिपज्जंत्तेसु धुवबंधीणमुक्कस्सट्ठिदि-विहत्तियस्स चटुणोक० उक्क० अणुक्क० वा । समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडा-कोडि ति । चटुणोक० उक्कस्सट्ठिदिवि० धुवबंधीणमुक्क० अणुक्क० वा । समयुण-मादिं कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेणूणा । समऊणावलळिणा ति एसो विसेसो जाणियच्चो ।

§ ८२९. आभिणि०-सुद०-ओहि० मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा उक्क० । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क०

धारक जीवके सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नाकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार प्रत्येक प्रकृतिकी स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदापस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८२८. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, वनस्पति कायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्र-काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, असंज्ञा, अनाहारक, मत्तयज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी और मिध्यादृष्टि जीवोंके ओघके समान सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोसे लेकर अनाहारकोतक जोधोंमें ध्रुवबन्धनी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिके धारक जीवके चार नोकषायोंकी स्थिति उत्कृष्ट भा होती है और अनुत्कृष्ट भा । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकाड़ा सागर तक होती है । चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके ध्रुवबन्धनी प्रकृतियोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्त्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । यहां पर एक समय कम या एक आवली कम उत्कृष्ट स्थिति होती है इतना विशेष जानना चाहिए ।

§ ८२९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अबधिज्ञानी जीवोंमें मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट

अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पत्तिदो० असंखे० भागेणूणा । एवं सम्मत्त-सम्मामि० । अणुताणु० कोधुक्कस्स०-विहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पत्तिदो० असंखे० भागेणूणा । पण्णारसक्क०-णवणोक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवं पण्णारसक्क०-णवणोक्कसायाणं । एवोमहिदंस०-सम्मा०-वेदय० त्ति० ।

§ ८३०. सुक्कलेस्सिय० पंचिं० तिरि० अपज्जत्तभंगो । अभाव० सम्मत्त-सम्मामि० वज्ज० ओघं । सम्मामि० मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । अंतोमुहुत्तूणादिं कादूण जाव सागरोवमपुधचं । सोलसक्क०-णवणोक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? आभिण्णि० भगो । एवं सोलसक्क०-णवणोक्क० । सम्मत्तुक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स मिच्छत्त-सोलसक्क०-णवणोक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणा । णवरि पणुवीसकसायाण अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव

होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोचकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होता है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी । उनसे अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जावोंके जानना चाहिये ।

§ ८३०. सुक्कलेस्सियावालोके पंचन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोके समान भंग है । अमव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छांड़ कर शेष कथन ओचके समान है । तात्पर्य यह है कि अमव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं होतीं, अतः इनके साथ अन्य प्रकृतियों का और अन्य प्रकृतियों के साथ इनका सन्निकर्ष नहीं प्राप्त होता । शेष प्रकृतियोंका सन्निकर्ष ओचके समान है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोगे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट । नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर सागर पृथक्त्व तक होती है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट । यहाँ आभिनिर्वाधिक ज्ञानियोंके समान भंग है । इसी प्रकार सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पच्चास कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती

पलिदो० असंखे० भागेणूणा त्ति । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० ।  
एवं सम्मामि० ।

एवमुक्कस्सट्ठिदिसणियासो समत्तो ।

❁ जहण्णट्ठिदिसणियासो ।

§ ८३१. सुगममेदं ।

❁ मिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसंतकम्मियस्स अणंताणुबंधीणं एत्थि ।

§ ८३२. अणंताणुबंधीणं एत्थि सणियासो त्ति संबंधो कायव्वो । कुदो ? पुवं  
चेव विसंजोह्दाणं तत्थ ट्ठिदिसंताभावादो ।

❁ सेसाणं कम्मणं द्विदिविहत्ती किं जहण्णा अजहण्णा ?

§ ८३३. सुगममेदं ।

❁ णियमा अजहण्णा ।

§ ८३४. कुदो, उवरि जहण्णट्ठिदिं पडिवज्जमाणामेत्थ जहण्णत्तविरोहादो ।

❁ जहण्णादो अजहण्णा असंखेज्जगुण्णभहिया ।

§ ८३५. कुदो ? मिच्छत्तस्स दुसमयकालेगट्ठिदीए सेसाए सम्भत्त-सम्मामि-  
च्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं बारसकसाय-णवणोकसायाणमंतोकोडा-  
कोडिसागरोवममेत्ताणं द्विदीणमवसिटाणमुवलंभादो ।

है । इसी प्रकार सन्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसन्निकष समाप्त हुआ ।

\* अब जघन्य स्थितिके सन्निकषका अधिकार है ।

§ ८३१. यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका  
सन्निकष नहीं है ।

§ ८३२. यहां पर अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सन्निकष नहीं है, इस प्रकार संबन्ध करना  
चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होनेके पहले ही इसकी विसंयोजना हो जाती है,  
अतः इसका मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समय स्थिति सत्त्व नहीं पाया जाता है ।

\* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके शेष कर्मोंकी स्थितिविभक्ति  
क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?

§ ८३३. यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अजघन्य होती है ।

§ ८३४. क्योंकि शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति आगे जाकर प्राप्त होनेवाली है, अतः उनकी  
यहां जघन्य स्थिति माननेमें विरोध आता है ।

\* वह अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है ।

§ ८३५. क्योंकि जब मिथ्यात्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थिति शेष रहती है तब  
सम्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्वकी पल्लोपमके असख्यातवर्ण भागप्रमाण तथा बारह कथाय और नौ  
नोक्षायोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति शेष पाई जाती है ।

❀ मिच्छत्तेण णीदो सेसेहि वि अणुमग्गियच्चो ।

§ ८३६, मिच्छत्तजहण्णद्विदीए सह सणियासो णीदो कहिदो परुविदो त्ति वचं होदि । सेसेहि वि कम्मोहि एसो जहण्णसणियासो अणुमग्गियच्चो गवेसियच्चो त्ति उचं होदि ।

§ ८३७, एवं जइवसहाइरियमुहविणिग्गय च्छुणिसुत्ताणं देसामासिएण सूचि-  
दस्स उच्चारणपरुवणं कस्सामो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण ।  
ओघेण मिच्छत्तजहण्णद्विद्विहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामिं किं जह० अजह० ?  
णियमा अजह० असंखे० गुणब्भहिया । वारस०-णवणोक्कं किं जह० अजह० ?  
णियमा अज० असंखे० गुणब्भहिया । अणंताणुबंधी णिस्संतं ।

§ ८३८, सम्मत्तस्स जह० वारसक्क०-णवणोक्कं किं जह० अज० ? णियमा  
अज० असंखे० गुणब्भहिया । सेसस्स असंतं ।

§ ८३९, सम्मामिं जह० विहत्तियस्स मिच्छत्त-सम्मत्त-अणंताणुं सिया अत्थि  
सिया खत्थि । यदि अत्थि किं जह० अजह० ? णियमा अज० असंखे० गुणब्भहिया ।  
वारसक्क०-णवणोक्कं किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखेज्जगुया ।

❀ जिस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार  
शेष कर्मोंके साथ भी उसका विचार करना चाहिये ।

§ ८३६, जिस प्रकार मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके साथ सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार शेष  
कर्मोंके साथ भी यह जघन्य सन्निकर्ष कहना चाहिये । सूत्रमें जो 'णीदो' पद है उसका अर्थ  
'कहना चाहिये, प्ररूपण करना चाहिये' यह होता है तथा 'अणुमग्गियच्चो' पदका अर्थ खोजना  
चाहिये' होता है ।

§ ८३७, इस प्रकार अतिवृषभ आचार्यके मुखसे निकले हुए चूर्णिसूत्रोंके देशामर्षक होनेसे  
सूचित हुए अर्थकी उच्चारणाका कथन करते हैं—अब जघन्य सन्निकर्षका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा  
निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी  
जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है  
या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यात गुणी अधिक  
होती है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे  
अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । तथा अनन्ता-  
नुबन्धीका यहाँ अभाव है ।

§ ८३८, सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय और नौ  
नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी  
जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । इसके शेष प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है ।

§ ८३९, सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और  
अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह प्रकृतियों कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनकी स्थिति  
क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे

§ ८४०. अणंताणु०क्रोध० जह० मिच्छत्त-सम्पत्त-सम्पामि०-वारसक०-णव-  
लोक० किं ज० अज० ? गियमा अज० असंखेज्जगुणा । तिण्णिक० किं ज०  
[ अजह० ] ? गियमा जह० । एवं तिण्हं कसायाणं ।

§ ८४१. अपच्चक्खाणक्रोध० जह०विहत्तियस्स चत्तारिसंज०-णवलोक० किं  
ज० अज० ? गियमा अज० असंखे०गुणा । सत्तकसाय० किं जह० अज० ? गियमा  
जह० । एवं सत्तकसायाणं ।

§ ८४२. इत्थि०ज०विहत्तियस्स सत्तलोक०-तिण्णिसंजल० किं जह० अज० ?  
गियमा अज० संखे०गुणा । लोभसंज० किं जह० अज० ? गियमा अज० असंखे०-  
गुणा । एवं णवुंस० ।

§ ८४३. पुरिस०ज०विहत्तियस्स तिण्हं संजल० किं ज० अज० ? गियमा  
अज० संखेज्जगुणा । लोभसंज० किं जह० अज० ? गियमा अज० असंखे०गुणा ।

§ ८४४. हस्सज० तिण्णिसंज०-पुरिस० किं जह० अज० ? गियमा अज०

असंख्यातगुणी अधिक होती है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्यस्थितिसे असंख्यातगुणी होती है ।

§ ८४०. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४१. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । शेष अप्रत्याख्यानावरण मान आदि सात कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्या-  
वरण मान आदि सात कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४२. स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सात नोकषाय और तीन संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । लोभसंज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है ? जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४३. पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके तीनों संज्वलनोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । लोभ संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है ।

§ ८४४. हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी

संखे०गुणा । लोभसंजल० किं जह० अजह० ? गियमा अज० असंखे०गुणा । पंच-  
णोक० किं जह० अज० ? गियमा जहण्णा । एवं पंचणोक० ।

§ ८४५. कोषसंजल० जह० विहत्तियस्स दोसंजल० किं जह० अजह० ? गियमा  
अज० संखेज्जगुणा । लोभ० किं ज० अज० ? गियमा अज०, असंखे०गुणा । माणसंज०  
जह० विहत्तियस्स मायासंज० किं ज० अज० ? गियमा अज० संखे०गुणा । लोभ  
किं ज० अज० ? गियमा अज०, असंखे०गुणा । मायासंजल० जह० विहत्ति० लोभ०  
किं ज० अज० ? गियमा अज० असंखे०गुणा ।

§ ८४६. लोभसंज० जह० द्विदि० सेसंपत्थि । एवं मणुस-मणुसपज्ज०-  
मणुसिणी-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-  
ओरालि०-लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि चि । णवरि  
मणुसपज्जत्तएसु इत्थि० जहण्णाद्विदिविहत्तियस्स चदुसंजल०-सत्तणोक० गियमा अज०  
असंखे०गुणा । णवुंस० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, गियमा अज०  
असंखे०गुणा । मणुस्सिणीसु णवुंस० ज० द्विदिवि० चदुसंज०-अट्ठणोक० गियमा

स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे  
संख्यातगुणी होती है । लोभ संव्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे  
अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । पाँच नोकषायोंकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार पाँच नोकषायोंकी जघन्य  
स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४५. क्रोध संव्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके दो संव्वलनकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती  
है । लोभ संव्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो  
जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । मानसंव्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके  
मायासंव्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो  
जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । लोभसंव्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या  
अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । माया-  
संव्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके लोभसंव्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है  
या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है ।

§ ८४६. लोभसंव्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके शेष प्रकृतियों नहीं पाई  
जाती है । इसी प्रकार अर्थात् ओषके समान मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-  
पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्म पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी,  
लोभ कषायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अक्षुदर्शनवाले, शुक्ललेटरयावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक  
जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तको भी स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति  
विभक्तिके धारक जीवके चार संव्वलन और सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य स्थिति होती है  
और वह जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा नपुंसकवेद कदाचित् है और कदाचित्  
नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, -जो जघन्य स्थितिसे असंख्यात-  
गुणी होती है । मनुष्यनियमों नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके चार संव्वलन

अज०, असंखे०गुणा । पुरिस० छण्णोकसायभंगो ।

§ ८४७, आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० वारसक०-भय-दुग्गुंळ० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा सम-उत्तरादि जाव पत्तिदो० असंखे० भाग्वभहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणव्वभहिया असंखे०गुणव्वभहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा णिसेय-प्पहाणत्तणेण, अण्णहा विट्ठाणपदिदा । अणंताणु० चउक० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे०गुणा । सत्तणोक० किं जह० अज० ? णि० अज०, असंखे०भाग-व्वभहिया । सम्मत्त० जहण्णद्विदिविहत्ति० वारसक०-एवणोको० किं ज० अज० ? णि० अज०, संखे०गुणा । सम्मामि० ज० विहत्तियस्स मिच्छत्त-वारसक०-एवणोको० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा विट्ठाणपदिदा असंखे०-भागव्वभहिया संखे०भागव्वभहिया संखे०गुणव्वभहिया वा । अणंताणु० णियमा अजहण्णा

और आठ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा पुरुषवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है ।

§ ८४७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पल्लोपभके असंख्यातवें भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निषेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है ? सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है ; जो जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

असंखे०गुणा । अर्णताणु०क्रोध० ज० विहृत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं ज०  
 अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मामि० किं ज० अजह० ? णियमा अज०,  
 असंखे०गुणभहिया । तिण्हमर्णताणुवंधीणं किं० ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं  
 तिण्ह क्कसायार्ण । अपच्चनखा० क्रोधज० विहृत्ति० मिच्छ०-एकारसक० किं ज० अज० ?  
 [ अज० ] तं तु समउत्तरमादिं कादूण जाव पत्तिं असंखे०भागभहिया । भय-  
 दुगुंछं किं० ज० अज० ? णिय० जहण्णा । सम्मत्त-सम्मामि०-अर्णताणु०चउक्क०-  
 सत्तणोक० मिच्छत्तभंगो । एवमेकारसक० । इत्थि० ज० विहृत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-  
 अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अर्णता०-  
 चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । एवुंसं जहण्णाद्विदिविहृत्तियस्स मिच्छत्त-  
 वारसक०-इत्थि०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछं किं ज० अज० ? णियमा अज०,  
 संखे०गुणा । हस्सरदिं किं ज० अज० ? णियमा अज० वेढाणपदिदा असंखे०-  
 भागभहिया संखे०गुणभहिया वा । सम्मत्त-सम्मामि०-अर्णताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो ।

क्रोधकी जघन्य स्थितिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । शेष तीन अनन्तानुबन्धियोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । मिथ्यात्व की स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्त्योपमके असंख्यातवें भाग तक अधिक होती है । भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है । या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्यसे संख्यातगुणी अधिक होती है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे असंख्यातगुणी अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । किसी उच्चारणमें अरति और शोककी स्थिति हास्य और रतिके



कम्हि वि उच्चारणाए अरदि-सोगद्विदी हस्सरदीणं व वेदाणपदिदा त्ति भणदि, तं जाणिय वत्तव्वं । हस्स० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक० मिच्छत्तभंगो । इत्थि०-पुरिस०वे० किं ज० अज० ? णि० अज० विदाणपदिदा असंखे०भाग० संखे०गुणम्महिया वा । रदि० किं ज० अज० ? णिय० जहण्णा । एवं रदि० । अरदि० जह० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक० मिच्छत्तभंगो । इत्थि-पुरिस-णवुंस० किं ज० अज० ? णियमा अज० विदाणपदिदा असंखे०भागम्महिया संखे०गुण-म्महिया वा । सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सोग० । भयस्स ज० विहत्ति० मिच्छत्तवारसक० किं ज० [अज०] ? अज०, तं तु विदाणपदिदा असंखे०भाग-म्महिया संखे०भागम्महिया वा । दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं दुगुंछाए । एवं पढमाए पुढवीए ।

§ ८४८. विद्यादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त ज० विहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि०

समान दो स्थान पतित कही है सो जानकर उसका कथन करना चाहिये । हास्यकी जघन्य स्थिति विभक्तिके जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्या-तगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है; जो जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । भयकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और बारह कषायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । शेष कथन मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवीमे जानना चाहिये ।

§ ८४८. दूसरीसे लेकर छठी पृथिवीतकके नारकियोमें मिथ्यात्वको जघन्य स्थिति विभक्तिके

किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे० गुणा । वारसक० किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा । एवं वारसक०-णवणोक्कसायाणं । सम्मत्त० ज० विहत्तियस्स मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गणा । सम्मामि० अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णिय० अज० असंखे० गुणा । सम्मामिच्छ० जह० विहत्तियस्स मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० किं जह० अजह० ? णिय० अज० सखेज्जगुणा । अणताणु० चउक्क० किं जह० अजह० ? णिय० अज० असं० गुणा । सम्मत्तं एत्थि । अणंताणु० कोह० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० किं ज० अज० ? णिय० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भाग० महिया संखे० भाग० महिया वा । सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे० गुणा । तिण्णि कसाय० किं ज० अज० ? णियमा जह० । एवं तिण्हं कसायाणं ।

§ ८४६. सत्तमाए पुढवीए मिच्छत्त० ज० विहत्ति० वारसक०-भय-दुग्गुद्धा० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० समयुत्तरमादिं कादूण जाव

धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। वारह कपायों और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ण जानना चाहिये। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है इसलिये उसका सन्निकर्ण नहीं कहा। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिध्यात्व वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वको स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ण जानना चाहिये।

§ ८४६. सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और

१ आ० प्रती संखे० गुणा इति पाठः ।

पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । सम्मत्त-सम्माभि० अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० गुणा । सत्तणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे० भागवभहिया । एवं वारसकसायाणं, णवरि भय-दुग्गुं छा० तं तु समयुत्तरमादिं जाव आवलियवभहिया । सम्मत्त० जह० विहृत्तिं मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्माभि० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे० गुणा । अणंताणु० चउक्क० विदियपुहविभंगो । सम्माभि० एवं चेव, णवरि सम्मत्तं णत्थि । अणंताणु० कोध० ज० विहृत्तिं मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागवभहिया संखे० भागवभहिया वा । सम्मत्त-सम्माभि० मिच्छत्तभंगो । तिण्णि क० किं ज० अज० ? णि० ज० । एवं तिण्हं कसायाणं । इत्थि० ज० विहृत्तिं मिच्छत्त-वारसक०-अट्टणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त०-सम्माभि०-अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे० गुणा । एवं पुरिस० । णवुंस० ज० विहृत्तिं मिच्छत्त-

अजघन्य भी । उनमसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमके असंख्यातवें भाग तक अधिक होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार वारह कपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके भय और जुगुप्साकी स्थिति अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग दूसरी पृथिवीके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय, और आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य

वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? गियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज० ? गियमा अज० असंखे०गुणा । हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णि० अज० वेद्दाणपदिदा असंखे० भाग०भहिया संखेज्जगुणा वा ? हस्स जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखेज्जगुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० णवुंस० भंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? गिय० अज० वेद्दाणपदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे०गुणा वा । रदि० किं ज० अज० ? गियमा जहण्णा । एवं रदि० । अरदि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? गियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० रदिभंगो । तिण्णि वेद० किं ज० अज० ? गिय० अज० वेद्दाण-पदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे० गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? गियमा जहण्णा । एवं सोग० । भय ज० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक० किं ज० ? अज० । तं तु

स्थितसे असंख्यातगुणी होती है इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग नपुंसकवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग रतिके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । भयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और वारह कषायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?

तिद्वाणपदिदा असंखे० भागबभहिया संखे० भागबभहिया संखे० गुणा वा । दुगुंङ्ग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । सेसं मिच्छत्तमंगो । एवं दुगुंङ्ग० ।

§ ८५०. तिरारक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त० जं विहत्ति० बारसक०-भय-दुगुंङ्ग० किं जं अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पत्तिदो० असंखे० भागबभहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं जं अज० ? णि० अज० वेद्वाणपदिदा संखे० गुणा असंखे० गुणा वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं जं अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा वेद्वाणपदिदा संखे० गुणा असंखे० गुणा वा । अणंताणु० चउक्क० किं जं अज० ? णि० अज०-असंखे० गुणा । सत्तणोक० किं जं अज० ? णि० अज० असंखे० भागबभहिया । एवं बारसक० । णवरि बारसकसाएसु एककरसस जहण्णद्विदीए णिरुद्धाए भय-दुगुंङ्ग०ओ किं जं [ अज० ] ? अज०, तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवत्थियबभहियाओ । सम्मत्त० जं विहत्ति० बारसक०-एवणोक० किं जं अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मामि० जह० विहत्ति०

नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८५०. तिर्यचगतमें तिर्यचोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पर्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है। सम्यक्त्वप्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक या असंख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होती है। सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी जघन्य स्थितिके रुके रहने पर भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी

मिच्छत्त-वारसक०-णवणो० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा तिट्ठाणपदिदा असंखे० भागवमहिया संखे० भागवमहिया संखे० गुणवमहिया वा । अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणवमहिया । अणंताणु० कोथ० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणो० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अजह० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायणं । भय० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा असंखे० भागवमहिया । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्त-भंगो । सत्तणो० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० भागवमहिया । दुगुंळ० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं दुगुंळाए । इत्थि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-अट्ठणो० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । णवुंस० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-

जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति, क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । भयकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और वारह कषायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है । या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार

१ आ० प्रतौ 'संखेजगुणा' इति पाठः ।

वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु०चउक्क० इत्थि०भंगो । हस्स-रदि० किं ज० अज० [ णियमा अज० ] वेढाणपदिदा असंखे०भागभहिया संखे०गुणा वा । हस्स ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणता०चउक्क० णवुंसंभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? णि० अज० वेढाणपदिदा असंखे०भागभहिया संखे०गुणा वा । रदि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं रदीए । अरदि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु०चउक्क० हस्सभंगो । तिण्ण वेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेढाणपदिदा असंखे०भागभहिया संखे०गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सोग० ।

§ ८५१. पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणी० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० वारसक०-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा ।

पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग स्त्रीवेदके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, नपुंसकवेद अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या जघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग नपुंसकवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारहकषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित है । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५१. पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके वारह कषाय भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या

जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । णवरि भयदुगुंछ० तिहाणपदिदा । सम्मत्तं सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं ज० अज० ? णि० अज० वेहाणपदिदा संखे० गुणा असंखे० गुणा वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा विहाणपदिदा संखे० गुणा असंखे० गुणा वा । अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० गुणा । सत्तणोक० किं ज० अज ? णि० अज० तिहाणपदिदा-असंखे० भागवभहिया संखे० भागवभहिया संखे० गुणवभहिया वा । एवं वारसकसाय० । भय० जह० मिच्छत्त-वारसक०-दुगुंछ० किं ज० [ अज० ] ? अज० तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं दुगुंछ० । सम्मत्त ज० विहत्ति० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मामि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं० ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा तिहाणपदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० भागवभ० खे० गुणा वा । अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज०

जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति एक समय अधिक जघन्य स्थितिसे लेकर पल्लयोपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है । सम्यक्त्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो संख्यातगुणी अधिक या असंख्यात गुणी अधिक इन प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी हाती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा-संख्यात गुणी अधिक या असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थानपतित होती है । अनन्तातुवन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य हाती है जो असंख्यातवें भाग अधिक संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । इस प्रकार बारह कषायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जावोके सन्निकर्ष जानना चाहिये । भयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । फिरभी वह अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्लयोपमके असंख्यातवें भाग अधिकतक होती है । श्रेव भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग



असंखे० गुणा । इत्थि० जह० विहृत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-अट्टणोको० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्माभि०-अणंताणु०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवं  
 पुरिस० । णवुंस० ज० विहृत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-  
 भय-दुगुंछं० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्माभि०-अणं-  
 ताणु०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो । हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेद्वाण-  
 पदिदा असंखे०-भागब्भहिया संखे० गुणा । हस्स० जह० विहृत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-  
 अरदि-सोग-भय-दुगुंछं० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । एवं णवुंस० ।  
 सम्मत्त-सम्माभि०-अणंताणु०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० वेद्वाणपदिदा असंखे०-भागब्भ० संखे० गुणा वा । रदि किं ज० अज० ?  
 णि० जहण्णा । एवं रदीए । अरदि० ज० विहृत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि०-  
 भय-दुगुंछं० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्माभि०-अणंताणु०-  
 चउक्क० हस्सभंगो । तिण्णिवेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेद्वाणपदिदा असंखे०

अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातर्वे भाग अधिक और संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदका भंग जानना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातर्वे भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपना जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है,

भागम्० संखे०गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? शि० जहण्णा । एवं सो० । णवरि  
पंचि० तिरि० जोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो ।

§ ८५२. पंचि०तिरि० अपज्ज० मिच्छत्त ज० विहत्ति० सम्मत्त-सम्मामि०-  
धारसकं०-णवणोकं० जोणिणीभंगो । अणंताणु०चउक्कं० किं ज० अज० ? जहण्णा  
अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भाग-  
म्भिया । सम्मत्त० ज० विहत्ति० मिच्छत्त सोलसकं०-णवणोकं० किं ज० अज० ?  
जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० तिहाणपदिदा असंखे०भागम्भ० संखे०  
भागम्भ० संखे०गुणा वा । सम्मामि० णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सम्मामि०, णवरि  
सम्मत्तं णत्थि । सोलसकं० मिच्छत्तभंगो । भय० जह० मिच्छत्त-सोलसकं०-दुगुंझं  
किं ज० [ अज० ] ? अज०, तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०  
भागम्भ० । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं दुगुंझाए । सत्तणोकं० जोणिणभंगो । णवरि  
अणंताणु० चउक्कं० णि० संखे०गुणा । एवं मणुसअपज्ज०-पंचि०अपज्ज०-तसअप-

जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान  
पतित होती है । शोक की स्थिति क्या जघन्य हांती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है ।  
इसी प्रकार शाकका जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतना  
विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यैच योनिमात जीवोमे सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिध्यात्वके समान है ।

§ ८५२. पंचेन्द्रिय तिर्यैच लब्धपर्याप्तकामे मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके  
सम्यक्त्व, सम्याग्मिध्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोका भंग योनिमात तिर्यैचोके समान है ।  
अनन्तानुबन्धा चतुष्कका स्थिति क्या जघन्य हांती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और  
अजघन्य भी । उनमसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे  
लेकर पत्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक हांती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले  
जावके मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नाकषायोकी स्थिति क्या जघन्य हांती है या अजघन्य ?  
जघन्य भी हांती है और अजघन्य भी । उनमसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा  
असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान  
पतित हांती है । सम्याग्मिध्यात्वका स्थिति नियमसे अजघन्य हांती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे  
असंख्यातगुणी हांती है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके  
सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि इसक सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है । सोलह  
कषायोकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष मिध्यात्वके समान है ।  
भयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिध्यात्व, सोलह कषाय और जुगुप्साकी स्थिति क्या  
जघन्य हांती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य हांती है फिर भी वह अपनी जघन्य स्थितिकी  
अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमका असंख्यातवों भाग अधिक तक हांती है । शेष  
प्रकृतियोंका भंग मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके  
सन्निकर्ष जानना चाहिये । सात नोकषायोकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जावके भंग योनिमात  
तिर्यैचोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे  
संख्यात गुणी हांती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तक

उज्जत्ताणं ।

§ ८५३. देवाणं णारयभंगो । भवण०-वाणवेंतराणमेवं चैव । णवरि सम्मत्त० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्जो-त्ति मिच्छत्तजह०विहत्ति० वारसक०-णवणोको० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सम्मामि० । सम्मत्त० जह० विह० वारसक०-णवणोको० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेद्धान-पदिदा संखे० भागवभहिया । कुदो ? उवसमसेदिं चट्टिय औदरिदूण दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण ५ देवेसुप्पणस्स संखेज्जभागवभहियत्तुवलंभादो । संखेज्ज-गुणा वा, उवसमसेदिं चट्टिय दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण देवेसुप्प-णस्स संखे०गुणत्तुवलंभादो । किरियाविरहिदसम्मादिट्ठीणं द्विदिखंडयघादो णत्थि-त्ति भणंताणमाइरियाणमहिप्पाएण एदं भणिदं । किरियाए विणा तिच्चविसोहिवसेण द्विदिखंडयघादो देवेसु अत्थि त्ति भणंताणामहिप्पाएण संखेज्जगुणा चैव । णेरइय०-भवण०-वाण०-जोदिसियसम्माइट्ठीणं किरियाए विणा णत्थि द्विदिखंडयघादो । कुदो ? साभावियादो । सम्मामि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोको० किं ज०

जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८५३. देवोंके नारक्रियोंके समान भंग है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । ज्यातिपा देवोंके भंग दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वका भंग जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो दो स्थान पतित होती है । उनमेंसे पहली संख्यातवें भाग अधिक होती है क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणीपर चढ़कर और उतरकर अन्तर दर्शनमोहनीयका द्य करता हुआ कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि होकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातवें भाग अधिक देखी जाती है । या संख्यातगुणी अधिक होती है क्योंकि उपशमश्रेणीपर चढ़कर और वहांसे उतकर दर्शनमोहनीयका द्य करता हुआ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होकर जो देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी अधिक देखी जाती है । क्रिया रहित सम्यग्दृष्टियोंके स्थितिकाण्डकघात नहीं होता है ऐसा माननेवाले आचार्योंके अभिप्रायानुसार उक्त कथन किया है । परन्तु जो आचार्य क्रियाके बिना तीव्र विशुद्ध परिणामोसे देवोमें स्थितिकाण्डकघात होता है ऐसा मानते हैं उनके अभिप्रायानुसार उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी ही होती है । तो भी नारकी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्यातिपी सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्रियाके बिना स्थितिकाण्डकघात नहीं होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके

अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । अर्णताणु०चउक्क किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । अर्णताणु० क्रोधज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्तसम्मामिं किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्च-क्खाणकोधज० विहत्ति० एक्कारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेकारसक०-णवणोकसायाणं ।

§ ८५४. अणुहिसादि जाव सच्चद्विसिद्धि ति मिच्छत्त जह० विहत्ति० वारसक० णवणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त०किं० ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । सम्मामिं किं० ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सम्मामिं० । सम्मत्त० जह० विहत्ती० वारसक०-णवणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । अथवा संखे०भाग्भ० संखे०गुणा ति वेढाणपदिदा । एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । अर्णताणु०क्रोध० ज०विह० मिच्छत्त-सम्मामिं०-वारसक०-णवणोक०

मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कपाय, और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कपाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५४. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कपाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कपाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी है । अथवा संख्यातवैभाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित हैं । यहाँ पर कारण पहलेके समान कहना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके

किं ज० अज० ? णि० अज० रंखे० गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज ? णि० अज० असंखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चवखाण-कोधज० एक्कारसक०-णवणोक्क० [ किं जह० अज० ? ] णि० जहण्णा । एवमेवकारसक० णवणोक्कसायाणं ।

§ ८५५. इंदियाणुवादेण एइदिएसु मिच्छत्तजह० विहत्ति० सोलसक०-भय-दुगुंळ० किं० ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पत्तिदो० असंखे० भागेण० भहिया । सम्मत्त-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० तिट्ठाणपदिदा संखे० भागेण० भहिया संखे० गुणा वा असंखे० गुणा वा । सत्तणोक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० भागेण० भहिया । एवं सोलसकसाय-भय-दुगुंळ्हाणं । णवरि० भय जह० दुगुंळ० णियमा जहण्णा । एवं दुगुंळ० । भय-दुगुंळ्हाणं जहण्णाद्विदीए संतीए कथं सोलसकसायाणमसंखे० भागेण० भहियत्तं ? ण, सोलसकसायाणं जहण्णाद्विदीदो अ० भहियद्विदि-

मिध्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायों की जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरणमान आदि ग्यारह कपाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५६. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोमें मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पर्योपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक, संख्यातगुणी अधिक या असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थानपतित होती है । सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितिवाले जीवके जुगुप्साकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिवाले जीवके भयकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है ।

शंका—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिके रहते हुए सोलह कषायोंकी स्थिति असंख्यातवें भाग अधिक कैसे होती है ?

बंधे जादे वि भय-दुर्गुंछाणमावलिभयमेत्तकालं जहण्णद्विदिविहत्तिदंसणादो । कसायाणं पुण जहण्णद्विदिविहत्तीए संतीए भय-दुर्गुंछाओ समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवलिय-भेत्तेण अब्भहियाओ; एक्कस्स वि कसायस्स अजहण्णद्विदीए भय-दुर्गुंछासु संकंताए अप्पिदकसायस्स वि जहण्णद्विदिभावविणासादो । पढम-सत्तमपुढवि०-पंचि०तिरिक्ख-भवण०-वाणवेंतरादिसु वि एसो अत्थो परूवेयव्वो । सम्मत्त० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक्क० किं ज० [ अज० ] ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० तिहाणपदिदा असंखे०भागब्भहि० संखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा । सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सम्मामि० । णवरि सम्मत्तं णत्थि । इत्थि०ज०विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक०-अट्टणोक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०भागब्भ० । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवं छणोक्कसायाणं । एवं सव्व-एइंदिय-पंचकायाणं ।

§ ८५६. विगल्लिदिएसु मिच्छत्त० जह० विहत्ति० सोलसक०-भय-दुर्गुंछ० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० समयुत्तरमादिं कादूण जाव

**समाधान**—नहीं, क्योंकि सोलह कषायोके जघन्य स्थितितसे अधिक स्थितिबन्धके होने पर भी भय और जुगुप्साकी एक आवलि कालतक जघन्य स्थितिबिभक्ति देखी जाती है ।

परन्तु कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके रहते हुए भय और जुगुप्साकी स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समयसे लेकर एक आवलि कालतक अधिक होती है क्योंकि एक भी कषायकी अजघन्य स्थितिके भय और जुगुप्सामें संक्रान्त होने पर विवक्षित कषायकी जघन्य स्थितिका भी विनाश हो जाता है । पहली और सातवीं पृथिवीमें तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच, भवन-घासी, और च्यन्तरादिक देवोंमें भी इस अर्थका कथन करना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति-बिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व. सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातर्वं भाग अधिक, संख्यातर्वं भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो कि जघन्य स्थितितसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कदना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं होती है । खीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितितसे असंख्यातर्वं भाग अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-बिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय और पंच स्थावरकाय जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८५६. विकलेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सोलह कषाय भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे

पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । णवरि भय-दुगुंछाओ तिहाणपदिदा । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो । सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० तिहाणपदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० भागवभ० संखे० गुणवभहिया वा । एवं सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं । णवरि भयजह० दुगुं० किं० ज० [ अजह० ] ? अजह० तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जावपल्लिदो० असंखे० भागवभ० । एवं दुगुं० । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो । इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक० किं० जह० अजहण्णा ? णि० अज० संखे० भागवभहिया । अट्टणोक० किं० ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणवभहिया । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० इत्थिवेदभंगो । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो । हस्सरदि० किं० ज० अजह० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भाग-वभहिया संखे० गुणवभहिया वा । हस्सज० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ०-सम्मत्त०-सम्मामि० इत्थिवेदभंगो । इत्थि-पुरिस० किं० ज० अज० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० गुणवभहिया वा । रदि०

लेकर परयोपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक हाता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । इसी प्रकार सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितिवालेके जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर परयोपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है । इसी प्रकार जुगुप्साके विषयमें जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यत्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक होती है । आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो

किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं रदीए । अरदि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-  
सोलसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंवा०-सम्मत्त-सम्मामि० इत्थिवेदभंगो । तिण्णिवेद० किं  
ज० अज० ? णि० अज० वेदाणपदिदा संखे०भागभहिया संखेज्जगुणभहिया वा ।  
सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सोग० ।

§ ८५७. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । एवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्त-  
भंगो । वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छत्तज०विहत्ति० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ?  
णि० अजहण्णा असंखे०गुणा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज०  
संखे०गुणा । सम्मत्त० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ?  
णि० अज० संखे०गुणा । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज०  
असंखे०गुणा । एवं सम्मामि० । णवरि सम्मत्तं णत्थि । अणंताणु०-कोधज०विहत्ति०  
सम्मत्त०-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । मिच्छत्त०-वारसक०-  
णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । तिण्णिक० किं ज० [ अज० ]

असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती हैं । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य हाती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्वीवेदके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती हैं । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके जानना चाहिये ।

§ ८५७. औदारिकमिश्रकाययोगों जीवोंके सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । वैकियिककाययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं होती है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या



णि० जह० । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खाणकोधज० विहत्ति० एक्कारसक०-  
णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं ।

§ ८५८. वेडवियमिस्स० मिच्छत्त० ज०विह० वारसक०-णवणोक० किं ज०  
अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज०  
असंखे०गुणा । सम्मत्तज० विह० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि०  
अज० विट्ठाणपदिदा असंखे०भागवभहिया संखे०गुणा वा । सम्मामि० ज० वि०  
मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंळ० किं० ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सत्त-  
णोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा जहण्णादो अजहण्णा तिट्ठाणपदिदा  
असंखे०भागवभहिया संखे० भागवभ० संखे०गुणा वा । अपच्चक्खाणकोध० ज०  
वि० एक्कारसक०-भय-दुगुंळ० किं० ज० अज० ? णि० जहण्णा । सत्तणोक० किं ज०  
अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । एवमेक्कारसकसाय-भय-दुगुंळणं । अणंताणु० कोध०-

जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि  
तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्याना-  
वरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह  
कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है ।  
इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५८. वैक्रियकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके  
बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य  
होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी  
होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग  
अधिक या संख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती  
है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सात  
नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य । जघन्य भी होती है और अजघन्य भी ।  
उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें  
भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । अप्रत्याख्यानावरण  
क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय, भय  
और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । सात  
नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य  
स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार ग्यारह कषाय भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके

जह०द्विदिवि० मिच्छत्त-चारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? पि० अज० संखे०-  
गुणा । तिणिण कसाय० णियमा जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । इत्थि० ज० विह०-  
मिच्छत्त-सोलसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-  
सम्मामि० सिया अत्थि सिया एत्थि । जइ अत्थि किं ज० अज० ? जहरणा अज-  
हरणा वा । जहण्णादो अजहण्णा वेद्वाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा । एवरि  
सम्म० ज० एत्थि । एवं पुरिस० । णवुंस० ज० वि० मिच्छत्त०-सोलसक०-अट्ठणोक०  
किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० इत्थि०भंगो । हस्स-रदि०  
किं ज० अज० ? णि० अज० विद्वाणपदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे०गुणा वा ।  
हस्स० जह० विह० मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक० किं ज० अज० ? पि० अज०  
संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० इत्थि०भंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? पि०  
अज० विद्वाणपदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे०गुणा वा । रदि० किं ज० अज० ?  
पि० ज० । एवं रदीए । एवं चेव अरदि-सोगाणं । एवरि णवुंस० वेद्वाणपदिदा ।

धारक जावक मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य हाती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । (सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान जानना) । तथा अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तान कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनकी स्थिति क्या जघन्य हाती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा संख्यातगुणी अधिक या असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । किन्तु विशेषता इतना है कि इसके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति नहीं होती है । इसी प्रकार पुरुषवेदा जावके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होता है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है । हास्य और रतिको स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य हाती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित हाती है । हास्यको जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पांच नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी हाती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदका स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य हाती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार

§ ८५६. आहार० मिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्माभि० किं ज० अज० ? पि० जहण्णा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? पि० अज० संखे० गुणा । एवं सम्मत्त-सम्माभि० । अणंताणु० कोधज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? पि० अज० संखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? पि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खाणकोधज० वि० एकारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? पि० जहण्णा । एकमेवकारसकसाय-णवणोकसायाणं । एवमाहारमि० । कम्मइय० ओरालियमिस्सभंगो । णवरि सत्तणोक० अण्णदरज० मिच्छ० सोलसक० सेसणोक० णिय० अज० विट्ठणपदिदा असंखे० भागब्भहिया संखे० गुणब्भहिया ।

§ ८६०. वेदाणुवादेण इत्थि० पंचिंदियभंगो । णवरि इत्थि० ज० वि० सत्तणोक०-चत्तारि संज० किं ज० अज० ? पि० जहण्णा । एवं सत्तणोकसाय-चत्तारिसंजलणाणं । एवुंस० जह० विह० अट्टणोक०-चदुसंज० पि० अज० असंखे० गुणा । एवं एवुंस, अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी स्थिति दो स्थान पतित होती है ।

§ ८५६. आहारक काययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य हाती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य हाती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रायकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवके जानना चाहिये । कामणकाययोगियोंके ओदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान भंग हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नोकषायोंसे किसी भा प्रकृतिका जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और शेष नोकषायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य हाती है, जो असंख्यातके भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित हाती है ।

§ ८६०. वद भागणके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंके भंग पंचेन्द्रियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सात नोकषाय और चार संबलनों की स्थिति क्या जघन्य हाती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य हाती है । इसी प्रकार सात नोकषाय और चार संबलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये ।

पुरिस० एवं चैव । एवमि पुरिस० ज० वि० चत्तारिक० किं ज० अज० ? णि०  
जहण्णा । एवं चट्ठहं संजलणायं । छण्णोक० पुरिस०-चट्ठसंज० णि० अज०  
संखे०गुणा ।

§ ८६१, अवगदमिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्माभि० किं ज० अज० ? णि०  
जहण्णा । अट्ठकसाय०-इत्थि-णवुंस० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा ।  
चट्ठसंज०-सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सम्म०-  
सम्माभि० । अपच्चक्खणकोधज० वि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि० णत्थि ? सत्तक०-  
इत्थि-णवुंस० किं० अज० ? णि० जहण्णा । चत्तारिसंजल०-सत्तणोक० किं ज०  
अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सत्तकसायाणं । इत्थि ज० वि० चत्तारि-  
संज०-सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । अट्ठक०-णवुंस०  
णि० जहण्णा । एवं णवुंस० । सत्तणोक०-चत्तारिसंजलणणोघं ।

नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके आठ नोकषाय और चार संव्वलनोकी स्थिति  
नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार  
नपुंसकवेदी जीवके जानना चाहिये । पुरुषवेदी जीवके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके चार संव्वलन कषायोकी स्थिति  
क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार चार संव्वलनोकी  
जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । छह नोकषायोकी जघन्य स्थिति  
बिभक्तिके धारक जीवके पुरुषवेद और चार संव्वलनोकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो  
जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।

§ ८६१, अपगतवेदियोमि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व  
सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । आठ  
कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य  
होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । चार संव्वलन और सात नोकषायोकी स्थिति  
क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे असंख्यात-  
गुणी होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक  
जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अपत्याख्यान क्रोधकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके  
मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये तीन प्रकृतियों नहीं हैं । सात कषाय, स्त्रीवेद और  
नपुंसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । चार संव्वलन  
और सात नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है  
जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सात कषायोकी जघन्य स्थिति-  
बिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति बिभक्तिके धारक  
जीवके चार संव्वलन और सात नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?  
नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । आठ कषाय और  
नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्तिके  
धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सात नोकषाय और चार संव्वलनोकी जघन्य स्थिति  
बिभक्तिके धारक जीवके धारक समान जानना चाहिये ।

§ ८६२. कसायाणुवादेण क्रोध० पंचिदियभंगो । णवरि क्रोध० ज०वि० तिण्णि-संज० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं संजलणाणं । एवं माण० । णवरि दोण्णि० संजल० णि० जहण्णा ? एवं माय० । णवरि एगसंज० णियमा जहण्णा ।

§ ८६३. अकसा० मिच्छत्तज०वि० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । अपच्चइखाणक्रोधज० वि० एकारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेकारसक०-णवणोकसायाणं । एवं सुहुमसांपराय-जहा-क्खादाणं । णवरि सुहुम०लोभसंज० जह० वि० सेसं णत्थि । सेस० जह० लोभसंज० णिय० अज० असंखे०गुणा ।

§ ८६४. णाणाणुवादेण मदिसुदअण्णा० तिरिक्खोवं । णवरि अणंताणु०चउक० मिच्छत्तभंगो । सम्मत्त०सम्मामिच्छत्तभंगो । एवमभवसि० मिच्छायिदि०-असणी० । णवरि अवसिदि०एसु सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि । विहंग० मिच्छत्त ज० वि० सोलसक०-

§ ८६२. कषाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधी जीवका पंचेन्द्रियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके तीन संज्वलनोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार मान आदि तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार मानी जीवके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके माया आदि दो संज्वलनोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार मायी जीवके जानना चाहिये; किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके लोभ संज्वलनकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है।

§ ८६३. कषायरहित जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सूक्ष्म सांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपराय गुरुस्थानमें लोभ संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके शेष प्रकृतियाँ नहीं हैं। तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके लोभसंज्वलनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है।

§ ८६४. ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मत्तज्जानी जीवोंमें सामान्य तिर्यकोंके समान कथन जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्य जीवोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं। विभंग ज्ञानियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके

णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । सम्मत्त०-सम्मामि० मदिअण्णाणिभंगो । एवं सोलसक० णवणोकसायाणं । सम्मत्त० जह० विह० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० किं ज० [अज०] ? अज० । तं तु तिट्ठाणपदिदा । सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सम्मामि० ? णवरि सम्मत्तं णत्थि ।

§ ८६५, आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघभंगो । णवरि सम्मामिच्छत्तस्स क्लवणाए जहण्णद्विदी कायव्वा । एवं संजद०-मणपज्ज०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठीणं । णवरि मणपज्ज० इत्थि-णवुंस०-सामिणो जाणिदव्वा । सामाइय-छेदो० तिण्णिसंज०-णवणोक०ज० वि० लोभसंज० किं ज० अज० ? णि० अजह० संखे०गुणा ।

§ ८६६, परिहार० मिच्छत्त०ज०वि० सम्मत्तसम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त०ज०वि० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा । सम्मामि०ज०वि० सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । सेस०

धारक जीवके सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मत्यज्ञानियोके समान है । इसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? अजघन्य होती है जो तीन स्थान-पतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिकेवाले जीवके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व-प्रकृति नहीं है ।

§ ८६५, आभिनिवोधक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंका भंग ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति क्षपणाके समय ही कहनी चाहिये । इसी प्रकार संयत, मनःपर्ययज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनःपर्ययज्ञानियोंमें स्त्रीविद और नपुंसकवेदके स्वामीको जानकर कहना चाहिये । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना-संयतोंमें तीन संख्यलान और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिभिक्तिकेवाले जीवके लोभसंख्यलानकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।

§ ८६६, परिहार विशुद्धिसंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिकेवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिकेवाले जीवके वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो दो स्थानपतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिकेवाले जीवके सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या

सम्मत्तभंगो । अणंताणु०कोध० जह० दंसणतिय-तिण्णिक्कसा० ओघं । सेसं मिच्छत्त-भंगो । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खवाणकोध० ज० वि० एक्कारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक० णवणोकसायाणं । एवं संजदासंजदाणं ।

§ ८६७. असंजद० मिच्छत्त० ज० वि० सम्मत्त०-सम्मामि० किं ज० अज० । णि० अज० असंखे०गुणा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त० ज० वि० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखेज्जगुणा । सम्मामि० ज० वि० सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि णि० असंखे०गुणा । वारसक० णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० तिट्ठाणपदिदा । सेसं तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त० अणंताणु० चउक्क०भंगो ।

§ ८६८. किण्ह-णील-काउ० तिरिक्खोघं । णवरि किण्ह-णील्लेस्सामु सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्तभंगो । तेउ०-पम्म०परिहार०भंगो । णवरि सम्मामि० ओघं ।

अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। शेष प्रकृतियोंका भंग सम्यक्त्वके समान है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके तीन दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंका कथन ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार संयतासंयतोंके जानना चाहिये।

§ ८६७. असंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे तीन स्थान पतित होती है। शेष कथन सामान्य तिर्यचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका भंग अनन्तानुबन्धी चतुष्कके समान है।

§ ८६८. कृष्ण नील और कापोत लेश्यावालोंके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये। किन्तु इनकी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्याओंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। पीत और पद्मलेश्यावालोंमें परिहार विशुद्धिसंयतोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है।

§ ८६६, खड्यसम्मा० एकवीसपयडीणमोघं । वेदय० मिच्छत्त-सम्माभि०-अणंताणु०चउक्काणं परिहारभंगो । सम्मत्त०ज०वि० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा वेढाणपदिदा । अपच्चक्खा० कोधज० वि० सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक०-णवणोक-सायाणं जहण्णाचं वत्तव्वं । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं । उवसमसम्मा० मिच्छत्त० ज० वि० सम्मत्त०-सम्माभि०-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सम्मत्त-सम्माभि०-वारसक०-णवणोक० । अणंताणु०कोध०ज०वि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । एवं सासणसम्मा-दिट्ठीणं । णवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो ।

§ ८७०, सम्मामिच्छाइट्ठी० मिच्छत्तजह० सम्म०-सम्माभि० णि० अज० संखे०गुणा । सेसं णियमा जह० । णवरि अणंताणु०चउक्कं णरिथि । एवं वारसक०-

§ ८६६, ज्ञातिकसम्यग्दृष्टियोमे इकीस प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है । वेदक सम्यग्दृष्टियोमे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग परिहारविद्धिसंयतोके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी हाती है और अजघन्य भी । उनसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे दो स्थानपतित होती है । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नाकषायोंका स्थिति जघन्य कहना चाहिये । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकषं जानना चाहिये । उपशम सम्यग्दृष्टियोमे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंको स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकषं जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्राधका जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नाकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसंख्यातगुणों होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंका स्थिति क्या जघन्य हाती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य हाती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंका जघन्य स्थितिवाले जीवके सन्निकषं जानना चाहिये । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि जाबाक जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ८७०, सम्यग्मिथ्यादृष्टियोमे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । तथा शेष प्रकृतियोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्क नहीं है । इसी प्रकार वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य



णवणोक० । अणंताणु० कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक०  
णिय० अज० असंखेज्जगुणा । तिण्णि कसा० णिय० जहण्णा । एवं तिण्णं कसायाणं ।  
सम्म० जह० द्विदिविह० सम्मामि० णिय० जह० । सेससन्व० णिय० अज० संखे०-  
गुणा । एवं सम्मामि० । अणाहाराणं कम्मइयभंगो ।

एवं सण्णियासो समत्तो ।

❀ [ अप्पावहुअं । ]

§ ८७१. अप्पावहुअं दुविहं द्विदिअप्पावहुअं जीवअप्पावहुअं चेदि । तत्थ द्विदि-  
अप्पावहुअं वत्तइस्सामो ।

❀ सन्वत्थोवा णवणोकसायाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती ।

§ ८७२. कुदो ? वंधावलियुणचत्तालीस-सागरोवमकोडाकोडिंपमाणत्तादो । किमहं-  
बंधावलिियाए ऊणा ? ण, बद्धसमए चेव कसायुक्कस्सद्विदीए णोकसायाणमुवरि संक्रम-  
णसत्तिविरोहादो । तं पि कुदो ? साहावियादो । ण च सहावो परपडिंजोयणारुहो,

स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंके जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा तीन कपायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार तीन कपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ण जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । तथा शेष सब प्रकृतियोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ण जानना चाहिये । अनाहारकोंके कामैणकाययोगियोंके समान भंग है ।

इस प्रकार सन्निकर्ण समाप्त हुआ ।

\* अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ८७१. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थिति अल्पबहुत्व और जीव अल्पबहुत्व । उनमेंसे स्थितिअल्पबहुत्वको बतलाते हैं—

\* नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८७२. क्योंकि नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण बंधावलि क्रम चालीस कोड़ा-कोड़ी सागर है ।

शंका—इसे एक बंधावलिप्रमाण कम किसलिये किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्ध होनेके पहले समयमें ही कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें नौ नोकपायरूपसे संक्रमण होनेकी शक्ति माननेमें विरोध आता है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि ऐसा स्वभाव है और स्वभाव दूसरेकी प्रकृतिके अनुरूप होता नहीं,

१. ता० प्रती 'संखे०गुणा' इति पाठः । २. ता० प्रती 'कोडीअो' इति पाठः । ३. आ० प्रती 'परपडि' इति पाठः ।

अङ्गसंगादो ।

❀ सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिविहत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७३. बंधावत्तियमेत्तेण ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७४. केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तूणतोससागरोवमकोडाकोडोमेत्तेण ।

❀ सम्मत्तस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती विसे० ।

§ ८७५. के० मेत्तेण ? एगुदयणिसेगट्टिदिमेत्तेण । जुणिसुत्ते जइवसहाइरियो

कम्हि वि कालपहाणं कादूण ट्टिदिवण्णं कुणदि मिच्छत्तस्स संपुण्णसत्तरिसागरो-  
वमकोडाकोडिद्विदिवरूवणादो । कम्हि वि णिसेगपहाणं कादूण वण्णं कुणदि; सम्म-  
त्तुक्कस्सट्टिदि पेक्खिदूण सम्मामिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए देसूणत्तपूरूवणादो, छण्णोकसाय-  
जहण्णट्टिदीए अंतोमुहुत्तमेत्तावट्टाणपूरूवणादो च । उच्चारणाइरियो वि कम्हि वि  
कालपहाणं कादूण ट्टिदिवण्णं कुणदि; सम्मत्तजहण्णट्टिदि पेक्खिदूण मिच्छत्तजहण्ण-  
ट्टिदीए संखेज्जगुणत्तपूरूवणादो । कम्हि वि णिसेगपहाणं कादूण वण्णं कुणदि; अणु-

अन्यथा अतिप्रसंग बाध आता है ।

❀ ना नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७३. नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक बन्धावलि-  
काल प्रमाण अधिक है ।

❀ सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७४. शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—अन्तमुहूर्त कम तोस कोडाकोड़ी सागर अधिक है ।

❀ सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७५. शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक उदय निवेकको स्थितिप्रमाण अधिक है ।

शंका—चूँकिसुत्रमे यतिवृषभ आचार्य कहीं कालकी प्रधानता करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जो सत्तर कोडाकोड़ी सागरप्रमाण कही है वह कालकी प्रधानतासे कही है । कहीं निपेकोंका प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे, सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जो देशोन कही है और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी जो अन्तमुहूर्तप्रमाण अवस्थिति कही है वह निपेकोंकी प्रधानतासे ही कही है । इसी प्रकार उच्चारणाचार्य भी कहीं कालको प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिको देखते हुए जो मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति संख्यातरुणी कही

दिसामु मिच्छत्तद्विदिं पेविखदूण सम्मत्तुक्कस्सद्विदीए विसेसाहियत्तपरूवणादो । तदो एदेसिं दोणहमाइरियाणमहिष्पाओ दुरवगमो च्चि ? ण; णिसेगेहिंतो कालस्स अभेद-  
प्पहाणा परूवणा भेदप्पणाए कालपहाणा च्चि दोसाभावादो । किमदं गुणपहाणभावेण  
परूवणा कीरदे ? कारणंतरावेक्खाए दुविहणयमस्सिदूणद्विदिसिस्साणुगहदं वा ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७६. के० भेत्तेण ? अंतोमुहुत्तेण ।

❀ णिरयगदीए सब्वत्थोवा इत्थिवेदपुरिसवेदाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती ।

§ ८७७. कुदो ? तत्थेदेसिमुदयाभावेणुदयणिसेगस्स णवुंसयवेदसरूवेण स्थि-  
उक्कसंक्रमेण गमणादो ।

❀ सेसाणं णोकसायाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती विससाहिया ।

§ ८७८. केत्तिएण ? एगुदयणिसेगेण ।

हैं वह कालकी प्रधानतासे ही कही है । कहीं निषेकोंको प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे अनुदिश आदिमें मिथ्यात्वकी स्थितिको देखते हुए जो सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक कही है वह निषेकोकी प्रधानतासे ही कही है इससे माळूम होता है कि इन दोनों आचार्योंका अभिप्राय दुरवगम है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जहां निषेकोंकी अपेक्षा परूपणा की है वहां निषेकोंसे कालके अभेदकी प्रधानता करके परूपणा की है और जहां भेदकी विवक्षासे परूपणा की है वहां कालकी प्रधानतासे परूपणा की है, इसलिये कोई दोष नहीं है ।

शंका—इस प्रकार गौण मुख्यभावसे परूपणा किसलिये की जाती है ?

समाधान—भिन्न भिन्न कारणोंकी अपेक्षासे अथवा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंका आश्रय लेनेवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये गौण मुख्यभावसे परूपणा की जाती है ।

\* सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ?

§ ८७६. शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अधिक है ।

\* नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८७७. शंका—नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सबसे थोड़ी क्यों हैं ?

समाधान—क्योंकि वहां पर इन दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है अतः इनका उदय-निषेक स्तबुकसक्रमणके द्वारा नपुंसकवेदरूपसे परिणत हो जाता है ।

\* स्त्रीवेद और पुदुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे शेष नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७८. शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक उदय निषेकप्रमाण अधिक है ।

❖ सोलसयहं कसायाणमुक्कस्सद्विदिविहृत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७६. केत्तिएण, वंधावळियाए ।

❖ सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहृत्ती विसेसाहिया ।

§ ८८०. केत्तियमेत्तो विसेसो चि ? तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ अंतो-  
मुहुत्तूणाओ ।

❖ सम्मत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहृत्ती विसेसाहिया ।

§ ८८१. केत्तिएण; एगुदयणिसेगेण ।

❖ मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहृत्ती विसेसाहिया ।

§ ८८२. के० ? अंतोमुहुत्तेण ।

❖ सेसासु गदीसु णेदव्वो ।

§ ८८३. एदेणेदेसिं सुत्ताणं देसामासियत्तं जाणाविदं, तेण चुण्णिमुत्तच्चवि-  
दाणमत्थाणमुच्चारणमस्सिदूणं परूवणं कस्सामो ।

\* शेष नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७६. शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक वन्धावलि कालप्रमाण अधिक है ।

\* सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८८०. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ।

समाधान—विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कम तीस कोडाकोड़ी सागर है ।

\* सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८८१. शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक उदयनिषेकप्रमाण अधिक है ।

\* सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८८२. शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अधिक है ।

\* इसी प्रकार शेष गतियोंमें जानना चाहिये ।

§ ८८३. पूर्वोक्त सभी सूत्र देशामर्पक हैं यह इस सूत्रसे जता दिया है, अतः चूर्णिसूत्रसे सूचित होनेवाले अर्थोंका उच्चारणाका आश्रय लेकर कथन करते हैं—

§ ८८४. द्विद्विअप्पावहुअं दुविहं—जहणणमुक्कस्सं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य ? तत्थ ओघेण सव्वंतथोवा एवणोक० उक्कस्सद्विदिविहत्ती । सोलसक० उक्क० विहत्ती विसे० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० विसेसा० । मिञ्चत्त० उक्क० विसेसा० । एवं सत्तसु पुढवीसु । तिरिक्खगइचउक्क०-मणुसतिय०-देवगई०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउच्चि०-तिण्णिवेद-चचारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारए चि ।

§ ८८५. पंचि० तिरि० अपज्ज० सव्वंतथोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विद्वि विहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विद्विदिविहत्ती विसे० । मिञ्चत्तुक्क० द्विद्विदिविहत्ती विसे० । एवं मणुसअपज्ज०-बादरेइंदिय अपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगल्लिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज०-बादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरआउ० अपज्ज०-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-तेउ० बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-वाउ० बादरसुहुम-

§ ८८४. स्थिति अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहल यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, तिर्यचगतिमें सामान्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी, और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८५. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोमे सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, बादर जलकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोदवनस्पति, बादर

पज्जचापज्जत्त - वादरवणप्फदिअपज्ज० - सुहुमवणप्फदिपज्जचापज्जत्त - गिगोदवणप्फदि-  
वादरसुहुमपज्जचापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-तस, अपज्जत्तेत्ति ।

§ ८८६. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक०  
उक्कस्सद्विदिविहृत्ती । सम्मामि० उक्कस्सद्विदिविहृत्ती विसे० । मिच्छत्त-सम्मत्त० उक्क०  
द्विदिवि० विसे० । एवं सुक्कलेस्साए । णवरि सम्मत्तस्सुवरि मिच्छ० उक्क० विसे० ।  
अणुद्दिस्सादि जाव० सव्वद्विसिद्धि त्ति सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदि-  
विहृत्ती । मिच्छत्त-सम्मामि० उक्क० वि० विसे० । सम्मत्तुक्क० विह० विसे० । एवमाहार-  
आहारमि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-  
संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदयसम्मादिद्वित्ति ।

§ ८८७. ईदियाणु० एइदियेसु सव्वत्थोवा णवणोक० उक्क० द्विदिविहृत्ती ।  
सोलसक० उक्क० वि० विसे० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० विहृत्ती विसे० । मिच्छत्तुक्क०  
वि० विसे० । एवं वादरेइदिय-वादरेइदियपज्जत्त-पुढवि०-वादरपुढवि०-तप्पज्ज०-आउ०-  
वादरआउ०-तप्पज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय-तप्पज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउ०-मिस्स-क्कम्-  
इय-तिण्णिअण्णाण-मिच्छादिद्वि-असण्णि०-अणाहारए त्ति । एवमवसि० । णवरि  
सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि ।

निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर  
वनस्पति प्रत्येकशरीर अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८६. आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तक देवोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायों-  
की उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष  
अधिक है । इससे मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी  
प्रकार शुक्ललेश्यामें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सम्यक्त्वके अनन्तर  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें  
सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व और ।  
सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति ]  
विशेष अधिक है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, मनभर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धिसंयत,  
संयतसंयत, अबधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८७. इन्द्रिय मार्गणके अनुवादसे एकैन्द्रियोमें नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति  
सबसे थोड़ी है । इससे सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार वादर एकैन्द्रिय, वादर एकैन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक,  
वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जल-  
कायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त,  
औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी, कामेणकाययोगी, तीनों अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि,  
असंज्ञी और अनाहारकोके जानना चाहिये । तथा अभव्योके इसी प्रकार जानना । किन्तु इनके

§ ८८८. अवगद० सव्वत्थोवा वारसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिविहती । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विदिवि० विसे० । एवं सुहुम०-जहाक्खाद० अकसायित्ति ।

§ ८८९. खइए णत्थि अप्पावहुगं; वारसक०-णवणोक० द्विदीणं सरिसत्तादो । उवसमे सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक०-उक्क० द्विदिविहती । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विदिविहती विसे० । एवं सासण० । सम्मामि० सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिविहती । सम्मत्त० उक्कद्विदिविहती विसे० । सम्मामि० उक्क० द्विदिवि० विसे० । मिच्छत्तउक्क० विसे० ।

एवमुक्कत्सप्पावहुआणुगमो समत्तो ।

§ ८९०. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसे० । ओघेण सव्वत्थोवा सम्मत्त-इत्थि०-णवुंस०-लोभसंज० जहण्णद्विदिविहती । मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक० जहण्णद्विदिविहती संखे० गुणा । मायासंज० जह० द्विदिवि० असंखे० गुणा । माण-संजल० जह० द्विदिविह० संखे० गुणा । कोधजह० द्विदिवि० संखे० गुणा । पुरिसजह० द्विदि० विह० संखेज्जगुणा । छण्णोक० जह० द्विदिवि० संखे० गुणा । एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-पंचिंदिय-पंचि० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-क्काय-सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियां नहीं हैं ।

§ ८८८. अपगत वेदियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सूक्ष्मसांप्रायिक संयत, यथाख्यातसंयत और अकषायी जीवोमे जानना चाहिये ।

§ ८८९. क्षात्रिक सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि इनके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थितियां समान हैं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सासादन-सम्यग्दृष्टियोंके जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ ८९०. अब जघन्य स्थिति अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सम्यक्त्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और लोभसंखलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मायासंखलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मानसंखलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंखलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मट्टप्यनी, पंचेन्द्र्य, पंचेन्द्र्य पर्याप्त, त्रस, त्रस, पर्याप्त,

जोगि०-ओरालिय०-लोभक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजद०-चक्रु०-अचक्रु०-  
ओहिदंस०-सुवकले०-भवसि०-सम्मादि०-सणि०-आहारए ति । गवरि मणुसपज्ज०  
झणोकसायाणमुवरि इत्थिवेद० जह० असंखे०गुणा । मणुसिणी० कोधसंजखणस्सुवरि  
पुरिस०-झणोक्क० जह० द्विदिवि० संखे०गुणा । गवुंस० जह० द्विदिवि० असंखे०गुणा ।

§ ८९१. ओदेसेण णेरइएसु सच्चथोवा सम्मत्त० जह० द्विदिवि० । सम्मामि०-  
अणताशु०चचक्क० जह० द्विदिवि० संखेगुणा । पुरिस० जह० द्विदिवि० असंखे०गुणा ।  
इत्थिज० द्वि० विसेसा० । के० मेत्तेण ? पुरिसवेदबंधगद्धणित्थिवेदबंधगद्धामेत्तेण ।  
हस्स-रदि० जह० द्वि० वि० विसे० । के० मेत्तेण ? अरदि-सोगबंधगद्धण पुरिसगवुं-  
सयवेदबंधगद्धामेत्तेण । अरदि-सोग० जहण्ण० द्विदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ? हस्स-  
रइबंधगद्धापरिहीणसगबंधगद्धामेत्तेण । गवुंस० जह० द्विदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ?  
इत्थि-पुरिसबंधगद्धणहस्स-रदिवंधगद्धामेत्तेण । वारसक०-भय-दुगुब्बाणं जह० द्विदिवि०  
विसे० । मिच्छत्तज० द्विदिवि० विसे० ।

§ ८९२. एत्थुवउज्जंतमद्धप्पावहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा—सच्चथोवा पुरिस-  
बंधगद्धा २ । इत्थिवेदबंधयद्धा संखे०गुणा ४ । हस्स-रदि-बंधगद्धा संखे०गुणा १६ ।

पांचो मनोयोगी, पांचों बचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, लोभ कषायवाले, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अचधिदर्शनवाले, झुगल्लोरेयावाले, भन्द्य, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोमं छह नोकषायोंके ऊपर स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी होती है । मनुष्यनियोगे क्रोधसंबन्धलनके ऊपर पुरुषवेद और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी होती है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी होती है ।

§ ८९१. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है ? इससे सम्यगभिध्यात्व और अनन्तासुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यात-गुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? पुरुषवेदके बन्धककालसे कम स्त्रीवेदके बन्धक कालप्रमाण अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? अरति और शोकके बन्धक कालसे कम पुरुषवेद और नपुंसकवेदके बन्धक कालप्रमाण अधिक है । इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? हास्य और रतिके बन्धक कालसे कम अपने बन्धक कालप्रमाण अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बन्धकालसे कम हास्य और रतिके बन्धकाल प्रमाण अधिक है । इससे वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८९२. अब यहाँ प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । जो इस प्रकार है—  
पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा है जिसकी सहनानी २ है । इससे स्त्रीवेदका बन्ध-  
काल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ४ है । इससे हास्य और रतिका बन्धकाल संख्यात



अरदि-सोगबंधगद्धा संखे० गुणा ३२ । णवुंसयवेदबंधगद्धा विसे० ४२ । सगसगपडि-  
वक्खबंधगद्धाओ कसायजहण्णद्विदीदो २०० सोहिदे सत्तणोकसायाणं जहण्णद्विदीओ  
होंति । तासिं पमाणमेदं—पुरिस० जहण्णद्विदी एसा १५४ । इत्थि० जहण्ण०द्विदी  
१५६ । हस्स-रदिज० द्विदी १६८ । अरदि-सोगजहण्णद्विदी १८४ । णवुंस०जह०  
द्विदी १६४ । एसा उच्चारणप्पाबहुअस्स संदिट्ठी ।

§ ८६३. संपहि चिरंतणवक्खाणाइरियाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । सव्वत्थोवा  
सम्मत्त० जह० द्विविहत्ती । सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० विहत्ति० संखे०  
गुणा । पुरिस० ज० विहत्ती असंखे०गुणा । इत्थि० जह० विहत्ती विसे० । हस्स-  
रदि० ज० द्वि० विह० विसे० । णवुंस० जह० वि० विसे० । अरदि-सोग० ज० वि०  
विसे० । भय-दुगुंछाणं ज० द्विदि० विसे० । बारसण्हं कसायाणं ज० द्वि० वि० विसे० ।  
मिच्छत्त ज० द्वि० वि० विसे० । एदस्स अप्पाबहुअस्स साहण्णद्वमद्धप्पाबहुअं वत्तइ-  
स्सामो । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिस० बंधगद्धा ३ । इत्थि० बंधगद्धा संखे० गुणा  
६ । हस्स-रदिवंधगद्धा विसे० ११ । णवुंस० बंधगद्धा संखे०गुणा २२ । अरदि-सोग  
बंधगद्धा विसेसा० २३ । अप्पण्णो पडिवक्खबंधगद्धाओ कसायजहण्णद्विदीए २००

गुणा है जिसकी सहनानी १६ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी  
सहनानी ३२ है । इससे नपुंसकवेदका बन्धकाल विशेष अधिक है इसकी सहनानी ४२ है । ऊपर  
जो अंक संदृष्टि दी है उसके अनुसार अपने-अपने प्रतिपन्न बन्धकालोंको कषायकी जघन्य स्थिति  
२०० मेंसे घटा देनेपर सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितियाँ होती हैं । उनका प्रमाण निम्न प्रकार  
है—पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति १५४ होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति १५६ होती है ।  
हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति १६८ होती है । अरति और शोककी जघन्य स्थिति १८४  
होती है । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति १६४ होती है । यह उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये अल्प-  
बहुत्वकी संदृष्टि है ।

§ ८६३. अब चिरन्तन व्याख्यानाचार्यके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य  
स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे  
स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति-  
विभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे  
अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।  
इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । अब इस अल्पबहुत्वकी सिद्धि करनेके  
लिये अल्पबहुत्वको बतलाते हैं, जो इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा है  
जिसकी सहनानी ३ है । इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ६ है ।  
इससे हास्य रतिका बन्धकाल विशेष अधिक है जिसकी सहनानी ११ है । इससे नपुंसकवेदका  
बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी २२ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल विशेष  
अधिक है जिसकी सहनानी २३ है । इस प्रकार ऊपर जो अंकसंदृष्टि दी है उसके अनुसार अपने

सोहिय सत्तणोकसायजहण्णद्विदीओ उप्पपादेदञ्जाओ । पुरिस० जहण्णद्विदी १६९ । इत्थि० जह०द्विदी १७५ । हस्स-रदिजहण्णद्विदी १७७ । णवुंस० जह० द्विदी १८८ । अरदि-सोग जहण्णद्विदी १८६ ।

§ ८९४, एत्थ दोसु वि वक्खवाणेसु एककेणेव सच्चेण होदव्वं, ण दोण्हं, विरो-  
हादो । किंत्तु भय-दुग्गुंछाणसुवरि कसायाणं जह० द्विदिविसेसाहिया चि जं भणिदं  
तण्ण घडदे ; णेरइयविदियसमए जादकसायद्विदिं भयदुग्गुंछासु संकामिय संकामणा-  
वल्लियमेत्तद्विदीणं गाल्लणोवायाभावादो । कुदो ? गहिदसरीरणेरइयस्स पढमसमए कसा-  
एहि सह भय-दुग्गुंछाणमंतोकोडाकोडियेत्तद्विदिवंधुवलंभादो । णेरइयविदियसमयादो  
हेहा ण भयदुग्गुंछाणं जहण्णद्विदी होदि तत्थ भय-दुग्गुंछाहि पडिच्चिज्जमाणकसाय-  
जहण्णद्विदीए अभावादो । तं पि कुदो णव्वदे ? णेरइयविदियसमए चेव जहण्ण-  
सामिच्चदानादो । तम्हा वारसकसायदुग्गुंछाणं जहण्णद्विदीओ सरिसाओ चि जमुच्चारणाए  
भणिदं तं चेव घेत्तव्वं णिरत्तज्जत्तादो । जइ पुण असण्णिणचरिप्रसमए कसायजहण्ण-  
द्विदीदो भयदुग्गुंछ-जहण्णद्विदिविहरीए आवल्लियूणचं लब्भइ तो कसायाणं विसेहियचं  
घडदे । णवरि एदं जाणिय वत्तव्वं । उच्चारणाहिणओ पुण तथा ए लब्भइ चि ।

अपने प्रतिपन्न बन्धकालोको कषायकी जघन्य स्थिति २०० मेंसे घटानेपर सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितियां उत्पन्न करना चाहिये । उनमेंसे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति १६६ होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति १७५ होती है । हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति १७७ होती है । नपुंसकनेदकी जघन्य स्थिति १८८ होती है । अरति और शोककी जघन्य स्थिति १८६ होती है ।

§ ८९४, यहां इन दोनों व्याख्यानोमेंसे कोई एक व्याख्यान ही सत्य होना चाहिये, दोनों नहीं, क्योंकि दोनोंको सत्य माननेमें विरोध आता है । किन्तु भय और जुगुप्साके ऊपर कषायोंकी जघन्य स्थितिको जो विशेष अधिक कहा है वह नहीं बनता है, क्योंकि नारकियोंके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें प्राप्त हुई कषायकी स्थितिके भय और जुगुप्सामें संक्रमित कर देने पर संक्रमणा-  
वल्लिप्रमाण स्थितियोंके गलानेका कोई उपाय नहीं पाया जाता है । इसका कारण यह है कि नारकीके शरीर ग्रहण करनेके पहले समयमें कषायोंके साथ भय और जुगुप्साका अन्तःकोडाकोडी प्रमाण स्थितिवन्ध पाया जाता है । और नारकियोंके दूसरे समयसे नीचे भय और जुगुप्सा प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति नहीं होती है, क्योंकि वहां भय और जुगुप्सारूपसे छीजनेवाली कषायोंकी जघन्य स्थिति नहीं पायी जाती है ।

**शंका**—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—क्योंकि नारकियोंके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही कषायोंका जघन्य स्वामित्व दिया है ।

अतः बारह कषाय और जुगुप्सा इनकी जघन्य स्थितियां समान होती हैं ऐसा जो उच्चारणामें कहा है वही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि वह कथन निर्दोष है । और यदि असंज्ञियोंके अन्तिम समयमें रहने वाली कषायोंकी जघन्य स्थितिसे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिमें एक आबली काल कम प्राप्त होता है । तो कषायोंकी जघन्य स्थिति भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे विशेष अधिक बन जाती है । किन्तु जानकर इसका कथन करना चाहिये । परन्तु उच्चारणाचार्यका



अप्यणो पढमपुढविवक्खाणासमाणं ।

§ ८६७. तिरिक्खवर्गए सच्चत्थोवा सम्मत्त० जह० द्विदिविहती । जत्तिया द्विदिविहती तत्तिया चैव सम्मामि० । अणंताणु० चउक्क० ज० द्विदि० तत्तिया चैव । ज० द्विदिविह० संखे० गुणा णिसेगसमयग्गहणादो । पुरिस० ज० द्विदिवि० असंखेज्जगुणा । इत्थिजह० द्विदिवि० विसे० । हस्सरदि० ज० विह० विसेसा० । अरदि० सोगज० वि० विसे० । णवुंस० ज० द्विदिविह० विसे० । भय-दुग्घं छं ज० वि० विसे० । बारसक० जह० विहती विसेसा० । कारणमेत्थ जहा सत्तमपुढवीए उच्चं तथा वत्तव्वं । मिच्चत्तजह० द्विदिवि० विसे० । एत्थ उच्चारणाइरियस्स सत्तणोकसायबंधगद्धाओ पुच्चं व वत्तव्वाओ; चदुग्घदीसु तासिं विसेसाभावादो । वक्खाणाइरियाणमेत्थ सत्तणो-कसायद्धप्पावहुअमुच्चारणद्धप्पावहुएण सरिसंतेण तिरिक्खवर्गए णत्थि दोहमप्पावहुआणं भेदो । एवं पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं० तिरि० पच्चत्तार्णं । णवरि णवुंस० जहण्णद्विदीए उवरि भय-दुग्घं छाजहण्णद्विदी संखे० गुणा । कुदो ? णवुंसयवेदजहण्णद्विदी णाम सागरोवमचचारि सत्तभागा पल्लिदो० असंखे० भागेण पडिक्खखबंधगद्धाए च ऊणा; पंचिंदिएसु अप्पज्जिय बंधाभावेण एइंदियद्विदिसंतस्सेव तत्थंतेमुहुत्तकालुवलभादो । भय-

क्योंकि उससे इसमें कोई भेद नहीं है । चिरन्तनाचार्यका व्याख्यान भी यहाँ अपने पहली पृथिवीके व्याख्यानेके समान है ।

§ ८६७. तिर्यचगतिमें सन्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । सन्यक्त्वकी नितनी स्थितिबिभक्ति है-उतनी ही सन्यग्मिथ्यात्वकी और उतनी ही अनन्तालुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति है । पर यह स्थिति बिभक्ति संख्यातगुणी है, क्योंकि इसमें निषेकोंके समयोंका प्रदण किया है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे दारह कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इसका कारण जिस प्रकार सातवीं पृथिवीमें कह आये हैं उस प्रकार यहाँ कहना चाहिये । दारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । यहाँ उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये सात नोकपाथोंके बन्धकालोका पहलेके समान व्याख्यान करना चाहिये; क्योंकि चारो गतियोंमें उनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । परन्तु यहाँ तिर्यचगतिमें व्याख्यानाचार्यके द्वारा कहा गया सात नोकषायों सम्बन्धी अल्पबहुत्व उच्चारणाचार्यके अल्पबहुत्वके समान है, अतः तिर्यचगतिमें दोनों अल्पबहुत्वोंमें कोई भेद नहीं है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिके ऊपर भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है; क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग और प्रतिपन्न प्रकृतिके बन्धकालसे कम चार भागप्रमाण होती है, क्योंकि कोई एक एकेन्द्रिय पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और उसने नपुंसकवेदका बन्ध नहीं किया तो उसके

दुर्गुद्धाणं पुण सागरोवमसहस्सस्स वे सत्तभागा पल्लिदोवमस्स संखे० भागेणूणा, भयदुग्गुद्धाणं धुवबंधित्तणेण पंचिंदिएसुप्पण्णपढमसमए वि बंधसंभवादो । तेण एणुंसं० जहण्णट्टिदीदो भयदुग्गुद्धजहण्णट्टिदी संखेज्जगुणा त्ति सिद्धं । बारसक० जहण्णट्टिदी संखे०गुणा । कुदो ? पल्लिदो० संखे०भागेणूणं सागरोवमसहस्सवचारिसत्तभागत्तादो । पिच्छत्त-जहण्णट्टिदी विसे० ; पल्लिदो० संखे०भागेणूणसागरोवमसहस्सस्स सत्त सत्त भागत्तादो । जोण्णिणीसु एवं चेव, णवरिं सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० द्विदिविहत्ती ।

८६८. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त०-सम्मामि० ज० द्विदिवि० । पुरिस० ज० द्विदिवि० असंखे०गुणा । सेस० पंचिं०तिरिक्खभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्काणं बारसक०भंगो । एवं मणुसअपज्ज०-पंचिं०अपज्ज०-तस-अपज्जचाणं ।

§ ८६९. एइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुभेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं तिरिक्खोघभंगो । णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छनेण सह वत्तव्वं, अणंताणु०चउक्क च बारस-

अन्तर्मुहूर्त कालतक एकेन्द्रियोका स्थितिसत्त्व ही पाया जाता है । परन्तु भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंसे पत्योपमका संख्यातवां भाग कम दो भागप्रमाण पाई जाती है; क्योंकि भय और जुगुप्सा ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियां होनेसे पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें भी उनका बन्ध संभव है, इसलिये नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिसे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी होती है यह सिद्ध हुआ । भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है, क्योंकि बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंसे पत्योपमके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विशेष अधिक है, क्योंकि इसका प्रमाण हजार सागरके सात भागोंसे पत्योपमका संख्यातवां भाग कम सात भागप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिभिक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८६८ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिभिक्ति असंख्यातगुणी है । शेष प्रकृतियोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग बारह कषायोंके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८६९ एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके साथ करना चाहिये ।

१ आ. प्रतौ '—भागेणूणा' इति पाठः । २ आ. ता. प्रत्योः 'द्विदिवि० संखे०गुणा । 'पुरिस०' इति पाठः ।

कसाएहिं सह भाण्दिद्वं । सव्वविगल्लिदियाणं पंचिदियअपज्जचभंगो ।

§ ६००. कायाणुवादेण सव्वपुढवि०-सव्वआउ०-सव्वतेउ०-सव्ववाउ०-सव्ववण-  
प्फदि०-सव्वणिगोद०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-पज्जत्तापज्जत्ताणं एइंदियभंगो । वे  
अण्णाण०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णीणं च एइंदियभंगो । एवरि अभव्वेसु सम्मत्त-  
सम्मामि० एत्थि ।

§ ९०१. देवगईए देवाएणं पारगभंगो । एवं भवण०-वाएवेंतर० । एवरि सम्मत्तं  
सम्मामिच्छत्तेण सह भाण्दिद्वं । जोइसियेसु सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त०-  
अण्णाणं चउक्कणं ज० विहत्ती । वारसक० एवण्णिक० ज० विह० असंखे०गुणा ।  
ज० द्विदि० संखे०गुणा । मिच्छत्त० ज० विहत्ती विसेसा० ।

§ ६०२. सोहम्मादि जाव णवगेवज्जात्ति सव्वत्थोवा सम्मत्तज० विहत्ती ।  
सम्मामि० अण्णाणं चउक्क० ज० विहत्ती तत्तिया चेव । ज० द्विदि० संखेज्जगुणा ।  
वारसक०-णवणोक्क० जइण्णविहत्ती असंखे०गुणा; कालपद्दाएत्तावत्तवत्तादो । एण्णिये-  
पद्दाएत्ते पुण वारसक०-अट्ठणोक्कसायाणमुवरि पुरिसवेदज० द्विदिवि० विसे० । एसो  
अत्थो अएएत्थि वि वत्तवो । मिच्छत्तज० विह० संखे०गुणा । अणुद्दिसादि जाव  
सव्वट्ठिसिद्धिं ति सव्वत्थोवा सम्मत्तज० विहत्ती । अण्णाणं चउक्क० ज० द्विदिविहत्ती

और अनन्तालुवन्धी चतुष्कका कथन वारह कषायोंके साथ करना चाहिये । सब विकलेन्द्रियोंका भंग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोके समान है ।

§ ६००. कायमार्गणके अनुवादसे सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं हैं ।

§ ९०१. देवगतिये देवोंका भंग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका सम्यग्मिथ्यात्वके साथ अल्पबहुत्व कहना चाहिये । ज्योतिषियोंमें सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तालुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे वारह कषाय, नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे यरिस्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ६०२. सौधर्म स्वर्गसे लेकर नौ ग्रैवैयक तकके देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तालुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति उतनी ही है । पर यरिस्थिति संख्यातगुणी है । इससे वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है क्योंकि यहाँ पर कालकी प्रधानता स्वीकार की गई है । निपेकोंकी प्रधानता रहनेपर तो वारह कषाय और आठ नोकषायोंके ऊपर पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । यह अर्थ अन्यत्र भी कहना चाहिये । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । अनुद्दिशसे लेकर सवार्थसिद्धि तकके देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति

तत्तिया चैव । ज० द्वि० वि० संखे० गुणा । बारसक० एवणो० जह० विहत्ती असंखे० गुणा । मिच्छत्त-सम्मामि० ज० द्विदि वि० संखे० गुणा ।

§ ६०३. ओराखियमिस्स० तिरिक्खोघभंगो । णवरि अणंताणु० चउक्क० बारसकसायभंगो । एवं वेउव्वियमिस्स० । णवरि णवुंसयवेदस्सुवरि बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० संखे० गुणा । मिच्छ० संखे० गुणा । अणंताणु० चउक्क० संखे० गुणा । वेउव्वियकाय० सोहम्मभंगो । णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तेण सह वत्तव्यं । कम्मइय० सव्वत्थोवा सम्मत्त० ज० द्विदिवि० । सम्मामि० ज० वि० संखे० गुणा । पुरिस० ज० द्विदिवि० असंखे० गुणा । इत्थिज० वि० विसे० । हस्स-रदि० ज० वि० विसे० । अरदि-सोग० ज० वि० विसे० । णवुंस० ज० वि० विसे० । भय-दुगुंछ० ज० वि० विसे० । सोलसक० ज० वि० विसे० । मिच्छ० ज० वि० विसेसाहिया । एवमणा-हारीणं । आहार० आहारमिस्स० सव्वत्थोवा बारसक०-णवणो० ज० द्विदिवि० । मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० ज० द्विदिवि० संखेज्जगुणा । अणंताणु० चउक्क० ज० द्वि० वि० संखे० गुणा ।

§ ९०४. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे सव्वत्थोवा सम्मत्त-इत्थि० जह० द्वि० विहत्ती ।

सबसे थोड़ी है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति उतनी ही है । पर यत्स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।

§ ६०३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंका भंग सामान्य तिर्यचोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग बारह कषायोंके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नपुंसकवेदके ऊपर बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । वैक्रियिककाययोगियोंका भंग सौधर्म कल्पके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कहना चाहिये । कामेणकाययोगियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसमें अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार आनाहारकोके जानना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।

§ ६०४ वेद मार्गणके अनुवादसे स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति

मिच्छत्-सम्भामि०-वारसक० ज० द्वि० वि० संखे०गुणा । सत्तणोके०-चदुसंज० ज० द्वि० वि० असंखे०गुणा । णवुंसमयवेद० ज० द्वि० वि० असंखे०गुणा । एवं णवुंस० । णवरि जम्हि इत्थिवेदो सम्भत्तेण सह वुत्तो तम्हि णवुंसयवेदो वत्तव्वो । जम्हि णवुंसयवेदो तम्हि इत्थिवेदो वत्तव्वो । पुरिसवेदे सव्वत्थोवा सम्भत्त० ज० विहृत्ती । मिच्छत्-सम्भामि०-वारसक० जह० द्विदि० विहृत्ती संखे०गुणा । पुरिसवेदजह० असंखे० गुणा । चदुसंजल० जह० संखे०गुणा । छण्णोक० जह० संखे०गुणा । इत्थिवेदज० विहृत्ती असंखे०गुणा । णवुंस० ज० वि० असंखे०गुणा । अवगदवेदे सव्वत्थोवा लोभसंजलणज० द्वि० विह० । मायासंज० ज० विहृत्ती असंखे०गुणा । माणसंज० ज० संखे०गुणा । कोधसंज० ज० वि० संखे०गुणा । पुरिस० ज० वि० संखे०गुणा । छण्णोक० ज० वि० संखे०गुणा । अट्ठकसा०-इत्थि०-णवुंस० ज० वि० असंखे०गुणा । मिच्छत्-सम्भत्त-सम्भामि० ज० वि० संखे०गुणा ।

§ ६०५. कसायाशुवादेण कोधकसाईसु सव्वत्थोवा सम्भत्त०-इत्थि०-णवुंस० ज० द्वि० वि० । मिच्छ०-सम्भामि०-वारसक० ज० द्वि० वि० संखे०गुणा । चदुसंज० ज० द्वि० वि० असंखे०गुणा । पुरिस० ज० द्वि० वि० संखे०गुणा । छण्णोक० ज०

सवसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे सात नाकपाय और चार सञ्चलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इसी प्रकार नपुंसकवेद वाले जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु जहाँ पर सम्यक्त्वके साथ स्त्रीवेद कहा है वहाँ नपुंसकवेद कहना चाहिये और जहाँ नपुंसकवेद कहा है वहाँ स्त्रीवेद कहना चाहिये । पुरुषवेदमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सवसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे चार सञ्चलनाकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । अपगतवेदमे लोभसञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सवसे थोड़ा है । इससे माया सञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मानसञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे क्राधसञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह नाकषायोंका जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।

§ ६०५. कपाय मागंणाक अनुवादसे क्रोध कषायवाले जीवोंमें सम्यक्त्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति सवसे थोड़ा है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंका जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे चार सञ्चलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह

१. आ० प्रतौ मिच्छ० सम्भ० सम्भामि०' हृति पाठः ।



वि० संखे०गुणा । एवं माणकसाईसु, णवरि वारसक० ज० द्विदीदो तिणिसंज० ज० द्विदी असंखे०गुणा । क्रोधसंज० ज० द्वि० संखे०गुणा । पुरिस० ज० द्विदी संखे० गुणा । छण्णोक० ज० द्वि० संखे०गुणा । एवं मायक०, णवरि वारसक० जह० द्विदीदो उवरि माया-लोभसंजलणाणं ज० द्विदीओ असंखे०गुणाओ । माणसंज० ज० संखे० गुणा । क्रोधसंज० ज० वि० संखे०गुणा । पुरिसज० वि० संखे०गुणा । छण्णोक० ज० वि० संखे०गुणा ।

§ ६०६. अकसाईसु सव्वत्थोवा वारसक०-णवणोक० ज० द्वि० विहत्ती । सम्भत्त-मिच्छत्त-सम्मामि० ज० वि० संखे० गुणा । एवं जहाक्खाद० । सुहुमसांपरा० एवं चेव । णवरि सव्वत्थोवा लोभसंजल० ज० द्वि० विह० । एकारसक०-णवणोक० ज० द्वि० वि० असंखे० गुणा ।

§ ६०७. विहंगणाणीणं जोदिसियभंगो । णवरि अणंताणु० चउक्कस्स वारसक-सायभंगो । मणपज्ज० आभिणि०भंगो । णवरि छण्णोकसायाणमुवरि इत्थिवेद० जह० असंखे० गुणा । णवुंस० जह० असंखे० गुणा । सामाइय्छेदो० मायकसायभंगो । णवरि वारसकसायाणमुवरि लोभसंज० ज० वि० असंखे० गुणा । माय० ज० वि०

नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार मान कषायवाले जावोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति असंख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार मायाकषायवाले जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिसे ऊपर माया और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितियां असंख्यातगुणी हैं । इससे मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।

§ ६०६. कषाय रहित जीवोंमें वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म सांपरायिकसंयत जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है ।

§ ६०७. विभंगज्ञानियोंके ज्योतिषियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग वारह कषायोंके समान है । मनःपर्ययज्ञानियोंके मतिज्ञानियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके छह नोकषायोंके ऊपर स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके मायाकषायवाले जीवोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कषायोंके ऊपर लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है ।

संखे० गुणा । उवरि णत्थि विसेसो ।

§ ९०८. परिहारसुद्ध० सव्वत्थोवा सम्मत्तज० ढि० वि० । मिच्छत्त०-सम्मा-  
मि०-अणंताणु० चउक्क० ज० वि० संखे० गुणा । वारसक०-णवणोक० ज० ढि० वि०  
असंखे० गुणा । एवं संजदासंजद-तेउ-पम्मलेस्साणं । असंजद० सव्वत्थोवा सम्मत्त०  
ज० ढि० वि० । मिच्छत्त०-सम्मामि०-अणताणु० चउक्क० ज० ढि० वि० संखे० गुणा ।  
सेस० तिरिक्खोवं ।

§ ९०९. किण्ह-णीललेस्साणं तिरिक्खभंगो । णवरि सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्तेण  
सह वत्तव्वं । काउ० तिरिक्खोवं ।

§ ९१०. खइय० सव्वत्थोवा लोभसंज० इत्थि-णनुंस० ज० विह० । अट्ठक-  
साय ज० ढि० वि० संखे० गुणा । मायासंज० ज० ढि० वि० असंखे० गुणा ।  
सेसभोवं । वेदगसम्मादिट्ठी० परिहारभंगो । उवसम० सव्वत्थोवा अणंताणु० चउक्क०  
ज० ढि० वि० । वारसक०-णवणोक० ज० ढि० वि० असंखे० गुणा । मिच्छत्त-  
सम्मामि० ज० ढिदि० वि० विसेसा० । सासण० सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक०  
ज० ढि० वि० । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० ज० ढि० वि० विसे० । सम्मामि०  
सव्वत्थोवा सम्मत्त० ज० ढि० वि० । सम्मामि० ज० ढि० वि० विसे० । वारसक०-

इससे मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । ऊपर और कोई विशेषता नहीं है ।

§ ९०८. परिहारविशुद्धिसंयतोमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे  
मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।  
इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इसा प्रकार  
संयतासंयत, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । असंयतोमे सम्यक्त्वकी  
जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । शेष कथन सामान्य तिर्यचोके समान है ।

§ ९०९. कृष्ण और नीललेश्यावाले जीवोंके तिर्यचोके समान भंग है । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि इनके सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके साथ करना चाहिये । कापोतलेश्यावाले  
जीवोंके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये ।

§ ९१०. चायिकसम्यग्दृष्टियोमे लोभसंज्वलन, स्त्रीवेद और तनुंसकवेदकी जघन्य स्थिति-  
विभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे  
मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । शेष कथन ओचके समान है । वेदक-  
सम्यग्दृष्टियोंके परिहारविशुद्धिसंयतोके समान भंग है । उपशमसम्यग्दृष्टियोमे अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्व सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति विशेष अधिक हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोमे सांलह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति विशेष अधिक हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे  
थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे बारह कषाय

णवणोक्क० ज० द्वि० वि० संखेज्जगुणा । मिच्छ० जह० विसे० । अणंताणु० चउक्क०  
ज० द्वि० वि० संखे० गुणा ।

एवं द्विदिअप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

§ ९११. संपहि जीव अप्पावहुगाणुगमं वत्तइस्सामो । सो दुविहो—जहण्णओ  
उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण छव्वीसं पयदीणं सव्वत्थोवा उक्कस्सद्विदिविहत्तिया जीवा । अणुक्क० द्विदि-  
विहत्तिया जीवा अणंतगुणा । सम्मत्त-सम्पामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा उक्क० द्विदि०  
जीवा । अणुक्क० द्विदि० जीवा असंखे० गुणा । एवं तिरिक्ख०-एइंदिय-वणप्पदि०-  
णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-  
णवुंस०-चत्तारिक्क०-मदिसुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खुदंस०-तिण्णिले०-भवसि०-  
अभव०-मिच्छादि०-असणी०-आहारि०-अणाहारि त्ति । णवरि अभव० सम्म०-सम्पामि-  
मि० णत्थिय ।

§ ९१२. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अट्ठावीस० उक्क० द्विदि० जीवा । अ-  
णुक्क० द्विदि० जीवा असंखे० गुणा । एवं सव्वणेरइय-सव्वर्षचिदियतिरिक्ख०-मणुस  
मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद त्ति सव्वविगल्लिंदिय-सव्वर्षचिदिय-सव्व-  
चत्तारिक्काय-सव्वत्तस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउविय०-वेउ० मिस्स-इत्थि-पुरिस०-विहं-

और नौ नोकपायोंकी जवन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जवन्य स्थिति-  
विभक्ति विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी जवन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है ।

इस प्रकार स्थिति अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ ९११. अब जीव विषयक अल्पबहुत्वानुगमको बतलाते हैं । वह दो प्रकारका है—जघन्य  
और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-  
निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे आंफकी अपेक्षा छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति-  
वाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव अनन्तगुणें हैं । सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुकृष्ट स्थिति-  
बिभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणें हैं । इसी प्रकार तिर्यंचो, तथा एकेंद्रिय, वनस्पति और निर्गोद  
जीव तथा इन तीनोंके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीव तथा काययोगी,  
औदारिककाययोगी, औदारिकसिद्धकाययोगी कर्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, चारों कपायवाले,  
मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदशनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्या-  
द्विष्ट, आसंज्ञा, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योके  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियां नहीं हैं ।

§ ९१२. आदेशको अपेक्षा नारक्रियोमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले  
जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणें हैं । इस प्रकार सब  
नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर  
अपराजित तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक आदि चार कायवाले,

ग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदस०-तिणिले०-सम्मादि०  
खइयसम्मा०-वेदयसम्मादि०-उवसम०-सासण०-सन्माभि०-सण्णि चि ।

§ ९१३. मणुसपज्ज०-मणुसिणोसु सव्वपयडीणं सव्वत्थोवा उक० द्विदि० जीवा ।  
अणुक० द्विदि जीवा संखे० गुणा । एवं सव्वदृ०-आहार०-आहारमिस्स-अवगद०-  
अकसा०-मणपज्ज०णाणी-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहास्त्वाद०  
संजदे चि ।

एवमुक्कस्सओ जीव अप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

§ ६१४. जहण्णाए पयदं । दुग्घो खिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
सव्वत्थोवा सव्वपयडीणं ज० द्विदि० जीवा । अज० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वणेरइय-  
सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारिंकाय-  
सव्वतस-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउच्चि०-वेउच्चियमिस्स०-आहार०-  
आहार०मिस्स०-तिणिएवेद०-अवगद०-चत्तारिक० अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-  
ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहावस्त्वाद०-संजदासंजद०-  
चक्खु०-ओहिदस०-तिणिले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०

सव त्रस, पांचों मनोयोगी, पाचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी,  
स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चतु-  
दर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत दि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि  
उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञा जीवोंके जानना ।

§ ६१३. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तितवाले जीव  
सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तितवाले जीव संख्यातगुणें हैं । इसी प्रकार सर्वार्थ-  
सिद्धि के देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकपायवाले, मनः-  
पर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिक-  
संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट जीव अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६१४. अब जीव विषयक जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो  
प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी जघन्य  
स्थितिबिभक्तिके धारक जीव सबसे थोड़े हैं । अजघन्यका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार  
सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, ध्रुविवी  
आदि चार स्थावर काय. सब त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-  
काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाय-  
योगी, तीनों वेदवाले, अपगतवेदवाले, क्रीधादि चारो कपायवाले, अकपायी, विभंगज्ञानी, मति-  
ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी. संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत,  
परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चतुर्दशनवाले, अवधि-  
दर्शनवाले, पीतादि तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-

२. ता० प्रतौ 'सव्वविगल्लिंदिय चत्तारि' इति पाठः ।

सम्मामि०-सण्णि-आहारि त्ति ।

§ ९१५. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंढ० एारगभंगो । सेसमोघं । एवमसंजद० तिण्णिलेस्साणं । एवरि असंज०-मिच्छ० ओघं ।

§ ९१६. एइंदिएसु मिच्छ०-सोलसक०-णवणो०-सम्मत्त०-सम्मामि० एारय-भंगो । एवं वण्णफ्फदि-णिगोद०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-कम्मइय-अणाहारि त्ति । ओराल्लियमिस्स० तिरिक्खोघं । एवरि अणंताणु०चउक्क० अपज्जत्तभंगो । एवं मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति । अभव० छव्वीसपयडी० ओराल्लिय-मिस्सभंगो ।

एवं चउवीस अण्णियोगद्वाराणि समात्ताणि ।

सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना ।

§ ९१५. तिर्यचोमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भंग नारकियोंके समान है । शेष कथन ओघके समान है । इसी प्रकार असंयत और कृष्णादि तीन लेख्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंयतोंके मिथ्यात्वका कथन ओघके समान है ।

§ ९१६. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, सम्यक्त्व, और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, तथा कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगियोंके सामान्य तिर्यचोके समान जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना । अभव्योंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भंग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वारा समाप्त हुए ।

